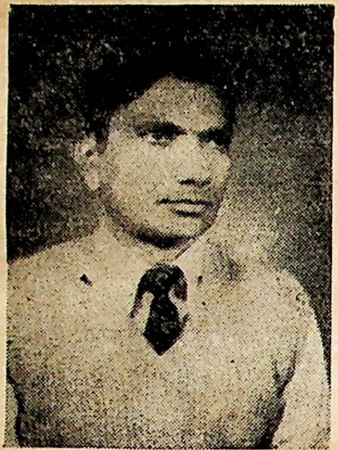
पत्र-साहित्य

हिन्दी प[...]
पत्र-साहित्य

डा॰ कमल पुंजाणी





डॉ. कमल पुंजाणी

कवि, लेखक एवं समीक्षक

जन्म : १४ जनवरी १९४२, जामनगर (गुजरात)

शिक्षा : एम. ए., पी-एच. डी.।

रुचि के विषय : साहित्य, संगीत, दर्शन एवं पत्र-लेखन।

प्रकाशन : प्रतिबिम्बित इन्द्रधनुष (कविता-संग्रह)।

क्षितिज से दूर (कविता-संग्रह)।

हिन्दी का पत्र-साहित्य (शोध-प्रबन्ध)।

अनेकानेक हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

विशेष : हिन्दी की उत्तम रचनाओं का गुजराती में तथा गुजराती की अनूठी रचनाओं का हिन्दी में अनुवाद एवं रूपान्तर।

सम्प्रति : श्री वी. एम. महेता म्युनि. आर्ट्स एण्ड कॉमर्स कॉलेज, जामनगर में हिन्दी प्राध्यापक।

पता : १-११/२, आर. टी. जाड़ेजा एस्टेट, गुरुद्वारा के निकट, जामनगर—३६१००१ (गुजरात)।

हिन्दी का पत्र-साहित्य

कृष्णा ब्रदर्स
महात्मा गांधी मार्ग
अजमेर-30 5001

हिन्दी का पत्र-साहित्य

(महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय की पी-एच. डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

लेखक—

डॉ. कमल पुंजाणी

एम. ए., पी-एच. डी.

कृष्णा ब्रदर्स

महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर

□

First Edition : 1983
Price : Rs. 81/-

□

संस्करण : प्रथम १९८३ ई. / **मूल्य :** इक्यासी रुपये मात्र / **प्रकाशक :** जयकृष्णा अग्रवाल, कृष्णा ब्रदर्स महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर / **आवरण :** प्रकाश आर्टिस्ट
मुद्रक : आशीष प्रिन्टर्स, ब्रह्मपुरी, अजमेर

HINDI KA PATRA SAHITYA : Dr. Kamal Punjani



पं० बनारसीदासजी चतुर्वेदी से विचार-विमर्श करते हुए लेखक

प्राक्कथन

आत्माभिव्यक्ति मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मानव जब तक अपने बन्धु-बान्धवों, स्वजन-परिजनों, इष्ट-मित्रों आदि के सम्मुख अपने भावों और विचारों को अभिव्यक्त नहीं करता, तब तक उसे आत्मसंतुष्टि का अनुभव नहीं होता। साहित्य के निर्माण में भी आत्माभिव्यंजन की यही प्रवृत्ति प्रेरक रूप में कार्य करती है। डा. भगीरथ मिश्र के मतानुसार "क्रोचे, गेटे, हीगल, टैगोर, प्रसाद आदि साहित्यकारों ने प्रधानतया साहित्य को आत्माभिव्यक्ति के रूप में ही स्वीकार किया है।"[1] वैसे तो साहित्य के सभी रूपों में आत्माभिव्यक्ति की प्रवृत्ति न्यूनाधिक रूप में संनिहित होती है, किन्तु पत्र-साहित्य में वह प्रत्यक्ष एवं यथार्थ की सर्वाधिक गहरी छाप लिये रहती है। दूसरे शब्दों में, लेखक व्यक्तित्व का, उसके द्वारा लिखे गये पत्रों के साथ, प्रत्यक्ष और आत्मदर्शी सम्बन्ध होता है। अतः लेखक का व्यक्तित्व जितने स्वच्छ और स्पष्ट रूप में उसके पत्रों में प्रतिबिम्बित होता है, उतना साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं।

यद्यपि पत्र-लेखन की कला यथेष्ट रूप में पुरानी है, किन्तु साहित्य से उसका सम्बन्ध मुख्यतः आधुनिक युग में ही स्थापित हुआ है। दूसरे शब्दों में, हमारे यहां पत्र-सामग्री तो पुष्कल थी, परन्तु पत्र-साहित्य के रूप में कोई पृथक् विधा नहीं थी। आधुनिक युग में महान् व्यक्तियों के पत्रों को संग्रहीत कर प्रकाशित करने की प्रवृत्ति से पत्र-साहित्य का एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकास हुआ है।

विषय के प्रति अभिरुचि :

स्नातक कक्षा के अध्ययनकाल से ही मुझे इस विषय के प्रति आकर्षण था। अनुस्नातक श्रेणी की परीक्षा उत्तीर्ण करने के कुछ वर्ष बाद मैंने सोचा कि क्यों न मैं इसी विषय को शोध-कार्य के रूप में स्वीकार करूं? ठीक उसी समय हिन्दी के चिन्तनशील कवि एवं हिन्दी प्रचार सभा, मथुरा के तत्कालीन अध्यक्ष श्री त्रिलोकीनाथ व्रजबाल का पत्र के माध्यम से परिचय प्राप्त हुआ। वे उन दिनों "हिन्दी आत्मकथा-साहित्य" पर महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा में डा. शुक्ल जी के निर्देशन में शोध-कार्य कर रहे थे। बन्धुवर श्रीव्रजवाल जी ने मुझे प्रोत्साहित कर अपने निर्देशक महोदय से सम्पर्क स्थापित करने की प्रेरणा दी। आदरणीय डा. शुक्ल जी ने मेरी अभिरुचि के विषय को शोध की दृष्टि से उपयुक्त समझा और महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय के हिन्दी-विभागाध्यक्ष

1. "कला, साहित्य और समीक्षा" (१९६२), पृ. ३०।

पूज्यवर डा. मदनगोपालजी गुप्त ने विषय के पंजीकरण की स्वीकृति प्रदान कर मुझे अनुगृहीत किया।

विषय का महत्व :

प्रस्तुत प्रबन्ध का उद्देश्य हिन्दी पत्र-साहित्य का शोधपरक दृष्टि से अनुशीलन करना है। हिन्दी में प्राचीनकाल से लगाकर अब तक का लिखा हुआ प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाश में आ चुका है और इसमें साहित्य, इतिहास, राजनीति, संस्कृति आदि अनेक विषयों की मूल्यवान् सामग्री उपलब्ध होती है, किन्तु उसकी ओर शोधकर्त्ताओं का ध्यान आकृष्ट नहीं हो सका है। हिन्दीतर अन्य भारतीय भाषाओं—जैसे, उर्दू.[1] बंगला[2] आदि में इस दिशा में महत्वपूर्ण शोधकार्य हो चुका है, परन्तु हिन्दी में इसको विधिवत् समझने तथा शोध-स्तर पर इसका विविध दृष्टियों से विवेचन करने का प्रयास अब तक नहीं हुआ है। श्रद्धेय गुरुवर डा. दयाशंकर जी शुक्ल के मार्गदर्शन से मुझे हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकारों तथा विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के अनेक बहुमूल्य पत्रों को पढ़ने तथा उनका सार-संक्षेप प्रस्तुत करने की आवश्यकता पड़ी है। ये पत्र व्यक्ति-विशेष को सम्बोधित होते हुए भी अपनी "मानवीय तत्व राशि" के कारण प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन गये हैं।

पत्र-साहित्य का सबसे बड़ा महत्व इस बात में है कि इसमें साहित्य की सब विधाओं की अपेक्षा लेखक के व्यक्तित्व की झलक अधिक रहती है।[3] पत्रों में एक व्यक्ति को जो कहना होता है, उसे वह सीधा दूसरे व्यक्ति से कहता है। यदि किसी व्यक्ति को हम उसके सहज रूप में देखना चाहें तो उसके पत्रों में ही देख सकते हैं। इस प्रकार किसी व्यक्ति-विशेष के यथार्थ अध्ययन के लिए उसके पत्रों का अध्ययन अनिवार्य है। हिन्दी में साहित्यकारों तथा विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के जो पत्र प्रकाशित हुए हैं, उनका अध्ययन करने से हमें उनके बहुमुखी व्यक्तित्व

---

1. डा ख्वाजा अहमद फारूकी का "मक्तुबाते उर्दू का अदबी और तारीख़ी इरतिक़ा" शीर्षक शोध-प्रबन्ध दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत हो चुका है।
   -डा. ख्वाजा अहमद फारूकी से प्रत्येक्ष भेंट के आधार पर।
2. बंगला-भाषा के अन्तर्गत प्रेम-पत्रों पर इधर एक महत्वपूर्ण शोधकार्य डा. जी.-सी. सामन्त के द्वारा प्रस्तुत किया गया है।"
   -डा. सीताराम दीन : साहित्यालोचन : सिद्धांत और अध्ययन" (१९७१), पृ. १५५।
3. Indeed all literary compostion enables the reader to see the character of writer, but none does this so clearly as the letters. Dematrius ; On Style, p. 251.
   (उद्धृत : "द्विवेदी-युग की हिन्दी गद्य-शैलियों का अध्ययन", डा. शंकरदयाल चौऋषि, पृ. ४३४।

एवं कर्तृत्व को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है। साथ ही, उनके सम्बन्ध में फैली हुई भ्रान्तियों का निराकरण होता है और नये तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

हिन्दी साहित्यकारों तथा विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के पत्र समकालीन इतिहास के मूल्यवान् दस्तावेज़ होते हैं। अतः पत्र-साहित्य के अध्ययन से हमें तत्कालीन साहित्यिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक परिस्थितियों को देखने-परखने में अपूर्व सहयोग प्राप्त होता है।

हिन्दी गद्य के रूपात्मक विकास को समझने के लिए भी पत्र-साहित्य का अनुशीलन महत्वपूर्ण है। हिन्दी गद्य का प्राचीन स्वरूप कैसा था, उसमें समय-समय पर किस प्रकार परिवर्तन हुआ इत्यादि तथ्यों का पता हमें पत्र-साहित्य के अध्ययन से भी मिलता है।

पत्र-साहित्य का अध्ययन आज के यांत्रिक युग में मानव-व्यक्तित्व की प्रतिष्ठा एवं मैत्री-भावना के प्रसार की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। प्रसिद्ध-मनीषी अज्ञेय ने भी यही मत प्रकट किया है :

"संस्मरणों, पत्रों, डायरियों या आत्म-वृत्त के दूसरे रूपों का महत्व आधुनिक युग में बहुत बढ़ गया है। इसका अगर केवल बाहरी कारण देखना हो तो कहा जा सकता है कि आज की मशीन ज़िन्दगी ने मनुष्य के व्यक्तित्व को इतना छोटा कर दिया है—उसके दर्जे को इतना गिरा दिया है कि उसके लिए ज़रूरी हो गया है कि इस बात की दुहाई दे कि वह मशीन या मशीन का पुर्जाभर नहीं है, मानव है जिसका व्यक्तित्व होता है और व्यक्तित्व भी अद्वितीय : कोई दो मनुष्य बिलकुल एक-से नहीं होते।"[1]

इसके अतिरिक्त साहित्यकारों और विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के पत्र हमारा मनोरंजन करके हमारे सम्मुख पत्र-लेखन शैली का आदर्श रूप भी प्रस्तुत करते हैं।[2] साथ ही साथ हमें उन्नत जीवन की प्रेरणा भी देते हैं।

उपलब्ध सामग्री :

प्रस्तुत विषय के पंजीकरण के पश्चात् जब मैं अध्ययन की ओर प्रवृत्त हुआ तो सबसे पहले मेरे सामने सामग्री-संकलन की समस्या खड़ी हुई। गुजरात में, अहिन्दी भाषी प्रदेश होने के कारण, पत्र-साहित्य-विषयक आधारभूत एवं आलोचनात्मक सामग्री संचित करना कठिन प्रतीत हुआ। इसलिए मुझे कई बार

1. "हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य," पृ. १८५।
2. Reading such letters will not entertain you for who does not-enjoy reading a lively personal letter ?—but will also inspire you to write more readable letters".

—Compton's Pictured Encyclopedia and Fact-Index Vol.-8, P. 171.

हिन्दी प्रदेशों की शोध-यात्रा करनी पड़ी। पत्र-संग्रह और सहायक ग्रंथ किसी एक स्थान पर प्राप्त नहीं हो सके। अतएव मारवाड़ी लाइब्रेरी दिल्ली, हिन्दी साहित्य सम्मेलन-प्रयाग, नागरी प्रचारिणी सभा-काशी, श्रीमती परोपकारिणी सभा अजमेर; भारतकला भवन-बनारस; भारती अनुसंधान भवन-मथुरा आदि संस्थाओं के ग्रंथागारों, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, बाबू वृन्दावनदास आदि विद्वानों के निजी भण्डारों तथा दिल्ली, इलाहाबाद, आगरा, बनारस, जयपुर आदि विश्वविद्यालयों के ग्रंथालयों से अपने विषय-सम्बन्धी सामग्री एकत्रित की गयी। तदुपरांत विषय के स्पष्टीकरण एवं मार्गदर्शन के लिए पत्र-साहित्य के लेखकों, पत्र-संग्रहों के सम्पादकों तथा वरिष्ठ विद्वानों से विस्तृत पत्र-व्यवहार भी किया गया। इस प्रकार प्रयास और परिश्रम के पश्चात् प्रस्तुत शोध-विषय से सम्बन्धित जो सामग्री उपलब्ध हुई, उसे दो विभागों में विभक्त किया जा सकता है :

(अ) आधारभूत अथवा उपजीव्य सामग्री तथा

(आ) आलोचनात्मक और सहायक सामग्री।

(अ) आधारभूत अथवा उपजीव्य सामग्री :

हिन्दी पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में सामान्यतः यह धारणा प्रवर्तमान है कि इसकी स्थिति अभी तक बहुत क्षीण है।[1] परन्तु मुझे जो सामग्री उपलब्ध हुई है, उसे देखते हुए कहा जा सकता है कि पिछले तीन-चार दशकों से हिन्दी में स्तरीय पत्र-साहित्य प्रकाश में आया है। प्रसिद्ध समाज-सेवियों, राजनीतिज्ञों और साहित्यकारों के अनेक पत्र-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। अकेले स्वामी दयानन्द सरस्वती के छह पत्र-संग्रह बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुके हैं। महात्मागांधी द्वारा हिन्दी में लिखे गये पत्रों के संग्रह भी प्रकाश में आ चुके हैं। प्रसिद्ध गांधी-वादी कार्यकर्त्ता तथा समाज-सेवक सेठ जमनालाल बजाज का विभिन्न क्षेत्रों के कार्यकर्त्ताओं तथा अपने परिजनों के साथ हुआ विस्तृत "पत्रव्यवहार" आठ खण्डों में प्रकाशित है। इसी प्रकार द्विवेदी-युग, छायावाद-युग तथा वर्तमान-युग के प्रमुख साहित्यकारों के पत्र-संग्रह भी निकल चुके हैं। भारतेन्दु युग के साहित्यकारों के पत्र विभिन्न जीवन-चरित्रों तथा शोध-प्रबन्धों के परिशिष्टों में प्राप्त हो जाते हैं।

---

1. (क) "हिन्दी में पत्र-साहित्य की स्थिति अभी तक बहुत क्षीण हीन है।"
—डा. शंकरदयाल चौऋषि : "द्विवेदी-युग की हिन्दी गद्य-शैलियों का अध्ययन" (१९६५) पृ. ४३५।

(ख) हिन्दी भाषा में केवल नामोल्लेख के लिए ही पत्र-साहित्य मिलता है।
—डा. मलखानसिंह सिसौदिया, "सौम्य एवं समन्वयशील व्यक्तित्व" (लेख) : बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दन ग्रंथ (१९७५), पृ. ६८।

(ग) "हिन्दी में पत्र-साहित्य की स्थिति आज भी बहुत अच्छी नहीं है.... ।"
—मधुरेश : "यशपाल के पत्र" (१९७७), भूमिका, पृ, ३८।

प्राचीनकाल से सम्बन्धित पत्रों के संग्रह भी प्रकाशित हो गये हैं। इनके अतिरिक्त दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि विविध पत्र-पत्रिकाओं में भी मनीषियों के महत्वपूर्ण पत्र प्रकाशित हुए हैं। स्मृति ग्रंथों एवं अभिनन्दन-ग्रंथों में भी अनेक बहुमूल्य पत्र संकलित हैं। इस प्रकार प्रस्तुत विषय पर शोध के लिए पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है।

(आ) आलोचनात्मक और सहायक सामग्री :

डा. काशिनाथशंकर केलकर द्वारा लिखित "१८वीं शती के हिन्दी पत्र" शीर्षक शोध-प्रबन्ध एक निश्चित कालावधि तक ही सीमित है और उसमें मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित केवल २०८ हिन्दी पत्रों का भाषा वैज्ञानिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से ही अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

प्रस्तुत शोध-विषय पर कोई स्वतंत्र समीक्षा ग्रंथ भी देखने को नहीं मिला। हाँ, विभिन्न समालोचना-ग्रंथों, साहित्य के इतिहासों, शोध-प्रबन्धों, अभिनन्दन-ग्रंथों, कोश ग्रंथ, पत्र-संग्रहों की भूमिकाओं तथा दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, आदि पत्र-पत्रिकाओं में इस विषय के अनेक प्रासंगिक लेख, उल्लेख एवं टिप्पणियाँ अवश्य मिलती हैं।

इन ग्रंथों एवं पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध सामग्री में विविधता और विदग्धता तो है, परन्तु इसकी संक्षिप्तता एवं अपर्याप्तता भी हम स्पष्ट रूप से देख सकते हैं, अतः पत्र-साहित्य पर व्यवस्थित अध्ययन शोध-सापेक्ष प्रतीत होता है।

विषय की सीमा का स्पष्टीकरण :

पत्र-साहित्य के स्वरूप, क्षेत्र और सीमा के सम्बन्ध में हिन्दी विद्वानों, विवेचकों तथा इतिहास-लेखकों के बीच मतैक्य नहीं है। कुछ विद्वान् केवल साहित्यकारों के वैयक्तिक पत्रों को ही "पत्र-साहित्य" समझते हैं तो कुछ विवेचक केवल साहित्यिक पत्रों अर्थात् साहित्य की विभिन्न विधाओं में लिखे गये पत्रों को ही "पत्र-साहित्य" मानते हैं। इतिहास-ग्रंथों में हिन्दी पत्र-साहित्य का विवेचन-विश्लेषण अत्यन्त व्यापक दृष्टि से किया गया है। उनमें काल्पनिक, वास्तविक, औपचारिक, अनौपचारिक, मौलिक, अनूदित आदि सभी प्रकार के पत्रों को "पत्र-साहित्य की परिधि में समाविष्ट किया गया है। यहां तक कि एक इतिहास-ग्रंथ[1] में डा. काशिनाथ शंकर केलकर लिखित "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" शीर्षक शोध-प्रबन्ध को भी व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संकलनों की सूची में सम्मिलित कर लिया गया है।

पत्र की अनौपचारिक शैली तथा वैयक्तिकता से प्रभावित होकर अनेक हिन्दी साहित्यकारों ने पत्र-शैली में साहित्य की उपन्यास, कहानी, निबन्ध, कविता

1. "हिन्दी-साहित्य का इतिहास" (१९७३), संपा. डा. नगेन्द्र, पृ. ७२२।

जैसी विधाओं की रचना की है। पाण्डेय बेचन शर्मा "उग्र" लिखित "चन्द हसीनों के ख़तूत," जयशंकर "प्रसाद" लिखित "देवदासी" बाबू बालमुकुन्द गुप्त लिखित "शिव शम्भु के चिट्ठे," मैथिलीशरण गुप्त लिखित "पत्रावली" आदि ऐसी ही रचनाएं हैं। कतिपय आलोचकों तथा विद्वानों ने पत्र-साहित्य के विवेचन में इन रचनाओं की चर्चा भी की है। परन्तु वास्तव में पत्र-साहित्य का महत्व उसके वैयक्तिक होने में ही है। हिन्दी के अधिकतर विवेचकों और विद्वानों ने भी पत्र-साहित्य का महत्व वैयक्तिक होने में स्वीकार किया है।[1]

इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए जीवन के विविध-क्षेत्रों में कठोर परिश्रम, सेवा, त्याग, तपस्या और बलिदान करने वाले तथा असाधारण प्रतिभा के कारण समाज में ख्याति-कीर्ति प्राप्त करने वाले मनीषियों के वैयक्तिक पत्रों के आधार पर प्रस्तुत प्रबन्ध में पत्र-साहित्य का एक पृथक् विधा के रूप में अनुशीलन किया गया है। चूंकि साहित्यकारों के पत्र अपेक्षाकृत अधिक रोचक और आकर्षक होते हैं, इसलिए उन पर विस्तार से विचार किया गया है। प्राचीन पत्र-सामग्री की भी यथावश्यक चर्चा की गयी है। पत्र-शैली में लिखित साहित्य का भी प्रसंगतः उल्लेख किया गया गया है। इन प्रमुख विशिष्टताओं एवं परिसीमाओं के

---

1 (क) आत्म-प्रकाशन की दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण पत्र वे होते हैं, जो स्नेहियों, घनिष्ठ मित्रों और निकटतम सम्बन्धियों को लिखे जाते हैं।"
—डा. रामअवध द्विवेदी
"साहित्यरूप" (सं. २०२३ वि.), पृ. १३८।

(ख) "पत्र-लेखन ऐसी विधा है जिसमें वैयक्तिक-सामाजिक का भेद बहुत कम हो जाता है। वैसे भी साहित्य में जो सतत वैयक्तिक है, वह निर्वैयक्तिक होता रहता है।"
—डा. प्रभाकर माचवे
(एक व्यक्तिगत पत्र से)

(ग) "साहित्य के अन्तर्गत जिन पत्रों ने महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है, वे अधिकांश निजी या व्यक्तिगत पत्र ही हैं।"
—डा. विश्वनाथ शुक्ल
"हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास", भाग-१४ पृ. ५०७।

(घ) "दूसरे प्रकार के पत्र वे हैं जो पूर्णतः अनौपचारिक होते हैं····ये पत्र बड़े आत्मीय, मधुर और मोहक हो सकते हैं, साथ ही बड़े तीखे और कचोटने वाले भी। ये पाठकों को मोहभंग की अवस्था में ले जा सकते हैं।
—डा. हरदयाल
"आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य" (१९७२), पृ. १७४-१७५।

अन्तर्गत विषय के अन्तर्गत प्रस्तुत विषय के अध्ययन का विनम्र प्रयास किया गया है।

विषय-वस्तु-विधान :

प्रस्तुत प्रबन्ध को, विषय-विवेचन की सुविधा की दृष्टि से छह अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में पत्र-साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन है। सर्व-प्रथम पत्रों के महत्व पर विविध दृष्टियों से विचार किया गया है। तत्पश्चात विभिन्न समालोचना-ग्रंथों एवं कोश-ग्रंथों की सहायता से पत्र के व्युत्पत्यर्थ एवं अभिधेयार्थ, पत्र की विविध परिभाषाओं, इन परिभाषाओं में प्राप्त पत्र-विधा की प्रमुख विशेषताओं, साहित्य की अन्य विधाओं से पत्र का सम्बन्ध, पत्र के मुख्य तत्वों और प्रकारों की विस्तार से चर्चा की गयी है। इस विवेचन से यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि पत्र-विधा का एक स्वतंत्र साहित्यिक विधा के रूप में विवेचन-विश्लेषण अपेक्षित है।

द्वितीय अध्याय में पत्र-साहित्य की पृष्ठभूमि तथा हिन्दी में उनके विकास का अध्ययन हुआ है। पृष्ठभूमि के अन्तर्गत संस्कृत एवं पाश्चात्य पत्र-साहित्य के स्वरूप और विकास, हिन्दी पत्र-लेखन की प्राचीन परम्परा तथा आधुनिकता और नवजागरण के सन्दर्भ में पत्र-साहित्य के रूप-परिवर्तन की झांकी प्रस्तुत की गयी गयी है। हिन्दी पत्र साहित्य के विकास में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा निर्मित नये चाल के पत्रों का विशेष महत्व है। अतः इन पत्रों पर प्रकाश डालते हुए हिन्दी में सर्वप्रथम प्रकाशित पत्र-संग्रह तथा अन्य पत्र-संग्रहों का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इन स्वतंत्र पत्र सग्रहों के अतिरिक्त हिन्दी के विविध ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं में भी विपुल पत्र-साहित्य प्रकाशित हुआ है। अतएव प्रसंगतः उसका संक्षिप्त विवरण भी दिया गया है। अध्याय के अन्त में प्रकाशित सामग्री के आधार पर हिन्दी पत्र-साहित्य के विभिन्न चरणों का विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में उन महत्वपूर्ण पत्र-संग्रहों की विशेष चर्चा की गयी है जिनके सम्बन्ध में इतिहास-ग्रंथों एवं समालोचना-ग्रंथों में प्रामाणिक जानकारी नहीं दी गयी है। साथ ही, यहां इस बात की ओर भी संकेत किया गया है कि इतिहासकारों तथा आलोचकों ने जिनको व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संग्रह माना है, उनमें से कई संग्रहों का सम्बन्ध साहित्य की विविध विधाओं से है।

तृतीय अध्याय में हिन्दी के प्रमुख पत्र-लेखकों, उनके पत्र-साहित्य तथा पत्रों में प्रतिबिम्बत उनके व्यक्तित्व का अनुशीलन किया गया है। द्वितीय अध्याय में इन पत्र-लेखकों तथा इनके पत्र-साहित्य का संक्षिप्त परिचय तो दिया गया है, किन्तु स्थानाभाव एवं विस्तार भय के कारण पत्रों में प्रतिबिम्बित उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की चर्चा नहीं हो पायी है। अतः इस अध्याय में इन पर विस्तार से विचार

किया गया है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन पत्र लेखकों को दो वर्गों में विभाजित किया गया है—(१) साहित्यिक क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखक और (२) साहित्येतर क्षेत्रों के प्रमुख पत्र-लेखक। इन दोनों वर्गों के पत्र-लेखकों को उनकी जन्म तिथि के क्रमानुसार रखा गया है। पत्रों में प्रतिबिम्बित लेखक के व्यक्तित्व का अनुशीलन जीवनी-सूत्र, चारित्रिक विशेषताओं तथा दृष्टिकोण के आधार पर किया गया है। इस प्रकार यहाँ पत्रों के प्रकाश में साहित्यिक और साहित्येतर क्षेत्रों की विभूतियों को देखने-परखने का प्रयास किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में हिन्दी पत्र-साहित्य में उपलब्ध समसामयिक सन्दर्भों का विश्लेषण किया गया है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से इन सन्दर्भों को राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक—इन चार विभागों में बांटा गया है। प्रथम तीन विभागों के सन्दर्भों की चर्चा नवजागरण-काल को केन्द्र में रखकर की गयी है और साहित्यिक सन्दर्भों का विश्लेषण "साहित्यिक विवाद एवं आंदोलन" "साहित्यिक चोरी", "साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति" आदि अनुभागों के अन्तर्गत किया गया है। इन सन्दर्भों से समाज के विविधवर्णी इतिहास पर जो प्रकाश पड़ता है, उसकी विस्तार से चर्चा की गयी है।

पंचम अध्याय में हिन्दी पत्र-साहित्य में प्राप्त शिल्प और शैली सम्बन्धी विशेषताओं का परिचय दिया गया है। प्रारम्भ में शिल्प और शैली का परस्पर सम्बन्ध स्पष्ट किया गया है। तत्पश्चात् हिन्दी साहित्य में शिल्प और शैली का अध्ययन चार अनुभागों में प्रस्तुत किया गया है। पहले भाग में पत्र-लेखन पद्धति के वैविध्य,, दूसरे में पत्रों के भाषा विधान, तीसरे में पत्रों में प्राप्त विविध गद्य-शैलियों और चौथे में पत्रों की भावगत शैलियों की सोदाहरण चर्चा की गयी है। इस प्रसंग में इस बात की ओर संकेत भी कर दिया गया है कि साहित्यकारों तथा विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों ने पत्रों को साहित्य समझकर नहीं लिखा है, तथापि इनमें उनकी सहजात प्रतिभा के स्पष्ट दर्शन होते हैं। इस दृष्टि से पत्र-साहित्य में प्राप्त शिल्पगत विशेषताओं का अपना पृथक् महत्व है।

षष्ठम अध्याय में प्रबन्ध का उपसंहार किया गया है। इसमें हिन्दी पत्र-साहित्य की उपलब्धियों, सीमाओं तथा सम्भावनाओं की संक्षिप्त चर्चा की गयी है।

इस प्रकार छः अध्यायों में विभक्त प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में मैंने अपनी मौलिकता बनाये रखने का भरसक प्रयत्न किया है। साथ ही, "पत्र-विधा" के सम्बन्ध में विद्वानों के मतों के निष्कर्ष में कुछ अपना भी जोड़ने का प्रयास किया है।

प्रबन्ध के अन्त में "परिशिष्ट" के अन्तर्गत प्रमुख उपजीव्य-ग्रंथों, सहायक-ग्रंथों, पत्र-पत्रिकाओं आदि की अकारादि क्रम से तालिका प्रस्तुत की गयी है। साथ ही विषय से सम्बन्धित विद्वानों के महत्वपूर्ण पत्रों और प्रतिष्ठित साहित्यिकों से हुई भेंट-वार्त्ताओं का सार-संक्षेप भी प्रस्तुत किया है।

आभार–प्रदर्शन और कृतज्ञता–ज्ञापन :

प्रस्तुत प्रबन्ध लिखते समय श्रद्धेय गुरुवर डा. दयाशंकर जी शुक्ल से जो प्रेरणा मिलती रही है, उसके लिए धन्यवाद देकर मैं कृतघ्नता का पात्र नहीं बनना चाहता। गुरुवर्य डा. शुक्ल जी ने न केवल मुझे महत्वपूर्ण मार्गदर्शन ही दिया है, वरन् अपने पास संचित-सुरक्षित मूल्यवान् पत्र-साहित्य भी प्रदान किया है। जब-जब मुझे निराशा का अनुभव हुआ, तब-तब उन्होंने अनेक प्रकार से प्रोत्साहन देकर निराशा के अन्धकार से मुझे उबारा है। इसके लिए मैं उनका सदैव ऋणी रहूँगा।

महाराजा सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा के हिन्दी विभागाध्यक्ष डा.-मदनगोपाल जी गुप्त ने लेखक को न केवल शोध-विषय के पंजीकरण की स्वीकृति ही प्रदान की है, वरन् अनेक बहुमूल्य सुझाव भी दिये हैं। एतदर्थ मैं उनके प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखन में श्रीमती डा. इन्दु शुक्ल से जो परामर्श और प्रोत्साहन मिला है, उससे इस कठिन कार्य में मुझे बहुत बड़ा बल प्राप्त हुआ है। अतएव मैं उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करता हूं।

पत्र साहित्य के मर्मज्ञ विद्वान् पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने मुझे पत्रों के द्वारा और प्रत्यक्ष भेंट से जो महत्वपूर्ण सामग्री और सुझाव दिये हैं, उनसे प्रबन्ध-लेखन में पर्याप्त सहायता मिली है। अतः उनके प्रति हृदय से आभारी हूँ।

बन्धुवर डा. त्रिलोकीनाथ व्रजबाल ने मुझे प्रस्तुत विषय में शोध-कार्य की प्रेरणा देकर, समय-समय पर जो प्रोत्साहन दिया है, उसे शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता। उनका सहयोग मेरे लिए अविस्मरणीय रहेगा।

डा. हरिवंशराय बच्चन, बाबू वृन्दावनदास, डा रामविलास शर्मा, आचार्य-जानकीवल्लभ शास्त्री, डा. जीवनप्रकाश जोशी, श्री निरंकारदेव सेवक, श्री मधुरेश, श्री रमण शांडिल्य आदि पत्र-विधा के उन्नायकों ने शोधकाल की अवधि में पत्रों द्वारा मुझे अनेक बहुमूल्य सुझाव दिये हैं। एतदर्थ मैं उनका अतीव आभारी हूँ।

डा. रघुवीरसिंह तथा श्री अगरचन्द नाहटा ने प्राचीन पत्र-साहित्य पर अनेक सत्परामर्श प्रदान किये हैं। अतः इन दोनों महानुभावों के प्रति मैं अपनी विनम्र कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

श्रीयुत रामेश्वर शुक्ल अंचल, डा. प्रभाकर माचवे, श्रीयुत विश्वम्भर 'मानव', डा. अम्बाप्रसाद 'सुमन', डा. विश्वनाथ शुक्ल, पं. गोपालप्रसाद व्यास, श्रीयुत मार्तण्ड उपाध्याय, डा. रामस्वरूप आर्य, डा. रामशंकर द्विवेदी, डा. राम-कृष्ण शर्मा, डा. भवानीलाल भारतीय, डा. लक्ष्मीनारायण दुबे, डा. सिद्धनाथ कुमार, डा. सुन्दरलाल कथूरिया, प्रो. कपूरचन्द जैन, डा. ओमप्रकाश भाटिया आदि विद्वानों ने पत्रों द्वारा समय-समय पर महत्वपूर्ण सुझाव देकर तथा मूल्यवान सामग्री भेजकर मुझे उपकृत किया है।

श्री राज्यपुरोहित ब्राह्मण ज्ञाति के रत्नत्रय—श्रीयुत दयाशंकर मावजी भट्ट, श्रीयुत जेठालाल कल्याणजी नाकर तथा श्रीयुत रमणीकलाल मणिशंकर नाकर— ने प्रस्तुत प्रबन्ध को प्रकाशित करने के लिए आर्थिक सहायता प्रदान कर मुझ पर जो असीम अनुग्रह किया है, उसे किन शब्दों में व्यक्त करूं ? इस महती कृपा एवं सहायता के लिए मैं इन तीनों महानुभावों का यावज्जीवन ऋणी रहूँगा।

प्रबंध प्रकाशन की योजना में श्रीयुत वसंतराय भट्ट, डा. कमलेश खेतिया, श्रीयुत हसमुख राय बारोट, श्रीयुत मुकुन्दराय लवा, श्रीयुत केशवलाल भट्ट आदि बन्धुजनों का भी महत्वपूर्ण सहयोग मिला है। अतः मैं इन सबको हृदय से धन्यवाद देता हूँ।

यहाँ मैं अपने कालेज के प्रिंसिपल साहब डा. एम. टी. बुच के स्नेह-सहयोग को भी नहीं भुला सकता। प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रकाशन की योजना, एक दृष्टि से, उन्हीं के सत्प्रयास का परिणाम है। अतः उनके प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ। कालेज के सहकार्यकरों—प्रा. श्री दिलीपभाई आशर, प्रा. श्री के. एल. दवे, प्रा.-जी. ओ. जोशी, प्रा. श्री वी. बी दलसाणिया, प्रा. श्री एम. आर. गोसाई, प्रा. श्री-वी. वी सांगाणी आदि का सहयोग भी अविस्मरणीय है। स्थानीय कालेज के प्रा. डा.-गुलाब सिंह, प्रा. श्रीकांत महर्षि, प्रा. श्री लाभशंकर पुरोहित, प्रा. श्री प्रभुलाल याज्ञिक आदि ने भी उपयोगी सुझावों से मुझे अनुगृहीत किया है।

उक्त महानुभावों के अतिरिक्त मैं अपनी सहधर्मिणी श्रीमती कंचन पुंजाणी के प्रति भी आभार प्रकट करता हूं। उनका त्याग, धैर्य और मनोयोग सदैव स्मरणीय रहेगा। प्रिय पुत्री कु. प्रीति और चि. जयदीप के सहयोग के लिए मैं उन्हें आशीर्वाद देता हूँ।

प्रस्तुत प्रबंध को प्रकाशित करने में कृष्णा ब्रदर्स के संचालक श्रीयुत जयकृष्ण अग्रवाल,तथा बन्धुवर श्री ओमप्रकाश जी सिंगोदिया ने जो सहयोग दिया है, उसे भुलाया नहीं जा सकता। उनके प्रति मैं धन्यवाद प्रकट करता हूँ।

प्रस्तुत प्रबन्ध की सामग्री के संकलन में मुझे अनेक संस्थाओं तथा पुस्तकालयों से यथेष्ट सहायता प्राप्त हुई है। अतः उन संस्थाओं के अध्यक्षों तथा पुस्तकालयों के व्यवस्थापकों का भी मैं बहुत आभारी हूं। साथ ही, मैं उन सभी लेखकों का भी ऋणी हूँ जिनके ग्रंथों का उपयोग कर मैंने अपने प्रबन्ध को पूर्ण किया है।

अन्त में, हिन्दी के मनीषियों, पत्र-साहित्य के विद्वानों तथा पत्र-प्रेमी पाठकों से मेरा निवेदन है कि वे ग्रंथ के सम्बन्ध में अपने महत्वपूर्ण विचार तथा बहुमूल्य सुझाव भेजने की कृपा करें ताकि इस दिशा में मुझे और भी आगे बढ़ने की प्रेरणा मिले।

□

१-११/२, आर. टी. जाडेजा एस्टेट
गुरु द्वारा के निकट, जामनगर—३६१००१ (गुजरात)
१४ जनवरी, १९८३

कमल पुंजाणी

अनुक्रम

□

अध्याय १

पत्र-साहित्य : सैद्धांतिक विवेचन

पत्रों का महत्व :

गद्य-साहित्य की विभिन्न विधाओं में, अपनी वैयक्तिकता, अनौपचारिकता, हार्दिकता आदि विशेषताओं के कारण, पत्र को विशेष महत्व प्राप्त है। यद्यपि पत्र-लेखन मनुष्य के लिए सहज और अनिवार्य क्रिया है, किंतु जब किसी व्यक्ति के पत्र उसके व्यक्तित्व की गरिमा के कारण मानव समाज को प्रभावित करते हैं तब वे महत्वपूर्ण हो उठते हैं। ऐसे ही पत्र प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाते हैं।[1]

हमारे व्यक्तिगत सम्बन्धों की नींव पत्राचार सुदृढ़ करता है। आत्मीयजनों से वार्तालाप और पत्र-व्यवहार करने से हमें अपूर्व आनन्द की अनुभूति होती है।[2] जिस प्रकार हरे-भरे पत्रों अर्थात् पत्तों के बिना तरुवर शुष्क और नीरस लगता है, उसी प्रकार स्वजनों के प्रेमपूर्ण पत्रों के बिना जीवन सूना-सूना और खोया-खोया-सा जान पड़ता है।[3] जीवन की निपट एकान्तता को दूर करने

---

1. (क) "हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास," चतुर्दशभाग (वि. २०२७), संपा. डॉ. हरवंशलाल शर्मा, पृ. ५०७।

   (ख) "Some letters have expressed so much of the charm and personality of their writers that they are regarded as part of the literature of the world".—"Compton's Pictured Encyclopedia & Fact-Index," Vol.—8, (1955), P. 171

2. There is a pleasure annexed to the Communication of one's ideas, whether by word of mouth or by letter, which nothing earthly can supply the place of."—William Cowber.
   —"The Book of Unusual Quotations" (1964), P. 151.

3. "The Life of man without letter is death."—Seneca.
   —"Benhem's Book of Quotations" (1948), P. 731.

तथा सहृय मित्रों के सान्निध्य का सुख-लाभ करने का एक मात्र उपाय पत्र-लेखन ही है ।[1]

हिन्दी के वयोवृद्ध साहित्यकार पं. वियोगी हरि ने श्रीरामशंकर द्विवेदी के नाम प्रेषित अपने २२-३-१९६८ के पत्र में लिखा है—''पत्रों में अजेय शक्ति होती है, यदि हम अपना हृदय उनमें उंड़ेल सकें। जितने भी भाई मुझे मिले, वे सभी पत्रों की देन हैं। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ के चरणों की धूलि भी पत्रों की ही बदौलत मिली।[2] इस प्रकार पत्र एक सुदृढ़ सेतु हैं।

पत्रों के प्रति हमारे मन में कितना आकर्षण होता है, इसकी ओर इंगित करते हुए ''ज्ञानोदय'' के पत्र विशेषांक में कहा गया है कि—''पत्रों में एक अनूठा आकर्षण, बल्कि अजीब-सा रहस्य होता है। यह हमारा रोज़मर्रा का ही अनुभव होगा कि दफ्तर से लौटकर ''लेटरबक्स'' पर हमारी निगाह जाती है।''[3] सुप्रसिद्ध आंग्ल कवि लाँगफेलो ने भी पत्रों के इस महत्व को बड़े ही सुन्दर ढंग से प्रदर्शित किया है।[4] इससे कहा जा सकता है कि संवेदनशील व्यक्तियों के पत्र केवल कागज़ के टुकड़े ही नहीं होते, उनमें भावनाओं का स्पन्दन होता है, हृदय की धड़कनें होती हैं। गुरुदेव टैगोर की 'छिन्न पत्रावली'' में जैसा उनका हृदय धड़कता है, वैसा ''गोरा'' में नहीं।

पत्र कभी पुराना नहीं पड़ता, चाहे कागज़ भले ही जीर्ण हो जाय।[5] पत्रों को यदि हम संभालकर रखें और महीनों-वर्षों के बाद फिर से उन्हें पढ़ें तो

---

1. "Letter-writing is the only device for combining solitude and good company."— Lord Byron.
   —"The Penguin Dictionary of Quotations (1960), P. 90.
2. "डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), संपा. बाबू वृन्दावनदास, पृ. २९५।
3. "ज्ञानोदय" पत्रांक, नवम्बर १९६३, संपादकीय टिप्पणी।
4. "Kind messages, that pass from land to land,
   Kind letters, that betray the heart's deep history,
   In which we feel the pressure of hand,
   One touch of fire and all the rest of mystery".—Longfellow.
   —"Stevenson's Book of Quotations," Fourh Edition, P. 1102.
5. ''मिट गये मेरी उम्मीदों की तरह हर्फ़ मगर
   आज तक तेरे खतों से तेरी खुशबू न गई।''
   —अख्तर शीरानी
   (उद्धृत : "प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेम-पत्र," : १९६१, पृ. ५)

वे एक दिलचस्प उपन्यास-सा ग्रानन्द दे सकते हैं । हिन्दी की प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका शिवानी ने अपने नाम ग्राये पाठकों के पत्रों के विषय में लिखा है कि—"मेरे पास विवाह-प्रस्ताव से लेकर भावी वधू पसन्द करने, 'डाइवोर्स' में राय देने तक के पत्र ग्राते हैं। यदि उन्हें कभी पढ़ने बैठती हूँ तो लगता है, कोई रोचक उपन्यास पढ़ रही हूँ"।[1] जब पाठकों के पत्रों में इतनी रोचक सामग्री मिलती है तो साहित्यकारों ग्रौर महापुरुषों के पत्र कितने उत्प्रेरक एवं मनोरंजक होंगे ? महान् शब्दमर्मी डॉ. वासुदेवशरण ग्रग्रवाल का पत्र पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के लिए सात्विक, मानसिक भोजन का भोज ही हो जाता था।[2] माननीय श्रीनिवास शास्त्री की कलम से लिखे गये एक पोस्टकार्ड में भी उनके मित्रों को सौंदर्य ग्रौर ग्रानन्द की ग्रपूर्व झलक मिल जाती थी।[3] सारांश यह कि साहित्यकारों एवं विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के वैयक्तिक पत्र भी बड़े उत्प्रेरक ग्रौर ग्रानन्ददायक होते हैं।

सामाजिक दृष्टि से भी पत्रों का महत्व कम नहीं है। ग्राज मानव जीवन इतना फैल गया है कि एक परिवार के सभी व्यक्ति एक ही जगह सीमित होकर नहीं रह सकते ग्रौर "इस प्रकार उनके ग्रसीमित विकास को प्रेम तथा सूचना के बन्धन में बांधने का श्रेय पत्रों को ही है।[4] परिवार के ग्रलग होने पर परस्पर मिलन में अंतराल पड़ जाता है। ग्रतः एक दूसरे के प्रति स्नेह-सम्बन्धों तथा बदलते रहने वाले दृष्टिकोणों का परिचय पत्रों से ही प्राप्त हो सकता है।

देश-विदेश में बसने वाले समवयस्क ग्रौर समान विचारधारा के व्यक्तियों से पत्रों के द्वारा मित्रता भी स्थापित की जा सकती है। 'साथ रहते-रहते तो पिता-पुत्र ग्रौर पति-पत्नी में नरम-गरम बातें भी हो जाया करती हैं, किन्तु पत्रों के माध्यम से जुड़े मित्रों में कभी ऐसी नौबत नहीं ग्राती ग्रौर दोनों ग्रोर से

1. "साहित्यकारों की डाक" (परिचर्चा) "साप्ताहिक हिन्दुस्तान", १ फरवरी, १९७०, पृ. ३४।
2. "जिस दिन स्पष्ट ग्रक्षरों में लिखा गया उनका विस्तृत पत्र ग्राता था, उस दिन मानो सात्विक, मानसिक भोजन का भोज ही हो जाता था ग्रौर मैं ग्रपने साथियों के साथ उस पत्र का उपभोग करता था।"
—"स्वर्गीय वासुदेवशरण ग्रग्रवाल के पत्र," "सम्मलेन पत्रिका", भाग-५२, सं. ३-४, पृ.३०।
3. "Mr. Sastri is a master in the art of letter writing. His friends know that even a post- card with a few lines from his pen is a thing of beauty and a joy for ever."
– "Letters of Srinivasa Sastri" (1963), Editor
—T. N. Jagadisan. Preface. O. VII.
4. यज्ञदत्त शर्मा : "प्रबन्ध-सागर" (१९५५), पृ २९।

स्नेहिल-सम्बन्ध बने रहते हैं।'[1] इस प्रकार "वसुधैव कुटुम्बकम्" के आदर्श की पूर्ति के लिए पत्रों का योग अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

सांस्कृतिक विचारों के लिए भी पत्र एक उत्तम माध्यम हैं। डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में "विश्व के प्रति अनन्त मैत्री की भावना ही संस्कृति है।"[2] युगविधायक महापुरुषों एवं साहित्यकारों की पत्र-मैत्री हमारे सम्मुख विश्व-मैत्री का आदर्श प्रस्तुत करती है। मार्क्स और एन्जल्स की पत्र-मित्रता विश्व-इतिहास में सुप्रसिद्ध है। गुरुदेव रवीन्द्रनाथ द्वारा दीनबन्धु ऐण्ड्रूज को अंग्रेजी में लिखे गये पत्र 'लेटर्स टु ए फ्रेन्ड' (Letters to a Friend) शीर्षक पुस्तक में संकलित हैं। यह पुस्तक लन्दन से प्रकाशित हुईहै और "मित्र के नाम पत्र।' शीर्षक से इसका हिन्दी अनुवाद भी बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुका है।[3] विश्व-विख्यात रूसी साहित्यकार लियो ताल्स्ताय द्वारा सन् १८८७ ई. में फ्रांसीस नवयुवक रोमां रोलां को जो पत्र लिखा गया था, वह कला और सांस्कृतिक विचारों से ओतप्रोत था। उस पत्र ने युवक रोमां रोलां की जीवन-धारा ही बदल दी।[4] उन्हें इस बात की बिलकुल आशा नहीं थी कि ताल्स्ताय जैसा महान् लेखक उन जैसे एक मामूली विद्यार्थी के पत्र का उत्तर देगा, किन्तु ताल्स्ताय ने ३८ पृष्ठ का जवाब भेज दिया। बस उसी दिन से रोमां रोलां ने निश्चय किया कि यदि कोई आदमी अपने संकट के समय में अपनी अन्तरात्मा से प्रेरित होकर पत्र लिखेगा तो उसका अवश्य उत्तर दूंगा। परिणामस्वरूप उन्होंने सहस्रों ही पत्र लिखे। रोमां रोलां के ग्रन्थों के समान उनके पत्रों का भी महत्व है, जिनके द्वारा उन्होंने सैकड़ों लेखकों का पथ-प्रदर्शन किया था और असंख्य दुःखितों तथा पीड़ितों के हृदय को सांत्वना प्रदान की थी। ताल्स्ताय की उस एक चिट्ठी ने जो बीज बोया था, वह वट-वृक्ष के रूप में पल्लवित हुआ।

लियो ताल्स्ताय का ७-९-१९१० को महात्मा गांधी के नाम लिखा पत्र भी सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण था। यह पत्र क्या था, अहिंसा पर विस्तृत भाष्य था।[5] इस उत्कृष्ट पत्र को अपने पास सुरक्षित रखने के लिए लन्दन के एक व्यापारी ने २८०० पौंड चुकाये थे। इस प्रकार सांस्कृतिक विचारों के विनिमय में पत्र बहुत बड़ी भूमिका निभा सकते हैं।

---

१. ब्रजभूषण दुबे : "पत्रों की महत्ता तथा पत्र-मित्र" (लेख), "पत्र-मित्र", मई-जून १९७८, पृ. २०
२. कला और संस्कृति" (१९५८), भूमिका।
३. "मित्र के नाम पत्र" (१९४९), अनु. सुरेशचन्द्र शर्मा, प्रका. शिवलाल अग्रवाल एंड कम्पनी, आगरा।
४. इस पत्र के विस्तृत विवरण के लिए देखिए : "पत्र-लेखन कला," (१९५७), बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ. ११-१२।
५. इस पत्र की विस्तृत जानकारी के लिए देखिए : "नवभारत टाइम्स," २७ मई, १९७६, पृ. १।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी पत्रों का बड़ा महत्व है। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध पत्र-लेखक डॉ. सेम्युग्रल जानसन ने ग्रपनी एक महिला मित्र के नाम प्रेषित २७-१०-१७७७ के पत्र में लिखा था—"देवी जी, एक व्यक्ति के पत्र में उसकी ग्रात्मा निरावरण होती है।"[1] इस दृष्टि से किसी भी व्यक्ति की मनोदशा का यथार्थ चित्र उसके पत्रों में ही अंकित होता है। यही कारण है कि महत्वपूर्ण व्यक्तियों के प्रकृत चरित्र के ग्रध्ययन के लिए उनके द्वारा लिखे गये पत्र बहुत ही उपयोगी सिद्ध होते हैं। डॉ. विश्वनाथ शुक्ल के शब्दों में—"किसी कवि, विद्वान्, दार्शनिक, कलाकार या विशिष्ट साधक के मन पर किसी विशिष्ट घटना, परिस्थिति या दृश्य की कैसी प्रतिक्रिया होती है, किसी व्यक्ति के प्रति उसकी रागद्वेषात्मक कैसी धारणा है, उसके विभिन्न मनोवेग—काम, क्रोध, लोभ मोह, भय, ईर्ष्या, द्वेष, ग्रभिमान, नैराश्य, घृणा, विस्मय, करुणा, स्नेह, संकोच, ग्रौदार्य, संतोष, कृपा, सहानुभूति ग्रादि किस कोटि के हैं, ये सब मनोविकार उसके पत्रों में प्रतिबिम्बित हो उठते हैं।[2] प्रसिद्ध ग्रांग्ल पत्र-लेखिका एमिली डिकिन्सन को मित्र के मनोभावों को प्रतिबिम्बित करने वाला पत्र ग्रमरत्व की ग्रनुभूति जैसा प्रतीत होता है।[3] इस प्रकार मनुष्य के स्वभाव, व्यवहार, गुण-दोष ग्रौर उनके मन की दशा को प्रकट करने में पत्र बहुत अंश तक समर्थ होते हैं।

साहित्यिक दृष्टि से भी पत्रों का विशिष्ट महत्व है। प्रसिद्ध साहित्यकारों के वास्तविक व्यक्तित्व के परिचय के लिए उनके वैयक्तिक पत्र उनकी साहित्यिक कृतियों से भी कहीं ग्रधिक महत्वपूर्ण होते हैं। किसी साहित्यिक कृति में कृतिकार का जो रूप प्रकट होता है, वह प्रायः कला ग्रौर कल्पना के पर्दे के पीछे छिपकर ग्राता है, परन्तु पत्रों में उसका सही-सही रूप दृष्टिगत होता है, बशर्ते उसके पत्र-लेखन में ईमानदारी बरती गयी हो।

श्री बैजनाथसिंह "विनोद" के मतानुसार "पत्र भी कविता की भांति ही हृदय के उद्गार हैं, जहां पत्र-लेखक ग्रपने हृदय को उँड़ेल कर रख देता है। पर हर एक व्यक्ति में यह क्षमता नहीं होती। प्रत्येक व्यक्ति को यह कला नहीं प्राप्त होती कि वह पत्र में ग्रपने हृदय को रख सकें। इसलिए पत्र-लेखन

---

1. "In a man's letter, you know, Madam, his soul lies nacked."– "पत्रों का महत्व" (लेख), पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, "नवनीत, ग्रप्रेल १९७९, पृ. ४५ से उद्धृत।
2. "हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, "चतुर्दश भाग (व. सं. २०२७) संपा. डा. हरवंशलाल शर्मा, पृ. ५०७।
3. "A letter always feels to me like immortality because it is the mind alone without corporeal friend." —The Letters of Emily Dickinson" (1965), Vol.–1 Edited by Thomas H. Johnson. P. 447.

को भी "कला" माना जाता है।"[1] पत्र को जब हम कला और साहित्य के रूप में देखते हैं, तो उसकी अपनी कुछ विशेषताओं को भी ध्यान में लेते हैं। अन्य साहित्य-रूपों की अपेक्षा पत्रों का महत्व इसलिए अधिक होता है कि उनमें भावना की अभिव्यक्ति बहुत-कुछ अकृत्रिम रूप में होती है और उनमें एक प्रकार की विश्वसनीयता होती है कि इन पर सर्वसाधारण की दृष्टि न पड़ेगी। यही कारण है कि लेखक के व्यक्तित्व, कृतित्व और समकालीन परिस्थितियों के सम्बन्ध में जो प्रमाणिक तथ्य पत्र-साहित्य में उपलब्ध होते हैं, वे अन्य साहित्य-रूपों में नहीं। इससे अनुसंधान को बल मिलता है और अनुसंधित्सुओं की कुछ गुत्थियां अपने आप सुलझ जाती हैं।

पत्रों के माध्यम से साहित्यिक सर्वेक्षण के प्रयास भी किये जा सकते हैं। "कादम्बिनी" के संपादकों ने सन् १९७० ई. में विभिन्न विश्वविद्यालयों के हिन्दी विभागों में पत्र भेजकर हिन्दी के सबसे लोकप्रिय पांच उपन्यासों का सर्वेक्षण किया था।[2] इसी प्रकार फरवरी १९७० में "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" के सम्पादकों ने प्रसिद्ध हिन्दी साहित्यकारों के पास पत्र भेजकर इस विषय में सर्वेक्षण करने का प्रयास किया था कि उन्हें प्रतिमास पाठकों के कितने पत्र मिलते हैं, पाठक अपने पत्रों में प्रायः क्या लिखते हैं, क्या वे पाठकों के सभी पत्रों का उत्तर देते हैं। आदि। यह रोचक सर्वेक्षण इस पत्रिका के दो अंकों[3] मे "साहित्यकारों की डाक" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। सन् १९७८ ई. में प्रकाशित "धर्मयुग" के दीपावली विशेषांक में "पाठकीय प्रेम-पत्रों से उलझती लेखिकाएं' शीर्षक परिचर्चा में भी इसी प्रकार के सर्वेक्षण का प्रयास किया गया था।[4]

इन पत्र-परिचर्चाओं से प्रकट होता है कि पाठकों के पत्रों से लेखक की रचना-दृष्टि को बड़ी प्रेरणा मिलती है। अनेक हिन्दी लेखकों ने अपने आत्मसंस्मरणों में प्रबुद्ध पाठकों के कुछ पत्रों को प्रकाशित भी किया है।[5] पाठक-पाठिकाओं के पत्रों ने कभी-कभी पत्र-संग्रह का रूप भी धारण कर लिया है। कवि "नीरज" द्वारा सम्पादित "लिख-लिख भेजत पाती" एक ऐसा ही पत्र-संग्रह है।

---

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), भूमिका, (छ) से उद्धृत।
2. देखिए : "कादबिनी," जनवरी १९७०, पृ. १२-१४।
3. देखिए : "साप्ताहिक हिन्दुस्तान", ८ फरवरी १९७०, पृ. ३३ तथा २६।
4. देखिए : "धर्मयुग" दीपावली-विशेषांक, १९७८, पृ. ६५-६७।
5. देखिए : (क) "आत्मनेपद" (१९६०), अज्ञेय, "अंशदान" पृ. २०९।
   (ख) "ज्यादा अपनी कम परायी" (१९५९), उपेन्द्रनाथ अश्क, "पत्र", पृ. १७५।
   (ग) "क्या भूलूं क्या याद करूं ?" (१९७७) बच्चन, परिशिष्ट।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि वैयक्तिक, सामाजिक सांस्कृतिक, मनोवैज्ञानिक आदि अनेक दृष्टियों से पत्रों का बहुत बड़ा महत्व है। कवि या साहित्यकार जिन उद्गारों को अपनी कविताओं और निबन्धों में व्यक्त नहीं करते या कर पाते, उन्हें वे अपनी चिट्ठियों में अवश्य प्रकट करते हैं। इस प्रकार पत्र एक निर्मल दर्पण है जिसमें लेखक का वास्तविक व्यक्तित्व प्रतिबिम्बित होता है। अन्त में हम पत्रों के आत्मोद्घाटक रूप का महत्व प्रदर्शित करते हुए आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के शब्दों में यही कहेंगे:—

"अति दुरूह विस्तृत जीवन जो,
ग्रंथों में है नहीं समाता;
वही किसी के एक पत्र में,
ज्यों का त्यों पूरा बंध जाता।"[1]

पत्र का व्युत्पत्यर्थ एवं अभिधेयार्थ :

"पत्र" संस्कृत भाषा का शब्द है। यह "पत्" धातु में "ष्ट्रन" प्रत्यय जोड़ने से व्युत्पन्न हुआ है। "पत्" धातु का अर्थ गिरना, गिर पड़ना, नीचे आना, उतरना आदि है।[2] इस प्रकार "पत्र" शब्द की व्युत्पत्ति के आधार पर इसका अर्थ होगा: जो गिरता है, नीचे आता है वह अर्थात् वृक्ष का पत्ता।[3]

पक्षियों के पंख भी एक निश्चित समय पर गिरते हैं। अतः उन्हें भी "पत्र" कहा जाता है। पक्षियों के पंख से ही बाण में लगे पंख के अर्थ में 'पत्र" शब्द का प्रयोग मिलता है। अंग "पंख" ने अंगी "पंक्षी" का स्थान ग्रहण किया और वाहन के अर्थ में भी पत्र शब्द व्यवहृत हो गया।[4] वृक्षों के पत्तों और पक्षियों के पंखों में आकार सादृश्य भी है। दोनों पतले, लगभग एक रूप रेखा वाले और कटावदार किनारों के भी हैं। सम्भवतः इसी कारण प्राचीन समय के लेखन-कार्य में इनका उपयोग साधन या द्रव्य के रूप में किया जाता था। प्राचीन-काल में प्रेस अथवा मुद्रणालय नहीं थे। उस समय हमारे ऋषि-मुनि अपने विचार

---

1. "साहित्यिकों के पत्र" (१९५८), प्रासंगिक निवेदन।
2. "संस्कृत-हिन्दी कोश" (१९७३), वामन शिवराम आप्टे, पृ. ५६६-६७।
3. (क) "शब्दकल्पद्रुमः," तृतीयो भागः, राधाकान्तदेव, पृ. २६।
   "पत्र=क्ली. पतति वृक्षात्।
   पत् ऌ गतौ+सर्वधातुभ्यः ष्ट्रन उणां ४/१५८, इति ष्ट्रन।
   "वृक्षावयवविशेषः।"
   (ख) "संस्कृत शब्दार्थ कौस्तुभ" (१९६७),
   संपा. द्वारकाप्रसाद शर्मा तथा पं. तारिणीश झा. पृ. ६५२।
   पत्र=(न.)।। पत्+ष्ट्रन। वृक्ष का पत्ता"
4. "पत्र" शब्द का विकास (लेख), शिवनन्दन कपूर, "माध्यम", अक्टूबर १९६६, पृ. ५०।

ताल-पत्रों, भोज-पत्रों आदि पर लिखते थे। अतः पत्र शब्द का प्रयोग "लेखनाधार द्रव्य" के अर्थ में होने लगा। कागज का आविष्कार होने के पहले सन्देश, समाचार आदि वृक्षों के पत्तों पर ही लिखकर भेजे जाते थे। इसी साहचर्य और अभ्यासवश लेखयुक्त कागज, ताम्रपट आदि को भी लोग "पत्र" कहने लगे।[1] कागज भी पत्तियों से ही बनता था, इसीलिए वह भी "पत्र" कहलाया। हिन्दी का "पन्ना" शब्द भी संस्कृत के "पर्णक" से विकसित है। यथा—सं. पर्णक > प्रा. प्रण्णअ > पण्णा > पन्ना।[2] आज भी बोलचाल में "कागज-पत्र" या "कागज़ पत्तर" शब्द संयुक्त और यौगिकरूप में व्यवहृत होता है। इस प्रकार "पत्र" शब्द के अर्थ-विकास की कहानी बड़ी रोचक और रम्य है।

पं. जगन्नाथ शास्त्री द्वारा सम्पादित "मेदिनीकोश" में "पत्र" शब्द के वाहन, पत्ता, पक्षी का पंख और बाण का पंख—ये चार अर्थ दिये गये हैं।[3] तर्कवाचस्पति श्री तारानाथ भट्टाचार्य द्वारा सम्पादित "शब्दस्तोममहानिधि" शीर्षक कोश-ग्रंथ में "पत्र" के उपर्युक्त चार अर्थों के अतिरिक्त लेखनाधारे द्रव्य और धातुमयपत्राकारे द्रव्य का भी उल्लेख मिलता है।[4] "पत्र" के पर्यायों की विस्तृत सूची हमें श्री जयशंकर जोशी द्वारा सम्पादित "हलायुधकोश" में उपलब्ध होती है।[5] यद्यपि संस्कृत के इन प्रसिद्ध कोश-ग्रंथों में "पत्र" शब्द की व्युत्पत्ति, उसके विभिन्न अर्थों और पर्यायों की चर्चा तो मिलती है, किन्तु इसकी सर्वाधिक सुंदर और सारगर्भित व्याख्या श्री नगेन्द्रनाथ बसु द्वारा सम्पादित "हिंदी विश्व-कोश" में दी गयी है। इसमें हमें "पत्र" शब्द की दो व्युत्पत्तियाँ मिलती हैं[6] :—

(१) "पत्यते पात्यते शास्त्रषोधाय वर्णनिचयोऽनेन, पत करणे ष्ट्रन। लिखनाधार, धातुमय पत्राकृति द्रव्य।

(२) "पात्ये स्थानात् स्थानान्तरं समाचारोऽनेन। पत्री, चिट्ठी। पत्र द्वारा सम्वाद एक स्थान से दूसरे स्थान में भेजा जाता है।"

---

1. देखिए : (क) "मानक हिन्दी कोश", तृतीय खण्ड (१९६४) संपा. रामचन्द्र वर्मा, पृ ३८०। (विशेष टिप्पणी)
   (ख) "हिन्दी शब्द सागर," छठा भाग (१९६९), संपा. श्यामसुन्दरदास और अन्य, पृ. २७६९। (विशेष टि.)
2. अम्बाप्रसाद "सुमन" के एक व्यक्तिगत पत्र से।
3. मेदिनीकोश" (वि. सं. २०२४), संपा. पं. जगन्नाथ शास्त्री, पृ. १२६।
   "पत्र तु वाहने पर्णे स्यात् पक्षे शरपक्षिणोः।'
4. "शब्दस्तोममहानिधि" (१९६७), पृ. २५८। "पत्र = न. पत् + ष्ट्रन। वाहनमात्रे, पर्णे, पक्षिणां पक्षे, लेखनाधारे द्रव्ये, धातुमय-पत्राकारे द्रव्ये च। लिप्यां स्त्री. ङीप्।"
5. देखिए : हलायुधकोश" (शक-१८७९), पृ. ४०८।
6. "हिन्दी विश्वकोश," द्वादश भाग, पृ. ६८१।

इनमें से दूसरी व्युत्पत्ति का अर्थ रूढ़ वाङ्.मय प्रकार की दृष्टि से हमारे लिए अधिक उपयोगी है। इस प्रकार उपर्युक्त विश्लेषण के आधार पर कहा जा सकता है कि "पत्र" हिन्दी का तत्सम शब्द है। संस्कृत में इसका अनेक अर्थों में अतिप्राचीन प्रयोग मिलता है। "ऋग्वेद" के सातवें मण्डल में "शतपत्र" शब्द का प्रयोग किया गया है—"स हि शुचिः शतपत्र स शुन्ध्युर्हिरण्यवासी रिषिरः स्वषाः।"[1] यहां "शतपत्र" से तात्पर्य बृहस्पति के अनेक वाहनों से है अर्थात् "पत्र" शब्द यहां "वाहन" के अर्थ में व्यवहृत है। "श्री मद्भगवत्गीता" के नवें अध्याय के छब्बीसवें श्लोक—"पत्रंपुष्पंफलंतोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति"[2] में, महाकवि कालिदास के प्रसिद्ध नाटक "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" में राजा दुष्यन्त के कथन "यत् प्रत्यवेक्षितं पौरं कार्यं भार्येण तत् पत्रमारोप्य दीयताम्[3] में तथा पण्डितराज जगन्नाथ कृत "भामिनीविलास" के प्रथमविलास के सत्तानवें श्लोक—"धत्ते भरं कुसुमपत्रफलावलीनाम्"[4] में "पत्र" शब्द का प्रयोग "पत्ता" (वृक्षावयव विशेष) के अर्थ में किया गया है। "पंचतंत्र" के 'मित्रभेद" में कहा गया है कि विवाद में लिखापढ़ी या कागज़-पत्र का प्रमाण देखा जाता है। यदि कागज़-पत्र नहीं हो तो साक्षियों का प्रमाण माना माता है: "विवादेऽन्विष्यतेऽपत्रं तदभावेऽपि साक्षिणः।"[5] इस प्रकार यहां "पत्र" शब्द "दस्तावेज़" के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। आधुनिक अर्थ में "पत्र" शब्द का कदाचित् सबसे प्रथम प्रयोग कौटिल्य के ' अर्थशास्त्र" में मिलता है। इस ग्रंथ के "राजप्रविधि" शीर्षक प्रकरण में कहा गया है कि राजा को पांचवे प्रहर में मंत्रिपरिषद् के साथ पत्र द्वारा मंत्रणा करना चाहिए:" पंचमे मन्त्रिपरिषदा पत्र सम्प्रेषणेन मंत्रयेत।"[6] इन उद्धरणों में प्रयुक्त "पत्र" शब्द से उसके तत्कालीन स्वरूप का स्वयं स्पष्टीकरण हो जाता है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि हिन्दी में जिस अर्थ में हम आज "पत्र" शब्द का प्रयोग करते हैं, उस अर्थ को द्योतित करने के

---

1. "ऋग्वेद", (७-९७-७), सायण भाष्यावलम्बी सरल हिन्दी भावार्थ सहित टीका, संपा. वेदमूर्ति तपोनिष्ठ, पृ. १०९५।
2. "श्री मद्भगवत्गीता," (९-२६) अंग्रेजी अनुवाद, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. २०२।
3. "अभिज्ञान शाकुन्तलम्," (अंक ६) हिन्दी व्याख्याकार रामतेज पाण्डेय पृ. ४१७।
4. "भामिनीविलास," (१-९७), हिन्दी व्याख्याकार राधेश्याम मित्र, पृ. ११४।
5. "पंचतंत्र," (१-४३६), संस्कृत टीकाकार गुरुप्रसाद शास्त्री, पृ. ३७८।
6. "कौटिलीय अर्थशास्त्रम्" (प्रकरण-१६), अंग्रेजी अनुवादक एवं संपादक शामा शास्त्री, पृ. ३८।

लिए उसमें "लेख" शब्द का प्रयोग किया गया है।[1] यद्यपि महाकवि बाण, भवभूति आदि संस्कृत साहित्यकारों ने अपनी कृतियों में कहीं-कहीं लिखित संदेश के लिए "पत्रिका" और "पत्र" शब्द का प्रयोग भी किया है, किन्तु अधिकांश प्राचीन ग्रंथों में "पत्र" के स्थान पर "लेख" शब्द का प्रयोग ही किया गया है। अतः यहां पत्र और लेख के सम्बन्ध पर किंचित् प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत होता है।

पं. गणेशदत्त शास्त्री कृत "पद्मचन्द्रकोश"[2] में "लेख" शब्द का जिस प्रकार अर्थ-विश्लेषण किया गया है, उसे ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि "लेख" आधेय और 'पत्र" आधार का बोधक है। प्राचीन काल में "पत्र" के स्थान पर "लेख" शब्द का प्रयोग सम्भवतः इसलिए किया गया होगा कि बहुत पहले खोदकर ही लिखा जाता था। लिखने का अर्थ ही उत्कीर्ण करना होता था।[3] "लिपि" शब्द का लिखावट के लिए प्रयोग भी पत्रों पर स्याही के लेपन से ही प्रचलित हुआ है।[4]

प्राचीन समय में पत्र-लेखन का कार्य कुशल लेखकों द्वारा ही सम्पन्न होता था। राजकीय पत्र और दस्तावेज़ लेखन-कला में निपुण और नाना भाषाविद् लेखक ही तैयार करते थे। कदाचित् इसलिए भी "लेख" शब्द का प्रयोग किया गया

---

1. देखिए।
   (क) "हला ! मदनलेखोऽस्य क्रियताम्।"
   —"अभिज्ञान शाकुन्तलम्" (अंक-३), व्याख्याकार रामतेज पाण्डेय, पृ. १७६।
   (ख) "एष खलु स्वामिना माननीयस्य लेखः प्रहृति।"
   —"हर्षचरितम्" (उल्लास-२), व्याख्याकार जगन्नाथ पाठक, पृ. ९०।
   (ग) "लेखोऽयं न ममेति नोत्तरमिदं मुद्रा मदीया यतः।"
   —"मुद्राराक्षसम्" (अंक-५), टीकाकार डा. रामशंकर त्रिपाठी, पृ. २९४।

१. "पद्मचन्द्रकोश" (१८९८), पृ. ३३०।
   "लेख = (पु) लिख्यते चित्रादि पटेऽसौ। लिख् + कर्मणि घञ्।
   जो मूर्ति लिखने वाले कपड़े आदि पर लिखा जाता है। देवता।
   "भावे घञ् लेखन। कर्मणि घञ् लेख्य (लिखने लायक) आधारे घञ्. पत्र, लिपि।

२. "देखिए:-(क)" "संस्कृत-हिन्दीकोश (१९७३), वामन शिवराम आप्टे, पृ. ८७७।
   (ख) "प्राचीन पत्र-लेखन" (लेख), डा. हीरानन्द शास्त्री,
   "विशाल भारत," जनवरी १९३८, पृ ५८।

३. "प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद" (१९५२), आचार्य हज़ारीप्रसाद द्विवेदी, पृ. ७०।

हो। श्री पी. के. गौड़ तथा सी. जी. कार्वे द्वारा सम्पादित "संस्कृत-अंग्रेजी कोश"[1] में लेख शब्द के जो अर्थ दिये गये हैं, उनमें "दस्तावेज़" का उल्लेख भी किया गया है। सारांश यह कि प्रारम्भिक काल में "पत्र" शब्द का प्रयोग प्रायः लेखनाधार द्रव्य अथवा बाह्य स्थूलाकार के अर्थ में भी किया गया होगा। कालान्तर में वह बाह्य स्थूलाकार और आभ्यतंर वस्तु दोनों का बोधक बन गया होगा। आज "पत्र" शब्द से आधार और आधेय दोनों ही अर्थ द्योतित होते हैं। अतः "लेख" शब्द के अर्थ का समावेश "पत्र" शब्द के अभिधेयार्थ में स्वयमेव हो जाता है।

पुराने शब्दों को नये अर्थ में प्रयुक्त करने की पद्धति को "पारस्परिक पद्धति" कहा जाता है। अंग्रेजी में ऐसे शब्दों को थ्रू बैक्स—(Through Backs) कहते हैं।[2] "पत्र" शब्द के व्युत्पत्तिगत अर्थ के विकास में इस पद्धति का भी उल्लेख्य योग रहा है। "पत्र" को लेकर बनाये यौगिक शब्द "पत्रभंग," "पत्रलता," "पत्रद्रुम," "पत्रपाल," "दान-पत्र," "प्रमाण-पत्र" आदि "एक लाख पूत सवा लाख नाती" वाली कहावत चरितार्थ करते हैं।

हिन्दी में आज "पत्र" शब्द का प्रयोग स्वजन-परिजनों, इष्ट-मित्रों आदि की डाक द्वारा भेजे जाने वाले पत्रों और दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक आदि पत्रों के लिए अधिक होता है। "अखबारों-मैगज़ीनों के साथ "पत्र" शब्द जोड़ देने का कारण सम्भवतः यह होगा कि "पत्र" अर्थात् लेटर किसी बात को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक या एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुंचाने का माध्यम है।"[3] इसी अर्थ-साम्य के कारण ही कदाचित् "पत्र-साहित्य" शब्द का प्रयोग पत्रकारिता के सन्दर्भ में किया जाता है। हिन्दी में डाक द्वारा भेजे जाने वाले "पत्र" के लिए सामान्यतः "चिट्ठी" शब्द का प्रयोग होता है। ब्रजभाषा, अवधी, भोजपुरी आदि विभाषाओं में "पत्र" के लिए "पाती" और "पतिया" शब्द अधिक प्रचलित हैं। कबीर, सूर, तुलसी, मीरा, बिहारी, पद्माकर आदि प्राचीन कवियों ने अपने काव्य में "पत्र" के स्थान पर इन्हीं शब्द रूपों का प्रयोग किया है।

भारत में प्रचलित प्रमुख सोलह भाषाओं में "पत्र" के लिए कौन-कौन से शब्द व्यवहृत होते हैं, इसकी अच्छी जानकारी हमें श्री विश्वनाथ नरवणे द्वारा सम्पादित भारतीय व्यवहार कोश[1] में मिलती है। इस कोश-ग्रंथ को देखने से ज्ञात होता है कि भारतीय व्यवहार में "पत्र" शब्द के अतिरिक्त "चिट्ठी" और "खत" ये दो शब्द अधिक प्रचलित हैं।

---

1. Sanskrit-English Dictionary", Part-III, P. 1370.
   "लेख (लिख्-भाव घम्) A writing, Document, written document (of any kind), a letter"
2. "छायावादोत्तर काव्य में शब्दार्थ का स्वरूप" (१९७२) डा. सुधा गुप्ता, पृ. २३।
3. "हिन्दी साहित्य कोश" भाग-१, (वि. सं. २०२०), संपा. डा. धीरेन्द्र वर्मा और अन्य, पृ. ४७१।

क्रम	भाषा	पत्र के लिए व्यवहृत शब्द	क्रम	भाषा	पत्र के लिए व्यवहृत शब्द
१	हिन्दी	पत्र, चिट्ठी, खत	९	बंगला	चिठि
२	अंग्रेजी	लेटर (Letter)	१०	असमिया	चिठि (सिठि)
३	पंजाबी	ख़त (खत्)	११	ओड़िया	चिठि
४	उर्दू	ख़त (खत्)	१२	तेलुगु	ज़ाबु, उत्तरमु
५	काश्मीरी	खत्, चिटप्	१३	तमिल	कडिदम
६	सिंधी	ख़तु (ख़त्तु)	१४	कन्नड़	ओले, पत्र
७	मराठी	पत्र	१५	मलयालम	एलुत्तु
८	गुजराती	कागल़	१६	संस्कृत	लेख, पत्र ।

अंग्रेजी में "पत्र" के लिए "लेटर" शब्द का प्रयोग किया जाता है । अंग्रेजी का "लेटर" शब्द लैटिन की "लिट्रा" (Littera) धातु से निष्पन्न हुआ है जिसका अर्थ है—वर्णमाला का अक्षर, लिखना आदि ।[1] इस प्रकार अंग्रेजी का "लेटर" शब्द भी संस्कृत के "लेख" शब्द के समान "आधेय" का बोधक है । लैटिन की "लिट्रा" धातु और संस्कृत की "लिख् धातु में पर्याप्त साम्य दिखाई देता है । वैब्स्टर के कोश-ग्रंथ में "लैटर" शब्द के व्युत्पत्तिमूलक अर्थ का स्पष्टीकरण करते हुए पत्र-लेखन की जिस प्राचीन विधि का उल्लेख किया गया है, वह हमारे ताल-पत्रों की लेखन-विधि से बहुत मिलती-जुलती है ।[2] इस प्रकार "पत्र" के व्युत्पत्यर्थ के अधिक निकट अंग्रेजी का "पेपर" शब्द ठहरता है, किन्तु अभिधेयार्थ की दृष्टि से लेटर" को ही इसका पर्याय समझा जाता है । "लेटर" के अतिरिक्त अंग्रेजी में "पत्र" के लिए "एपिसल" (Epistle) शब्द का प्रयोग भी मिलता है । अत: यहां :'पत्र" के अर्थ-विश्लेषण के सन्दर्भ में लेटर-एपिसल के अंतर को समझ लेना भी आवश्यक है ।

अंग्रेजी में "एपिसल" ऐसे पत्र का पर्याय है जो किसी अनुपस्थित व्यक्ति को लिखा जाता है । इस शब्द का प्रयोग विशेष रूप से उन पत्रों के लिए किया

1. "Smaller Latin-English Dictionary" (1952) By Sir William Smith, P. 405.
   "Littera = (old Latin litera, lettre)
   a letter of alphabet, to write................"
2. "Webster's New International Dictionary of English Language," 2nd Edition, P. 1419.
   "..................one of the earliest modes of writing was by graving the characters upon tablets smeared over or cover with wax.

गया था जो प्राचीनकाल में साहित्य के रूप में लिखे गये ।[1] इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक भाषा के "एपिसोल" शब्द से हुई है जिसका अर्थ है पत्र, विशेषत: ऐसा पत्र जो ईश्वर और धर्म से सम्बन्धित हो और साहित्य की कोटि में आ सकता हो ।[2] इस प्रकार हम देखते हैं कि एपिसल भी एक प्रकार का "लेटर" अर्थात पत्र ही है । लेटर और एपिसल का अंतर मुख्यत: इनके प्रयोग में ही है । एपिसल में औपचारिकता अपेक्षाकृत अधिक होती है । दूसरे शब्दों में, औपचारिक रूप में लिखे गये पत्रों के लिए ही "एपिसल" शब्द का प्रयोग किया जाता है । इसका सबसे अधिक प्रचलित प्रयोग बाइबिल-सम्बन्धी लिखे गये विशेष प्रकार के निबन्धों के लिए किया गया हैं ।[3] प्रसिद्ध पाश्चात्य आलोचक हेनरी हडसन इसका समावेश गीतिकाव्य के अन्तर्गत करते हैं ।[4] सारांश यह कि "एपिसल" एक प्रकार का पत्र ही है । यह गद्य और पद्य दोनों में लिखा जा सकता है । परन्तु इसकी रचना

---

1. "Shorter Oxford Dictionary," Third Edition, P. 624
   "Epistle—A communication made to an absent person in writing a letter, chiefly applied to those letters - written in ancient times which rank as literature".

2 (a) Current Literary Terms", (1952) by A. F. Scott, P. 95
   Epistle-Greek
   epistole A letter, especially one from an epostle, forming part of the canon of scripture and ranking as literature."

   (b) Bhargava's Standard Illustrated Dictionary. (Anglo-Hindi), P. 276
   "Epistle=a letter sent to person, a literary work."

3. (a) "Dictionary of Literary Terms," By J. R. Harmsworth. P. 40.
   "Theoretically an Epistle is any letter, but in practice the term is limited to formal compositions written by an individual or a group to a distant individual or group. The most familiar use of the term, is to characterize certain of the book of the New Testament"

   (b) "Encyclopedia Britannia," Vol. 8, (1968), P. 651.
   "Epistle=In its original sense a word meaning simply a letter, has come to be used only of formal letters in ancient time..........."

4. "In Introduction to the Study of Literature, 5th Indian Edition, 1973, P. 102.

सार्वजनीन वक्तृता के रूप में होती है, इसलिए इसमें "लेटर" अर्थात् पत्र के समान वैयक्तिकता नहीं होती।

प्राचीन योरप में "एपिसल" लिखने की एक प्रथा थी। काव्य में इस शब्द का प्रयोग "होरेस" की उन रचनाओं के लिए किया गया जो नीतिसम्बन्धी एवं दार्शनिक विषयों पर, लगभग निबन्धों के रूप में लिखी गयी थीं। आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "...........यह शब्द विशेषतः उन पत्रों के लिए प्रयुक्त होता है जो गद्य या पद्य में अत्यन्त सावधानी या कला से लिखे जाते हैं। पुनर्जागरण काल में ग्रंथों की भूमिकाएं पत्र के रूप में लिखी जाती थीं, इसलिए कुछ दिनों तक पत्र का अर्थ ही भूमिका हो गया, यहां तक कि जो भूमिकाएं पत्र के रूप में नहीं भी लिखी जाती थीं, उन्हें भी "एपिस" कहा जाने लगा था।"[1] इस प्रकार प्राचीनकाल में साहित्य के रूप में लिखे गये पत्रों को "एपिसल्स" कहा जाता था।

हिन्दी में "एपिसल" के लिए अनेक शब्दों का प्रयोग मिलता है। डा. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित "मानविकी पारिभाषिक कोश" में इसे "काव्य-पत्र" कहा गया है।[2] डा. उमाकान्त ने राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त की "पत्रावली" की समीक्षा के प्रसंग में इसको "साहित्यिक पत्र" की संज्ञा दी है,[3] तो डा. कामिल बुल्के ने अपने अंग्रेजी-हिन्दीकोश में इसके लिए "धर्मपत्र" "पत्रकविता" आदि शब्द प्रयुक्त किये हैं। इससे प्रकट होता है कि हिन्दी में "एपिसल" के लिए कोई निश्चित शब्द नहीं है।

उपर्युक्त विश्लेषण-विवेचन से स्पष्ट होता है कि "पत्र" शब्द अपने आधुनिक अर्थ में बाह्य स्थूलाकार और आभ्यन्तर वस्तु दोनों का बोधक है। अंग्रेजी में इसके लिए "एपिसल" शब्द का प्रयोग भी मिलता है, किन्तु वह प्राचीनकाल में साहित्य के रूप में लिखे गये पत्रों का बोधक है। अतः हिन्दी में आज "पत्र" शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के "लेटर" के पर्याय के रूप में होता है।[4]

पत्र की विविध परिभाषाएं

पत्र-लेखन भी साहित्य की एक सशक्त एवं स्पृहणीय कला है। विश्व में अनेक महान् पत्र-लेखक हुए हैं, जिनके पत्र उनके साहित्य से कम रोचक या महत्वपूर्ण नहीं हैं। पत्रों को साहित्य का अंग मानने की प्रेरणा हमें पाश्चात्य साहित्य से मिली है। पत्र-लेखन कला पर पाश्चात्य साहित्य में विस्तार से विचार किया गया है। हिन्दी के प्रसिद्ध विद्वानों ने भी पाश्चात्य व्याख्याकारों तथा

---

1. "साहित्यानुशासनम्" (वि. सं. २०२६), पृ. १००२।
2. "मानविकी पारिभाषिक कोश" (१९६५), पृ. १०८।
3. "गुप्त जी की काव्य-साधना" (१९६६), पृ. २२८।
4. "An English-Hindi Dictionary" (1968) P. 215।

विद्वानों का अनुगमन किया है। अतः यहां हम पहले पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी पत्र की परिभाषाओं पर विचार करेंगे। तदनन्तर हिन्दी विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का विवेचन होगा।

१. पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएं :

शिप्ले के विश्व-वाङ्मय कोश में पाश्चात्य पत्र-लेखनकला की विस्तार से व्याख्या की गयी है। इसमें कहा गया है कि पत्र प्रायः भेजने वाले की ओर से पाने वाले के लिए प्रथम पुरुष में प्रत्यक्ष सम्बोधन होता है। पहले ज़माने में दूत या पत्र-वाहक द्वारा चिट्ठियां भेजी जाती थीं और ऐसा भी होता था कि पत्र-वाहक न केवल चिट्ठियों को पहुँचाता था, वरन् उनको पढ़कर सुनाता भी था। उस समय के पत्रों में पाने वाले को तृतीय पुरुष द्वारा सम्बोधित किया जाता था।[1] इस प्रकार इस परिभाषा में प्राचीन और अर्वाचीन पत्र-लेखन-प्रणालियों का संकेत किया गया है।

"इलस्ट्रेटेड वर्ल्ड एनसाइक्लोपीडिया" के अनुसार पत्र किसी के पास भेजा गया लिखित सन्देश है। यह शब्द सामान्यतः कुछ लम्बाई वाले सन्देश और लिफाफों में डाक द्वारा भेजे जाने वाले सन्देश के लिए प्रयुक्त होता है। संक्षिप्त सन्देश को बहुधा नोट कहा जाता है।[2] इस परिभाषा में पत्र की लम्बाई पर बल दिया गया है। इसके अनुसार पोस्ट-कार्ड पर लिखा गया संदेश संक्षिप्तता के कारण नोट बन जायेगा। इस प्रकार यह परिभाषा यह धारणा प्रस्तुत करती है कि पत्र नोट का वृहत् रूप है और नोट पत्र का लघु रूप अर्थात् पत्र और नोट में आकार का अन्तर है। परन्तु हमारे विचार में सन्देश संक्षिप्त है या बड़ा, यह इतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना कि वह किस विषय से सम्बन्धित है और किसने किसको लिख भेजा है।

---

1. "Dictionary of World Literature," by J. T. Shipley, P. 249.
   "The letter is usuallya direct address from the sender in the Ist person to the receiver be made by a messanger who in fact or by conventional pretense recites or read the massage, the voice of letter may be that an intermediary, using the 3rd person to refer to sender and receiver; or the direct address of the letter proper may........"
2. "Illustrated World Encyclopedia," Part-13 P. 3089.
   "A letter is a written message sent to some one else. The word is used mostly for a message of some length, put in an envelope and mailed. A shorter message is often called a note"

श्री हर्मस्वोर्थ महोदय पत्र को मित्रों के बीच वैयक्तिक एवं स्वाभाविक सम्बन्ध का प्रतिनिधि मानते हैं।[1] इस परिभाषा में मैत्री-भावना पर जोर दिया गया है। पत्र-लेखन का मुख्य उद्देश्य मैत्री-भावना का विस्तार करना है।

श्री एडगर जानसन के मतानुसार पत्र जनता के प्रयोग के लिए नहीं होते। यह एक ही व्यक्ति को लिखे जाते हैं पर लिखे छोटे-छोटे समूहों में जाते हैं। यह भावग्राहक अर्थात् पाने वाले व्यक्ति के स्वाद, समझ और सहानुभूति के अनुसार लिखे जाने चाहिए।[2] इस परिभाषा में भावग्राहक अर्थात् पत्र पाने वाले के व्यक्तित्व पर बल दिया गया है। इससे प्रकट होता है कि पत्र, लेखक के साथ भावग्राहक के व्यक्तित्व पर भी प्रकाश डालते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि उपर्युक्त परिभाषाओं में विद्वानों ने अपना मंतव्य समझाने के लिए पत्र की अलग-अलग विशेषताओं या उसके लक्षणों पर बल दिया है। अतः प्रत्येक परिभाषा में पत्र के कुछ-न-कुछ तत्व सन्निविष्ट होने से छूट गये हैं। अब हम हिन्दी विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं का अवलोकन करेंगे।

२—हिन्दी विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाएं :

हिन्दी में पत्रों को साहित्य के रूप में मान्यता एवं स्वीकृति प्रदान करने का श्रेय बाबू गुलाबराय को है। उन्होंने ही सबसे पहले अपने "काव्य के रूप" शीर्षक समालोचना-ग्रंथ में काव्य के विभिन्न रूपों का विभाजन करते हुए उपन्यास, कहानी, जीवनी निबन्ध आदि गद्य-रूपों में पत्र को भी स्थान दिया है।[3] यही नहीं, उक्त ग्रंथ के "श्रव्य-काव्य-अन्य विधाएं" शीर्षक प्रकरण में उन्होंने "पत्र-साहित्य" का शास्त्रीय निरूपण भी किया है। पत्रों के सर्वाधिक महत्व को ध्यान में रखते हुए उन्होंने लिखा है:—

"पत्र व्यक्ति द्वारा लिखे जाते हैं और वे व्यक्ति के लिए ही होते हैं किन्तु वे जनसाधारण के लाभ या मनोरंजन की भी वस्तु हो सकते हैं। उनमें साहित्य की सब विधाओं की अपेक्षा व्यक्तित्व की झलक अधिक रहती है।"[4]

---

1. "Dictionary of Literary terms", by J. R Harmsworth, P. 64.
   "Letters represent personal and natural relationship between friends".
2. "One Mighty Torrent", P. 157.
   "A letter is not a public performance. Letters are written to single persons or, at most, to small group, they should be fitted to the tastes, understanding and sympathies of their recipents".
3. देखिए : "काव्य के रूप" (तृ. सं. १९५४), पृ. २२।
4. —वही—, पृ. २६०।

इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि पत्र व्यक्ति-विशेष को सम्बोधित होते हुए भी लेखक के गरिमामय एवं कलात्मक व्यक्तित्व के कारण सब के लिए पठनीय बन सकते हैं। यही तथ्य प्रकारान्तर से श्री राजेन्द्र द्विवेदी की निम्नलिखित परिभाषा में अंकित हैं—

"पत्र प्रकाशन के लिए अनभिप्रेत व्यक्तिगत रूप का साहित्य। कभी-कभी सार्वजनिक उपयोग का होने के कारण प्रसिद्ध व्यक्तियों का पत्र-व्यवहार प्रकाशित भी हो जाता है। लेखक के प्रतिष्ठित होने पर वह समकालीन घटनाओं आदि की आलोचना करता है और अपने अनुभव के सहारे प्रौढ़ टिप्पणियां देता है और इस प्रकार अनजाने ही अपने चरित्र और दृष्टिकोण को स्पष्ट कर देता है। पत्रात्मक कहानियां या पत्र-गीतियां भी लिखी जाती हैं।"[1] इस परिभाषा में लेखक के वास्तविक व्यक्तित्व के उद्‌घाटन के साथ समकालीन घटनाओं की विवृत्ति का भी उल्लेख किया गया है।

"हिन्दी साहित्य कोश" में पत्र की परिभाषा इस प्रकार दी गयी है—

"जब व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के पास कोई प्रत्यक्ष सन्देश भेजे तो उसे पत्र कहेंगे। आधुनिक पत्र सामान्यतः लिखित होता है, बातचीत की शैली में लिखा जाता है और डाक द्वारा भेजा जाता है। प्राचीनकाल में पत्र किसी मध्यस्थ के हाथों भेजे जाते थे और यह मध्यस्थ, सन्देशवाहक, पत्र-वाहक, दूत या कासिद-सन्देश पाने वाले को सन्देश पढ़कर सुनाता था।"

इस परिभाषा में भी शिप्ले के विश्व वाङ्मय कोश की तरह पत्र के प्राचीन और अर्वाचीन स्वरूप पर प्रकाश डाला गया है। बातचीत की शैली आधुनिक पत्र की उल्लेखनीय विशेषता है।

डा. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित "मानविकी पारिभाषिक कोश" में दी गयी परिभाषा में भी पत्र-लेखन की आधुनिक और प्राचीन पद्धतियों की व्याख्या की गयी है। देखिए—

पत्र प्रायः एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को प्रेषित अभिलेख होता है जिसमें प्रेषक अपने को प्रथम पुरुष में तथा आप्रेषक को द्वितीय पुरुष में सम्बोधित करता हैं। किन्तु पहले जब पत्र दूत द्वारा भेजा जाता था और दूत ही पत्र पढ़कर सुनाने का कार्य भी करता था तो आप्रेषक को तृतीय पुरुष द्वारा सम्बोधित किया जाता था।"[3]

यह परिभाषा एक दृष्टि से पूर्वोल्लिखित शिप्ले कृत विश्व-वाङ्मय कोश की परिभाषा का हिन्दी रूपान्तर ही है।

---

1. "साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्द-कोश" (१९५५), पृ. १३८।
2. "हिन्दी साहित्य कोश," भाग-१ (सं २०२० वि.), संपा. डा. धीरेन्द्र वर्मा और अन्य, पृ. ४७०।
3. "मानविकी पारिभाषिक कोश," साहित्य-खण्ड, (१९६५), पृ. १५८।

श्री धर्मचन्द सन्त तथा बलदेव कृष्ण द्वारा लिखित "सिद्धांतालोचन" शीर्षक पुस्तक में पत्र की परिभाषा इन शब्दों में दी गयी है—

"पत्र वह लेख है जो किसी दूर रहने वाले व्यक्ति-विशेष को प्रेषित किया जाता है और जिसमें दूरस्थ व्यक्ति के प्रति अपनी भावना का प्रकाशन रहता है।"[1]

यह परिभाषा भी हमारे सम्मुख पत्र की कोई महत्वपूर्ण विशेषता नहीं प्रकट करती।

डा. शान्ति खन्ना ने अपने "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य"[२] शीर्षक शोध-प्रबन्ध में पत्र की परिभाषा देते हुए लिखा है:—

"पत्र वह लेख है जो दूर रहने वाले व्यक्ति-विशेष को प्रेषित किया जाता है और जिसमें दूरस्थ व्यक्ति के प्रति अपनी भावनाओं का उसकी रुचि, समझ एवं योग्यता के अनुसार कलात्मक ढंग से प्रकाशन किया जाता है।"

यह परिभाषा "सिद्धांतालोचन" के उपर्युक्त लेखक-द्वय तथा पाश्चात्य समीक्षक एडगर जानसन द्वारा दी गयी परिभाषाओं का मिश्रित रूप है। अतः इसमें कोई नया तथ्य हमें देखने को नहीं मिलता।

३—निष्कर्ष :

इस प्रकार पाश्चात्य और हिन्दी विद्वानों द्वारा दी गयी परिभाषाओं को देखने से पता चलता है कि सभी परिभाषाएं व्यापक होते हुए भी किसी-न-किसी दृष्टि से अपूर्ण हैं। हिन्दी विद्वानों में बाबू गुलाब राय और राजेन्द्र द्विवेदी को छोड़कर शेष प्रायः सभी विद्वानों ने अपनी परिभाषाओं में पाश्चात्य विद्वानों की विचार-सरणी का ही अनुगमन किया है। यदि उपर्युक्त सभी परिभाषाओं में संकेतित पत्र की महत्वपूर्ण विशेषताओं को दृष्टि में रखकर पत्र-विधा को परिभाषा-बद्ध करना चाहें तो कह सकते हैं—

पत्र-साहित्य पारस्परिक मैत्री-भावना तथा वार्तालाप की ध्वनि से युक्त, स्वतः पूर्ण, प्रकाशन के लिए अनभिप्रेत किन्तु सार्वजनीन उपयोगिता के कारण प्रकाशित होने वाला ऐसा साहित्य-रूप है जिसमें लेखक के वास्तविक व्यक्तित्व के साथ भावग्राहक के व्यक्तित्व और समकालीन घटनाओं की स्पष्ट झलक मिलती है।

पत्र-विधा की प्रमुख विशेषताएं

उपर्युक्त समन्वित परिभाषा के आधार पर पत्र-विधा के स्वरूप से सम्बन्धित कुछ प्रमुख विशेषताओं को इस प्रकार प्रकट किया जा सकता है—

(१) पत्र प्रकाशन के लिए अनभिप्रेत व्यक्तिगत रूप का साहित्य है।

---

१. "सिद्धांतालोचन" (प्र. सं.) पृ. २१९।
२ "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" (१९७३), पृ. २३६।

(२) प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेरक एवं मनोरंजक पत्र प्रकाशित भी होते हैं।

(३) पत्रों में लेखक के वास्तविक व्यक्तित्व का उद्घाटन होता है।

(४) पत्रों में पारस्परिक मैत्री-भावना या आत्मीयता की झलक मिलती है।

(५) पत्रों में समकालीन घटनाओं की विवृत्ति होती है।

(६) पत्रों में वार्तालाप की ध्वनि विद्यमान रहती है।

(७) पत्र स्वतः पूर्ण होते हैं।

(८) पत्रों में भावग्राहक के व्यक्तित्व की झांकी मिलती है।

अब हम अनुक्रम से प्रत्येक विशेषता की संक्षेप में चर्चा करेंगे।

१—प्रकाशन के लिए अनभिप्रेतता :

पत्र एक वैयक्तिक विधा है। उत्तम पत्र प्रकाशन की दृष्टि से नहीं लिखे जाते। पत्र हमारी अपनी चीज़ हैं। जिसके लिए हम लिखते हैं, उसे छोड़कर दूसरा पढ़ेगा भी नहीं, इस विश्वास के साथ हम दिल खोलकर लिखते हैं। यदि पत्र लिखते समय हमें यह भान हो जाय कि हमारे पत्र प्रकाशित होंगे तो सम्भवतः उनमें कृत्रिमता आ जायेगी। अपने नाम आये डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों को जब पं बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रकाशित किया तो उस पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए डा अग्रवाल ने लिखा था:—

"आपने मेरे पत्रों को छपवाकर पत्र लिखने की स्वतंत्रता को जैसे कुण्ठित कर दिया। प्रवाह में बहुत-सी बातें लिख जाता था। सम्भव है वैसा अब न होगा।"[1]

इस प्रकार वैयक्तिकता पत्र-विधा की प्रथम विशेषता है। अनजाने में लिखे गये पत्रों में जो स्वाभाविकता मिलती है, वह प्रकाशन की दृष्टि से लिखे गये पत्रों में नहीं मिलती। डा. लक्ष्मीनारायण दुबे ने आचार्य शिवपूजन सहाय की पत्र लेखन-कला की समीक्षा के आरम्भ में पत्र-विधा की इस विशेषता की ओर इंगित करते हुए लिखा है कि—"पत्रों में भी उन पत्रों की महिमा और गरिमा सर्वोपरि होती है जो लेखक के द्वारा अनजाने में ही लिखे जाते हैं और इस बात का पता नहीं होता कि भविष्य में कभी आगे-पीछे प्रकाशित भी हो सकते हैं।"[2]

इस दृष्टि से साहित्यकारों एवं विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों ने अपनी साधनावस्था में जो पत्र लिखे हैं, वे सिद्धावस्था में लिखे गये पत्रों की अपेक्षा अधिक

---

१. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), संपा. बाबू वृन्दावनदास, पृ. १५३।

२. "आचार्य शिवजी : पत्र-लेखक के रूप में" (लेख), "साहित्य" (त्रै.), जनवरी १९६४, पृ. २०५।

रोचक प्रतीत होते हैं। महाकवि "निराला" द्वारा उनके संघर्ष-काल में लिखे गये पत्रों में जो आत्म-संवेदना का रस हमें प्राप्त होता है, वह उनकी सिद्धावस्था में लिखे गये पत्रों में नहीं मिलता। तात्पर्य यह कि उत्तम पत्र प्रकाशन की दृष्टि से नहीं लिखे जाते। इसी कारण अनौपचारिक रूप में व्यक्तित्व का सहज अभिव्यंजन कर सकने में वे अधिक सफल बन जाते हैं, व्यक्तित्व के आकर्षण एवं सहज अभिव्यंजन के कारण ही प्रकाशित किये जाते हैं और प्रकाशनोत्तर सर्वसुलभ बन जाते हैं।

प्रसिद्ध व्यक्तियों के उत्प्रेरक और मनोरंजक पत्रों का प्रकाशन :

साहित्यकारों और महापुरुषों के व्यक्तिगत पत्र उस अर्थ में व्यक्तिगत नहीं होते, जिस अर्थ में सामान्य व्यक्तियों के व्यक्तिगत पत्र होते हैं।[1] ये पत्र बड़े उत्प्रेरक और मनोरंजक होते हैं। इसी कारण वे प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी निधि बन जाते हैं। आचार्य काका कालेलकर ने बजाज-परिवार के नाम लिखे गये महात्मा गांधी के पत्रों को "संत-सम्वाद" की संज्ञा दी है।[2] इसी प्रकार "बापू के पत्र-कुमारी प्रेमा बहन कंटक के नाम" शीर्षक पत्र-संग्रह की भूमिका में उन्होंने लोकोत्तर साधकों के पत्र-पठन को "तीर्थस्नान" जैसा पुण्य कार्य माना है।[3]

साहित्यकारों के वैयक्तिक पत्र उनकी श्रेष्ठ कृतियों के समान ही रोचक, उत्प्रेरक और मनोरंजक होते हैं। हिन्दी में पं. पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला," सुमित्रानन्दन पन्त आदि के अनेक पत्र इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। उर्दू के प्रसिद्ध कवि मिर्ज़ा ग़ालिब के पत्र उर्दू-साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। ग़ालिब नहीं चाहते थे कि उनके वैयक्तिक पत्र प्रकाशित हों। मुंशी शिवनारायण के नाम लिखे १८-११-१८५८ के पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिख दिया था कि—"उर्दू ख़तूत जो आप छपवाना चाहते हैं, यह भी ज़ायद बात है। कोई पत्र ऐसा होगा कि मैंने क़लम सम्भालकर और दिल लगाकर लिखा होगा। वरना सिर्फ तहरीर सरसरी है। क्या ज़रूरत है कि हमारे आपस के मुआमलात औरों पर ज़ाहिर हों?"[4]

परन्तु जिन पत्रों को ग़ालिब औरों के सामने प्रकट करना नहीं चाहते थे, वे ही पत्र प्रकाशित होकर उनकी शाश्वत कीर्ति का कारण बन गये। इस सम्बन्ध में "ग़ालिब : व्यक्तित्व और कृतित्व" शीर्षक पुस्तक के लेखकों का यह कथन उल्लेखनीय है कि—"पत्र-लेखन की वह शैली जिसे उन्होंने केवल सुभीते

---

1. श्री मधुरेश से प्राप्त एक व्यक्तिगत पत्र के आधार पर।
2. "बापू के पत्र बजाज-परिवार के नाम"(१९६६), सम्पादकीय, पृ. ८।
3. "बापू के पत्र कुमारी प्रेमाबहन कंटक के नाम" (१९६१), "तीर्थ-स्नान," पृ. १२।
4. "ग़ालिब के पत्र" (१९७२), सम्पा. अर्श मलसियानी, भूमिका, पृ. १।

की दृष्टि से अपनाया था और जिसके प्रकाशन को वे अपनी कीर्ति के लिए हानिकर समझते थे, आज वही उर्दू-साहित्य की ऐसी बहुमूल्य निधि हैं कि ग़ालिब के एक आलोचक के कथनानुसार यदि ग़ालिब का दीवान न होता, केवल ये पत्र होते तो ये उन्हें संसार में अमर करने के लिए पर्याप्त होते।[1]

इससे स्पष्ट है कि महान् साहित्यकारों के पत्र उनके साहित्य से कम रोचक या महत्वपूर्ण नहीं हैं। इस लिए विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के पत्रों को वैयक्तिक सम्पत्ति समझकर उन्हें सात ताले में बन्द कर देना उचित नहीं है। उनको प्रकाशित करना चाहिए। प्रकाशित होने पर वे साहित्य और कला के उद्देश्य की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। साहित्य और कला का मुख्य उद्देश्य मानव-हित का सम्पादन और मनोरंजन ही है।[2] प्रसिद्ध व्यक्तियों के उत्प्रेरक और मनोरंजक पत्र प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी निधि बन जाते हैं और समष्टि के लिए कल्याणकारी सिद्ध होते हैं। श्री परमातमशरण बंसल ने ठीक ही कहा है—

"पत्र-लेखन साहित्य की एक कला है। यद्यपि साहित्यकार पत्र द्वारा अपनी व्यक्तिगत भावनाओं और विचारों को किसी विशेष व्यक्ति तक ही प्रदर्शित करता है, परन्तु जब पत्र प्रकाशित हो जाते हैं, तो वे साहित्य बनकर समष्टि का कल्याण करते हैं।"[3]

३—लेखक के वास्तविक व्यक्तित्व का उद्घाटन :

पत्र-साहित्य लेखक की लेखनी से सहज रूप से निःसृत साहित्य है। अतः लेखक का वास्तविक व्यक्तित्व अन्य रचनाओं में नहीं, केवल पत्रों के पृष्ठों पर

---

1. "ग़ालिब : व्यक्तित्व और कृतित्व (१९६९), नरनबी अब्बासी और डा. नरूल हसन नक़बी, पृ. १४५।
2. (क) "साहित्य का अर्थ हितेन सह सहितं" लगाते हुए हम कहेंगे कि साहित्य वह है जिससे मानव-हित का सम्पादन हो। हित उसे ही कहते हैं जिससे कुछ बने, कुछ लाभ हो—"विदधातीति हितम्—" आनन्द भी एक लाभ है।
   —बाबू गुलाबराय : "काव्य के रूप" (१९५४), पृ. ३।
   (ख) "कं (सुखम्) लाति इति कलम्। "कल" और कला" शब्द का सन्निध्य है।
   —सद्गुरूशरण अवस्थी : "साहित्यतरंग (१९५६), पृ. २।
   (ग) " कं आनन्दं लाति इति कला।"
   —आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी : समीक्षाशास्त्र—(सं. २११० वि.), पृ. २०६।
3. "साहित्य-वाचस्पति के पत्र" (लेख), "भाषा," द्विवेदी-स्मृति अंक, १९६४, पृ. १५१।

ही अंकित रहता है। "द्विवेदी-पत्रावली" की समीक्षा करते हुए डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने पत्र-विधा की इस विशेषता को सुन्दर ढंग से उद्‌घाटित किया है। उन्होंने लिखा है— "बहुत सी बातें जो सार्वजनिक रूप से नहीं कही जा सकतीं या जो सार्वजनिक रूप से ज्ञात नहीं होतीं, वे पत्रों में सहज ही स्वीकार कर ली या कह दी जाती हैं—वह भी ऐसे क्षणों में जब पत्र-लेखक अपने स्वभाव और अकृत्रिम रूप में होता है"[1] इसी तथ्य को श्री शरद जोशी ने अपनी लाक्षणिक शैली में इस प्रकार व्यक्त किया है—"दूसरों की ज़िन्दगी के यथार्थ को पढ़ने का ऐसा शॉर्टकट और कुछ नहीं हो सकता कि उसका लिफाफा ही खोल लिया।........पोस्ट-कार्ड तो जैसे गुदना कराये स्त्री का उघड़ा शरीर हो, देख लीजिए कौन-सी डिज़ाइन बनी है।"[2]

इस प्रकार व्यक्तित्व की अपनी वैयक्तिक सत्ता होती है जो कि व्यक्तिगत जीवन में अधिक स्पष्टता से स्फुटित होती है। इसी कारण निजी पत्र जो मित्र-मिलापियों और सगे-संबन्धियों को लिखे जाते हैं, उनमें लेखक के हृदय का वास्तविक चित्र अंकित होता है। इस दृष्टि से किसी भी लेखक के पत्र उसके प्रकृत चरित्र के दर्पण होते हैं।[3] सारांशतः पत्र-विधा में साहित्य की सब विधाओं की अपेक्षा लेखक के सही व्यक्तित्व का उद्‌घाटन अधिक होता है।

४—पारस्परिक मैत्री-भावना या आत्मीयता की झलक :

पत्र-लेखक और भावग्राहक के बीच पारस्परिक मैत्री-भावना या आत्मीयता पत्र-विधा की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। श्री उमेशचन्द्र मिश्र ने विश्वकवि रवीन्द्रनाथ टैगोर की "छिन्न पत्रावली" की चर्चा के प्रसंग में लिखा है कि "अन्य प्रकार की साहित्यिक कृतियां लेखक की सम्पत्ति होती हैं और वह लाभ उठाने के लिए प्रकाशित करना चाहता है, पत्र जो विभिन्न व्यक्तियों के पास सदैव के लिए लिखकर भेज दिये जाते हैं, बहुमूल्य भेंट होते हैं।[4] यही कारण है कि आत्मीयता से ओतप्रोत पत्रों को हम "किमपि द्रव्य" की भांति संजोकर रखते हैं। कवीन्द्र रवीन्द्र ने अपने "पुराने पत्र" शीर्षक काव्य में लिखा है कि आज मुझे स्नेह-मुग्ध जीवन के स्मृति-चिह्न के समान तुम्हारे मधुर और प्यार भरे

---

1. "आलोचना," जनवरी, १९५५, पृ. १२५।
2. "ज्ञानोदय," पत्र-विशेषांक, नवम्बर १९६३, पृ. १६२।
3. (क) अमृत राय : "चिट्ठी-पत्री" भाग-१, भूमिका, पृ. ५।
   "चिट्ठियां, किसी की भी, आईना होती हैं, उस आदमी की तबीअत का...."
   (ख) James Howell; "To the Sagacious Reader."
   "As Keys do open chests, So letters open breast."
   (Benham's Book of Quotations, 1948, P. 188)
4. "विश्वकवि रवीन्द्र" (१९५१), पृ. १०२।

चार-छह पत्र दिखाई पड़े।[1]

पारस्परिक मैत्री-भावना और आत्मीयता के कारण ही पत्रों में सरसता और सजीवता आ जाती है। अतएव प्रकाशित होने पर इन पत्रों से पाठकों को भी आनन्द प्राप्त होता है। इस प्रकार यह पत्र-विधा की एक उल्लेखनीय विशेषता है।

५. समकालीन घटनाओं की विवृत्ति :

पत्रों में जहां लेखक का प्रकृत चरित्र प्रतिबिम्बित होता है, वहां समकालीन घटनाओं के विषय में उसकी प्रतिक्रियाएं भी व्यक्त होती हैं। इस दृष्टि से साहित्यकारों, राजनीतिज्ञों, दार्शनिकों आदि के पत्रों का दुहरा महत्व होता है। श्री बैजनाथसिंह "विनोद" ने इस दुहरे महत्व को प्रदर्शित करते हुए कहा है कि "किन्हीं महान् साहित्यिकों, युगविधायक महापुरुषों, दक्ष राजनीतिज्ञों तथा गम्भीर दार्शनिकों के पत्रों का दुहरा महत्व भी होता है. वे एक ओर पत्र-लेखन कला की दृष्टि से महत्वपूर्ण होते हैं दूसरी ओर साहित्यिक प्रगति, ऐतिहासिक या राजनीतिक गतिविधि तथा दार्शनिक विचार-धारा का पूरा परिचय देते हैं।"[2] विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के पत्रों में उपलब्ध समसामयिक सन्दर्भों की विस्तृत विवेचना प्रबन्ध के एक पृथक अध्याय में की गयी है। यहां यही कहना अभीष्ट होगा कि महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्र उनके वास्तविक व्यक्तित्व के दर्पण होने के साथ-साथ समकालीन इतिहास के मूल्यवान दस्तावेज़ भी होते हैं।

६—वार्तालाप की ध्वनि :

उत्तम पत्र में वार्तालाप की ध्वनि अवश्य विद्यमान रहती है।[2] कोम्पटन के सचित्र विश्वकोश में पत्र-लेखन कला को "डाक द्वारा बातचीत" शीर्षक

---

1. "देखि परे कुछ आज पुराने
   मोको पत्र तिहारे।
   मधुर सनेह-मुग्ध जीवन के
   चिह्न चार छै प्यारे॥"
   —अनु. स्व. मुंशी अजमेरी, "विश्वभारती,"
   श्रावण-अश्विन, सं. २००२, पृ. १८६।
1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), भूमिका, "ज"
2. "A good letter is the nearest approximation on paper to good conversation."
   —"Letters of Great Writers" (1912),
   Edited by Hedley Tayler, P. XXIII.

दिया गया है ।[1] अरटेमेन, जिसने कि अरस्तू के पत्रों का सम्पादन किया है, के मतानुसार पत्रों को भी उसी ढंग से लिखा जाना चाहिए जैसे कि संवाद। उनके मन से पत्र, सम्वादों का विपरीत पहलू है ।[2]

पत्र निःसन्देह ही संवादों से बड़े होते हैं । फिर ये लिखित होते हैं, इसलिए इनमें और मौखिक वार्तालाप में कुछ अंतर होना अनिवार्य है, किन्तु उनमें वार्तालाप की ध्वनि अवश्य विद्यमान रहती है ।

७—स्वतः पूर्णता :

पत्रों की स्वतः पूर्णता से तात्पर्य यह है कि उनमें जीवन के किसी एक पक्ष या दृश्य का चित्र मात्र अंकित होता है, पूरे जीवन का लेखा-जोखा उनमें नहीं होता। अतः आकार की दृष्टि से कभी-कभी ये निबन्ध का रूप भी धारण कर सकते हैं, किन्तु प्रबन्ध नहीं बन पाते । बाबू गुलाबराय ने पत्र-विधा की इस विशेषता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है—

"पत्रों की स्थिति भी निबंध की भांति मुक्तक-काव्य-की-सी होती है । वे स्वतः पूर्ण होते हैं ।[1]

इस प्रकार पत्र किसी विशेष स्थिति, प्रसंग या घटना में लेखक की मनोदशा का पूरा चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत कर देते हैं ।

८-भावग्राहक के व्यक्तित्व की झांकी :

पत्र-विधा की यह विशेषता है कि उसमें हमें लेखक के व्यक्तित्व के साथ भावग्राहक अर्थात् प्राप्तकर्ता के व्यक्तित्व की झांकी भी मिलती है ।[2] इस दृष्टि से पत्र साहित्य में भावग्राहक की स्थिति भी महत्वपूर्ण होती है । पत्र-लेखक अपना पत्र भावग्राहक के अनुकूल लिखने की चेष्टा करता है । इस संबंध में बाबू

---

1. "Talking by Mail-The Art of Letter-Writing,"
   – "Compton's Pictured Encyclopedia and Fact—Index"(1955), Vol.-8. P. 171.
2. "Arteman, who edited Aristotle's letters says that dialogues and letters should be written in the same manner. A letter, he says, is as it were the reverse side of a dialogue".
   ---"On Style", Dematrius, P- 250.
   (उद्धृत : "द्विवेदी-युग की हिन्दी-गद्य-शैलियों का अध्ययन" (१९६५), डा. शंकरदयाल चौऋषि, पृ. ४३५ ।)
3. "काव्य के रूप" (१९५४), पृ. २६१ ।
4. "A letter shows the man it is written to as well as the man it is written by"—Reusseau.
   (Quoted; The New Dictionary of Thoughts"(1964).
   Compiled by Tryon Edwards, P. 351.)

गुलाबराय ने लिखा है कि—"साधारण साहित्य और पत्र-साहित्य में केवल इस बात का अंतर होता है कि साधारण साहित्य में भावग्राहक के व्यक्तित्व का ध्यान नहीं रखा जाता है और न उससे कोई निजी सम्बन्ध होता है। साधारण साहित्य तो परिप्रेषित कर दिया जाता है,—जहां कहीं ग्राहक यंत्र होगा वहां ग्रहण कर लिया जाएगा। पत्र-लेखक को अपने भावग्राहक के व्यक्तित्व और उसकी संवेदनशीलता का ध्यान रहता है, वह उसी के अनुकूल अपने पत्र को बनाता है। वहां तक व्यक्तित्व से टकराता है, कभी संघर्ष के लिए और कभी प्रेमपूर्ण प्रतिदान द्वारा पारस्परिक जीवन को अधिक-से-अधिक सम्पन्न बनाने के लिए।"[1]

इससे स्पष्ट है कि पत्र लिखते समय भावग्राहक, लेखक की आँखों से ओझल नहीं होता। दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध का पता हमें पत्र को शैली से चल जाता है। एक ही लेखक द्वारा भिन्न–भिन्न व्यक्तियों को लिखे गये पत्रों की भाषा-शैली में पर्याप्त अंतर दिखाई पड़ता है। जिस भावग्राहक के साथ लेखक का घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, उसको लिखे गये पत्रों में कहीं अधिक अनौपचारिकता मिलती है। उदाहरण के लिए पं. बालकृष्ण शर्मा "नवीन" ने अनेक साहित्यकारों के नाम सुन्दर पत्र लिखे हैं, परन्तु पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे पत्रों में जो आत्मीयता, उन्मुक्ति और अनौपचारिकता हमें देखने को मिलती है, वह अन्यत्र नहीं दीख पड़ती। अभिप्राय यह कि पत्रों में लेखक और भावग्राहक के व्यक्तित्व के न्यूनाधिक प्रगटीकरण का आधार इन दोनों के बीच कितना घनिष्ठ सम्बन्ध है, उस पर रहता है। किन्तु पत्रों में दोनों के व्यक्तित्व का प्रकाशन तो होता ही है। अतः पत्र-साहित्य में भावग्राहक की स्थिति कम महत्वपूर्ण नहीं होती। बाबू वृन्दावन दास ने उचित ही कहा है —

"जहां साहित्यिक महत्व की दृष्टि से पत्र-लेखक वन्दनीय है, वहाँ वह व्यक्ति भी जिसको पत्र लिखे गये, प्रशंसा का पात्र है। कारण, उस व्यक्ति की ओर पत्र-लेखक की रुचि उसके उदात्त व्यक्तित्व के आकर्षण से ही उत्पन्न होती है। यदि उस व्यक्ति में जिसको पत्र लिखे गये, कोई विशेषता न होती अथवा उसमें कोई आकर्षण न होता तो शायद महत्वपूर्ण पत्र लिखे ही न जाते और उनका अस्तित्व ही संदिग्ध हो जाता।"[2]

इस प्रकार पत्रों में भावग्राहक के व्यक्तित्व की झांकी अवश्य मिलती है।

उपर्युक्त विशेषताओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि पत्रों में एक व्यक्ति को जो कहना होता है, उसे वह सीधा दूसरे व्यक्ति से कहता है। पत्र-लेखक और भावग्राहक एक दूसरे के स्वभाव, विचारों और भावनाओं से काफी

---

1. "काव्य के रूप" (१९५४), पृ. २६१।
2. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), "प्राक्कथन", पृ. २।

परिचित होते हैं।" इसी कारण दोनों के बीच एक आत्मीयता स्थापित हो जाती है।" मनुष्य जब भाषण देता है या लेख लिखता है तब उसकी नज़र के सामने एक बड़ा श्रोता मण्डल या पाठक-समुदाय होता है। इसलिए उसका वक्तव्य या लेख सर्वसामान्य स्वरूप का होता है । पत्र में यह वस्तु विशेष एकाग्रता धारण करती है।[1] अतः साहित्य की अन्य सभी विधाओं से पत्रों में लेखक के व्यक्तित्व का उद्घाटन अधिक होता है ।

पत्र की अपील कुछ क्षण के लिए व्यक्तिगत होते हुए भी उसका मूल स्रोत लेखक के कलात्मक व्यक्तित्व में होता है। अतः पत्र किसी भी पाठक के हृदय में रस का उद्रेक कर सकता है ।[2] विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के पत्र उनके कलात्मक एवं महिमामंडित व्यक्तित्व के कारण ही प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन गये हैं। इस प्रकार पत्र-विधा ने इन विशेषताओं के कारण साहित्य में अपना पृथक अस्तित्व स्थापित कर लिया है ।

पत्र का अन्य विधाओं से सम्बन्ध

यद्यपि उपर्युक्त विशेषताओं के विवेचन से पत्र-विधा का पृथक् अस्तित्व स्पष्ट हो जाता है, तथापि इसके सम्यक् स्वरूप-निर्धारण के लिए साहित्य की अन्य विधाओं से इसके साम्य-वैषम्य की चर्चा अपेक्षित है। कुछ विद्वानों ने इस विधा को अन्य विधाओं में समाविष्ट कर देने का जो प्रयास किया है, वह कहां तक युक्तियुक्त है, इसका स्पष्टीकरण भी इस चर्चा से हो जायेगा।

१. पत्र और पत्र-गीति :

यद्यपि पत्र-गीति एक प्रकार का पत्र ही है, किन्तु वह एक पृथक् काव्य-विधा है। "साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक कोश" के अनुसार" पत्र-गीति पत्र के रूप में लिखी जाने वाली कविता को कहते हैं।[3] सामान्यतः इसे अंग्रेजी के "एपिसल" का पर्याय समझा जाता है. किन्तु जैसा कि हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में देख चुके हैं, एपिसल पद्य और गद्य दोनों में लिखे जाते थे। वस्तुतः यह विधा छन्दोबद्ध काव्य (लिरिक) की समानधर्मा है।

पत्र और पत्र-गीति में मौलिक भेद यह है कि पत्र व्यक्ति-विशेष को लक्षित कर लिखे जाते हैं जब कि पत्र-गीतियों की रचना का लक्ष्य व्यक्ति नहीं, समूह होता है। इसके अतिरिक्त पत्र में लेखक अपने जीवन की घटनाओं एवं समस्याओं

---

1. "नरहरि परीख" : "बापू के पत्र सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम (१९५२), संपा. मणिबहन पटेल, भूमिका।
2. पं. राजबली पाण्डेय : द्विवेदी पत्रावली" (१९५४), संपा. बैजनाथसिंह "विनोद", आमुख।
3. "साहित्यशास्त्र का पारिभाषिक कोश" (१९५५), राजेन्द्र द्विवेदी, पृ. १३८।

की चर्चा करता है, इसलिए इसमें हमें और उत्फुल्लता मिलती है। परंतु पत्र-गीती में लेखक किसी ऐतिहासिक सजीवता या काल्पनिक पात्र की ओर से पत्र लिखता है, इसलिए उसमें वर्णन, विवरण अथवा उपदेश का प्राधान्य रहता है। डा. निर्मला जैन ने इन दोनों के अन्तर को स्पष्ट करते हुए लिखा है—

"एपिसल उस पद्यबद्ध पत्र-गीति को कहते हैं जिसकी रचना यद्यपि पत्रात्मक शैली में किसी परिचित, इष्टमित्र व अन्य व्यक्ति को सम्बोधित करके की जाती है, परन्तु उसमें पत्र की-सी वैयक्तिकता या अन्तःस्फूर्त भावोद्रेक नहीं होता।"[1]

बंगला के माइकेल मधुसूदन की "वीरांगना" के अनुकरण पर हिन्दी में कुछ पत्र-गीतियां लिखी गयी हैं जिनमें मैथिलीशरण गुप्त की "पत्रावली" में संकलित सात पत्र तथा निराला जी के "परिमल" में संकलित "महाराज शिवाजी का पत्र" विशेष उल्लेख्य हैं। इस प्रकार पत्र-गीति यथार्थ रूप से पत्र नहीं हैं। हिन्दी में इनका अधिक विकास भी नहीं हुआ है, जबकि मनीषियों के पत्रों ने साहित्य में आज महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है।

२—पत्र और आत्मकथा :

पत्र और आत्मकथा के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है। जिस प्रकार आत्मकथा को आत्म-प्रकाशन का साधन माना जाता है, उसी प्रकार पत्रों के माध्यम से भी आत्म प्रकाशन का कार्य सम्पन्न होता है।[2] आत्मकथा में भी लेखक को अपना कच्चा चिट्ठा खोलना पड़ता है।[3] पत्र और आत्मकथा का लेखन प्रथम पुरुष में होता है और दोनों स्वयं लेखक के द्वारा ही लिखे जाते हैं। दोनों ही में लेखक के निजी जीवन के अनुभव, हर्ष-शोक, रागविराग आदि का उद्घाटन होता है। इस प्रकार एक उत्तम पत्र में एक प्रामाणिक आत्मकथा के अनेक उत्कृष्ट तत्व संनिहित होते हैं।[4]

इसके अतिरिक्त लेखक की दृष्टि से विचार करें तो प्रतीत होता है कि पत्र-साहित्य के लेखक और आत्मकथा साहित्य के लेखक प्रायः अपने क्षेत्र के प्रसिद्ध व्यक्ति होते हैं। आत्मकथा लिखने में लेखक को अपने पत्रों से पर्याप्त सहायता मिलती है। आत्मकथा का आधार स्मृति है। परन्तु मेधावी लोग भी सभी बातें सदा के लिए स्मृति में स्थिर नहीं रख सकते। ऐसे में समय-समय पर

---

1. "हिन्दी-काव्य में रूप-विधाएं" (१९६३), पृ. ५०३।
2. "डा. रामअवध द्विवेदी :" "साहित्यरूप" (सं. २०२३ वि), पृ. १३८
3. ' हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शताब्दी" (१९७२), संपा. डा. नगेन्द्र पृ. ३७७।
4. "Hedley Tayler : Editor : "Letters of Great Writers (1912), Introduction. P. xxii.

   "Already good letters have some of the fine good of honest auto-biography".

इष्ट-मित्रों और स्वजन-परिजन को लिखे गये पत्र आत्मकथा लेखक के सहायक हो सकते हैं। डा. त्रिलोकीनाथ व्रजबाल ने अपने शोध-प्रबन्ध "हिन्दी आत्मकथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन"[1] में" आत्मकथा और पत्र" के सम्बन्ध की चर्चा करते हुए सूचित किया है कि हिन्दी के अनेक लेखकों ने अपनी आत्मकथाओं में पत्रों का काफी उपयोग किया है। बाबू गुलाबराय ने पत्र और आत्मकथा के सम्बन्ध पर अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है—

"पत्रों का स्थान एक प्रकार से आत्मकथा में ही आता है। अन्तर केवल इतना ही है कि आत्मकथा में व्यक्ति का इतिहास सम्बद्ध होता है, पत्रों में कुछ असम्बद्ध-सा रहता है।"[2]

पत्र और आत्मकथा में एक और अंतर है। डा. नारायण वि. शर्मा के अनुसार "आत्मकथाकार वर्तमानबोध के आलोक में विगत जीवन की स्मृति रूप शृंखला के मध्य व्यक्तित्व के विकास की प्रक्रिया दर्शाता है, किन्तु पत्रों में किसी विशिष्ट समय की स्वयं के सम्बन्ध में अथवा किसी और के सम्बन्ध में प्रतिक्रिया हुआ करती है।[3] पत्र और आत्मकथा के बीच के अन्तर को डा. पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" ने बहुत उपयुक्त ढंग से इस प्रकार समझाया है—"स्वयं लेखक की अपनी लेखनी से प्रसूत होने पर भी आत्मकथा अनेक पक्षों की गोपनीयता के लिए बाध्य होती है। इसके विपरीत पत्र इतने अनौपचारिक होते हैं कि उनमें लेखक अपने यथार्थ रूप में उपस्थित हो जाता है।"[4]

पत्र और आत्मकथा के उद्देश्य में भी अन्तर है। डा. भगवानशरण भारद्वाज ने आत्मकथा के उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि—"आत्मकथा के मूल में आत्मप्रकाश द्वारा आत्म-निर्माण, आत्म-परीक्षण या आत्म-समर्थन, अतीत की स्मृति को पुनर्जीवित करने या जटिल विश्व की विषम उलझनों में अपने आपका अन्वेषण करने के सात्विक आकर्षण से लेकर कलात्मक अभिव्यक्ति और ख्याति से लाभ उठाने की शुद्ध व्यावसायिक इच्छा तक हो सकती है।"[5] पत्र-लेखन के मूल में भी आत्म-प्रकाशन, आत्म-समर्थन आदि की भावना तो रहती है, किन्तु शुद्ध व्यावसायिक इच्छा का प्रायः अभाव ही होता है। इस प्रकार ये दोनों पृथक्-पृथक् विधाएं हैं।

३—पत्र और जीवनी :

पत्र प्रायः एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति को प्रेषित अभिलेख होता है। जीवनी

1. "हिन्दी आत्मकथा साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन," (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध), पृ, ३३-३४।
2. "काव्य के रूप" (१९५४), पृ. २६०।
3. हिन्दी आत्मकथा" (१९७८), पृ. ४१-४४।
4. "साहित्याब्द कोश," १९७१, पृ. २८१।
5. "हिन्दी जीवनी साहित्य : सिद्धांत और अध्ययन" (९७८), पृ. ४८।

को भी व्यक्ति-विशेष का अभिलेख कहा गया है।[1] यद्यपि जीवनी-रूपी यह अभिलेख किसी दूसरे व्यक्ति को प्रेषित नहीं होता, किन्तु वह पत्रों के समान यथार्थ जीवन का चित्र हमारे सामने प्रस्तुत करता है। जब हम महान् व्यक्ति के तिथि-क्रम से संकलित पत्रों को पढ़ने बैठते हैं तो ऐसा लगता है कि उनकी जीवनी ही पढ़ रहे हैं। "रूज़वेल्ट लेटर्स" (Roosevelt letters) वस्तुतः अमेरिका के प्रेज़िडेण्ट स्वर्गीय रूज़वेल्ट की जीवनी ही है।[2]

जिस प्रकार जीवन-चरित्र बहुधा महान् व्यक्तियों के ही प्रकाशित होते हैं, उसी प्रकार पत्र-साहित्य भी महत्वपूर्ण व्यक्तियों का ही प्रकाश में आता है। जीवनी-लेखन में चरित्र नायक से सम्बन्धित पत्रों से जो सहायता मिलती है, वह अन्य किसी साधन से प्राप्त नहीं होती। डा. भगवतीप्रसाद सिंह के शब्दों में—"जीवन की अन्तर्धाराओं के संधान में पत्रों का महत्व निर्विवाद है। इनसे व्यक्ति के मानस की उन सूक्ष्मतम प्रवृत्तियों के अनुचिह्नों का पता लगता है जो जीवनी-निर्माण के अन्य उपकरणों से सामान्यतया लक्षित नहीं किये जा सकते हैं।"[3] हिन्दी की उत्तम और आदर्श समझी जाने वाली जीवनी "प्रेमचन्द : कलम का सिपाही" के लेखक श्री अमृतराय ने लिखा है कि "यदि प्रेमचन्द के पत्रों के बिना यह जीवनी लिखी जाती तो लंगड़ी होती, बेजान होती।"[4]

पत्र-साहित्य और जीवनी-साहित्य में इतनी घनिष्ठता होते हुए भी दोनों में कुछ भेद भी है। जीवनी का लेखक चरित्र-नायक के अतिरिक्त कोई अन्य होता है, जब कि पत्र स्वयं लेखक के द्वारा ही लिखे जाते हैं। पत्रों में जीवनी के समान व्यक्ति के सांगोपांग या क्रमबद्ध जीवन का चित्र भी नहीं मिलता। पत्रों में जीवन-चरित्रों से कहीं अधिक प्रामाणिक सामग्री होती है।

४—पत्र और निबंध :

निजीपन और व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति की दृष्टि से पत्र और निबन्ध के बीच गहरा सम्बन्ध है। कदाचित् इसी कारण कुछ विद्वान् और विवेचक पत्रों को आत्मपरक अथवा संस्मरणात्मक निबन्धों के अन्तर्गत रख देते हैं। डा. शंकरदेव अवतरे ने अपने "हिन्दी साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग" शीर्षक शोध-प्रबन्ध में विभिन्न प्रकार के पत्रों को "निबंध के परिवार" में ही समेट लिया है।[5] निजत्व और व्यक्तित्व के अतिरिक्त वार्तालापीयता, आकार की लघुता, विषय की विविधता

1. "Dictionary of World Literature", J. T. Shipley, P 29
2. "हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित्र का विकास" (१९५८), डा. चन्द्रावतीसिंह पृ. २१।
3. "मनीषी की लोकयात्रा" (१९६८), पृ. २२९।
4. "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), भूमिका, पृ. ४-५।
5. "हिन्दी साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग" (१९६२), पृ. २३३

आदि कई तत्व पत्र और निवंध में समान रूप से पाये जाते हैं। इसी समानता को लक्षित कर डा. दशरथ ओझा ने लिखा है:—

"वास्तव में उत्कृष्ट निबन्ध एक खुला पत्र है जो किसी व्यक्ति-विशेष को सम्बोधित करके नहीं लिखा गया होता, पर जो भी सहृदय पाठक उसे पढ़ता है, वह यही समझता है कि यहां लेखक मु ं सम्बोधित कर रहा है।"[1]

डा. प्रभाकर माचवे के मतानुसार "निबन्ध का मंजिले-मक़सूद अंततः आत्मकथन या अपने निकटतर व्यक्ति को लिखे जाने वाले पत्र के समान है।"[2] इस प्रकार पत्र और निबन्ध में कई दृष्टियों से साम्य है। किन्तु इसके आधार पर पत्र के पृथक् अस्तित्व पर प्रश्न-चिह्न नहीं लगाया जा सकता। दोनों के बीच कई भेद-रेखाएं भी खींची जा सकती हैं।

पत्र व्यक्ति-विशेष को लक्षित कर लिखा जाता है और निबंध किसी अदृष्ट और अज्ञात पाठक को लक्षित कर। यही कारण है कि पत्रों में निबन्ध की अपेक्षा आत्मीयता का पुट अधिक होता है। इन दोनों के बीच दूसरी भेदक-रेखा भाषा है। पत्रों में सामान्यतः बोलचाल की भाषा प्रयुक्त होती है, किन्तु निबंध की भाषा अधिक परिष्कृत होती है। अतः पत्र को निबंध से पृथक् विधा समझना अधिक समीचीन होगा।

५—पत्र और संस्मरण :

संस्मरण स्मृत्याधृत साहित्यविधा है। लेखक जो कुछ देख सुनकर अनुभव करता है, संस्मरण में उसी की एक संवेदनात्मक अनुभूति होती है।[3] संस्मरण की यह विशेषता हमें पत्रों में भी मिलती है। पत्रों में भी लेखक अपने अनुभव के सहारे प्रौढ़ टिप्पणियां देता है। सम्भवतः उसी विशेषता के कारण श्री महादेव-साहा "पत्र-साहित्य को संस्मरण का पूरक" मानते हैं।[4] पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने "हमारे आराध्य" और "संस्मरण" शीर्षक ग्रन्थों में रोमां रोला, स्टीफन ज़्विग, पं श्रीधर पाठक, गणेश शंकर विद्यार्थी आदि अनेक साहित्यिकों के पत्र उद्धृत किये हैं। इस प्रकार पत्रों के उपयोग से संस्मरण में सजीवता और सप्रमाणता आ जाती है। परंतु संस्मरणकार घटनाओं का विवरण अधिक देता है। यही कारण है कि संस्मरण प्रायः विषयगत हो जाते हैं। पत्रों में लेखक केवल घटनाओं का विवरण ही नहीं देता, उन पर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त करता है। अतः पत्र अपेक्षाकृत अधिक रोचक और रसप्रद होते हैं।

---

1. "समीक्षा-शास्त्र" (प्र. सं). पृ. १८३।
2. "हिंदी निबंध" (प्र. सं), पृ. १४।
3. "हिन्दी का संस्मरण-साहित्य" (१९७०) राजरानी शर्मा, पृ. ५।
4. "शरत् पत्रावली" (१९६१), भूमिका, पृ. ५।

६— पत्र और रेखाचित्र :

रेखाचित्र भी पत्र की भांति एक वैयक्तिक कला है। डा. अनिता पाण्डेय के अनुसार "वैयक्तिकता के रहने के कारण रेखाचित्रकार का जीवनांश रेखाचित्र में सहज ही अनुस्यूत हो जाता है।[1] डा. कृपाशंकर सिंह ने रेखाचित्र का जो स्वरूप निरूपित किया है, वह पत्र के स्वरूप से पर्याप्त साम्य रखता है। उन्होंने लिखा है : 'रेखाचित्र एक मनोवीथी के सदृश है जिसके दोनों ओर करुणा, संवेदना, अनुराग, विराग, अनुभूति आदि की कलिकाएं चटखती हैं।[2] डा. हरवंशलाल शर्मा ने रेखाचित्र की टेकनीक के सम्बन्ध में लिखा है कि—"उसमें थोड़े से शब्दों के द्वारा सजीव रूप-विधान और सफल अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है।"[1] पत्रों में भी थोड़े में बहुत कहने की कला अपनानी पड़ती है।

पत्र और रेखाचित्र में विभिन्नताएं भी कम नहीं हैं। पत्रों में लेखक का अपना और उससे सम्बद्ध व्यक्तियों का चित्र ही अंकित होता है। किन्तु रेखाचित्र में व्यक्ति के अतिरिक्त जड़ वस्तुओं का चित्र भी खींचा जाता है। रेखाचित्रों में कल्पना के रंग भी भरे जा सकते हैं, जब कि पत्रों में बहुधा यथा-तथ्यता का ही अंकन होता है। डा. रामगोपालसिंह चौहान के अनुसार "रेखाचित्र के विषय के साथ लेखक का निकट सम्पर्क आवश्यक नहीं है।"[3] पत्रों का विषय स्वयं लेखक या उसका व्यक्तित्व ही होता है। जिसे पत्र लिखा जाता है, उसके साथ भी लेखक का निकट सम्बन्ध आवश्यक है। इस प्रकार पत्र और रेखाचित्र में वैषम्य भी है।

७— पत्र और डायरी :

साहित्य की वैयक्तिक विधाओं में पत्र और डायरी में अपेक्षाकृत अधिक नैकट्य है। डा. सत्येन्द्र ने डायरी की व्याख्या करते हुए लिखा है- "डायरी में लेखक अपनी दिनचर्या तथा दैनिक जीवन को प्रभावित करनेवाली घटनाओं का वर्णन करता है। यह तिथि-क्रम से लिखी जाती है।"[4] पत्रों में भी लेखक प्रायः नित्यप्रति जीवन को प्रभावित करनेवाली घटनाओं के प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। इनमें भी तिथि-निर्देश होता है। डायरी भी पत्र के समान लेखक की अपनी निजी वस्तु होती है। महान व्यक्तियों द्वारा लिखी गयी डायरियां जनसाधारण के लाभ और मनोरंजन का भी साधन बन सकती हैं, इसलिए महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों की तरह उनकी डायरियां भी प्रकाशित हुई हैं।

---

1. "हिन्दी रेखाचित्र: सिद्धान्त और सृजन" (१९७८), पृ. २५।
2. "रेखाचित्र: उद्गम और विकास" (प्र.सं.), पृ. १७।
3. "हिन्दी रेखाचित्र" (१९६९), पृ. ९।
4. "आधुनिक साहित्य" (१९६५), पृ. ३१७।
5. "समीक्षा के सिद्धान्त" (१९६८), पृ. १७८।

डायरी -लेखन और पत्र-लेखन में कुछ अन्तर भी है । डा. सूर्यप्रसाद-दीक्षित ने सन् १९२३ से १९३३ के बीच लिखे गये महाकवि निराला के पत्रों को कवि की निजी डायरी जैसा उपयोगी बताकर प्रसंगतः डायरी और पत्र का अन्तर भी स्पष्ट कर दिया है । यथा- "डायरी-लेखक तो फिर भी उसे स्थायी तथा सुरक्षणीय रचना समझकर (सम्हालकर) लिखता है, जब कि ये पत्र निश्छल मन के उद्गार हैं ।"[1] डायरी और पत्र के अन्तर को डा. शंकरदेव अवतरे ने बहुत उपयुक्त ढंग से इन शब्दों में स्पष्ट किया है :—

"पत्र-साहित्य के पाठक को यह अनुभूति होनी चाहिए कि किसी की व्यक्तिगत बातें उसे पढ़ने को मिल गयी हैं, परंतु डायरी-साहित्य के पाठकों को यह अनुभूति रहनी चाहिये कि लेखक की व्यक्तिगत बातें उसे पढ़ने के लिए झिझक और अनुरोध के साथ मिली हैं । इस प्रकार आत्मकथा की अपेक्षा डायरी जितनी कम व्यक्तिनिष्ठ, पर अधिक व्यक्तिगत होती है, उतना ही डायरी की अपेक्षा पत्र-साहित्य कम व्यक्तिनिष्ठ, पर अधिक व्यक्तिगत होता है ।"[2] इस प्रकार दोनों विधाओं में कुछ विभिन्नताएं भी हैं ।

८— पत्र और पत्रकारिता :

जैसा कि पीछे संकेत किया गया है कि अखबार और मैगज़ीन भी पत्र अर्थात् "लेटर" के समान किसी बात को एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति तक या एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचाने का माध्यम हैं । अतः उनके साथ "भी पत्र" शब्द जोड़ा जाता है । इसी समानता के कारण "पत्रकार कला" के स्थान पर केवल "पत्र-कला" शब्द का ही प्रयोग किया जाता है ।[3] न केवल इतना ही, बल्कि "पत्रकारिता" के स्थान पर "पत्र-साहित्य" शब्द का प्रयोग भी किया गया है ।[4]

1. "अलक्षित निराला" (१९७३), पृ. ८५ ।
2. "हिन्दी साहित्य में काव्य-रूपों के प्रयोग" (१९६२), पृ. २३७ ।
3. देखिए:— (क) "द्विवेदी-काल से हिन्दी पत्र-कला का विकास" (निबन्ध), श्री शिवदानसिंह चौहान, "साहित्यानुशीलन" (१९५५) पृ. ८७ ।
   (ख) "हिन्दी पत्र-कला का बचपन" (लेख), श्री उमाशंकर, "माधुरी" अप्रेल १९४९, पृ. १७१ ।
4. "देखिए : (क) साहित्यालोचन : सिद्धांत और अध्ययन" (१९७२), डा. सीताराम दीन, पृ. १५३ ।
   पत्र-साहित्य को सामान्यतः दो रूपों में समझा जाता है । एक पत्रकारिता (जर्नलिज़्म) और दूसरा पत्र-साहित्य (लेटर्स)
   (ख) भारतेन्दु युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा (१९७५) डा. रामविलास शर्मा, प्रकरण—४ ।
   "पत्र-साहित्य और प्रगति" । (इस प्रकरण में भारतेन्दु-युगीन पत्र-पत्रिकाओं के विकास की चर्चा है ।)

परंतु जैसा कि हम देख चुके हैं, बाबू गुलाब राय के "काव्य के रूप" (१९४७) के प्रकाशन से ही आलोचना के क्षेत्र में "पत्र-साहित्य" शब्द एक स्वतंत्र साहित्य-विधा के लिए निश्चित और स्थिर हो चुका है। अतः "पत्रकारिता" और पत्र-साहित्य दो पृथक्-पृथक् विधाएं है।

इसमें सन्देह नहीं है कि पत्र-साहित्य के विकास में पत्रकारिता का महत्वपूर्ण योग रहा है। विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों का जो पत्र-साहित्य आज पुस्तकाकार में उपलब्ध है, वह प्रायः पत्रकारिता की गोद में पलकर ही विकसित हुआ है। यही नहीं, संपादकों के नाम लिखे गये महत्वपूर्ण पत्र-जैसे, "चांद" में प्रकाशित "दुबेजी की चिट्ठियां," "सरस्वती" में प्रकाशित विद्यानिवास मिश्र के "भ्रमरानन्द के पत्र" तथा "कल्पना" में "और अन्त में..............." शीर्षक से प्रकाशित हरिशंकर परसाई के पत्र-सर्वप्रथम पत्रिकाओं में ही छपे थे। इसके अतिरिक्त प्रायः सभी पत्र-पत्रिकाओं में पाठकों के पत्रों के लिए एक स्थायी स्तम्भ[1] होता है जिसमें साहित्य के साथ-साथ राजनीति और अन्य ज्ञान-विज्ञान की चर्चा भी रहती है। यद्यपि सभी पाठक प्रबुद्ध और सचेत नहीं होते हैं, किन्तु साहित्यिक रुचि सम्पन्न पाठकों के पत्र पठनीय होते हैं। कभी-कभी संपादक पाठकों के पत्रों के उत्तर में उन पत्रों के नीचे अपनी संक्षिप्त टिप्पणी भी देते हैं। डा. कृष्णबिहारी मित्र ने अपने "हिन्दी पत्रकारिता" शीर्षक शोध-प्रबन्ध में "उदन्त मार्त्तण्ड" में प्रकाशित व्यापारी-पाठकों के पत्र तथा सम्पादक के उत्तर के उद्धरणों से यह स्पष्ट किया है कि हिन्दी पत्रकारिता के प्रारम्भ से ही यह परम्परा चली आ रही है।[2]

पत्र-साहित्य और पत्रकारिता को प्रायः सामयिक साहित्य समझा जाता है। किन्तु पत्र-साहित्य अपेक्षाकृत अधिक स्थायी है। प्रसिद्ध व्यक्तियों के पत्र, पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो जाने पर साहित्य की स्थायी निधि बन जाते हैं जबकि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित साहित्य लोकप्रिय साहित्य के समान स्थायित्व नहीं पा सकता। डा. सिस्टर क्लेमेंट मेरी के अनुसार पत्र-पत्रिकाओं का साहित्य (Periodical Literature) लोकप्रिय साहित्य की तरह क्षणजीवी होता है। वह विचारात्मक साहित्य नहीं है और साहित्य के इतिहास का अंग नहीं बन पाता.... परन्तु निबंध, डायरी, पत्र आदि को युग की आवश्यकता के अनुसार वैचारिक

---

1. हिन्दी की प्रमुख पत्रिकाओं में पाठकों के पत्रों के लिए जो स्थायी स्तंभ रहते हैं, उनके शीर्षक इस प्रकार हैं:—

क्रम	पत्रिका	स्तंभ का शीर्षक	क्रम	पत्रिका	स्तंभ का शीर्षक
१.	आजकल	संपादकजी	४.	धर्मयुग	आपका पत्र मिला
२.	कादम्बिनी	आपके पत्र	५.	नवनीत	पत्र-वृष्टि
३.	दिनमान	मत-सम्मत	६.	सारिका	पाठकों का पन्ना

2. "हिन्दी पत्रकारिता" (१९६८), पृ. ४०।

गद्य का माध्यम माना जा सकता है"[1] इसके अतिरिक्त पत्र-साहित्य विषयी-निष्ठ होता है और पत्रकारिता विषय-निष्ठ। इस प्रकार दोनों के क्षेत्र और उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पत्र-साहित्य का अन्य विधाओं से कई दृष्टियों से सम्बन्ध होते हुए भी वह एक स्वतन्त्र विधा है। इसमें गीति काव्य और निबंध की-सी वैयक्तिकता होने पर भी इसे पत्र-गीति और निबन्ध के अन्तर्गत नहीं रखा जा सकता। इसमें लेखक का अपना जीवन और व्यक्तित्व लिपिबद्ध होने पर भी इसे आत्मकथा नहीं माना जा सकता। जीवनी निर्माण के लिए यह अन्यतम उपकरण होते हुए भी जीवनी नहीं है। संस्मरण और रेखाचित्र से भी यह पर्याप्त भिन्नता लिये हुए है। डायरी के समान एक वैयक्तिक संपत्ति होते हुए निश्छल अभिव्यक्ति के कारण यह उससे भिन्न है। पत्र-कारिता से भी इसका क्षेत्र अलग है। संक्षेप में, यह साहित्य की एक पृथक् विधा है।

पत्र के तत्व

पत्र-लेखन एक विशेष कला है। प्रत्येक कला के कुछ ऐसे तत्व या उपकरण होते हैं जिनसे कलाकृति की रचना होती है। विभिन्न विद्वानों ने पत्र-लेखन कला के भी कुछ ऐसे तत्व निश्चित किये हैं।

श्री यज्ञदत्त शर्मा ने सफल पत्र के चार गुण निश्चित किये हैं:—(१) संक्षिप्ति (२) सरलता (३) शक्तिमत्ता और (४) सहजता ईमानदारी।[2] उनका कहना है कि इन चारों गुणों के अनुसार पत्र-लेखन के निर्देशक सिद्धान्त प्रभावशाली पत्राचार के मूलाधार हैं। सभी युग के महान् लेखकों ने जान-अनजान में इन सिद्धांतों का पालन किया है।[3]

श्री धर्मचन्द संत और बलदेव कृष्ण ने अपनी "सिद्धांतालोचन" शीर्षक पुस्तक में पत्र के तत्वों का निर्देश देते हुए लिखा है—" अन्य सामान्य तत्वों के अतिरिक्त पत्र के दो प्रमुख तत्व होते हैं—आत्मीयता और स्वाभाविकता।"[4]

डा. शांति खन्ना ने अपने शोध-प्रबंध "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" में पत्र के निम्नलिखित पांच तत्व निर्धारित किये हैं:—

(१) वर्ण्य-विषय, (२) पात्रों और घटनाओं से सम्बन्ध और उनके प्रति प्रतिक्रिया, (३) उद्देश्य, (४) देशकाल वातावरण और (४) शैली।[5]

1. "हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य" (प्र. सं.), पृ. १० तथा ६४।
2. "आदर्श पत्र लेखन" (१९७४), पृ. ५।
3. —वही—।
4. "सिद्धांतालोचन" (प्र. सं.), पृ. २१९।
5. "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" (१९७३), पृ. ५८-६२।

उपर्युक्त विद्वानों द्वारा निर्धारित पत्र के तत्वों से ज्ञात होता है इनमें उत्तम पत्र की विशेषताओं का भी तत्व के रूप में उल्लेख किया गया है। डा. खन्ना ने पत्र को जीवनी साहित्य का अंग समझकर उसके तत्व निश्चित किये हैं। यहां हम पत्र के रचना-विधान को ध्यान में रखकर उसके तत्वों पर विचार करेंगे।

रचना-विधान की दृष्टि से विचार करने पर प्रतीत होता है कि शीर्षक और सिरनामा, सम्बोधन और अभिवादन, परिचय और हस्ताक्षर—ये पत्र के ऐसे स्थिर अंग हैं जो अनिवार्यतः सभी पत्रों में विद्यमान रहते हैं। इन्हें हम पत्र के बहिरंग तत्व भी कह सकते हैं। प्राचीन या परम्परागत पत्र-लेखन पद्धति के अनुसार पत्रों में शीर्षक और सिरनामा किस प्रकार लिखना चाहिए, किसको किन-किन शब्दों से सम्बोधित करना चाहिए, इसकी विस्तृत व्याख्या वररुचिकृत "पत्र-कौमुदी"[1] में की गयी है। इसी प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र-इन चारों वर्णों के लोगों को परस्पर किस तरह के सम्बोधनों से पत्र लिखना चाहिए, इसकी विस्तार से जानकारी श्री बालकृष्ण त्रिपाठी कृत 'प्रशस्तिकाशिका" में दी गयी है। नवीन या अर्वाचीन पत्र-लेखन प्रणाली के अनुसार सम्बोधन-अभिवादन, परिचय-हस्ताक्षर आदि से सम्बन्धित नियमों की विस्तृत चर्चा पं. देवनारायण द्विवेदी ने अपने "पत्र-कला"[3] शीर्षक लेख में की है। हिन्दी के अनेक पत्र-लेखकों ने इन अंगों में अनेक प्रयोग किये हैं। "उग्र" जी द्वारा सम्पादित "फाइल और प्रोफाइल" शीर्षक पत्र-संग्रह में हमें सम्बोधन-अभिवादन तथा परिचय-हस्ताक्षर-संबंधी अनेक नवीन प्रयोग देखने को मिलते हैं।

पत्र के अंतरंग तत्वों में उन तत्वों का समावेश होता है जो जीवनीपरक साहित्य की अन्य विधाओं में सामान्य रूप से पाये जाते हैं। इन तत्वों को हम निम्नांकित शीर्षकों में वर्गीकृत कर सकते हैं—

(१) वर्ण्य विषय, (१) विभिन्न व्यक्तियों तथा घटनाओं के संबंध में लेखक की प्रतिक्रिया, (३) परिवेशांकन, (४) भाषा-शैली और (५) उद्देश्य।

संक्षिप्तता, सरलता, स्वाभाविकता, आत्मीयता आदि पत्र की विषय और शैली से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं। अब हम उपर्युक्त तत्वों की क्रमशः संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

१—वर्ण्य विषय :

पत्रों में कई प्रकार के विषयों की चर्चा रहती है। इनमें व्यक्तिगत जीवन

---

1. देखिए : "Patra-Kaumndi of Veraruchi" (Article), by Suresh Chandra Banerji, Bulletin of the Deccan College, Poona, Vol.-20, Part. 1-4, P. 14-18.
2. "प्रशस्तिकाशिका", संपा. के. वी. शर्मा, पृ. २-३८।
3. "मनोहर पत्र," संपा. सूर्यबलीसिंह, पृ. ४७-५२।

और गोपनीय घटनाओं से लेकर दैनिक क्रियाकलापों, जटिल समस्याओं, व्यावसायिक धंधों, साहित्यिक राजनीतिक पहलुओं आदि अनेक विषयों का वर्णन-विवरण किया जाता है। परन्तु पत्रों का मुख्य विषय लेखक स्वयं होता है। दूसरे शब्दों में पत्र में लेखक-चाहे किसी भी विषय की चर्चा करे, किन्तु उसके व्यक्तित्व की छाप तो न्यूनाधिक रूप में रहेगी ही। इस प्रकार पत्र का मुख्य विषय लेखक के व्यक्तित्व का दिग्दर्शन ही होता है। पत्र-लेखक चाहे किसी भी क्षेत्र का हो, उसके पत्रों में उसका व्यक्तित्व प्रकट हुए बिना नहीं रहेगा। राजनीतिज्ञ के पत्र राजनीति से अछूते नहीं रह सकते। कलाकारों के पत्रों में कला की चर्चा होगी ही, इसे कोई नहीं रोक सकता। संपादक कितना ही व्यक्तिगत पत्र क्यों न लिखे, उसमें कहीं-न-कहीं उसका सम्पादक बोल उठेगा। तात्पर्य यह कि राजनीति, समाज, दर्शन, धर्म, साहित्य, व्यवसाय आदि अनेक विषयों की चर्चा पत्रों में हो सकती है, किन्तु इनमें लेखक के व्यक्तित्व का न्यूनाधिक उद्घाटन होगा ही। औपचारिक पत्रों में लेखक का व्यक्तित्व घनिष्ठ मित्रों को लिखे गये पत्रों से अपेक्षाकृत कम उद्घाटित होता है।

वर्ण्य विषय को उत्कृष्ट बनाने के लिए उसमें स्वाभाविकता, सरलता, स्पष्टता, प्रवाहिता आदि गुणों का होना आवश्यक है। पत्र की प्राणभूता शक्ति उसके सहज सत्य में निहित है। इस सम्बन्ध में डा. विश्वनाथ शुक्ल ने लिखा है कि "यद्यपि इसमें संदेह नहीं कि पत्र-लेखन स्वयं एक सुन्दर कला है और उसका सौंदर्य एक विशिष्ट आकर्षण रखता है, तथापि सहज सत्य के अनिवार्य उपादान से साधारण से साधारण पत्र भी बड़ा मोहक हो जाता है। विश्व में अनेक महान् पत्र-लेखक हुए हैं जिनके पत्र उनके साहित्य से कम रंजक नहीं हैं। इन पत्रों में निहित सहज सत्य ही उनकी महान् शक्ति है।"[1]

इस प्रकार पत्र-लेखक को वर्ण्य विषय को निरूपण साहजिकता, सरलता और स्पष्टता से करना चाहिए। "पत्र के भीतर" शीर्षक एक कविता में श्री मदनमोहन "उपेन्द्र" ने यही भाव व्यक्त किया है कि पत्र के भीतर सभी कुछ पृष्ठ पर इस प्रकार सहज रूप से मुखरित होना चाहिए जैसे किसी झरने से पानी झरने लगता है, क्योंकि बिना रवानी के पत्र आकर्षित नहीं करता।[2] "लेटर्स"

---

1. "हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास," चतुर्दश भाग, पृ. ५०६-५०७।
2. "डाक-तार", जून १९७८, पृ.-६।

    "पत्र के भीतर...............
    सभी कुछ पृष्ठ पर मुखरित
    सहज बन यों झरे
    ज्यों किसी झरने से झरे पानी।
    क्योंकि ?
    रवानी के बिना तो पत्र
    आकर्षित नहीं करता।"

ऑफ ग्रेट राइटर्स" शीर्षक पत्र-संग्रह के संपादक श्री टायलर महोदय ने भी सरलता और स्वाभाविकता को इस क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने की कुंजी माना है।[1]

हिन्दी में पं. पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, डा. वासुदेवशरण अग्रवाल आदि के पत्रों में हमें वर्ण्य विषय की उत्कृष्टता के दर्शन होते हैं।

२ - विभिन्न व्यक्तियों तथा घटनाओं के सम्बन्ध में लेखक की प्रतिक्रिया :

पत्रों में वर्णित व्यक्तियों तथा घटनाओं के प्रति पत्र-लेखक का व्यक्तिगत संबंध होता है। यदि वह किसी व्यक्ति का वर्णन अपने पत्र में करता है तो आवश्यक रूप से उस व्यक्ति के व्यक्तित्व का उससे संबंध होगा। या तो उसका व्यक्तित्व लेखक को प्रभावित करता होगा या उससे उसको कष्ट होगा। लेखक उसके व्यक्तित्व का वर्णन ही नहीं करता, वरन् उस पर टीका-टिप्पणी भी करता है। उसके व्यक्तित्व-संबन्धी गुण-दोषों का विवेचन स्पष्ट रूप से करता है। यही बात घटनाओं के विषय में कही जा सकती है। जहां लेखक अपने जीवन में घटित घटनाओं का वर्णन करता है, वहां पर उन घटनाओं का प्रभाव भी दिखलाता है। उसके जीवन में जो भी घटना घटती है, उसका उससे सीधा सम्बन्ध होता है। यही नहीं, सामयिक घटनाओं तथा अन्य व्यक्ति जिससे उसका सम्बन्ध होता है, उसके जीवन में घटित घटनाओं का प्रभाव भी लेखक पर पड़ जाता है तो उसका विवेचन भी वह अपने पत्रों में करता है। उदाहरणार्थ पं. पद्मसिंह शर्मा ने अपने ६-१२-१९२९ के पत्र में श्री हरिशंकर शर्मा को बनारसीदास चतुर्वेदी के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था:

"............बात यह है कि चतुर्वेदीजी कुछ" हौलू" तबीअत के आदमी हैं, और प्रोपेगेंडिस्ट हैं। जिस लाइन में पड़ गये हैं, यह इनकी तबीअत और आदत के ख़िलाफ़ है।"[2]

इसी प्रकार अपने यहां हुई चोरी की घटना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने श्री रायकृष्णदासजी को लिखा था :

"............१६ जून की रात को मेरे घर यहां चोरी हुई। नक़द, जेवर, कपड़े, बर्त्तन कोई २०००) का माल उठ गया। यहां और था ही क्या। १० रोज़ हुए न चोरी का पता न चोरों का। जूता टोपी तक मेरी गई। धोती मात्र रह गई। नंगा बैठा हूँ। कुटुम्बियों की प्रायः यही हालत है। कानपुर से पहनने को

---

1. "Letters of Great Writers" (1912), Edited by Hedley Taylor, Introduction, P. xxiii-iv.
   "Success in this direction is the autmn fruit of a fine simplicity and the secret is just naturalness"
2. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), संपा. बनारसीदास चतुर्वेदी तथा हरिशंकर शर्मा, पृ. ४६।

कपड़े मंगाने हैं। मैं शांत हूँ। संसार ही नाशवान है, चीज-वस्तु की कौन बात। कुटुम्बियों को बहुत कष्ट हुआ है।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि लेखक अपने पत्रों में विभिन्न व्यक्तियों तथा घटनाओं के सम्बन्ध में जो प्रतिक्रिया व्यक्त करता है, उससे उसके व्यक्तित्व तथा जिस व्यक्ति का वर्णन करता है, उसके व्यक्तित्व के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है।

3 — परिवेशांकन :

पत्रों को वास्तविकता का पुट देने में परिवेश का महत्वपूर्ण योग रहता है। परिवेश अथवा वातावरण उन परिस्थितियों का संकुल नाम है जिनमें पत्र-लेखक को संघर्ष करना पड़ता है। अतः परिवेश की पृष्ठभूमि के बिना लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट नहीं होता। परिवेश के अन्तर्गत लेखक अपने आसपास के वातावरण का चित्र ही नहीं प्रस्तुत करता, अपितु आवश्यकतानुसार सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक, साहित्यिक आदि परिस्थितियों पर टिप्पणियाँ भी देता है। वस्तुतः पत्र-लेखक का उद्देश्य इन परिस्थितियों का चित्रण करना नहीं होता, इनका चित्रण तो अनायास ही हो जाता है। जैसे, पन्त जी बच्चन जी को पत्र लिखते समय इलाहाबाद के तापमान का वर्णन करते हुए कहते हैं-" यहां इतनी गर्मी है कि साँस लेना कठिन है। जैसे गरम तेल की कड़ाह में मछलियां भुन रही हों- ऐसी दशा त्वचा की हो गयी है।[2]

इसी प्रकार "निराला" जी ने अपने पत्रों में, कहीं संक्षेप में, तो कहीं विस्तार से, अपने परिवेश का सुन्दर चित्रण किया है। उदाहरणतः ८-७-१९४५ को केदारनाथ अग्रवाल के नाम प्रेषित पत्र में वे लिखते हैं :— "यहां पानी गिरा। एकाएक यमुना में बाढ़ आई, गंगा भर गई- मुहाने का पानी रेलकर चढ़ आया, रेत डूब गई।"[3] इस प्रकार यह एक पूर्ण चित्र है और किसी लघु यथार्थवादी कविता की तरह कलापूर्ण भी।

अपने पत्रों में लेखक कहीं-कहीं किसी विशेष स्थान या नगर का वर्णन भी मित्रों एवं स्नेहियों को लिख भेजत्ता है। निरंकारदेव सेवक के नाम लिखे 2 जुलाई 1955 के पत्र में बच्चन जी ने नेपाल के सम्बन्ध में कहा है-" नेपाल में घूमने-देखने को बहुत जगहें और बहुत सी चीजें है। किसी ने लिखा है कि यहां आदमी से अधिक मूर्तियां और घरों से अधिक मन्दिर हैं। और यहां आकर पता लगता है कि इसमें अतिशयोक्ति बिलकुल नहीं है।"[3] इसके अतिरिक्त अनेक लेखकों ने अपने पत्रों में राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि

1. "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), संपा. बैजनाथसिंह "विनोद", पृः १४५।
2. "बच्चन के नाम पंत क दो सौ पत्र" (१९७१), पृ. १६२।
3. "निराला की साहित्य-साधना" भाग-३ (१९७६), पृ. ३५२।
4. "बच्चन के पत्र" (१९७२), संपा. निरंकारदेव सेवक, पृ. ३५।

परिस्थितियों का प्रसंगतः यथार्थ चित्रण किया है जिसकी विस्तृत चर्चा आगे यथास्थान की जायेगी। उपर्युक्त विवेचन तथा उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि परिवेशांकन पत्र-लेखक के सूक्ष्म पर्यवेक्षण का परिचायक है।

4 — भाषा शैली :

भाषा मनुष्य के मन में होने वाली एक सहज प्रक्रिया है। वह मनुष्य के वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन के विकास के लिए एक उपयोगी साधन है। भाषा और शैली पत्र का सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व हैं।

सामान्यतः पत्रों की भाषा लिखने वाले की अपनी उस समय की मनोवृत्ति के अनुरूप होती है। जैसे, दो हमजोलियों अथवा प्रेमियों के पत्रों की भाषा में स्निग्धता और मिठास लबालब रहेगा, शब्दों का चुनाव ऐसा होगा कि जिससे मन में गुदगुदी पैदा हो : अंग्रेजी में कवि कीट्स और फेनी ब्राउन के पत्रों में हमें ऐसी ही स्निग्धता मिलती है। हिन्दी में अमृता प्रीतम द्वारा इमरोज को लिखे गये पत्रों की भाषा भी मधुर एवं मोहक है। इसके विपरीत व्यावहारिक पत्रों में हमें जो कहना है, वह हम उस प्रकार कह देते हैं जिससे भाषा में रूखापन और अशिष्टता नहीं आ पाती। पत्रों की भाषा-शैली के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए डा. शंकरदयाल चौऋषि ने लिखा है :—

"पत्रों में बहुधा भावों की ही अधिकता रहती है। सूक्ष्म, संश्लिष्ट भावों तथा विचारों को विशेष स्थान नहीं रहता। इसलिए भावानुकूल भाषा-शैली सीधी,सरल तथा स्वाभाविक रहती है। सजावट तथा अलंकार-विधान प्रायः नहीं रहता। हां, आर्कषण अवश्य रहता है जिससे सैकड़ों मील दूर बैठे हुए दो हृदय पास आ जाते हैं।"[1]

पत्रों की भाषा-शैली वस्तुतः लेखक और भावग्राहक के व्यक्तित्व के, अनुरूप होती है। उसमें अलंकार-विधान भी हो सकता है। साहित्यकारों के, विशेषतः कवियों के पत्रों की भाषा में यत्र-तत्र अलंकार की छटा भी मिल जाती है। पं. पद्मसिंह शर्मा, महाकवि "निराला," सुमित्रानन्दन पन्त, हरिवंशराय-"बच्चन" आदि के पत्रों की भाषा साहित्यिक सौंदर्य से युक्त है। डा. वासुदेव-शरण अग्रवाल के पत्रों में उनके चिंतन का पुट मिलता है। भाषा-शैली की उत्कृष्टता के कारण ही वैयक्तिक पत्रों को" साहित्य" का रूप प्राप्त होता है। बाबू गुलाबराय ने बहुत उपयुक्त कहा है।

"पत्रों में भी वही बात है जो प्रत्येक साहित्य में होती है। लेखक के हृदय में कुछ कहने के लिए उत्साह होता है और वह उत्साह मन के रस को अपनी वाणी द्वारा दूसरों तक संक्रमित कर देता है। एक मनुष्य अपने मित्र को अपने व्यवहार की सफाई देता है। यदि वह ईमानदार है, यदि उसकी लेखनी में कुछ बल है और वह अपनी सफाई में सफल हो जाता है तो उसके पत्र, साहित्य

1. द्विवेदी-युग की हिन्दी गद्य-शैलियों का अध्ययन (१९६५), पृ. ४३५।

का रूप धारण कर लेंगे।[1] इससे स्पष्ट है कि पत्र-विधा में भाषा-शैली ही वह व्यवच्छेद तत्व है, जो उन्हें व्यावहारिक पत्रों से अलग कर देता है। आत्मीयता, प्रभावोत्पादकता, संक्षिप्तता आदि पत्र-शैली की मुख्य विशेषताएं है।

अन्य साहित्य-रूपों में लेखक सीधे रूप में हमारे सामने नहीं आता। पत्र-साहित्य में उसका अपनापन प्रत्यक्ष रूप में प्रकट होता है। आत्मीयता का सम्बन्ध लेखक के अपने व्यक्तित्व के साथ भी होता है और दूरस्थ व्यक्ति के साथ भी। महत्वपूर्ण व्यक्तियों के आत्मीयतापूर्ण पत्र-व्यवहार में साधारणीकरण की क्षमता होती है। अतः वह प्रकाशित किया जाता है। आत्मीयता की भावना से लिखे गये पत्र साधारण पाठक को भी आनन्द देते हैं।

प्रभावोत्पादकता पत्र की शैली की दूसरी प्रमुख विशेषता है। वार्तालाप में हम स्वयं बोलते हैं और पत्र-व्यवहार में पत्रों को बोलना पड़ता है। बात-चीत में अपने कथन को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए हम इंगितों की सहायता भी लेते हैं। यही नहीं, वहां भूल-सुधार के लिए भी अवसर मिलता है, किन्तु पत्र लिखते समय उक्त सुविधाएं नहीं मिलतीं। जिससे हमें कुछ कहना है, वह दूर बैठा है। अतः पत्र-लेखन में वह टेकनीक अपनानी पड़ती है जिससे दूर बैठे हुए व्यक्ति पर उतना ही प्रभाव पड़ सके जितना प्रभाव सामने वार्तालाप करने पर पड़ता है। इसलिए शब्द-शक्ति का समुचित उपयोग करना पड़ता है। भाषा में भावग्राहक के अनुरूप शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है और साथ ही विषय को उत्कृष्ट बनाने का प्रयास भी करना पड़ता है। यह सब अच्छे शैलीकार के लिए सहज साध्य है।

संक्षिप्तता पत्र-शैली की तीसरी महत्वपूर्ण विशेषता है। बाबू वृन्दावनदास की पत्र-लेखन कला की चर्चा करते हुए डा. श्यामसुन्दर बादल ने पत्र की शैली के तीन प्रकार बतलाये हैं:—(१) विस्तृत या लेख-शैली, (२) स्वस्थ या नार्मल शैली और (३) संक्षिप्त या तार-शैली।[2] विस्तृत शैली में शिष्टाचार बढ़ा-चढ़ाकर लिखा जाता है तथा अनावश्यक बातें भी लिख दी जाती हैं। इस प्रकार पत्र लेख का रूप धारण कर लेता है। स्वस्थ शैली में शिष्टाचार और काम की बात नपे-तुले शब्दों में ही लिखी जाती है। संक्षिप्त शैली में पत्र प्रायः तार की भाषा में ही लिखा जाता है।

हमारे प्राचीनकालीन पत्रों में विस्तृत शैली का प्रयोग होता था। उनमें शिष्टाचार बढ़ा-चढ़ाकर लिखा जाता था। आज पत्रों में अधिकतर स्वस्थ शैली का प्रयोग होता है। पत्र को तार बना देना उचित नहीं है। विशेषकर एसे पत्रों में

---

1. "काव्य के रूप" (१९५४), पृ. २६०।
2. "निष्णात् पत्र-लेखक" (लेख), "बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दन ग्रंथ," पृ. ६२।

जिनमें विस्तृत चर्चा की अपेक्षा हो, उनमें तार-शैली का प्रयोग ठीक नहीं है। प्रसिद्ध आंग्ल पत्र-लेखक डा. सेम्युअल जानसन ने लिखा है कि कुछ विस्तृत चर्चा की आवश्यकता होने पर दूरस्थ इष्ट-मित्रों को संक्षिप्त पत्र भेज देना, एक तरह से उनका अपमान करना है ।[1]

वस्तुत: संक्षिप्तता का सम्बन्ध आकार या पृष्ठों की संख्या से नहीं है। वैसे प्रेम-पत्रों के इतिहास में विश्व का सबसे लम्बा पत्र[2] ८०० पृष्ठों में पूरा हुआ था और सबसे छोटा पत्र[3] दो शब्दों में। किन्तु ये दोनों ही स्थितियां सीमा की अति हैं। पत्र की संक्षिप्तता का पता आवश्यक-अनावश्यक शब्दों की संख्या से चल सकता है। इस सम्बन्ध में श्री यज्ञदत्त शर्मा का यह कथन उद्धरणीय है:—

"लेकिन यहीं पर संक्षिप्ति का सही अर्थ समझना भी आवश्यक है। - - - पत्र की संक्षिप्ति की माप पैमाने के चिह्नों से नहीं, वरन् पेन्सिल की नोक से होती है। पत्र में उन शब्दों को मत गिनिये जो "कथा" में सहायक नहीं हैं, अनावश्यक शब्दों की संख्या शून्य है तो पत्र संक्षिप्त है- फिर चाहे वह तीन पृष्ठों का हो या आठ पृष्ठों का।"[4]

इस प्रकार संक्षिप्तता की कसौटी आवश्यक शब्दों की संख्या है। बात को आश्यक शब्दों में व्यक्त कर देना पत्र शैली की सबसे बड़ी विशेषता है ।

उपर्युक्त सब विशषताओं से युक्त पत्र-शैली ही पाठक को प्रभावित कर सकती है।

---

1. "A short letter to a distant friend is, in my opinion, an insult like that of a slight bow or cursory salutation—a proof of unwillingness to do much, even where there is a neccessity of doing something."
"—Dictionary of Quotations" (1968), Edited by Bergen Evans P. 384.
2. "महारानी एलिजाबेथ प्रथम के शासनकाल में एक प्रेमी ने अपनी प्रेमिका को सम्भवत: आज तक का सबसे लम्बा पत्र लिखा था। उसमें कुल बीस हज़ार शब्द और ८०० पृष्ठ थे। विश्व का यह सबसे लम्बा प्रेम-पत्र आज भी ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है।"
—"ज्ञानोदय", पत्र-विशेषांक, नवम्बर १९६३, पृ. १६२।
3. "प्रेम-पत्रों के इतिहास में सबसे छोटा-प्रेम-पत्र इंग्लैंड के भूतपूर्व प्रधान-मंत्री लायड जार्ज ने लिखा था। उन्होंने अपना यह पत्र फ्रांस की एक नर्तकी को भेजा था। इस पत्र में कुल दो ही शब्द थे : "प्रणय-याचना।" और उत्तर में उक्त नर्तकी ने लिखा था, "अफ़सोस" !
—वही—, पृ. १६३।
4 "आदर्श पत्र-लेखन" (१९७४), पृ. ६-७।

6 -- उद्देश्य :

पत्र-साहित्य का उद्देश्य भी अन्य साहित्यिक विधाओं के समान आत्माभिव्यक्ति ही है। इसमें प्रसंगतः अन्य विषयों की चर्चा मिल जाती है, किंतु पत्र-लेखक का मुख्य लक्ष्य अपने व्यक्तित्व का उद्घाटन करना ही है। यद्यपि पत्र व्यक्ति द्वारा व्यक्ति-विशेष को लिखे जाते हैं, किन्तु अपनी सार्वजनीन मानवीय तत्वराशि के कारण समस्त मानव समाज ही उनसे साहित्य के व्यापक प्रयोजन "शिवेतर क्षति" की सिद्धि कर सकता है।

पत्र-साहित्य में लेखक के पारस्परिक सम्बन्ध, विचार, भावना, आवेग, प्रेरणा आदि की अभिव्यक्ति होती है। इस प्रकार इसमें लेखक का उद्देश्य आत्म-जीवन की व्याख्या करना होता है, किन्तु इस व्याख्या में वह नितांत निरपेक्ष नहीं रह सकता। जीवन और जगत् के प्रति वह अपना दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करता है। उसके पत्रों में उसकी जीवन-सम्बन्धी मान्यताओं, विचारों, विश्वासों, धारणाओं आदि का संकेत मिल ही जाता है। उद्देश्य तत्व में इन्हीं धारणाओं को ग्रहण किया जाता है।

कभी-कभी लेखक जीवन के अनुभवों से दूसरों को लाभान्वित करने की दृष्टि से भी पत्र लिखता है। महाराजा छत्रसाल द्वारा अपने पुत्र जगतराज को लिखे गये पत्र, महात्मा गांधी द्वारा मीरा बहन को लिखे गये पत्र आदि इसी उद्देश्य को व्यक्त करते हैं। आत्म-तोष की उपलब्धि भी पत्र-लेखन का एक उद्देश्य हो सकता है। गालिब आदि अनेक पत्र-लेखकों ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए पत्र लिखे हैं। इस सम्बन्ध में "गालिब के पत्र" भाग-१ की भूमिका में कहा गया है— "……कई बार लिफाफे के लिए पैसे न रहते। टिकट खरीदना गालिब के लिए सम्भव न होता, फिर भी वे पत्र लिखते थे। पत्र लिखने से उनकी आत्मा को अपूर्व संतोष मिलता, इसलिए वे अपने मित्रों को बैरंग पत्र भी भेजते थे और इस संतोष से वंचित होना नहीं चाहते थे।"[1]

इस प्रकार पत्र-साहित्य, साहित्य का एक विशिष्ट रूप है। अतएव उसका उद्देश्य साहित्य के व्यापक उद्देश्य से भिन्न नहीं है। आत्माभिव्यक्ति, आत्माख्यान, ज्ञानोपलब्धि, आत्म-तोष आदि पत्र-लेखक के प्रमुख प्रयोजन हैं।

पत्र-साहित्य के तत्व-विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि पत्र का विशिष्ट रूप-विधान होता है। प्रत्येक कृति के समान इसका भी एक निजी आकार और बाह्य ढांचा होता है जो हमारे मनश्चक्षुओं के सम्मुख उसके नाम-मात्र से स्पष्ट हो जाता है। पत्र-लेखन की अपनी शैली होती है जिसमें आत्मीयता का गुण प्रमुख रूप से पाया जाता है। यद्यपि अन्य साहित्यिक विधाओं के कुछ तत्व इसमें तथा इसके कुछ अंश अन्य विधाओं में पाये जाते हैं, तथापि यह एक स्वतंत्र

1, "गालिब के पत्र" भाग-1 (१९५८), संपा. श्रीराम शर्मा तथा श्री रामनिवास शर्मा, भूमिका, पृ. ६।

विधा है। इस विधा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें लेखक का ध्यान कला-प्रदर्शन या लोकप्रियता की ओर नहीं होता। वह अपने मनोभावों को कागज पर बहा देता है। इस निर्व्याजता, सरलता और स्वाभाविकता में ही पत्र की महत्ता है।

पत्रों का वर्गीकरण

किसी भी साहित्य-रूप का सांगोपांग अध्ययन तब तक सम्भव नहीं जब तक उसे वर्गीकृत कर उसके प्रत्येक वर्ग का समुचित विश्लेषण-विवेचन न किया जाय। इसी दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए यहां पत्रों के वर्गीकरण पर विचार किया जाता है। यद्यपि पत्रों का वर्गीकरण एक दुष्कर कार्य है, तथापि अनेक विद्वानों ने विभिन्न दृष्टियों से पत्रों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया है। संस्कृत के विद्वानों ने भी पत्रों के विभिन्न प्रकारों की चर्चा की है। अतः सर्वप्रथम उन्हीं के द्वारा किये गये वर्गीकरण पर हम विचार करेंगे। तत्पश्चात् पाश्चात्य और हिन्दी विद्वानों द्वारा किये गये वर्गीकरण पर अनुक्रम से विचार किया जायेगा।

1— संस्कृत विद्वानों द्वारा किया गया वर्गीकरण :

पत्र-लेखन की कलात्मक साहित्यिक परिपाटी की दृष्टि से संस्कृत में अनेक पुस्तकें लिखी गयी हैं जिनमें वररुचिकृत "पत्र-कौमुदी," चिमनलाल दलाल द्वारा सम्पादित "लेखपद्धति," दलपतिराय कृत "प्रशस्ति-रत्नकोष," बालकृष्ण त्रिपाठी कृत "प्रशस्तिकाशिका" आदि विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

"पत्र-कौमुदी" विविध प्रशस्तियों की लघु रचना है जिसके रचियता के रूप में वररुचि का उल्लेख मिलता है। इस रचना की हस्तलिखित प्रतियां शोध-भाण्डारों में संरक्षित हैं और इसके सम्यक् पाठ के सम्पादन की आवश्यकता है। बुलेटिन आफ दी डेकेन कालेज एण्ड रिसर्च इंस्टीट्यूट के भाग-20, खण्ड 1-4 में डा. सुरेशचन्द्र बनर्जी ने पत्र-कौमुदी का प्रकाशन कराया है। हिन्दी में इसका अनुवाद श्रीमन्नारायण द्विवेदी ने किया है जो पीयूष प्रकाशन, इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है। इसमें पत्र-पाठ के नियम के अन्तर्गत शुभ, अशुभ और गोपनीय पत्र-प्रकारों का उल्लेख मिलता है।[1] शुभ पत्र से पत्र-कौमुदीकार का आशय सुखद-सम्वाद से युक्त पत्र से है जो सबके सामने पढ़ा जा सकता है अशुभ पत्र दुःखद समाचार से तथा गोपनीय पत्र रहस्यमय समाचार से युक्त होने के कारण सबके सामने पढ़े नहीं जा सकते। इस प्रकार यहां एक दृष्टि से सार्वजनिक और वैयक्तिक पत्रों का संकेत किया गया है।

गायकवाड़ ओरियंट सीरीज़, बड़ौदा से प्रकाशित "लेखपद्धति" का रचनाकाल मिश्रित संस्कृत प्रयोग के आधार पर १५ वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध स्वीकार किया गया है। इसमें राजादेश, शासन पत्र, राजविज्ञप्तिका, गुरुविज्ञ-प्तिका, पितृविज्ञप्तिका, मातृविज्ञप्तिका, स्वामिलेख, मृत्यलेख आदि विविध प्रकार

1. "पत्र-कौमुदी," संपा. श्रीमन्नारायण द्विवेदी, पृ. 20।

के पत्रों के नमूने दिये गये हैं। इन मुख्य पत्र-प्रकारों के अतिरिक्त कुछ रोचक उपभेदों-जैसे, प्रसन्नभार्या भर्तृलेख, सरुष्टभार्या भर्तृलेख, सरोषभार्या भर्तृलेख आदि के उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं।[1] इस प्रकार पत्र के इन भेदोपभेदों में हमें मनोरंजन की सामग्री भी मिलती है।

विश्वेश्वरानन्द संस्थान्, होशियारपुर से प्रकाशित "प्रशस्तिकाशिका" की प्रस्तावना में श्रीदलपतिराय कृत 'प्रशस्तिरत्नकोष" के 'पत्र-वर्गीकरण की चर्चा की गयी है। तदनुसार पत्र को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है—(१) सन्देशात्मक पत्र, (२) व्यवहारात्मक पत्र और (३) निदेशात्मक पत्र।[2] सन्देशात्मक पत्रों से ग्रंथकार ने वैयक्तिक, व्यवहारात्मक पत्रों से व्यवहार-संबंधी और निदेशात्मक पत्रों से राजकीय पत्रों की ओर संकेत किया है। यह वर्गीकरण ऊपर के दो ग्रंथों में निर्दिष्ट वर्गीकरण से अधिक तर्कसंगत है।

२—पाश्चात्य विद्वानों द्वारा किया गया वर्गीकरण :

पश्चिम में पत्रों का वर्गीकरण और स्वरूप-निरूपण सबसे पहले यूनानी और रोमन रिटरिशियन अर्थात् वक्तृता-शास्त्र के आचार्यों ने किया है। प्रोफेसर सेन्ट्सबरी ने स्वसम्पादित "ए लेटर बुक" शीर्षक पुस्तक में प्रसिद्ध यूनानी वक्तृता शास्त्र-विशारद डेमैट्रियस द्वारा किये गये विस्तृत पत्र-वर्गीकरण को बड़े उपयुक्त ढंग से समझाया है।[3] डेमैट्रियस ने निम्नलिखित पत्र-प्रकारों का उल्लेख किया है:—

मैत्रीपूर्ण पत्र, सिफारिशीपत्र, भर्त्सनापत्र, तिरस्कार पत्र, सम्वेदना पत्र, शिक्षात्मक पत्र, चेतावनीपत्र, धमकी पत्र, निन्दा पत्र, स्तुति पत्र, प्रेरणादायक पत्र, प्रार्थना पत्र, विवाद पत्र, समाधान पत्र, रूपकात्मक पत्र, व्याख्यात्मक पत्र, आरोपात्मक पत्र सुरक्षा पत्र, बधाई पत्र, व्यंग्यात्मक पत्र और धन्यवाद पत्र। निःसंदेह यह सूची अधिक लम्बी है।

---

1. "लेखपद्धति" (१९२५), मेन्युस्क्रिप्ट–बी, पृ, २।
2. "प्रशस्तिकाशिका" (१९६७), संपा. के.बी शर्मा, भूमिका, पृ. १६।
   "तत्र तावत् यत्रं त्रिधा, सन्देशात्मकं, व्यवहारात्मकं, निदेशात्मकं च"।
3. "A Letter Book" (1922), Introduction, P.7-8.
   "Thus the so-called Demetrius Phalereus, who has left us a capital geneal remarks on letter- writing, elaborately divides its kinds, with prescription for writing each, into "friendly," "Commendatery," "reproving," "objurgatory," "Consolatory," "Castigatory," "admonishing," "threatening," "Vituperatory," "Laudatory," "persuasive," "begging," "Questioning," "answering," "allegorical," "explanatory," "accusing," "defending," "Congratulatory," "ironic," and "thankful".

जोसेफ शिप्ले ने अपने विश्व वाङ्मय कोश में रोमन वक्तृता-शास्त्र-विशारदों के जिस वर्गीकरण की चर्चा की है उसमें पत्रों को दो वर्गों में विभक्त किया गया है- (1) व्यक्तिगत पत्र (परसोनालिस) और (2) व्यावसायिक, पत्र (निगोशियालिस)।[2] इन दो वर्गों के पत्रों को लेखक के उद्देश्यानुसार वर्णनात्मक अभिव्यक्तिप्रधान, परामर्शयुक्त आदि अनेक उपविभागों में में बांटा जा सकता है। इन दो वर्गों के अतिरिक्त शिप्ले ने एक तीसरे पत्र-प्रकार का उल्लेख भी किया है और वह है खुला पत्र- (ओपन लेटर)। यह पत्र एक व्यक्ति को सम्बोधित तो होता है किन्तु इसमें लेखक का उद्देश्य यही रहता है कि सभी लोग उसकी बातें सुनें और जानें। इसमें बातचीत की शैली के स्थान पर विचारात्मकता एवं तार्किकता का प्राधान्य रहता है। इस प्रकार यह वर्गीकरण अधिक उपयुक्त है। हिन्दी के कई विद्वानों ने इसी वर्गीकरण का अनुसरण किया है।

3— हिन्दी विद्वानों द्वारा किया गया वर्गीकरण :

जैसा कि पीछे संकेत किया गया है, हिन्दी में सर्वप्रथम पत्र-साहित्य के स्वरूप-निरूपण करने का श्रेय बाबू गुलाबराय को है। उन्होंने पत्र-वर्गीकरण के दो आधारों—विषय और शैली—का उल्लेख करते हुए लिखा है-" आत्मकथा की भांति कुछ पत्रों का महत्व उनके विषय पर निर्भर रहता है, कुछ का शैली पर। जिन पत्रों का विषय और शैली दोनों ही महत्वपूर्ण हों, वे साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन जाते हैं।"[2]

पत्र-साहित्य के व्यापक स्वरूप को ध्यान में रखकर हिन्दी में प्रकाशित पत्रों को "हिन्दी साहित्यकोश" में दो श्रेणियों के अन्तर्गत रखा गया है -" एक तो निजी पत्र जो प्रकाशन के उद्देश्य से नहीं लिखे जाते और दूसरे ऐसे पत्र जो बाह्यतः पत्र होते हुए भी वास्तव में साहित्यिक कृति के रूप में लिखे और प्रकाशित किये जाते हैं।"[3]

"मानविकी पारिभाषिक कोश" में यूनानी भाषण-शास्त्र के आधार पर पत्रों के दो भेद प्रदर्शित किये गये हैं:—"(1) व्यक्तिगत पत्र-जिसमें पत्र-लेखक मित्रता एवं अनौपचारिकता के भावों को व्यक्त करता है और (2) सामान्य पत्र-जिसमें किसी परिस्थिति या समस्या आदि का औपचारिक रीति से अभिलेख होता है। किन्तु आदर्श सदा से "व्यक्तिगत पत्र" ही रहे हैं।"[4]

---

1. "Dictionary of world Literature," P. 250.
2. "काव्य के रूप" (१९५४), २६०।
3. "हिन्दी साहित्य कोश," भाग-१, (सं. २०२० वि.), संपा.-डा. धीरेन्द्र वर्मा और अन्य, पृ. ४७१।
4. "मानविकी पारिभाषिक कोश" (१९६५), साहित्य-खण्ड, संपा. डा. नगेन्द्र, पृ. १५८।

डा. रावग्रवध द्विवेदी ने पत्रों की कोटियां निर्धारित की हैं:— (क) निजीपत्र (ख) सार्वजनिक मामलों पर लिखे हुए पत्र ग्रौर (ग) खुली चिट्ठी ।"[1] निजी पत्र के प्रकारों में उन्होंने अभ्यर्थना के पत्र, सांत्वना के पत्र उपदेशात्मक पत्र, प्रणय-निवेदन के पत्र, मैत्री-भावना को प्रकाशित करने वाले पत्र ग्रादि ग्रनेक पत्रों का उल्लेख किया है। इस प्रकार इस वर्गीकरण में शिप्ले द्वारा निर्देशित वर्गीकरण तथा प्रो. सेन्ट्सबरी द्वारा उल्लिखित डेमैट्रियस की पत्र-सूची—दोनों का ग्राधार ग्रहण किया गया है।

ग्राचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने ग्रपने पत्र-वर्गीकरण में शिप्ले द्वारा निर्दिष्ट वर्गीकरण का पूर्णत: ग्रनुकरण किया है। उन्होंने लिखा है-" लातिन ग्रालंकारिकों ने दो प्रकार के पत्र बताये हैं- 1-व्यक्तिगत पत्र (परसोनालिस) ग्रौर 2- व्यावसायिक पत्र (निगोशियालिस)। इन दोनों वर्गों के लेखकों के मुख्य उद्देश्यों के ग्रनुसार ग्रनेक पत्र रूप मिलते हैं- कथात्मक व्याख्यात्मक, उपदेशात्मक, सांत्वनापूर्ण, पारिवारिक, सामाजिक ग्रौर ग्रनेक प्रकार के पारस्परिक सम्बन्ध वाले ग्रौर प्रेम-सम्बन्धी। उपर्युक्त दोनों वर्गों के पत्रों के ग्रतिरिक्त एक तीसरे वर्ग के पत्र भी होते हैं जिन्हें खुले पत्र या लोक-पत्र (ग्रोपन लेटर) कहते हैं जो लक्ष्य तो किये जाते है एक व्यक्ति की ग्रोर किन्तु उनका उद्देश्य सबको सूचित करना है।"[2]

डा. हरदयाल ने ग्रपनी पुस्तक "आधुनिक हिन्दी गद्य-साहित्य" में पत्रों के व्यक्तिगत ग्रौर व्यावसायिक- ये दो वर्ग ही स्वीकार किये हैं।[3] यही बात हमें श्री धर्मचन्द सन्त ग्रौर बलदेव कृष्ण की ' सिद्धान्तालोचन" शीर्षक पुस्तक में देखने को मिलती है।[4] डा सुरेन्द्र माथुर भी पत्रों को दो वर्गों में रखने के पक्ष में हैं, किन्तु वे "व्यावसायिक पत्र" के स्थान पर "व्यावहारिकपत्र शब्द का प्रयोग उचित समझते हैं। उनकी स्पष्ट धारणा है कि "वास्तव में पत्र-साहित्य का महत्व उसके वैयक्तिक होने में ही है। व्यावहारिक पत्र केवल सम्बोधन तथा अंत में लेखक का नाम छोड़कर सच्चे पत्र नहीं कह जा सकते।"[5]

पं. देवनारायण द्विवेदी ने स्थायित्व की दृष्टि से पत्रों की जो दो श्रेणियां बनाई हैं, वे इस प्रकार हैं:— (1) ग्रल्पकालीनपत्र- जो कुछ ही व्यक्तियो के लिए उपयोगी होते हैं ग्रौर (2) चिरकालीनपत्र जो सब के लिए उपयोगी हैं।[6]

डा. शांति खन्ना ने ग्रपने शोध प्रबन्ध "ग्राधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" में विषय ग्रौर शैली दोनों को ध्यान में रखते हुए पत्रों के पांच

1. "साहित्यरूप" (सं. २०२३ वि.), १३९-४०।
2. "साहित्यानुशासनम्" (सं. २०२६), पृ. १००१।
3. "ग्राधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य" (१९७२), पृ. १७३।
4. "सिद्धान्तालोचन" (प्र.सं.), पृ. २२१।
5. "यात्रा-साहित्य का उद्भव ग्रौर विकास" (१९६२), पृ. ३१६।
6. "पत्र-कला" (लेख)," मनोहर पत्र (१९५६), संपा. सूर्यबलीसिंह, पृ. ४३।

प्रकार बताये हैं-(1) साहित्यिक पत्र, (2) आत्मकथात्मक पत्र (3) अन्य चरितमूलक पत्र (4) वर्णनात्मक- पत्र (5) विचार-प्रधान पत्र।[1]

इस प्रकार "भिन्नरुचिर्हिलोकः" के अनुसार पत्र के अलग-अलग प्रकारों का विवेचन-विश्लेषण किया गया है।

निष्कर्ष :

पत्र-वर्गीकरण के विषय में संस्कृत, पाश्चात्य और हिन्दी विद्वानों के विचारों को देखते हुए कहा जा सकता है कि अधिकतम विद्वानों ने पत्र के दो या दो तीन प्रकार माने हैं। हिन्दी के प्रमुख विद्वानों ने यूनानी वक्तृता-शास्त्र-विशारदों के वर्गीकरण को ही मान्य किया है और यूनानी भाषण-शास्त्र के अनुसार आदर्श सदा से "व्यक्तिगतपत्र" ही रहे हैं।

हिन्दी में अनेक ऐसे पत्र भी प्रकाशित हुए हैं जो बाह्यतः पत्र होते हुए भी वास्तव में साहित्यिक कृति के रूप में लिखे गये हैं अतः उन्हें विशुद्ध पत्र नहीं माना जा सकता। डा. सुरेन्द्र माथुर का यह कथन सर्वथा योग्य है कि "वास्तव में पत्र-साहित्य का महत्व उसके वैयक्तिक होने में ही है।" अतएव पत्र-साहित्य के विवेचन में विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियो के वैयक्तिक पत्रों को स्थान देना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। ये पत्र विषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से महत्वपूर्ण हैं। ये व्यक्ति-विशेष को सम्बोधित होते हुए भी सबके लिए उपयोगी हैं। अतः ये "चिरकालीन पत्र हैं। अगले अध्यायों में हम इन्ही पत्रों का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन करेंगे।

2. "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" (१९७३), पृ. ६१।

अध्याय २

पत्र-साहित्य की पृष्ठभूमि और हिन्दी में उसका विकास

पत्र-साहित्य की पृष्ठभूमि

पत्र-लेखन की प्राचीनता :

हिन्दी में विभिन्न क्षेत्रों के प्रसिद्ध व्यक्तियों के पत्रों को संगृहीत कर प्रकाशित करने की प्रवृत्ति का शुभारम्भ आधुनिक युग में ही हुआ है, परन्तु प्रियजन के पास पत्र लिखकर सन्देश भेजने की परम्परा अति प्राचीनकाल से चली आ रही है। कहा जाता है कि मनुष्य ने जबसे लिपि-ज्ञान प्राप्त किया, अभिव्यक्ति हेतु उसने पत्रों को सर्वथा उपयुक्त ठहराया । कागज़ का आविष्कार तो बहुत बाद में हुआ।[1] पहले लोग शिलातल, भोजपत्र, ताल-पत्र आदि पर सन्देश-समाचार लिखकर भेजते थे। श्री यज्ञदत्त शर्मा ने "मिट्टी के फलक" को पत्र-लेखन का प्राचीनतम आधार-फलक मानते हुए लिखा है :

"संसार के विभिन्न भागों में, लिपियों के आविष्कार के बाद पत्रों का आदान-प्रदान आरम्भ हो गया था। लेखन-सामग्री तथा संचार साधनों की सुविधा आज की तुलना में शतांश भी न थी, किन्तु पत्र-प्रेमी मानवों को कोई भी बाधा दमित न कर पाती थी; ताड़-पत्र, और रेशमी कपड़े तो बहुत बाद में आये, विवेकशील और आविष्कार-कुशल मानवों ने गीली मिट्टी के फलकों पर ही अक्षर खोदकर पत्र लिखे थे, फलकों को पकाया था और यथास्थान भेजा था। ये विलक्षण पत्र संसार के अनेक पुरावशेष-स्थलों में पुराविदों की सतर्क और कौशलपूर्ण खुदाइयों के फलस्वरूप अब पृथ्वी के गर्भ से निकलकर प्रकाश में आये हैं।[2]

कोम्पटन के सचित्र विश्वकोश में भी मिट्टी फलकों पर लिखे गये प्राचीनतम पत्रों के विषय में विस्तार से जानकारी दी गयी है। उसमें कहा गया है कि प्रसिद्ध रोमन पत्र-लेखक सिसरो (१०६-४३ ई. पू.) से एक हजार वर्ष पहले पश्चिम

1. "सचित्र विश्वकोश", खण्ड-६ (१९६७), राजपाल एण्ड सन्स दिल्ली, पृ १८।
"कागज़ सर्वप्रथम आज से १८०० वर्ष पहले चीन में तैयार हुआ था।"
2. "आदर्श पत्र-लेखन" (१९७४), पृ. १।

एशिया के शासकों का ईजिप्त के फेरोह के साथ रोचक पत्र-व्यवहार हुआ करता था। मिट्टी के फलकों पर लिखे हुए उनके लगभग ३०० पत्रों का एक संग्रह सन् १८८७ ई. में ईजिप्त के एमेना से खुदाई के दौरान प्राप्त हुआ था।[1]

शिप्ले के विश्ववाङ्मय कोश के अनुसार सबसे प्राचीन पत्र २००० ई. पू. के बेबीलोन से प्राप्त हुए हैं।[2]

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में प्राचीनकालीन पत्र-लेखन के अनेक सन्दर्भ मिलते हैं। कालिदास भारतीय वाङ्मय के गौरवपूर्ण कीर्तिस्तम्भ हैं। उनकी प्रतिभा से हमें अनेक ग्रन्थरत्न प्राप्त हुए हैं जिनके माध्यम से उनके व्यापक और बहुविध ज्ञान का परिचय प्राप्त होता है। उनकी कृतियों में स्थान-स्थान पर निर्दिष्ट पत्र-लेखन-प्रक्रिया से तत्कालीन पत्र-लेखन पद्धति और सामग्री पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। उन्होंने अपने प्रसिद्ध महाकाव्य "कुमार-सम्भवम्" के प्रथम सर्ग में लिखा है कि हिमालय प्रदेश की विद्याधर सुन्दरियां भूर्ज-पत्रों पर धातुरस (सिन्दूर अथवा गेरू) से अपने प्रेमियों के पास पत्र लिखा करती थीं जिनके अक्षर हाथी की सूंड़ पर मिलने वाले बिन्दुओं के समान सुन्दर होते थे।[3]

कालिदास की सर्वाधिक लोकप्रिय नाट्यकृति "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" में मदनलेख (प्रेम-पत्र) की तैयारी का सुन्दर वर्णन किया गया है। राजा दुष्यन्त पर आसक्त शकुन्तला को उसकी सखियां (प्रियवंदा और अनसूया) मदनलेख लिखने को बाध्य करती हैं। तपोवन में शकुन्तला द्वारा लेखन सामग्री के अभाव की चर्चा पर प्रियवंदा यह सुझाव देती है कि—"शुकोदर के समान कोमल कमल-पत्र पर नाखूनों से अक्षर अंकित कर दें।"[4]

1. "Compton's Pictured Encyclopedia and Fact Index" (1955), Vol-8, P; 171

   "More than a thousand years before Cicero's time, the rulers of Western Asia were keeping up a lively correspondence with the Pharoah of Egypt. A collection of some 300 of their letters written on clay 'tablets was dug up at Amarna. Egpyt in 1887"
2. "Dictionary of world Literature," 249
3. " कुमारसम्भवम्" (सर्ग—१, श्लोक ७), "कालिदास ग्रन्थावली,", संपा. सीताराम चतुर्वेदी, पृ. २३२।
   "न्यस्ताक्षरा धातुरसेन यत्र भूर्जत्वचः कुंजरबिन्दु शोणाः।
   व्रजन्ति विद्याधरसुन्दरीणामनंगलेख क्रिययोपयोगम्॥"
4. "अभिज्ञान शाकुन्तलम्" (अंक—3), संस्कृत—हिन्दी व्याख्या, रामतेज पाण्डेय, पृ. १७७। "एतस्मिन्शुकोदरसुकुमारे नलिनी पत्रे—नखैर्निक्षिप्तवर्णं करू।"

महाकवि बाण की प्रसिद्ध गद्यकृति "कादम्बरी" में भी ऋषि कुमार पुण्डरीक द्वारा तमाल वृक्ष के पत्ते पर महाश्वेता के नाम लिखी गयी प्रणय-पत्रिका का सुन्दर वर्णन किया गया है।[1] इन विविध सन्दर्भों से पत्र के प्राचीन आधार-फलकों की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

इससे प्रकट होता है कि आज की तरह प्राचीनकाल में भी पत्राचार का महत्व था और लोग इसकी महत्ता से भली भांति परिचित थे। अंतर केवल इतना ही था कि पहले यातायात के साधन अधिक सरल न होने के कारण पत्रों के आने-जाने में असुविधा होती थी। किन्तु पत्र-प्रेमी मानव इसके भी मार्ग निकाल लेते थे। उन दिनों प्रियजन तक सन्देश-पत्र भेजने के लिए हंसों, कबूतरों, आदि पक्षियों का सहारा लिया जाता था। "महाभारत" के "नलोपाख्यान" के अध्ययन से ज्ञात होता है कि नल और दमयन्ती का पत्र-व्यवहार हंस के माध्यम से ही होता था।[2] "चांद" के पत्र-विशेषांक में पत्र-लेखन की प्राचीनता प्रदर्शित करने के लिए दमयन्ती और हंस का एक सुन्दर चित्र दिया गया है। इस चित्र के नीचे दो काव्य-पंक्तियां भी लिखी गयी है जिनमें दमयन्ती हंस की चोंच में अपना प्रेम-पत्र रखते उसे नल राजा तक पहुंचाने की सूचना देती है।[3]

प्राचीनकाल में पक्षियों के अतिरिक्त राहगीरों, घुड़सवारों, विप्रों आदि के द्वारा भी पत्र भेजे जाते थे। "श्रीमद्‌भागवत्" में उल्लेख है कि रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के पास अपना प्रणय-पत्र एक विप्र के द्वारा भेजा था।[४] सम्बोधन शैली [5] के वैविध्य की दृष्टि से यह पत्र, संस्कृत साहित्य में उपलब्ध प्रणय-पत्रों में अद्वितीय समझा जाता है।

प्राचीनकाल में सन्देश-पत्र ले जाने वाले को "दूत" कहते थे।[6] इसी

---

1. देखिए—"कादम्बरी", महाश्वेतावृत्तांत, व्याख्याकार पं. मोहनदेव पंत, पृ. ५०४।
2. "महाभारत", "नलोपाख्यान," टीकाकार पं रामचन्द्र शास्त्री, पृ. ९३।
3. "चांद," "पत्रांक", मई १९२८, पृ. १०८।
   "लो। ले जाओ, दे देना यह पत्र उन्हें ही किसी प्रकार।
   मेरे राजहंस नल होवें, करते जहां वसन्त-बिहार।।"
4. "श्रीमद्‌भागवत", दशम स्कन्ध, अध्याय-५२, श्लोक-२७-४४।
5. "इस पत्र के सम्बोधनों की विस्तृत व्याख्या के लिए देखिए :—
   :'रुक्मिणी का प्रेम-पत्र : भगवान कृष्ण के नाम" (लेख),
   "ज्ञानोदय", पत्र-विशेषांक, नवम्बर १९६३, पृ. १४२।
6. "अमरकोश", (२-१६) संपा. रघुनाथ शास्त्री, पृ. १८४।
   "स्यात्सन्देशहरो दूत,............"

कारण-सन्देश को "दूत-काव्य" भी कहा गया है।[1] "मनुस्मृति" में दूत के लक्षणों की विस्तार से चर्चा की गयी है।[2] महाकवि कालिदास का यक्ष मेघ को दूत बनाकर अपना सन्देश प्रिया यक्षिणी तक पहुँचाता है। कविवर बाण ने अपने "हर्षचरित" शीर्षक ग्रंथ में दूत अथवा पत्र-वाहक के लिए "लेख-हारक" शब्द का प्रयोग किया है। उसके लेख-हारक के वर्णन से तत्कालीन डाक व्यवस्था का भी संकेत मिलता है इससे पता चलता है कि उन दिनों पत्र-वाहक को लम्बी यात्रा करनी पड़ती थी जिससे उसे काफी थकान का अनुभव होता था। उसकी वर्दी विशेष प्रकार की होती थी जो मटियाले रंग की पेटी से कसी जाती थी और लेख-मालिका या चिट्ठी डोर से बीचोबीच लपेट कर बांधी जाती थी।[3] और प्रसिद्ध ग्रीक इतिहासकार हेरोडट्स (Herodotus) ने भी अपने समय के "कुरियस" का ऐसा ही शब्द-चित्र अंकित किया है।[4]

डाकियों के सेवा-सूत्र से पत्रों के वितरण की पद्धति मध्ययुगीन भारत में सबसे पहले शेरशाह सूरी (१४८६-१५४५) ने चलाई थी।[5] किन्तु भारत में आधुनिक ढंग की डाक-तार व्यवस्था जारी करने का श्रेय लार्ड डलहौजी को है। उसने पोस्ट-कार्ड चलाया और आधुनिक ढंग के डाक-घरों का निर्माण किया।[6] आज तो डाक-सेवा मानव-सभ्यता का अभिन्न अंग बन गयी है। प्रसिद्ध अंग्रेजी लेखक एडवर्ड एवरेट (Edwerd Everett) ने लिखा है :—

"जब मैं देखता हूँ कि लाखों ···· करोड़ों व्यक्ति पवित्र उत्साह के साथ अपने मनोभावों, विचारों और स्नेह को पत्रों में बन्द करके भेजते हैं और डाक-खाने उन्हें समूचे देश में वितरित करते हैं तो डाक-घर को ईसाई धर्म के बाद आधुनिक सभ्यता का सबसे बड़ा सोपान मानने के लिए मुझे बाध्य हो जाना

---

1. "संस्कृत के सन्देश काव्य", (१९६३), डा. रामकुमार आचार्य, पृ. ७।
2. "मनुस्मृति" (७।६३-६६), सस्ता साहित्य वर्धक, बम्बई, पृ. २६०-६१।
3. "हर्षचरितम्" (उल्लास-२) व्याख्याकार, जगन्नाथ पाठक, पृ. ८९-९०।
   "अथ तेनानीयमानम्, अतिदूरगमनगुरूजडजंघाकाण्डम्, कार्दमिकचेल चीररिका-नियमितोच्चण्डचण्डातकम्, प्रष्ठप्रेङ्खत्पटच्चरकर्पटघटितगलग्रन्थिम्······प्रविशन्तं लेखहारकमद्राक्षीत्।"
4. Compton's pictured Encyclopedia and Fact-Index Vol-II, p 385
   "Neither snow, nor rain, nor heat, nor night stays these Couriers from the swift Completion of their appointed rounds".
5. "मध्यकालीन भारत" (१९७०), हरिशंकर शर्मा, पृ. ३६६।
6. "आधुनिक भारत" (१९७०), डा. वी. एस. भार्गव, पृ. १८६।

पड़ता है।''[1]

इस प्रकार पत्र-लेखन के विकास की कहानी मानव-सभ्यता के विकास के साथ जुड़ी हुई है। आज पत्र-लेखन हमारे जीवन-व्यवहार का अनिवार्य अंग तो है ही, हमारे सांस्कृतिक एवं साहित्यिक विचार-विनिमय का उत्कृष्ट माध्यम भी है।

हिन्दी में प्राचीनकाल से लेकर अब तक जो पत्र-साहित्य प्रकाश में आया है, उसमें दो प्रकार की पत्र-शैलियां मिलती हैं—एक प्राचीन शैली और दूसरी नवीन शैली। प्राचीन शैली संस्कृत से प्रभावित है और नवीन शैली पश्चिम से। अतः हिन्दी पत्र-साहित्य के सम्यक् अध्ययन के लिए संस्कृत और पश्चिम की प्रमुख भाषाओं में उपलब्ध पत्र-साहित्य का संक्षिप्त परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक होगा।

संस्कृत में उपलब्ध पत्र-साहित्य का स्वरूप :

यद्यपि संस्कृत में पत्र-साहित्य की परम्परा ग्रीक और लैटिन के समान पुष्ट नहीं है, किन्तु उसका यह अर्थ नहीं लगाया जा सकता कि प्राचीन भारत में पत्र-लेखनकला का अभाव था। डा. वासुदेव उपाध्याय ने अपने "प्राचीन भारतीय अभिलेख" शीर्षक ग्रन्थ में "ललित विस्तार" का सन्दर्भ देते हुए लिखा है कि "बुद्ध को लिपिशाला (पाठशाला) में विश्वामित्र द्वारा पत्र-लेखन सिखलाया गया था।"[2] इससे स्पष्ट हो जाता है कि ई. पू. ६०० के समीप भारत में पत्र-लेखन कला का विकास हो चुका था। जैसा कि हम देख चुके हैं, मौर्ययुग के राजनीति ग्रंथ "अर्थशास्त्र" में भी राजा को दिवस के पांचवें भाग में मन्त्रि-परिषद के साथ पत्र द्वारा मंत्रणा करने का निर्देश दिया गया है। इसके अतिरिक्त श्रीमद् वररुचिकृत "पत्र-कौमुदी," चिमनलाल दलाल द्वारा सम्पादित "लेख-पद्धति," बालकृष्ण त्रिपाठीकृत "प्रशस्तिकाशिका" आदि पुस्तकों के अध्ययन से विदित होता है कि संस्कृत साहित्य में पत्र-लेखन की कलात्मक परिपाटी भी विद्यमान थी। इस प्रकार भारत में बहुत पहले से ही पत्र-लेखन कला का विकास हो चुका था।

संस्कृत के प्राचीन नाटकों, कथा, चम्पू आदि में अनेक अलंकृत पत्र उपलब्ध होते हैं। यद्यपि ये पत्र वैयक्तिक न होकर कथानक के विकास के माध्यम मात्र

1. "When I contemplate the extent to which the moral sentiment, intelligence, the affections of so many million of people, sealed up by a sacred charm within the cover of a letter, gaily cerculate, through a country, I am compelled to regard the postoffice, next to Christianity, as the right arm, of our modern Civilization."
—"Bartlett's Familiar Quotations" Thirteenth Edition, p.472.
2. "प्राचीन भारतीय अभिलेख" (१९७०) पृ. १९६।

हैं, तथापि तत्कालीन पत्र-लेखन की शैली तथा सामाजिक शिष्टाचार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए ये पत्र अत्यन्त उपयोगी हैं। यही नहीं, कुछ पत्रों से ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि भी होती है।

संस्कृत साहित्य की विभिन्न विधाओं में उल्लिखित पत्रों के अतिरिक्त स्वतंत्र रूप में लिखे गये कुछ पद्य-बद्ध पत्र भी प्राप्त होते हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से ये पत्र बहुत महत्वपूर्ण हैं।

संस्कृत साहित्य में आधुनिक काल के आरम्भ से प्रसिद्ध व्यक्तियों के वैयक्तिक पत्र भी प्रकाश में आये हैं। इन पत्रों का अपना पृथक् महत्व है। इस प्रकार संस्कृत में जो पत्र-साहित्य उपलब्ध होता है, उसे हम अधोलिखित तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं:—

(१) साहित्य की विभिन्न विधाओं में उल्लिखित महत्वपूर्ण पत्र,
(२) स्वतन्त्र रूप में लिखे गए पद्य-बद्ध पत्र और
(३) मनीषियों के वैयक्तिक पत्र।

अब हम अनुक्रम से प्रत्येक वर्ग के पत्रों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

संस्कृत साहित्य में सबसे प्राचीन गद्य-पत्र कविकुलगुरु कालिदास के "मालविकाग्निमित्रम्" नाटक में उपलब्ध होता है। यह पत्र अलकृत होते हुए भी नितांत काल्पनिक नहीं है। यह पत्र सेनापति पुष्यमित्र ने अपने पुत्र राजा अग्निमित्र के नाम विदिशा से लिख भेजा था। इस पत्र में अग्निमित्र को सपरिवार प्रसन्नतापूर्वक अश्वमेध यज्ञ में सम्मिलत होने का निमन्त्रण दिया गया है। संस्कृत साहित्य का यह प्राचीनतम तथा महत्वपूर्ण पत्र होने के कारण यहां हम इसे अविकल रूप में उद्धृत करते हैं।

"स्वस्ति। यज्ञशरणात्सेनापतिः पुष्यमित्रो वैदिशस्थं पुत्रमायुष्मन्तमग्निमित्रं स्नेहात्परिष्वज्यानुदर्शयति। विदितमस्तु। यौऽसौ राजयज्ञदीक्षितेन मया राजपुत्रशत-परिवृतं वसुमित्रं गोप्तारमादिश्य संवत्शरौपावर्तनीयो निरर्गलस्तुरगो विसृष्टः स सिन्धोर्दक्षिरोधसि चरन्नश्वानीकेन यवनानां प्रार्थितः। ततः उभयोः सेनयोर्महानासीत्संमदः।

ततः परान्पराजित्य वसुमित्रेण धन्विना।
प्रसह्य ह्रियमाणो मे वाजिराजो निर्वतितः॥

सोऽहमिदानीमंशुमतेव सागरः पौत्रेण प्रत्याहृताश्वो यक्ष्ये। तदिदानीमकाल-हीनं विगतरोषचेतसा भवता वधूजनेन सह यज्ञसेवनायागन्तव्यमिति।[1]

इस प्रकार यह एक निमन्त्रण-पत्र है। ऐतिहासिक और राजनैतिक दृष्टि से

---

1. "मालविकाग्निमित्रम्" (अंक—५), संपा. एम. आर. काले, पृ. १०४-१०६।

इसका बहुत बड़ा महत्व है। प्रेषक और प्रेष्य दोनों ऐतिहासिक पात्र हैं।[1] प्रेषणीय बात अर्थात् अश्वमेध यज्ञ का निमन्त्रण भी एक ऐतिहासिक घटना है।[1]पत्र में उल्लिखित अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र और यवनों के युद्ध की घटना भी ऐतिहासिक है। इस प्रकार इस पत्र से अनेक ऐतिहासिक एवं राजनैतिक तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है। अतः श्री घनश्याम देवड़ा इसे प्राचीन भारत का प्रथम उपलब्ध ऐतिहासिक राजकीय पत्र मानते हैं।[3]

पत्र-लेखन की प्राचीन शैली की दृष्टि से भी यह पत्र महत्वपूर्ण है। इससे ज्ञात होता है कि प्राचीन पत्रों का आरम्भ "स्वस्ति" शब्द से होता था। तदनन्तर प्रेषक और प्रेष्य का उपाधि-सहित नामोल्लेख किया जाता था और तत्पश्चात् प्रेषणीय बात लिखी जाती थी। गद्य-पत्रों में आवश्यकतानुसार पद्य का भी प्रयोग होता था। हिन्दी के प्राचीन और मध्यकालीन पत्रों में भी हमें इसी परम्परागत पत्र-लेखन शैली के दर्शन होते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में तो प्रायः आज भी इसी शैली में पत्र लिखे जाते हैं।

---

1. "कालिदास (१९६७), महामहोपाध्याय डा. वि. वि. मिराशी, पृ. ३।

"कालिदास ने अपने मालविकाग्निमित्रं नाटक का कथानक शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र के चरित्र से लिया है। यह अग्निमित्र मौर्यवंश का उच्छेद कर मगध-साम्राज्य को छीनने वाले सेनापति पुष्यमित्र का पुत्र था। समय ईसा से लगभग १५० वर्ष पूर्व विद्वानों ने निर्धारित किया है।"

2. (क) महर्षि पतंजलि: "व्याकरण महाभाष्य," अध्याय-३ पाठ-२, आत्मिमक-१२३। मोतीलाल बनारसीदास, पटना, पृ. १८३।

"(वयं) पुष्यप्रित्रं याजयामः।"

(ख) पं. कृष्णदत्त वाजपेयी: "प्राचीन भारत में अश्वमेध यज्ञ (लेख), ना. प्र. पत्रिका, वर्ष-५२, अंक-१, पृ.-४।

"अयोध्या से मिले पाषाण लेख से ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र शुंग ने दो अश्वमेध यज्ञ किये थे।"

3. (क) महर्षि पतंजलि: व्याकरण महाभाष्य," अध्याय-३, पाठ-२, आह्निक-१११। मोतीलाल बनारसीदास, पटना पृ. १७६।

"अरुणात्त यवनः साकेतम्।"

(ख) डा. सत्यकेतु विद्यालंकार: "भारत का प्राचीन इतिहास" (१९६०) पृ. ४२८।

"पुष्यमित्र के शासन में यवनों ने भारत पर आक्रमण किया।"

4. "ज्ञानोदय," पत्र-विशेषांक, नवम्बर १९६३, पृ. २६५।

महाकवि कालिदास के अन्य दो प्रसिद्ध नाटकों "विक्रमोर्वशीयम्"[1] तथा "अभिज्ञान शाकुन्तलम्"[2] में क्रमशः उर्वशी तथा शकुन्तला द्वारा लिखे गये प्रेम-पत्रों का उल्लेख भी मिलता है। किन्तु ये दोनों ही पत्र पद्य में लिखे गये हैं। इन दोनों पत्रों में विरह-व्याकुल नारी-हृदय का सुन्दर चित्र अंकित किया गया है।

कालिदास के बाद संस्कृत के जिन साहित्यकारों की कृतियों में पत्रों का उल्लेख मिलता है उनमें कविवर दण्डी, बाण, विशाखदत्त, भवभूति, क्षेमेन्द्र, हरिश्चन्द्र आदि के नाम उल्लेख्य हैं।

कविश्रेष्ठ दण्डी (५ वीं-६ठी शताब्दी) के "दशकुमारचरित"[3] के पंचम उच्छ्वास में कथा-नायिका अवन्तिसुन्दरी अपनी सखी बालचन्द्रिका द्वारा राजकुमार को एक पत्र लिख भेजती है। यह पत्र भी पद्य में लिखा गया है और विरह-व्यथा से ओतप्रोत है। कथा के उपसंहार में प्रमुख राजकुमारों को आज्ञापत्र भेजने का उल्लेख भी मिलता है।[4]

महाकवि बाण (६ठी शताब्दी) की दोनों गद्य-कृतियों—"कादम्बरी" और "हर्षचरित" में पद्य और गद्य में लिखे गये अलंकृत पत्र प्राप्त होते हैं। "कादम्बरी" के महाश्वेता वृत्तांत में ऋषिकुमार पुण्डरीक ताम्बूलवाहिका तरलिका द्वारा महाश्वेता के नाम जो प्रणय-पत्रिका भेजता है, वह पद्य में लिखी गयी है,[6] किन्तु कादम्बरी वृत्तांत में तारापीड द्वारा अपने पुत्र चन्द्रापीड के नाम प्रेषित पत्र, कवि बाण की समास—बहुला गद्य-शैली का उत्तम नमूना है। चन्द्रापीड दीर्घकाल से परिवार और प्रजाजनों से दूर चला गया था, इसलिए तारापीड पत्र द्वारा उसे उज्जयिनी लौटने का आदेश देते हैं।

बाणभट की द्वितीय गद्य-कृति "हर्षचरित" में हर्षदेव के भाई कृष्ण द्वारा कवि बाण को लिखे गये और मेखलक नामक दूत द्वारा भेजे गये पत्र की चर्चा है। पत्र में केवल इतना ही लिखा गया है कि "मेखलक से सन्देश समझकर बुद्धिमान आप काम को बिगाड़ने वाली देरी मत करें, यहाँ इतना ही लिखा जाता है, शेष मौखिक सन्देश मात्र होगा[6]

---

1. देखिए:—"विक्रमोर्वशीयम्," अंक-२, श्लोक-१२,१३।
2. देखिए:—"अभिज्ञान शाकुन्तलम्," अंक-३, श्लोक-१५।
3. देखिए:—"दशकुमारचरित," पंचम उच्छ्वास, एम. आर. काले का अंग्रेजी अनुवाद, पृ. ५०।
4. वही, टीकाकार हरिहर शास्त्री, पृ. २६४।
5. देखिए:—"कादम्बरी" (पूर्वार्द्धम्), व्याख्याकार पं. मोहनदेव पंत, पृ. ५०४।
6. वही, पृ. ७१०।
7. "हर्षचरितम्" (उच्छ्वास-२) व्याख्याकार जगन्नाथ पाठक, पृ. ९०।

इस पत्र से ज्ञात होता है कि प्राचीनकालीन पत्र-व्यवहार में लिखित सन्देश के साथ मौखिक सन्देश भी भेजा जाता था। "हारावली" में दी गयी पत्र की व्याख्या में "वाचिक" अर्थात् मौखिक सन्देश का भी उल्लेख किया गया है।[1]

संस्कृत के प्रसिद्ध नाटककार श्री विशाखदत्त (७ वीं शताब्दी) ने अपने "मुद्राराक्षस" नामक नाटक में "कूटलेख" अर्थात् जाली पत्र के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। नाटक के तीसरे और पांचवे अंक में हमें चाणक्य द्वारा तैयार किये गये ऐसे कूटनीतिपूर्ण पत्र देखने को मिलते हैं। तीसरे अंक में चाणक्य चन्द्रगुप्त को एक प्रमाण-पत्र पढ़कर सुनाते है जिसमें चन्द्रगुप्त से विरत होकर मलयकेतु का आश्रय लेनेवाले व्यक्तियों की चर्चा है।[2] पांचवें अंक में राक्षस की मुद्रा चुराकर उससे तैयार किया गया कूट-लेख सिद्धार्थक नामक दूत द्वारा मलयकेतु के पास भेजा जाता है। ऐसे पत्रों में प्रेषक आदि के स्थान पर प्रायः "कुतोऽपि कोऽपि" आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है।[3] इस प्रकार मुद्राराक्षस के इन उल्लेखों से स्पष्ट होता है कि पत्र, विवाद और विशेष प्रसंगों में दस्तावेज़ का कार्य करते हैं।

"मुद्राराक्षस" के पांचवे अंक के "कूटलेख" के अंत में प्रयुक्त "लेखस्याशून्यार्थं"[4] शब्द से प्राचीन शिष्टाचार की एक विशिष्ट रीति का संकेत मिलता है। प्राचीनकाल में उच्च पदासीन व्यक्तियों को "सोपहार संदेश-पत्र" भेजने की परम्परा थी। बाण भट्टकृत" "हर्षचरित" में कुमार प्राग्ज्योतिषेश्वर द्वारा महाराज हर्षवर्धन को भेजे गये पत्र में भी "सन्देशमशून्यतां"[5] शब्द का प्रयोग किया गया है।

महाकवि भवभूति (७वीं-८ वीं शती) के "महावीरचरित्र" शीर्षक नाटक में परशुराम द्वारा लंकेश्वर रावण को प्रेषित पत्र का उल्लेख मिलता है। यह पत्र सम्बोधन-शैली के वैचित्र्य के कारण विशेष महत्व रखता है। इसमें पहले लंकेश्वर के बदले मंत्री माल्यवान् को सम्बोधित किया गया है।[6] शूर्पणखा

1. "हारावली," काव्यमाला संस्कृत सीरीज, पृ. ५४।
   "वर्ण दूतः स्वस्तिमुखो लेखो वाचिक हारकः।"
2. "मुद्राराक्षसम्" (अंक-३), टीकाकार डा. रमाशंकर त्रिपाठी, पृ. १७८।
   "स्वस्ति सुगृहीतनामधेयस्य देवस्य चन्द्रगुप्तस्यसहोत्थायिनां प्रधानपुरुषाणांमितोऽपक्रम्य वध्यमलयकेतुमाश्रिता प्रमाणलेख्य पत्रमिदम्।....................."
3. "वही, (अंक-५), पृ. २७०। "स्वस्ति यथास्थानं कुतोऽपि कोऽपि कमपि पुरुषविशेषमवगमयति अस्मत्प्रतिपक्षं निराकृत्य दर्शिता कापि सत्यता सत्यवादिना।....................."
4. "मुद्राराक्षसम्" (अंक-५), टीकाकार डा. रमाशंकर त्रिपाठी, पृ. २७२।
5. "हर्षचरितम्" (उच्छ्वास-७), व्याख्याकार जगन्नाथ पाठक, पृ. ३८३।
6. "महावीरचरितम्" (अंक-२), व्याख्याकार, रामचन्द्र मिश्र, पृ. २४।
   "स्वस्ति 'महेन्द्रद्वीपात्परशुरामोलंकायाममात्यं माल्यवन्तमभ्यर्हयति"

इस सम्बोधन-वैचित्र्य से विस्मित होकर बीच में प्रश्न भी उठाती है कि-" क्यों प्रभुपद की परिपाटी छोड़कर लिखा गया है ?" इस प्रश्न का उत्तर देते हुए माल्यवान् बताते हैं कि "इसी में परम माहेश्वर रावण को अभिनन्दित करके कहता है- आपको मालूम होना चाहिए कि हमने दण्डकारण्य तीर्थों में उपासना करनेवाले को अभयदान दिया है.......... ..... " इस प्रकार यह पत्र एक ओर जहां परशुराम और रावण के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है, वहां दूसरी ओर सामाजिक शिष्टाचार के व्युत्क्रम को भी प्रकट करता है । पत्र-लेखन की परिपाटी के अनुसार एक ही पत्र में जब मंत्री और राजा दोनों के प्रति सम्बोधन हो तब पहले राजा को सम्बोधित करना चाहिए । नाटककार ने सम्भवतः परशुराम की रोषयुक्त मनःस्थिति का संकेत करने के लिए इस विचित्र रीति को अपनाया होगा । जो भी हो, इस पत्र में परशुराम का तेजस्वी व्यक्तित्व स्पष्टरूप से झलकता है ।

कविवर क्षेमेन्द्र (११ वीं शताब्दी) के "बोधिसत्वावदानकल्पलता" शीर्षक ग्रंथ में अशोक के पुत्र कुणाल के सच्चरित्र, दृढ़ संकल्प और अपूर्व त्याग का वर्णन है । इसमें तक्षशिला के प्रधान व्यक्ति कुंजरकर्ण के नाम सम्राट अशोक की ओर से लिखे गये पत्र का भी उल्लेख है । वस्तुतः यह पत्र अशोक की पत्नी महारानी तिष्यरक्षिता ने युवराज कुणाल से बदला लेने के लिए लिखा था । सम्राट अशोक जब विदेश गमन पर थे, तब विमाता तिष्यरक्षिता ने कुणाल से एक कुप्रस्ताव किया जिसका कुणाल ने स्पष्ट इन्कार कर दिया और विमाता के प्रस्ताव की भर्त्सना की । इस भर्त्सना से उत्तेजित होकर तिष्यरक्षिता ने अशोक की मुद्रा से अंकित एक पत्र कुंजरकर्ण के पास भेजा जिसमें सम्राट की ओर से आदेश देते हुए कहा गया था कि मेरे दुश्चरित्र पुत्र को नेत्रविहीन कर देशनिकाला दिया जाय ।[1] इस प्रकार पत्र पर राजमुद्रा अंकित होने से कुंजरकर्ण ने आदेशानुसार निर्दोष एवं साधु-चरित्र कुणाल को अंधा बनाकर देश से निकाल दिया । "मुद्राराक्षस" के पूर्वचर्चित "कूटलेख" की तरह यह पत्र भी, राजकीय पत्रों में मुद्रा कितना महत्वपूर्ण स्थान रखती है, इस तथ्य की ओर संकेत करता है ।

कवि हरिश्चन्द्र (११वीं-१२वीं. शताब्दी) के "जीवन्धर चम्पू" में कई स्थलों पर विविध प्रकार के पत्र उपलब्ध होते हैं । चतुर्थ लम्भ में नायिका

---

1. "श्रीमदशोकदेवस्तक्षशिलाधिपं श्रीकुंजरकर्ण
सम्बोधयति यथा मे निरपत्रयः कुचरितमैत्री-
परिरत्रस्तचारित्रः पुत्रमुख शत्रुरपवित्रः—
पितृकलत्राभिलाषविपात्री कृतनेत्र शतपत्रः समुत्पा-
टितलोचनमणिनिर्वसनो निर्वस्यताम् ।"
—उद्धृतः "प्राचीन पत्र-लेखन" (लेख),
डा. हीरानन्द शास्त्री, "विशालभारत," जनवरी १९३८, पृ.६० ।

गुणमाला द्वारा नायक जीवन्धर के नाम लिखा गया पत्र विप्रलम्भ शृंगार का उत्तम उदाहरण है। इस पुस्तक में "पत्र" के लिए "पत्र" और "पत्रिका" शब्दों का ही प्रयोग किया गया है। अन्य कृतियों के समान पत्र के स्थान पर "लेख" शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। जैसे,"..................क्षणं नवकदलीकानने कालं क्षिपन्ती क्रमेण पत्रिकां विलिख्य कंचनक्रीडाशुकं जीवन्धराय प्रोहेषीत ।"[1] इस चम्पू के दसवें लम्भ में एक "कपट-पत्र" का उल्लेख भी मिलता है जो प्रति-नायक काष्ठांगार द्वारा नायक के मामा को लिखा गया है। इस तरह विविध प्रकार के पत्रों की दृष्टि से प्रस्तुत चम्पू एक उल्लेखनीय कृति है।

साहित्य की विभिन्न विधाओं में प्राप्त इन पत्रों के अतिरिक्त संस्कृत भाषा में स्वतंत्र रूप से लिखे गये कुछ पद्य-बद्ध पत्र भी मिले हैं। इस प्रकार के तीन पत्रों का उल्लेख डा. सुरेशचन्द्र बनर्जी ने "इण्डियन-हिस्टोरिकल क्वार्टरली" में प्रकाशित अपने एक लेख[2] में किया है। इनमें महाराज कनिक (प्रथम-द्वितीय शताब्दी) और बौद्ध भिक्षु नागार्जुन (तृतीय-चतुर्थ शताब्दी) से सम्बद्ध लेख विशेष महत्वपूर्ण हैं। महाराज कनिक को प्रेषित पत्र में कुल मिलाकर ८५ पद्य हैं और भिक्षु नागार्जुन द्वारा राजा उदयन को लिखे गये पत्र में १२३ पद्य हैं। ये दोनों ही पत्र प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रतीक हैं।

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी अपने "हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन" शीर्षक ग्रन्थ में भिक्षु नागार्जुन के पत्र का उल्लेख किया है। किन्तु यह पत्र राजा उदयन के नाम न होकर राजा सातवाहन के नाम है। "सुहृल्लेख" नाम से प्रसिद्ध इस पत्र का अनुवाद तिब्बती भाषा में अभी तक सुरक्षित है।[3] इन पत्रों से विदित होता है कि सुदूरवर्ती भारतीय व्यवहार में धार्मिक एवं प्रेरणात्मक पद्य-पत्र लिखने की प्रथा प्रचलित थी।

संस्कृत में मनीषियों के वैयक्तिक पत्रों की सुव्यवस्थित परम्परा १८वीं शताब्दी के उत्तरार्ध से देखने को मिलती है। डा. हीरालाल शुक्ल ने अपने शोध प्रबंध "आधुनिक संस्कृत साहित्य में पत्र लेखन" शीर्षक एक स्वतंत्र अध्याय में इस सम्बन्ध में विस्तार से चर्चा की है। उनके कथनानुसार "आधुनिक संस्कृत साहित्य में वैयक्तिक पत्रों का आरंभ करने का श्रेय श्रीमती मनोरमा तम्बुराटी (१७६०-१८२८) एवं तद्युगीन केरलाधिपति कार्तिक तिरूनाल महाराज को है। ये दोनों एक दूसरे पर आसक्त थे। दोनों विवाहित थे। अतः प्रेम परकीय था। दोनों के मध्य जिन प्रेम-पत्रों का आदान-प्रदान हुआ है, उन्हें तिरूवनंतपुरम् के

1. "जीवन्धर चम्पू" (लम्भ-४, श्लोक– ३१), भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, पृ.-८७।
2. A Study of the Epistolary and Documentary Literature in Sanskrit, I. H. Q., Spt. Dec. 1958, P. 226-27.
3. "हर्षचरित : एक सांस्कृतिक अध्ययन" (१९६४), पृ. २०२।

राजकीय संग्रहालय में (अमुद्रित) देखा जा सकता है।"[1]

इसके अतिरिक्त श्रीनिवास दीक्षित शास्त्री (१८५०-१९०१) के अनेक पत्र विविध संस्कृत पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं जिनमें साहित्यिक चर्चा अधिक है। कुच्चि रामवर्म (राजर्षि) वलिय तम्बुरान (१८५३-१९३२) के अनेक पत्र "राजकीय लेखमाला" में संग्रहीत हैं जिसका सम्पादन पुन्नरशेरि नीलकंठ शर्मा (१८५८-१९३५) ने किया था। इसमें सम्पूर्ण भारत का प्रतिनिधित्व देखने को मिलता है। श्री अप्पा शास्त्री राशि वडेकर (१८७३-१९१३) के द्वारा लिखे गये अब तक १४१ पत्र प्राप्त हुए हैं।[2] इस प्रकार संस्कृत का आधुनिककालीन पत्र-साहित्य विकास के पथ पर बराबर बढ़ रहा है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि संस्कृत साहित्य में प्राचीनकाल से लेकर अब तक अनेक महत्वपूर्ण पत्र उपलब्ध होते हैं। यद्यपि प्राचीन संस्कृत साहित्य में प्राप्त पत्र वैयक्तिक नहीं हैं, फिर भी इतिहास-प्रसिद्ध पात्रों एवं घटनाओं से सम्बन्धित होने के कारण पत्रसाहित्य की चर्चा में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। जैसा कि हम पूर्ववर्ती पृष्ठों में देख चुके हैं, संस्कृत में आधुनिककाल के आरम्भ से ही पत्र-साहित्य का एक स्वतंत्र विधा के रूप में विकास हो रहा है। अतः हम श्री नन्दकिशोर तिवारी,[3] आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी आदि विद्वानों के इस मत का समर्थन नहीं कर सकते कि संस्कृत साहित्य में पत्र-साहित्य का अभाव है। संस्कृत साहित्य में उपलब्ध पत्रों का सबसे बड़ा महत्व इस बात में है कि १९ वीं शती के पूर्वार्द्ध तक लगभग समस्त भारतीय आर्यभाषाओं में पत्र-लेखन की शैली संस्कृत की अनुवर्तिनी रही है। हिन्दी की प्राचीन पत्र-शैली भी इसका अपवाद नहीं है।

पाश्चात्य पत्र-साहित्य का संक्षिप्त विकास :

पत्र-साहित्य व्यक्ति के अंतर्बाह्य, उसके परिवेश और युग का रोचक और प्रभावशाली ढंग से ज्ञान कराने वाली विधा है। यही कारण है कि संसार की सभी विकासशील भाषाओं में पत्र-साहित्य को बड़ा महत्व दिया जाता है और उसके भण्डार में वृद्धि करने के लिए बराबर गम्भीर प्रयास होते रहते हैं। पाश्चात्य साहित्य में, विशेषतः अंग्रेज़ी में इसका खूब विकास हुआ है। अंग्रेजी में प्रकाशित विश्व-कोशों, समालोचना-ग्रंथों, पत्र-संग्रहों की भूमिकाओं आदि में पाश्चात्य पत्र–साहित्य का विस्तार से परिचय दिया गया है। हिन्दी में इसकी विस्तृत–चर्चा "चांद" के पत्र-विशेषांक तथा डा. रामअवध द्विवेदी के

1. "आधुनिक संस्कृत साहित्य" (१९७१), पृ. १५२।
2. "वही, पृ. १५५-५६।
3. "चांद," पत्रांक, मई १९२८, सम्पादकीय टिप्पणी।
4. "साहित्यानुशासनम्" (वि.सं. २०२६), पृ. १००१।

"साहित्यरूप" शीर्षक समीक्षा-ग्रंथ में मिलती है। इन सबको दृष्टि में रखते हुए यहां हम ग्रीक, लैटिन, अंग्रेजी आदि के पत्र-साहित्य का संक्षिप्त विकास क्रम निरूपित करते हैं।

"अमेरिकाना विश्वकोश" में प्रकाशित पत्र-साहित्य को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है[1] :—

(१) पुस्तक में तत्काल समावेश करने के उद्देश्य से लिखे गये पत्र,

(२) सामयिकों को लिखे गये पत्र और

(३) वैयक्तिक अथवा मैत्री-भाव से लिखे गये पत्र जो बाद में सामान्य पाठकों के लिए सुलभ हो जाते हैं।

इनमें से तृतीय श्रेणी के पत्र ही सबसे अधिक व्यापक और रोचक हैं। अतः हम इन पत्रों पर ही विचार करेंगे। यद्यपि ये पत्र सामान्य लोगों को लक्षित कर नहीं लिखे गये हैं, किन्तु इनमें निहित ज्ञान एवं मनोरंजन की बहुमूल्य सामग्री के कारण ही कालान्तर में प्रकाशित होकर सर्वसुलभ बन गये हैं।

पश्चिम में पत्र-साहित्य की परम्परा का आरम्भ भी अन्य साहित्य-रूपों के समान ग्रीक भाषा से ही माना जाता है। जिस प्रकार हमारे प्राचीनतम साहित्य का प्रारम्भ वैदिक संस्कृत से होता है, उसी प्रकार पश्चिम के सभी साहित्य-रूपों का उत्स ग्रीक में खोजा जाता है।[2]

ग्रीक में पत्रों को इतना महत्व दिया गया था कि प्रायः वक्तृता और अलंकार-शास्त्र की शिक्षा पत्रों द्वारा और पत्रों के रूप में दी जाती थी।[3] ग्रीक में पत्र–साहित्य का आरम्भ ईसा से लगभग छह शताब्दी पूर्व माना जाता है।[4] सबसे पहला ग्रीक पत्र–लेखक फेलेरीज (५७० ई. पू.) हुआ है। उसने १४८ पत्र लिखे हैं।[5] दूसरा प्रसिद्ध पत्र-लेखक हेलैनिक्स विश्वविख्यात दार्शनिक सुकरात का समकालीन था। उसके १२ पत्र अब भी सुरक्षित हैं। इसके बाद के पत्र-लेखकों में प्लेटो (४२७ ई.पू.) और ईसोक्रेट्स (४३६-३३८ ई.पू.) के नाम उल्लेख्य हैं। साहित्यिक दृष्टि से ईसोक्रेट्स के पत्र अपेक्षाकृत अधिक सुन्दर हैं। उसके नौ पत्र उपलब्ध होते हैं। ग्रीस की तत्कालीन सामाजिक और राजनैतिक

---

1. "Encyclopedia Americana," Vol,-17, p. 308.
2. A Letter Book", Edited by George Saintsbury, Introduction. "Besides, for practical purposes all our Literature begins with Greek."
3. नन्दकिशोर तिवारी: "चांद," पत्रांक, मई १९२८, सम्पादकीय विचार
4. -वही- –वही- -वही-
5. -वही- -वही- -वही-

स्थिति को समझने के लिए ये पत्र अत्यन्त उपयोगी हैं। इसी क्रम में आगे अरस्तू के पत्र उपलब्ध होते हैं। वह अपने समय में ग्रीक का सबसे बड़ा दार्शनिक था। उसके पत्र साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं हैं, किन्तु इनकी प्रसिद्धि इस बात में है कि ये अरस्तू द्वारा लिखे गये हैं। इसके बाद लगभग २५० वर्ष तक साहित्यिक दृष्टि से लिखे पत्र नहीं पाये गये। रोमन साम्राज्य के विस्तार के साथ ही ग्रीक भाषा और साहित्य से उसका सम्पर्क छूटता गया और शनैः शनैः वह लैटिन की ओर झुकता गया।

रोमन-साम्राज्य की स्थापना से पत्र-लेखन की कला का भी विकास हुआ। लैटिन का पत्र-साहित्य, ग्रीक की अपेक्षा अधिक समृद्ध है। यद्यपि पश्चिम की पत्र-लेखन कला में प्रौढ़ता पांचवीं शती ईसा पूर्व में आ गयी थी,[1] किन्तु पत्र-लेखन की स्वाभाविक क्षमता जो हमें सिसरो सेनका, प्लिनी आदि रोमन पत्र-लेखकों में दिखाई देतती है, वह ग्रीक पत्र-लेखकों में नहीं मिलती।

ट्लीयस सिसरो (१०६-४३ ई. पू.) का स्थान रोमन-पत्र-लेखकों में अग्रतम है। उसके द्वारा प्रेषित और प्राप्त पत्रों की संख्या क्रमशः ८६४ और ९० है। पत्र-लेखन को कला के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय उसी को दिया जाता है। प्रत्येक युग के सर्वोत्तम पत्रों में पाये जाने वाले तत्व-वार्तालाप की उत्कृष्टता और घनिष्ठ आत्मीयता उसके पत्रों में सर्वत्र विद्यमान हैं।[2] साहित्य के अतिरिक्त इतिहास की दृष्टि से भी उसके पत्र महत्वपूर्ण हैं।

सिसरो के बाद ल्यूसीयस सेनका (सी. ४ ई. पू.-६५ ई.) ने पत्र-साहित्य का भण्डार भरा। वह नीरो नामक रोमन सम्राट का शिक्षक था। उसने अपने मित्र के नाम १२४ नीति-विषयक पत्र लिखे हैं। इन पत्रों में हमें ओजपूर्ण संवाद की छटा दिखाई पड़ती है। इसके बाद के पत्र-लेखकों में युवा प्लिनी (६१। ६२—११४ ई.) का नाम विशेष रूप से स्मरणीय है। उसके द्वारा रोम के राजा त्रेजन को लिखे गये पत्रों में पूर्व के लोक-जीवन और व्यवहार की स्पष्ट झलक मिलती है। छठी शताब्दी में फ़िलोस्ट्रेटस, ऐल्सीफोन, लेबेनियस आदि प्रसिद्ध पत्र-लेखक हुए हैं। तीसरी से पांचवीं शताब्दी का पत्र-साहित्य ईसाई गिरजाघरों और उनके

---

1. J.T. Shipley: "Dictionary of world Literature" P. 249.
"In the west his maturity of the letter may be dated near the end of the 5th C.B.C. (in Greece)."
2. "Compton's Pictured Encyclopedia and Fact-Index", Vol.—8, P. 171.
"Letter writing as an art began, so far as we know, with Cicero. His letters have the Conversational Quality and personal touch that are found in the best letters of all ages."

पादरियों के कार्यों से ही विशेषत: सम्बन्धित था।

मध्ययुग में पत्रों का प्रचार तो अवश्य बढ़ा, किन्तु रिटारिक अथवा वक्तृता-शास्त्र के असीम प्रभाव से वे रूढ़िग्रस्त और निर्जीव होने लगे। इस कथन का एक ही महत्वपूर्ण अपवाद था। ग्यारहवीं शताब्दी में फ्रांस के एक नवयुवक विद्वान् एबिलार्ड ने अपनी प्रेयसी हेल्वायज़ा को जो पत्र लिखे थे, वे आत्मीयता और सहज संवेदना से ओत-प्रोत हैं। मध्यकाल के समाप्त होने पर पत्र फिर प्राचीन ग्रीक और लैटिन आदर्श की ओर झुके।[1]

अंग्रेजी पत्र-साहित्य का विकास-काल १५ वीं शताब्दी से आरम्भ होता है। इसमें सबसे पहला पत्र-संग्रह "पेस्टन टेलर्स," (१४२२-१५०९) शीर्षक से प्राप्त होता है। इसमें डेढ़ हज़ार से अधिक पत्र संगृहीत हैं। ये पत्र इंगलैण्ड के तत्कालीन इतिहास के अनेक महत्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं।

अंग्रेजी पत्र-साहित्य के इतिहास में १६ वीं तथा १७ वीं शताब्दी का भी विशेष महत्व है। इस काल में जिन लेखकों के पत्र प्रकाश में आये, उनमें फ्रांसीस बेकन (१५६१-१६२६), सर फिलिप सिडनी (१५५४-१५८६), जान डान (१५७१-१५७२-१६३१) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। डोरोथी ओस्वोन (१६२७-१६९५) द्वारा अपने भावी पति विलियम टेम्पल के नाम लिखे गये पत्र १७ वीं शती के सबसे सहज और मोहक पत्र हैं।

१८ वीं शताब्दी अंग्रेजी साहित्य के लिए एक दृष्टि से "पत्र-युग" ही था। प्रायः सभी व्यक्तियों ने पत्र लिखे और आश्चर्यजनक संख्या में उत्तम पत्र इसी शताब्दी में लिखे गये।[2] इस काल में पत्र-साहित्य की आश्चर्यजनक प्रगति में परिष्कृत डाक-सेवा का योग भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। परिष्कृत डाक-सेवा के कारण वैयक्तिक हँसी-मज़ाक और गपशप को पत्रों में स्थान मिला। इस शताब्दी का सर्वप्रथम पत्र-लेखक डीन जोनथन स्विफ़्ट माना जाता है। पत्रों में अन्तः स्फूर्त भावों को आकर्षक ढंग से व्यक्त करने की कला में वह अत्यन्त निपुण था।[1] उसके पत्र अंग्रेजी साहित्य की बहुमूल्य थाती हैं।

अंग्रेजी में वयक्तिक पत्रों को व्यवस्थित ढंग से सर्वप्रथम प्रकाशित करने का प्रयास एलेक्जेण्डर पोप (१६६६-१७४४) ने किया।[2] उसने स्विफ़्ट, ब्रुक

---

1. डा. रामअवध द्विवेदी: "साहित्यरूप" (वि. सं. २०२३) पृ. १४३
2. George Saintsbury : Editor "A Letter Book" (1922), Introduction, P. 21.

   "In eighteenth Century every body wrote letters ; and a surprising number of people wrote letter well."
3. "Letters of Great Writers" (1912), Edited by Hedley V. Taylor, Introduction, P. xxiv
4. "Encyclopedia Americana." Vol.—17, P. 309

आदि मित्रों को लिखे हुए पत्र पुनः प्राप्त किये और उन्हें सुव्यवस्थित ढंग से प्रकाशित किया। पोप के इस प्रयास के बाद कुछ लेखक सचेत होकर पत्र लिखने लगे। फिली डोर्मर आदि में यह प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दृष्टिगत होती है। इस शताब्दी के प्रमुख पत्र-लेखकों में चेस्टरफ़ील्ड, विलियम काउपर, ग्रे, चार्लसलेम्ब, एडीसन, गोल्डस्मिथ, जानसन आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

अर्ल चेस्टरफ़ील्ड द्वारा अपने पुत्र के नाम लिखे गये पत्र साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। विलियम काउपर (१७३१-१८००) अपने समय का श्रेष्ठ पत्र-लेखक था। डब्लू बैनहाम ने उसके पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित कराया है। स्वसम्पादित पत्र-संग्रह की भूमिका में श्री बेनहाम ने लिखा है कि काउपर के पत्रों का सौंदर्य, उसकी कविता के समान उसकी सहाजिकता एवं निष्कपटता में निहित है। अपनी प्रथम काव्य-रचना की तरह,उसने पत्र लिखते समय कभी उनके प्रकाशन का विचार नहीं किया।[1] इन्हीं विशेषताओं के कारण उसके पत्रों को सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है। ग्रे, लेम्ब, एडीसन, और गोल्डस्मिथ के पत्र भी साहित्यिक दृष्टि से उच्चकोटि के माने जाते हैं।

अंग्रेजी पत्र-साहित्य में डा. सैम्यूअल जानसन (१७०९-१७८४) के पत्रों को विशेष सम्मान प्राप्त है। उसके पत्रों का सम्पादन आर. डब्लू. चैपमैन ने तीन जिल्दों में किया है। चैपमैन साहब ने इस पुण्यकार्य में अपने जीवन के पच्चीस वर्ष लगा दिये थे। लन्दन से प्रकाशित "टाइम्स" के साहित्यिक विशेषांक[2] में चैपमैन महोदय द्वारा सम्पादित डा. जानसन के पत्रों पर विस्तृत समीक्षा प्रकाशित हुई थी। डा. जानसन के पत्र उसके व्यक्तित्व के अध्ययन के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं।

१९ वीं शताब्दी में भी पत्रों का प्रकाशन अविरल रूप से जारी रहा। इस शताब्दी के प्रसिद्ध पत्र-लेखकों में लार्ड बायरन (१७८८-१८२४) का स्थान महत्वपूर्ण है। उसका पत्र-साहित्य १३ खण्डों में प्रकाशित होने पर भी अपूर्ण है। "आइ माय हाट यूथ" खण्ड-१ के सम्पादक श्री लेसीआ मर्चन्ड ने बायरन के पत्रों की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि "यह बायरन के पत्रों की निश्छलता औक संवेदनशीलता ही है जो उन्हें १९ वी शताब्दी के ढेर सारे

---

1. "Letters of William Cowper" (1914), p. XI
"The Charm of Cowper's letters, like that of his poetry, lies first of all in his naturalness and sincerity" He never dreamt of his letters being published when he wrote them. It was so with his first poems."
2. " The Times Literary supplement" Friday September 18, 1953, p. 590.

साहित्यिक पत्र-व्यवहार से ऊपर उठा लेती है।[1]

इस शताब्दी के अन्य प्रारम्भिक पत्र-लेखकों में जॉन कीट्स (१७९५-१८२१), हर्टले कोलरिज (१७९६-१८४९), चार्ल्स डिकन्स (१८१२-१८७०) आदि के नाम स्मरणीय हैं।

कवि कीट्स के निजी पत्रों के सम्बन्ध में, जो उसने फेनी ब्राउन के नाम लिखे थे, बड़ा विवाद रहा। कुछ समीक्षकों को इन पत्रों में इन्द्रिय-लोलुपता का आभास हुआ तो कुछ आलोचकों ने महसूस किया कि जो कीट्स के प्रेम को नहीं समझ सकता,वह उसके काव्य को नहीं समझ सकता हर्टले कोलरिज के पत्रों का एक संग्रह सन् १९३६ ई. में आक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हुआ है जिस में अधिकतर पारिवारिक पत्र ही संकलित हैं। चार्ल्स डिकन्स ने अपनी पुस्तकों के समान अपने पत्रों में भी मनोरंजन की भरपूर सामग्री परोस दी है।

इस शताब्दी में कुछ दम्पत्तियों के बीच लिखे गये प्रेम-पत्र भी प्रकाश में आये, जिनमें श्रीमान और श्रीमती ब्राउनिंग, थॉमस कार्लाइल और जेन वेल्श आदि का पत्र-व्यवहार विशेष महत्व रखता है। फैनी ब्राउन द्वारा कवि कीट्स के नाम लिखे पत्रों का भी पृथक् महत्व है। सन् १८२० से १८२४ के बीच लिखे गये उसके पत्रों का एक संग्रह आक्सफर्ड युनिवर्सिटी प्रेस से प्रकाशित हुआ है। फेनी ब्राउन ने ये पत्र उस समय लिखे हैं जब उसकी उम्र केवल बीस वर्ष की थी। उसके पत्रों में प्रतिबिम्बित चारित्रिक विशेषताओं से यह प्रतीती होती है कि उसमें कवि कीट्स की पत्नी बनने की योग्यता पूर्णरूपेण विद्यमान थी ।[2]

इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में "लाइफ एण्ड लेटर्स" शीर्षक से अनेक पुस्तकें प्रकाशित हुई। इसी काल में जार्ज बर्नार्ड शॉ (१८५६-१९५०) ने एलेन टेरी और श्रीमती पेट्रीक कोम्पबेल के साथ हुए अपने पत्र-व्यवहार को प्रकाशित किया। एलेन टेरी के साथ हुए बर्नार्ड शॉ के पत्र-व्यवहार का महत्व प्रकट करते हुए श्री ओंकार शरद ने लिखा है कि " इन्हीं पत्रों से शॉ का वह प्रेमिक रूप भी संसार के सामने आया जिस रूप को दुनियां से वह सदा छिपाता रहा । एलेन टेरी की दो सौ प्रेमपगी पातियां और इससे कुछ कम संख्या में शॉ के पत्रों का संकलन विश्व के बौद्धिक प्रेमियों के लिए महान् प्रेरणा की वस्तु बना।"[3] एक अन्य प्रसिद्ध आयरिश कवि विलियम बटलर यीट्स (१८६५-१९३९) के पत्र भी इस शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रकाशित पत्र-साहित्य में अपना अलग स्थान

1. "I my hot youth" : Byron's Letters and Journals, Vol.-I (1973), Introduction, p. I.
2. "Letters of Fanny Browne to Fanny Keats" (2936), Edited by Fred Edgcumbe, Introduction, P. XIV.
3. "देखा, सुना, पढ़ा" : "गुम-शुदा चिट्ठियां," पृ. २३९।

रखते हैं। इस प्रकार अंग्रेजी का पत्र-साहित्य अत्यन्त विपुल एवं समृद्ध है।

फ्रांस और अमेरिका में भी पत्र-साहित्य का स्तरीय विकास हुआ है। फ्रांस के सबसे प्राचीन पत्रों में हेलपि (ए. डी. ११६४) और एबेलार्ड (१०७९-११४२) के पत्र उल्लेख्य हैं। पश्चिम के मध्ययुगीन पत्र साहित्य में अपनी सहज संवेदना के कारण पत्रों को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है। फ्रांसीसी पत्र-साहित्य हमें कला की दृष्टि से मेडम डी सेविंग (१६२६-१६९६) को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उसे "पत्र-लेखन की रानी" भी कहा गया है।[1] इसी प्रकार, नेपोलियन बोनापार्ट के बारे में कहा जाता है कि उसने अपने शासन-काल के दौरान ५४,००० से ७०,००० तक पत्र लिखे थे।[2] उसके अब तक ४१००० पत्र छप चुके हैं। इस प्रकार फ्रांसीसी भाषा का पत्र-साहित्य पर्याप्त समृद्ध है।

अमेरिकन पत्र-साहित्य की प्रगति भी प्रशंसनीय है। वहां बेंजामीन फ्रेंकलीन (१७०६-१७९०) और राल्फ एमर्सन (१८०३-१८८२) के पत्र कई खण्डों में प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त वर्तमान साहित्यकारों-मार्क ट्वेन, एमिली डिकिन्सन आदि के पत्र भी पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो गये हैं। एमिली डिकिन्सन को बचपन से ही पत्र-लेखन के प्रति गहरी दिलचस्पी थी।[3] उसके पत्रों के भी कई खण्ड निकल चुके हैं। इस प्रकार अमेरिका में भी पत्र-साहित्य का भण्डार भरने के लिए बराबर गम्भीर प्रयत्न होते रहे हैं।

पाश्चात्य पत्र-साहित्य के विकास को देखने से प्रतीत होता है कि पूर्व की अपेक्षा पश्चिम के देशों में पत्रों की सुरक्षा, उनके संग्रह और उनके सुव्यवस्थित प्रकाशन के प्रति अधिक सजगता बरती गयी है। पश्चिम की पत्र-लेखन कला में प्रौढ़ता ईसा की पाँचवी शती से ही आ गयी थी। सिसरो, सेनका, प्लिनी आदि के पत्र सफल पत्र-लेखन के अत्यन्त उत्कृष्ट नमूने प्रस्तुत करते हैं। मध्ययुग का पत्र-साहित्य वक्तृता-शास्त्र के व्यापक प्रभाव के कारण रूढ़िग्रस्त हो गया था,

---

1. "Compton's Pictured Encyclopaedia & Fact-Index", Vol.—13 P. 108.

"Beautiful, wity, warmhearted Madam De Sevinge has been called" Queen of letter-writing."

2. Napoleon's Letters" (1965). Translated and Edited by—Thompson," Price category"

"It has been variously estimated that during his reign as emperor Napoleon wrote 54,000, ar 64,000 or 70,000 letters."

3. "The Letters of Emily Dikinson," Vol.—I, Edited by—Thomas H. Johnson. P. 15.

परन्तु इस युग की समाप्ति के बाद वह पुनः अपनी क्लासिकल परम्परा से जुड़ गया।

पश्चिम में पत्र-साहित्य का सर्वाधिक विकास अंग्रेजी में हुआ है। इसमें प्रायः सभी प्रसिद्ध कवियों, लेखकों एवं चिन्तकों के पत्र-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। फ्रांस और अमेरिका में भी पत्र-साहित्य का यथेष्ट विकास हुआ है। इससे प्रकट होता है कि पश्चिम के लोग साहित्य के अन्य रूपों के समान महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों को भी बड़े चाव से पढ़ते हैं। वहां साहित्यकारों के पत्रों की लोकप्रियता उनकी साहित्यिक कृतियों से किसी प्रकार कम नहीं है। डा. जानसन, बायरन, कीट्स आदि के पत्रों का आलोचनात्मक एवं शोधपरक दृष्टि से अध्ययन भी किया गया है।

आगे हम देखेंगे कि पुनर्जागरणकाल में भारत को पश्चिम के अनेक देशों की सांस्कृतिक एवं साहित्यिक परम्पराओं से परिचित होने का अवसर प्राप्त हुआ। भारतीय साहित्य के विभिन्न अंगों के साथ पत्र-लेखन की प्राचीन एवं परम्परागत शैली पर भी पश्चिम का प्रभाव पड़ा। पाश्चात्य पत्र-साहित्य से प्रेरित-प्रभावित होकर हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं में प्रसिद्ध व्यक्तियों के पत्रों को संगृहीत कर प्रकाशित करने की प्रवृत्ति का आरम्भ हुआ। इस प्रकार पत्र-साहित्य के विकास की पृष्ठभूमि तैयार करने में पाश्चात्य पत्र-साहित्य का योग कम महत्वपूर्ण नहीं है।

हिन्दी पत्र-लेखन की प्राचीन परम्परा :

हिन्दी पत्र-लेखन की प्राचीन परम्परा के संकेत-सूत्र सर्वप्रथम हमें प्राचीन काव्य में उपलब्ध होते हैं। जैसा कि डा. प्रेमप्रकाश गुप्त ने कहा है, "प्राचीनकाल में पद्य की प्रधानता और गद्य की गौणता रही। राजनीति, वैद्यक, ज्योतिष, गणित आदि व्यावहारिक और वैज्ञानिक विषय भी उस समय पद्य में व्यक्त किये जाते थे : यहां तक कि पत्र-व्यवहार में भी पद्य का स्थान था।"[1] यद्यपि पद्य में लिखे गये प्राचीनकालीन पत्र आज अपने मूलरूप में प्राप्त नहीं होते, किन्तु प्राचीन काव्य में इतिहास-प्रसिद्ध व्यक्तियों के पत्र-व्यवहार के उल्लेखों से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय पत्र-व्यवहार में भी पद्य का स्थान रहा होगा।

इस दृष्टि से विचार करने पर सर्वप्रथम आदिकालीन रासो-ग्रंथों की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट होता है। "मेघदूत" और "सन्देशरासक" की सन्देश-परंपरा का निर्वाह रासो-ग्रंथों की महत्वपूर्ण विशेषता है। प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति के कारण राजाओं के वर्णनों पर आधारित होने पर भी इन ग्रंथों में काव्यात्मक सरलता आ गयी है। पत्र-लेखन का स्पष्ट उल्लेख "पृथ्वीराज रासो" के

1. "हिन्दी गद्य का विकास" (१९६६), पृ. ३२।

"पद्मावती-समय" नामक सर्ग में मिलता है। इसमें कवि ने पत्र-वाहक के रूप में तोते का उल्लेख करते हुए लिखा है कि वह तोता पत्र लेकर वायु के साथ आकाश में उड़ गया। वह आठ पहर में दिल्ली जा पहुँचा जहाँ पृथ्वीराज रहते थे।[1]

लोकगीतों में प्रेमिकाओं के पत्रों को उनके प्रेमियों के पास भेजे जाने के लिए अनेक उल्लेख मिलते हैं। जैसे, "खतु ले जा गंगाराम हमारे गौने को।" लोक-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् देवेन्द्र सत्यार्थी ने अपनी पुस्तक "बाजत आवे ढोल" में अनेक भाषाओं के लोकगीत संकलित किये हैं। एक पंजाबी लोकगीत में प्रिय की ओर से प्राप्त पत्र के सम्बन्ध में, प्रिया चांद को सम्बोधित करती हुई कहती है कि—"ढोला का खत आया," मैं इतना रोई, ओ चांद! मेरे चोले का गरेबान भीग गया।"[2]

कबीरदास को कभी पत्र लिखने की आवश्यकता ही महसूस नहीं हुई, क्योंकि उनके प्रियतम तो उनके तन-मन-नयन में ही समाये हुए थे।[3] महाकवि जायसी की नागमती प्रिय को सन्देश भेजते समय जीव-जंतुओं तथा पशु-पक्षियों के प्रति अपनी सहानुभूति भी व्यक्त करती है।[4] संत-शिरोमणि तुलसीदास ने अपने "रामचरित मानस" के राम-विवाह प्रसंग में राजा जनक द्वारा महाराज दशरथ को प्रेषित पत्र का वर्णन करते हुए लिखा है कि दूत ने प्रणाम करके महाराज को पत्र दिया और उन्होंने स्वयं उठकर ग्रहण किया। उस पत्र को पढ़कर महाराज हर्ष से विभोर हो उठे।[5]

गोस्वामी तुलसीदास द्वारा लिखी गयी "विनय-पत्रिका" एक दृष्टि से सेवक द्वारा अपने स्वामी के पास भेजा गया प्रार्थना-पत्र ही है। इसमें कवि ने तत्कालीन दरबारी पद्धति का अनुसरण किया है। अपने आराध्य देव राजा रामचन्द्र के दरबार में यह प्रार्थना-पत्र भेजते हुए कवि ने कहा है—स्वामी, मुझ दीन की यह विनय-पत्रिका आप स्वयं ही पढ़ियेगा। इसको मैंने हृदय में खूब मनन करके लिखा है। आप अपने शरणागत-वत्सल स्वभाव के अनुसार पहले इस पर अपने स्वीकृति सूचक हस्ताक्षर दीजिए और फिर बाद में यदि चाहें तो पंचायत के सदस्यों (सीता, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और हनुमान) से पूछ

---

1. "पृथ्वीराज रासो के दो अध्याय," संपा, भारतभूषण सरोज, पृ. १७८।
2. "बाजत आवे ढोल" (१९५२), पृ. ७८-७९।
3. "कबीर साखी-समीक्षा," पुष्पपालसिंह, पृ. ९०।
4. "जायसी ग्रंथावली" (सं. २०१३ वि.), संपा. रामचन्द्र शुक्ल, पृ. ४६।
5. "श्रीरामचरितमानस" (सं. २०११), बालकांड, गीता प्रेस, पृ. २९४।
   "करि प्रनामु तिन्ह पाती दीन्ही, मुदित महीप आपु उठि लीन्ही।
   बारि बिलोचन बांचत पाती, पुलक गात आई भरि छाती॥"

लीजिएगा ।[1] इस प्रकार यह पत्रिका तत्कालीन दरबारी पद्धति पर प्रकाश डालती है ।

महाकवि सूरदास के "भ्रमरगीत" में हमें श्रीकृष्ण द्वारा ब्रजवासियों तथा गोपियों के पास भेजे गये पत्रों के उल्लेख मिलते हैं जिनमें श्रीकृष्ण के विरह व्यथित हृदय तथा गोपियों के निर्मल प्रेम का सुन्दर चित्र अंकित किया गया है ।[2] बाबू वृन्दावनदास के अनुसार विनय-पत्रिका तथा सूर-विनय-पत्रिका पत्र-विधा के ही रूप हैं ।[3]

कहते हैं, जब राणा का अत्याचार अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया, तब राजरानी मीरां ने वेदना-निवेदन तथा आध्यात्मिक मार्ग दर्शन के लिए गोस्वामी तुलसीदासजी को एक पत्र लिखा था । सुखपाल नामक विप्र के साथ भेजे गये इस पत्र की चर्चा अनेक ग्रंथों में मिलती है । तुलसीदास पर लिखे गये प्राचीन जीवन-चरित ग्रंथ "मूल गोसांईचरित" में कहा गया है कि मेवाड़ से सुखपाल नामक एक विप्र मीरांबाई की पत्रिका लेकर आया जिसके उत्तर में तुलसीदासजी ने गीत और कवित्त लिख भेजकर हरि-भजन का सन्देश दिया ।[4] तुलसीदासजी के नाम लिखा गया मीरां का वह पत्र इस प्रकार है:—

"श्री तुलसी सुखनिधान दुखहरन गुसाई ।
बार हिं बार प्रनाम करूं अब हरो सोक समुदाई

---

1. "विनय-पत्रिका", संपा. डा. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी पृ. ५५६ ।
"विनय-पत्रिका" दीन की बापु ! आपु की बांचो ।
हिये हेरि तुलसी लिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पूंछिये पांचो ।"
2. "सूर-सारावली" (१९७०), संपा. डा. मनमोहन गौतम, पृ. ९५-९६ ।
(क) "पाती लिखी आप कर मोहन ब्रजवासी सब लोग ।
माता जसोदा पिता नन्दजू बाढ़ो विरह वियोग ।।"
(ख) "निरखत अंक श्यामसुन्दर को
बारि बारि लावत छाती,
लोचन जल कागद मसि मिली के
ह्वै गई स्याम स्याम की पाती ।"
3. "बाबू वृन्दावनदास से प्राप्त ११-४-१९७७ के पत्र से ।
4. मूल गोसाई चरित", दोहा—३१-३२ ।
"तब आयो मेवाड़ ते विप्र सुखपाल ।
मीरांबाई की पत्रिका लायो प्रेम प्रवाल ।
पढ़ि पाती उत्तर लिखे गीत कवित्त बनाय ।
सब तजि हरि भजिबो भलो कहि दिय विप्र पठाय ।"
(उद्धृत: तुलसीदास," डा. माताप्रसाद गुप्त, पृ. ४९)

बालापणे से मीरां कीन्हीं गिरधरलाल मिताई
सो तो अब छूटै नहि क्योंहू लगी लगन बरियाई
मेरे माता-पिता के सम है, हरि भगतन सुखदाई
हमह कहा उचित करिबो है, सो लिखियो समुझाई ॥"[1]

इसका एक और पाठ भी मिलता है जिसकी प्रथम पंक्ति है:—"स्वस्ति श्री तुलसी कुलभूषण दूषण हरण गोसाईं ।"[2]

विशुद्ध संस्कृत-शैली में लिखा गया यह पत्र हिन्दी के प्राचीन पद्य-पत्र का उत्कृष्ट नमूना है। विद्वानों का कहना है कि तुलसीदासजी ने इस पत्र के उत्तर में "जाके प्रिय न राम वैदेही" वाला प्रसिद्ध पद (गीत) और "सो जननी सो पिता सोई भ्रात" वाला सवैया (कवित्त) लिख भेजा था। श्री रामजीलाल ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि -" राघवेन्द्र के पदारविंद-मकरन्द में रात-दिन डूबे रहने वाले महात्मा ने भक्तहृदय की वेदना समझ ली, उन्हें इस बात का तनिक भी ध्यान नहीं था कि यदि उत्तर महाराणा के हाथ में पड़ेगा तो उसका भयानक परिणाम हो सकता है ।"[3] परंतु डा. माताप्रसाद गुप्त ने राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के "मीरांबाई की मृत्यु सं. १६०३ तक हो चुकीं थी—" इस कथन के आधार पर "मूलगोसांईचरित" के उस मत का खण्डन किया है कि सं. १६१६ में ही तुलसीदास को मेवाड़ से मीरांबाई द्वारा उक्त पत्र प्राप्त हुआ था।[4] इस प्रकार पत्र की प्रामाणिकता निश्चितरूपेण स्वीकार करने योग्य नहीं प्रतीत होती ।

"बेली क्रिसन रूकमणि री" के रचयिता पृथ्वीराज राठौड़ द्वारा महाराणा प्रताप के नाम लिखे गये पत्र की चर्चा भी अनेक विद्वानों ने की है। कर्नल टाड द्वारा लिखित राजस्थान के इतिहास में भी इस पत्र का उल्लेख मिलता है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने इस पत्र के आधार पर एक पत्र-गीति की रचना भी की है।[5] पृथ्वीराज राठौड़ एक स्वाभिमानी राजपूत और अच्छे कवि थे । बादशाह अकबर ने जब उनको महाराणा प्रताप का संधि-पत्र दिखलाया, तब उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ ।

---

1. (क) "मीरांबाई शब्दावली और जीवन-चरित," बेलवेडियर प्रेस, पृ. ४
   (ख) "मनोहर पत्र", संपा. सूर्य्यबलीसिंह, पृ. ४१६ ।
2. "मीरांबाई," डा. प्रभात, २१५ ।
3. "राजरानी मीरां के पत्र" (लेख), "मनोहर पत्र" (१९५६) संपा. सूर्य्यबली सिंह, पृ. ४१६ ।
4. "तुलसीदास" (१९६५), पृ. ४९ ।
5. "देखिए : "महाराज पृथ्वीराज का पत्र" (महाराणा प्रतापसिंह के प्रति) "पत्रावली" (सं. २०२७ वि.) पृ. ३-७ ।

उन्होंने उस पत्र को जाली माना और अकबर का आदेश लेकर दरबार के दूत के हाथ अपना एक पत्र महाराणा प्रताप के पास भेजा जिसमें निम्नलिखित दो सोरठिया दोहे थे—

"पातल जो पत साह, बोलै मुख हूंता बयरण
मिहर पछम दिस मांह, ऊगे कासप राव वत ।।
पटकूं मूंछा पाण, कै पटकूं निज तन करद ।
दीजे लिख दीवाण, इण दो महली वात इक ।।[1]

इस पत्र के उत्तर में महाराणा प्रताप ने जो पद्य-पत्र लिखा भेजा था, उसका उल्लेख भी अनेक इतिहासकारों ने किया है । इस पत्र-व्यवहार से ज्ञात होता है कि प्राचीनकाल में पद्य में भी सुन्दर पत्र लिखकर भेजे जाते थे । पं. मार्तण्ड उपाध्याय ने बिहारी के प्रसिद्ध दोहे नहिं पराग नहिं मधुर मधु" को राजा जयसिंह के नाम प्रेषित बिहारी का एक पत्र ही माना है ।[2]

उपर्युक्त उद्धरणों तथा विवेचन से हमें प्राचीन हिन्दी पत्र-लेखन की पद्यमय परम्परा का अच्छा परिचय प्राप्त हो जाता है ।

प्राचीन हिन्दी गद्य-पत्रों की परम्परा हमें अनेक जनपदीय बोलियों में उपलब्ध होती है । इन पत्रों के अध्ययन से पता चलता है कि हिन्दी का प्राचीन गद्य इतना क्षीण-हीन नहीं है जितना कि समझा जाता है । कुछ लोग केवल खड़ी बोली गद्य को ही महत्वपूर्ण मानकर उसी के विकास में प्राचीन हिन्दी गद्य का विकास देखते हैं, किन्तु यह दृष्टिकोण उचित नहीं है । इस सम्बन्ध में डा. जयकिसन प्रसाद का यह मत उल्लेख्य है कि—"हिन्दी गद्य का विकास केवल खड़ी बोली-गद्य का विकास नहीं है, वरन् ब्रजभाषा, राजस्थानी आदि उपभाषाओं का गद्य भी इसके अन्तर्गत आता है ।"[3]

हिन्दी की उपभाषाओं में राजस्थानी-गद्य सर्वाधिक प्राचीन है । डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने राजस्थानी गद्य की परम्परा का सूत्रपात दसवीं शताब्दी से माना है ।[4] राजस्थानी में उपलब्ध पत्रों का स्वरूप अधिकांशतः दस्तावेज़ी साहित्य जैसा है । डा. कोतमिरे के मतानुसार हिन्दी साहित्य के वीरगाथा-काल में राजस्थान भारत की संस्कृति एवं साहित्य का केन्द्र होने के कारण यहां प्राचीन-

1. "राठोड़ पृथ्वीराज का महाराणा प्रताप को प्रेषित पत्र" (लेख), अगरचन्द नाहटा, "हिन्दुस्तानी", जनवरी-दिसम्बर १९६४, पृ. ३४१ से उद्धृत ।
2. "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी पत्र-साहित्य" (लेख), "स्वतन्त्रता रजत जयंती अभिनन्दन ग्रंथ," संपा. गोपाल प्रसाद व्यास, पृ. ६०२ ।
3. "हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल" (१९६९), पृ. २२५ ।
4. "आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका" (१९७१), पृ. २६४ ।

तम पत्राभिलेख सुरक्षित हैं।[1] यह पत्र-सामग्री राजस्थान के सांस्कृतिक-राजनैतिक इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

प्राचीनतम हिन्दी-गद्य के रूप में महाराजा पृथ्वीराज और राजा समरसी से सम्बद्ध कुछ आज्ञा-पत्र हिन्दी की अनेक पुस्तकों में उद्धृत किये गये हैं।[2] यद्यपि इन पत्रों में पत्र-लेखन की परम्परागत शैली भी दृष्टिगत होती है और इनमें दी गयी तिथियाँ भी "पृथ्वीराज रासो" की तिथियों से प्रायः पूर्णतः मिलती हैं, तथापि इनकी भाषा में प्राप्त प्राचीन-अर्वाचीन शब्द-रूपों के कारण पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा आदि विद्वानों ने इन पत्रों की प्रामाणिकता में संदेह व्यक्त किया है। राजस्थानी-गद्य में पत्राभिलेख की प्रामाणिक सामग्री का संकलन कविराजा श्यामलदास कृत "वीर विनोद" शीर्षक ग्रंथ में किया गया है। डा. नारायणसिंह भाटी द्वारा सम्पादित "परम्परा" नामक पत्रिका के चौबीसवें भाग में महाराजा अजीतसिंह, मानसिंह, महाराणा संग्रामसिंह, सवाई जयसिंह, दुर्गादास राठौड़ आदि राजस्थान के अनेक ऐतिहासिक वीर-पुरुषों के पत्र प्रकाशित किये गये हैं। इन पत्रों में सबसे प्राचीन पत्र महाराजा सूरजसिंह और गजसिंह के समय का है। इस पत्र पर तिथि सम्वत् १६७१ जेठ वदि ८ है। ये पत्र भारतीय इतिहास की अनेक राजनैतिक घटनाओं पर प्रकाश डालते हैं।

"शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में आगरा की यात्रा (Shivaji's visit to Aurangzeb at Agra) शीर्षक पुस्तक में राजस्थानी में लिखे गये ६८ पत्र संकलित हैं। ये पत्र संवत् १७२२ से १७२४ वि. के बीच की अवधि में लिखे गये हैं। इन पत्रों का संपादन डा. जदुनाथ सरकार तथा डा. रघुवीर सिंह ने किया है। इन पत्रों में आगरे में शिवाजी की बादशाह औरंगजेब के साथ मुलाकात और वहां शाही कैद से उनके भाग निकलने का सुन्दर और सजीव भाषा में वर्णन किया गया है। अधिकतर पत्र आम्बेर के दीवान कल्याणदास को ही सम्बोधित हैं। बालु शाह द्वारा २० मई १६६६ ई. को लिखे गये एक पत्र का प्रारम्भिक अंश यहां हम उद्धृत करते हैं—

"सिधि श्री सरवोपमां जोगी संग ही श्री कल्याणदासजी जोगी लिषतं बलु केन्य जुहार बांच्य। औठा का समाचार भला छै। थांका सदा भला चाहिज्ये। अपरंच राजी सवाजी का वा पाती साह जी नौ मीलायाँ का समाचार तपशील वार आगौ लिषी भेज्या था स मालुम हुवा हौसी।"[3]

---

1. "हिन्दी गद्य के विविध साहित्य-रूपों का उद्भव और विकास" (१९५८), पृ. ३।
2. देखिए : (क) "भारतेन्दु-पूर्व हिन्दी-गद्य" (१९७४); कांतिकुमार, पृ. ७३-७४
   (ख) "हिन्दी गद्य का आविर्भाव और विकास", धर्मचन्द संत पृ. ६
3. "Shivaji's visit to Aurangeb at Agra" (1963) P. 31

लंदन के पुस्तकालयों में स्व. कर्नल टाड के संग्रह में, राजस्थानी में लिखित कुछ पत्र सुरक्षित हैं। इन पत्रों में से कुछ पत्र डा. केसरीनारायण शुक्ल ने "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के "हीरक-जयन्ती अंक" में "कतिपय राजकीय पत्र" शीर्षक से प्रकाशित किये हैं। इन पत्रों में सबसे पुराना पत्र संवत् १९७५ का है। यह पत्र महाराजा सवाई जयसिंह ने महाराणा संग्रामसिंह को लिख भेजा था।

उपर्युक्त राजकीय पत्रों के अतिरिक्त राजस्थानी में लिखे हुए जैन साधु-महात्माओं के पत्र भी प्राप्त होते हैं। इनमें कुछ आदेश-पत्र और कुछ विज्ञप्ति-पत्र हैं। इन पत्रों की भाषा-शैली पर संस्कृत पत्र-लेखन प्रणाली का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। उदाहरण के लिए बीकानेर से पं. लाधौजी द्वारा सं.१७५३ को जैन भट्टारक जिनचन्द्र सूरि को लिखे गये पत्र की प्रारम्भिक पंक्तियां देखिए—

॥ श्री ॥

॥ स्वस्ति श्री फलावधीत: । भ. श्री जिनचन्द्र सूरय: सर्फरकश: ॥ श्री-यथास्थाने सर्वगुणनिधान पंडित प्रवर विद्याविलासगणि योग्यं ।…………तुहानै ठाँणै ६ नो श्री बीकानेर नौ आदेश छै………"[1]

जैनों के विज्ञप्ति पत्रों में हमें चित्र-कला के विकास की झलक भी मिलती है। ये पत्र सचित्र होते थे। श्री अगरचन्द नाहटा ने अपने एक लेख[2] में जैसलमैर, पाटण, खंभात आदि के जैन ज्ञान-भाण्डारों में १२ वीं शताब्दी से १५ वीं शताब्दी तक के सचित्र पत्रों की विस्तार से जानकारी दी है। इस प्रकार राजस्थानी में प्राचीनकाल से सम्बन्धित प्रचुर पत्र-सामग्री सुरक्षित है।

ब्रजभाषा में लिखे गये प्राचीन पत्र बहुत कम मिलते हैं। इनमें १६ वीं शती के उत्तरार्द्ध में राधावल्लभ सम्प्रदाय के श्री हितहरिवंश जी द्वारा जूनागढ़ के दीवान श्री विट्ठलदास को लिखी गयी दो "श्रीमुखपत्रियों" की चर्चा कुछ ग्रंथों में मिलती है। एक पत्री का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है—

"श्रीमुख पत्री लिखति। श्री सकल गुण सम्पन्न रसरीति बहावनि चिरंजीव मेरे प्राननि के प्राण बीठलदास जोग लिखित श्री वृन्दावन रजोपसेवी श्रीहरिवंश जोरी सुमिरन बंचनौ। जोरी सुमिरन मत रहौ।
जोरी जो है सुख बरसत तुम कुसम स्वरूप हैं। तिहारे हस्ताक्षर बारम्बार आवत हैं। सुख अमृत स्वरूप है। बांचत आनन्द उमड़ि चलै है।…………"[3]

1. "राजस्थानी के कुछ प्राचीन पत्र" (लेख), शिवसिंह चोयल, सम्मेलन पत्रिका", भाग-५२, सं. १-२ पृ. १५०।
2. "देखिए:— "जैन चित्र-कला की एक विशिष्ट उपलब्धि : सचित्र विज्ञप्ति पत्र" (लेख), तुलसी-प्रज्ञा-१,…………पृ. २२।
3. "भारतेन्दु-पूर्व हिन्दी गद्य" ले. कांतिकुमार(१९७४), पृ.७८ से उद्धृत

इस पत्र में प्रयुक्त गद्य के स्वरूप को देखते हुए यह परवर्तीकालीन प्रतीत होता है। इस प्रकार ब्रजभाषा में प्राचीन पत्रों की परम्परा का विकास देखने को नहीं मिलता।

भोजपुरी, मैथिली आदि पूर्वी हिन्दी की बोलियों का गद्य प्रायः कागज-पत्रों के ही रूप में है।[1] डा. उदयनारायण तिवारी ने अपने शोध-प्रबन्ध "भोजपुरी भाषा और साहित्य"[2] में संवत् १७८५ के आसपास के कुछ कागज-पत्र उद्धृत किये हैं। इसी प्रकार के कुछ पत्रों की फोटो-प्रतिलिपियां श्री दुर्गाशंकर मित्र ने अपने "भोजपुरी के कवि और काव्य"[3] शीर्षक ग्रंथ में दी हैं।
हिन्दी के प्रचीन पत्र-लेखन की परम्परा में सबसे अधिक रोचक एवं आकर्षक पत्र हमें महाराजा छत्रसाल के मिलते हैं। ये पत्र बुन्देली में लिखे गये हैं, किन्तु इनमें खड़ी बोली-गद्य की छटा दिखाई देती है। संवत् १७८३ चैत्र बदि ११ को सवाई जयसिंह के नाम लिखे पत्र का एक अंश यहां उद्धृत किया जाता है:—

श्रीकृस्नोजयति

श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा सवाई जैंसिघ जू देव येते श्री महाराजाधिराज श्री महाराजा श्री राजा छत्रसाल जू देव के वाचनै आपर उहां के स्माचार भले चाहिजै इहां के स्माचार भले हैं आपर पाती आई. हकीकति जानी............[4]

मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित हिन्दी में लिखे हुए १८ वीं शती के २०८ पत्र डा. काशीनाथ शंकर केलकर के शोध-प्रबन्ध "१८ वीं. शती के हिन्दी पत्र" के परिशिष्ट-३ में संकलित हैं। इन पत्रों का लेखन-काल सन् १७०९-१८०० ई. है। इन पत्रों में वैयक्तिक पत्रों के अतिरिक्त टीप, सनद, आज्ञा-पत्र, कबज, अर्जदास्ति, रुक्का आदि सरकारी पत्र भी पाये जाते हैं। इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि हिन्दी उन दिनों आंतरप्रांतीय भाषा थी और इसमें राजकीय पत्र-व्यवहार होता था।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को शांतिनिकेतन के विद्याभवन से "पत्र-कौमुदी" की एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई। इसमें पत्र-लेखन के नियमों की सोदाहरण चर्चा की गई है। अन्य भारतीय भाषाओं के साथ इसमें पांच हिन्दी पत्रों के नमूने भी दिये गये हैं।[5] यद्यपि ये कृत्रिम पत्र हैं, फिर भी इनसे इस

1. "हिन्दी-गद्य का विकास" (१९६), डा. प्रेम प्रकाश गुप्त, पृ. १५८।
2. "देखिये:— 'भोजपुरी भाषा और साहित्य" (१९५४), परिशिष्ट-१ (ख)
3. देखिये:—"भोजपुरी के कवि और काव्य" (१९५८) अंतिम परिशिष्ट।
4. "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल" (१९७५), संपा. डा. महेन्द्र-प्रताप सिंह, पृ. ७९।
5. "२०० वर्ष पुराने खड़ी बोली के पत्रों के नमूने" "विशालभारत," अप्रैल १९४०, पृ. २६६-६७।

बात का प्रमाण मिलता है कि उस समय विशुद्ध संस्कृत शैली में पत्र लिखने का ढंग सिखाया जाता था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शासन काल में नागरी अक्षरों में लिखित लगभग १६० पत्र नेशनल आरकाइव्ज़, दिल्ली में सुरक्षित हैं। इनमें से १४५ पत्र डा. धीरेन्द्र वर्मा तथा डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा सम्पादित "प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" शीर्षक पुस्तक में संकलित हैं। इनमें कम्पनी सरकार के शासकों, देशी नरेशों, नवाबों, ज़मीदारों, कानूनगो आदि के पत्रों के अतिरिक्त सरकारी घोषणाएं, इश्तहार, सनदें, परवाने, इक़रारनामे, अदालती बयान आदि कागज-पत्र भी सम्मिलित हैं। यद्यपि इनकी भाषा में किसी एक आदर्श साहित्यिक रूप के दर्शन नहीं होते और लेखक की अपनी क्षेत्रीय भाषा के प्रभाव अनिवार्य रूप से विद्यमान हैं, तथापि अनेक भाषाओं और बोलियों के मिश्रण के पीछे भी खड़ी बोली का ढांचा स्पष्ट झलकता है। जैसे, "एक घरी दीन चढ़ा था। तब हम दारागा रामलोचन के पास रोजी के वाशते जो दश तक चीठी ढोते हैं गए थे। उहा शो अपने घर को चले।"[1] कुछ पत्रों में उर्दू-शैली की झलक भी मिल जाती है। जैसे, श्री श्री बडा साहब गरीब प्रवर सलांमति सरकार का खैरसलाह मोंदय बेहतर चाहिये जिस्ते वास्ते हमारा भला होय।"[2] इस प्रकार इन पत्रों से एक ओर जहां इतिहास की अनेक राजनैतिक घटनाओं की जानकारी मिलती है, वहां दूसरी ओर उन्नीसवीं शताब्दी की देशी-पत्र-लेखन शैली का परिचय भी प्राप्त होता है।

डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने शोध-प्रबन्ध "आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका" में फोर्ट विलियम कालेज के पंडितों- श्री लल्लुलाल जी और योगध्यान मिश्र के कुछ पत्र भी उद्धृत किये हैं। इनमें पं. योगध्यान मिश्र ने "प्रेमसागर" का एक नया संस्करण प्रकाशित करने के लिए सरकारी सहायता हेतु जो प्रार्थना-पत्र १ जुलाई सं. १८४१ को लिखा था, वह भाषा के स्वरूप तथा पत्र-लेखन शैली की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसका आरम्भ संस्कृत की परम्परागत शैली के अनुसार हुआ है। यथा—

"स्वस्ति श्रीयुत फ़ोर्ट उलियम कालेज के नायक सकल गुणनिधान भगवान कपतान श्री मार्सल साहब क निकट मुज दीन की प्रार्थना............"[3]

सन् सत्तावन के क्रांतिकारियों-झांसी की रानी, तांत्या टोपे, राजा मर्दनसिंह

---

1. "प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" (१९५९), पृ. ९।
2. -वही-, पृ. १८।
3. "आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका" (१९७१), पृ. ३६४

राजा बखतअली आदि से सम्बन्धित कुछ पत्र पं. गौरीशंकर द्विवेदी ने "नया-संसार" में प्रकाशित किये हैं।[1] इन पत्रों में भी हमें परम्परागत शैली के दर्शन होते हैं और सन् सत्तावन की क्रांति के अनेक अज्ञात सूत्र प्राप्त होते हैं।

इस प्रकार हिन्दी पत्र-लेखन की प्राचीन परम्परा के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन एवं मध्यकाल में मुस्लिम शासन की स्थापना से संस्कृत भाषा और उसके साहित्य की परम्परा अन्य क्षेत्रों में भले ही क्षीण हो गयी हो, परन्तु पत्र-लेखन के क्षेत्र में वह आधुनिक काल के आरम्भ तक पूर्ण रूप से सुरक्षित रही है। प्राचीन हिन्दी काव्य में प्राप्त पत्र-लेखन के उल्लेखों तथा प्राचीन कवियों के लोक-विश्रुत पत्र-व्यवहार से हिन्दी-पत्र-लेखन की पद्यमय परम्परा का संकेत मिलता है। हिन्दी-गद्य में पत्र-लेखन की सबसे प्राचीन परम्परा हमें राजस्थानी में उपलब्ध होती है। महाराजा छत्रसाल द्वारा बुंदेली में लिखे गये पत्र अत्यन्त रोचक एवं मधुर हैं। भोजपुरी, मैथिली आदि पूर्वी हिन्दी की बोलियों का गद्य प्रायः कागज-पत्रों के ही रूप में मिलता है। यद्यपि प्राचीनकाल में लिखे गये पत्रों में साहित्यिक चर्चा नहीं मिलती, किन्तु देश के सांस्कृतिक तथा राजनैतिक इतिहास के अध्ययन के लिए इनका बहुत बड़ा महत्व है। हिन्दी भाषा के रूपात्मक विकास की दृष्टि से भी ये पत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। सारांशतः हिन्दी पत्र-साहित्य के अध्ययन में प्राचीन पत्र-धारा का अपना विशिष्ट स्थान है।

आधुनिकता, नवजागरण और पत्र-साहित्य :

भारत में आधुनिक सभ्यता का उदय सन् १८५७ के विप्लव के बाद हुआ। हिन्दी प्रदेश में नवजागरण का आरम्भ इसी विप्लव से हो गया था। इससे पहले का अंग्रेजी राज्य कानून और व्यवस्था की अपेक्षा अत्याचार और सैन्य-बल का राज्य अधिक था। देश में आये दिन अंग्रेजी फौज का दमन-चक्र चलता रहता था। अंग्रेजों की इस दमन-नीति के विरुद्ध देश-व्यापी विद्रोह के रूप में भयंकर प्रतिक्रिया हुई।[2] इस प्रतिक्रिया से अंग्रेजों की आंखें खुल गयीं और उन्होंने महसूस किया कि भारत पर अपने राज्य को चिर-स्थायी बनाने के लिए भारतीयों के शरीर को ही नहीं, दिल को भी जीतना होगा। विप्लव के बाद सन् १८५८ ई. में नई सरकार की स्थापना हुई। राज्य की बागडोर "ईस्ट-इंडिया कम्पनी" के हाथ से निकल कर महारानी विक्टोरिया के हाथ में चली गयी। इसके साथ ही देश में आधुनिकीकरण की प्रक्रिया का नवीनीकरण हुआ। यातायात के साधनों

---

1. "देखिए: सन् सत्तावन की ऐतिहासिक पत्रावली" (लेख) "नया संसार," गणतंत्र-अंक १९६६, पृ. १२।
2. अंग्रेजों की दमन-नीति और विद्रोहियों के प्रतिकार के यथार्थ एवं विस्तृत विवरण के लिए देखिए : "गदर के पत्र", अनु. आचार्य चतुरसेन शास्त्री, कथा—२,३,४ पृ. ५९-९६।

में परिवर्तन हुआ, खेलों का विस्तरण हुआ और आधुनिक ढंग की डाकतार व्यवस्था का प्रचलन हुआ।

यद्यपि अंग्रेजों ने इस देश में नयी अर्थ-व्यवस्था, औद्योगिकता, संचार-सुविधा, डाकसेवा, मुद्रण-व्यवस्था आदि को अपने निजी स्वार्थों के लिए स्थापित किया था, तथापि इससे देश का हित हुआ। एक स्थिर व्यवस्था से छूटकर देश को नूतन गत्यात्मकता का अनुभव हुआ। पाश्चात्य जगत् के अनेक देशों की राजनैतिक गतिविधियों, सामाजिक रीति-रिवाजों तथा साहित्यिक परपराओं से भारतीय शिक्षित वर्ग का सम्पर्क हुआ। पुरानी परम्पराएं धीरे-धीरे टूटने लगीं। नये परिवेश में, ऐतिहासिक मांग के फलस्वरूप लोग अपने को नये ढंग से ढालने लगे।

भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् जहां भारतीय जीवन-पद्धतियों एवं विचारधाराओं में परिवर्तन हुआ, वहां साहित्य के स्वरूप और गठन में भी परिवर्तन हुआ और यह बिलकुल स्वाभाविक भी था। साहित्य की विभिन्न शैलियों एवं उसके विविध रूपों के साथ पत्र-लेखन की प्राचीन या परम्परागत शैली पर भी पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पड़ा। इसकी जटिलता और औप-चारिकता धीरे-धीरे घटने लगी। आधुनिक ढंग की डाक-सेवा के कारण अब पत्रों के आदान-प्रदान में मध्यस्थ की आवश्यकता न रही। फलतः पत्र अब आत्मीय वाताबरण का रूप धारण करने लगा।

आधुनिक युग में प्रेस की सुविधा से पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ हुआ और समाज के शिक्षित वर्ग में साहित्य के प्रति अभिरुचि बढ़ने लगी। लेखक का सम्पादक के साथ सम्बन्ध स्थापित हुआ और दोनों के बीच पत्र-व्यवहार भी होने लगा। पाठक भी सम्पादकों के पास पत्र भेजकर सार्वजनिक समस्याओं तथा पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों, निबन्धों आदि पर अपनी प्रतिक्रियाएं व्यक्त करने लगे। इस प्रकार पत्र-लेखन के क्षेत्र में एक नया दौर शुरू हुआ। पहले जहां केवल राजनैतिक, सामाजिक और व्यावसायिक दृष्टियों से ही पत्र लिखे जाते थे, वहां अब साहित्यिक दृष्टि से भी पत्र लिखे जाने लगे। दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं में अन्य साहित्य-सामग्री के साथ प्रसिद्ध साहित्यकारों, समाजसेवियों और राजनयिकों के पत्र भी प्रकाशित होने लगे। पाश्चात्य पत्र-साहित्य से प्रेरणा ग्रहण कर, नवजागरण के तीसरे चरण में युगविधायक विभूतियों के वैयक्तिक पत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने लगे। डा. विश्वनाथ शुक्ल ने लिखा है कि—

"आधुनिक युग में हिन्दी तथा अन्य भारतीय भाषाओं में महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों को संगृहीत कर प्रकाशित करने की प्रवृत्ति पश्चिम से आई है। पत्रों को साहित्य का अंग मानने और उन्हें साहित्य, संस्कृति, राजनीति, इतिहास और सामाजिक गतिविधियों के मर्म को समझने के एक अमोघ साधन

के रूप में ग्रहण करने की प्रेरणा भी हमें पाश्चात्य साहित्य से मिली है।"[1]

इस प्रकार कतिपय अन्य गद्य-विधाओं, जैसे रेखाचित्र, संस्मरण, इण्टरव्यू, रिपोर्ताज आदि के समान पत्र-साहित्य का एक पृथक् विधा रूप में विकास आधुनिक युग में ही हुआ है। पत्र-लेखन के शिल्प और शैली में अनेक प्रयोग भी आधुनिक युग में ही देखने को मिलते हैं। आगे हम देखेंगे, आधुनिक युग कर्णधार और नवजागरण के अग्रदूत भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने पत्र-लेखन के क्षेत्र में कलात्मक प्रयोगों से नवीनता की सृष्टि की है। इस प्रकार पत्र-साहित्य के विकास में भारतीय नवजागरण की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

हिन्दी में पत्र-साहित्य का विकास

भारतेन्दु द्वारा निर्मित नये चाल के पत्र :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी-साहित्य की अन्यतम विभूति थे। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में आधुनिक काल का आरम्भ "भारतेन्दु-युग" से होता है। "हिन्दी-साहित्य में भारतेन्दु-युग नूतन प्रवृत्तियों, नयी दिशाओं और साहित्य के विभिन्न आयामों की खोज के लिए सदैव स्मरणीय रहेगा तथा इस युग की उपलब्धियों को मूल्यवान समझा जायेगा। भारतेन्दु ने साहित्य की विभिन्न विधाओं में स्वयं रचना की और अन्यों को भी प्रेरणा दी थी।"[2] हिन्दी-गद्य के लिए नये स्वरूप की स्थापना करने का श्रेय भी उन्हीं को दिया जाता है। उन्होंने नयी विधाओं को अपनाने के साथ हिन्दी को एक नये साँचे में ढाला।[3] उनकी दीर्घ दृष्टि ने हिन्दी का भविष्य आंक लिया था और उसके मार्ग में आनेवाली रुकावटों से वे भली भांति परिचित थे। उनका "निज भाषा उन्नति अहै" वाला पद उनके उद्देश्य को सही माने में अभिव्यक्त करता है। अपना तन, मन, धन सब कुछ दाँव पर लगाकर वे अपनी मण्डली के साथ हिन्दी भाषा की श्रीवृद्धि में जुट गये। इस पर असाधारण कार्य के परिणामस्वरूप ही हिन्दी में उन्हें आधुनिक युग का प्रवर्तक माना जाता है।[4]

---

1. "हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास," चतुर्दशभाग (सं. २०२७ वि.), संपा. डा. हरवंशलाल शर्मा, पृ. ५०८।
2. "डा. दयाशंकर शुक्ल : हिन्दी साहित्य को दत्त द्विजेन्द्र की देन" (१९७८), आमुख पृ. ३।
3. "रामचन्द्र तिवारी :"हिन्दी का गद्य-साहित्य" (१९५५), पृ. ३३।
"निश्चय ही भारतेन्दु-युग आते-आते हिन्दी-गद्य में युगान्तर उपस्थित हो गया था और हिन्दी नये चाल में ढलने लगी थी।"
4. मदन गोपाल : "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९७६), आमुख, पृ. ५।

जिस प्रकार हिन्दी साहित्य के अन्य क्षेत्रों में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के द्वारा नवीनता की सृष्टि की है, उसी प्रकार हिन्दी में नये चाल के पत्र भी उन्होंने ही चलाये ।[1] पत्र-लेखन कला के सम्बन्ध में उन्होंने "प्रशस्ति-संग्रह अथवा पत्र-बोध" नामक एक छोटी-सी पुस्तक लिखी है जो खंगविलास प्रेस से प्रकाशित हुई थी ।[2] यह पुस्तक इस समय अप्राप्य है । इसकी एक टंकित प्रति भारतकला भवन, बनारस में सुरक्षित है प्रस्तुत पुस्तक के आरम्भ में भारतेन्दु ने प्राचीन पत्र-लेखन शैली पर भी अपने मौलिक विचार व्यक्त किये हैं । प्राचीन पत्र-शैली की समीक्षा के बाद उन्होंने स्वनिर्मित "नये चाल के पत्र" की विस्तार से जानकारी दी है । अपने नये चाल के पत्रों की कलात्मक विशेषता के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :

"हमने अपने पत्रों के लिखने के हेतु सात वार के भिन्न-भिन्न रंग के कागज़ और उनके ऊपर के दोहे आदि बनाये थे । इनमें लाघव यह है कि बिना वार का नाम लिखे ही पढ़नेवाला जान जायेगा कि अमुक वार को पत्र लिखा गया है ।[3]

इस प्रकार भारतेन्दु जी सात वार को उनके वर्ण के कागज़ पर ही पत्र लिखते थे ।[4] वे पत्रों के अन्तर्बाह्य रूप में अपनी सहज भावुकता और कलात्मकता का समावेश कर देते थे ।

शनि से शुक्र तक के सातों वार के पत्रों के लिए प्रयुक्त भिन्न-भिन्न रंग के कागज तथा उन पर मुद्रित भिन्न-भिन्न शीर्षक क्रमशः इस प्रकार हैं :

वार	कागज़ का रंग	मुद्रित शीर्षक और दोहा
शनि	नीला	श्रीश्यामा श्यामाभ्यांनमः, श्रीकृष्णायनमः और काज शनि लिखन में मोह न लेखनि मंद मिलै पत्र उत्तर अवसि यह विनवत हरिचंद ।

1. (क) बाबू श्यामसुन्दरदास : "राधाकृष्ण ग्रंथावली" (१९३०), पृ. ४०६ ।
"हिंदी में कितने ही चाल के पत्र, कितनी ही चाल की नई बातें इन्होंने (भारतेन्दु ने) चलाईं ।"
(ख) प्रो. तारकनाथ अग्रवाल : "भारतेन्दु परिचय" (लेख), "भारतेन्दु-कला," संपा. शिवाधार पाण्डेय, पृ. ९४ ।
हिंदी में नये चाल के पत्र इन्होंने चलाये ।"
2. देखिए : "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९६२), ब्रजरत्नदास, परिशिष्ट (ई) में दी गयी भारतेन्दु की रचनाओं की सूची, पृ. ३११ ।
3. भारत कला भवन, बनारस में सुरक्षित "प्रशस्ति-संग्रह" की टंकित प्रति, सं. ४।३८११, पृ. ७ ।
4. "प्रशस्ति-संग्रह," भारत कला भवन, बनारस में सुरक्षित टंकित प्रति, सं. ४। ३९१२, पृ. ३८११, पृ. ७ ।

वार	कागज़ का रंग	मुद्रित शीर्षक और दोहा
रवि	गुलाबी	भक्त कमल दिवाकराय नमः मित्र पत्र बिनु हिय लहत छिनहूँ नहिं विश्राम प्रफुलित होत न कमल जिमि रवि उदय ललाम
सोम	सफेद	श्रीकृष्णचन्द्रायनमः, लक्ष्मीमुखचन्द्रायनमः बंधुन के पत्र हि कहत अर्थ मिलन सब कोय। आपहु उत्तर देहु तौ पूरो मिलन होय ॥
मंगल	लाल	मंगलमूर्तिविजयति, व्रजसार्वभौमायनमः मंगलं भगवान् विष्णु मंगलं गरुडध्वजम् मंगलं पुंडरीकाक्षं मंगलायतनं हरिम् ॥
बुध	हरा	विबुधश्रेष्ठायनमः बुधराधितचरणायनमः बुध जन दर्पण में लखत दृष्ट वस्तु को चित्र। मन अनदेखी वस्तु को यह प्रतिबिम्ब विचित्र।
गुरु	पीला	गुरवेनमः, गुरुगोविन्दायनमः आशा अमृत पात्र प्रिय विरहाताप हित छत्र। वचन चित्र अवलम्बपद कारज साधक पत्र ॥
शुक्र	श्वेत	कविकीर्तियज्ञसे नमः दूर रखत कर लेत आवरन हरत राखि पास। जानत अंतर भेद जिय पत्र पाथिक रस रास ॥

नये चाल के पत्रों के साथ लिफाफों के ऊपर पत्र के आशय प्रकट करने वाले वाक्यों या शब्दों के नये चाल के वेफर भी भारतेन्दु जी ने छपवा रखे थे जिन पर "सलाम," "प्रेम," "कुशल," "शीघ्र," "और कोई न खोले,' "गुप्त," "आवश्यक," "शीघ्र उत्तर," आदि शब्द रहा करते थे।[1]

इससे प्रकट होता है कि हिन्दी-साहित्य में जैसे अन्य क्षेत्रों में भारतेन्दु जी द्वारा नवोन्मेश लाया गया, वैसे ही पत्र-लेखन के क्षेत्र में भी उन्होंने नावीन्य प्रदर्शित किया। उन्होंने स्वयं अनेक साहित्यिक पत्र लिखे और अपने सहयोगियों को भी पत्र-लेखन की ओर प्रेरित किया। सम्भवतः इसी कारण डा. शांति खन्ना ने अपने "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" शीर्षक शोध-प्रबन्ध में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को "हिन्दी का सर्वप्रथम पत्र-लेखक" माना है,[2] यद्यपि

1. "प्रशस्ति-संग्रह" भारत कला भवन, बनारस में सुरक्षित टंकित प्रति, सं. ४। ३८११, पृ. ८।
2. "आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य" (१९७३), पृ. ३४१। "हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम पत्र-लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हुए हैं।"

उन्होंने अपने प्रबन्ध में कहीं भी "प्रशस्ति-संग्रह अथवा पत्र-बोध" नामक पुस्तक का उल्लेख नहीं किया है।

यद्यपि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और उनके सहयोगी साहित्यकारों ने अनेक पत्र लिखे हैं, किन्तु भारतेन्दु-युग में किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के पत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित नहीं हुए हैं। इस युग के सामयिकों में प्रसिद्ध व्यक्तियों के पत्र अवश्य प्रकाशित हुए हैं, परन्तु पत्रों के स्वतंत्र संग्रहों का प्रकाशन द्विवेदी-युग में ही आरम्भ हुआ। भारतेन्दु और द्विवेदी-युग के संधिस्थल पर स्थित बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने "भारत मित्र" में जो "शिवशम्भु के चिट्ठे" प्रकाशित किये, वे वैयक्तिक पत्र न होकर खुले पत्र थे। बहुत से आलोचक उन्हें "व्यंग्यात्मक राजनैतिक निबंध" अथवा "व्यक्तिपरक-निबंध" मानते हैं।[1] इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के प्रयास से हिंदी पत्र-लेखन के क्षेत्र में नवोन्मेश का संचार हुआ और साहित्यकारों तथा अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों के पत्र, दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे। आगे चलकर वे पत्र स्वतंत्र संग्रह के रूप में प्रकाशित हुए।

हिन्दी में महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों को संगृहीत कर पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने की प्रवृत्ति का सूत्रपात द्विवेदी-युग में हुआ है। अतः इतिहासकारों ने हिंदी गद्य-साहित्य की अन्य दो विधाओं-यात्रावृत्त और संस्मरण के साथ पत्र-साहित्य का विधवत् प्रवर्तन द्विवेदी-युग से माना है।[2] यहां उल्लेख्य है कि इतिहास-लेखकों ने व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संग्रह को ध्यान में रखकर ही हिंदी में पत्र-साहित्य का विधिवत् प्रवर्तन स्वीकार किया है। अतएव जिस पत्र-संग्रह के प्रकाशन से हिंदी में पत्र-साहित्य का विधिवत् सूत्रपात हुआ, उस पत्र-संग्रह की यहां पृथक् रूप से चर्चा अपेक्षित है।

हिन्दी का प्रथम पत्र-संग्रह :

हिंदी में तथ्याश्रित ललित साहित्य की उपेक्षित विधाओं की ओर आर्य-

---

1. देखिए :—
   (क) डा. कल्याणमल लोढा तथा विष्णुकांत शास्त्री द्वारा सम्पादित "बालमुकुन्द गुप्त : एक मूल्यांकन" शीर्षक पुस्तक में श्रीकृष्णाचार्य का लेख—"सर्वतोमुखी गुप्तजी," पृ. १०८।
   (ख) श्रीवल्लभ शुक्ल कृत "हिन्दी के वैयक्तिक निबन्ध." पृ. ४५।
2. "हिंदी साहित्य का इतिहास" (१९७३), संपा. डा नगेन्द्र, पृ ५२७।
   "द्विवेदी-युग में नाटक, उपन्यास प्रभृति मुख्य गद्य-विधाओं के अतिरिक्त कुछ अन्य गद्य-रूपों—जीवनी, यात्रावृत्त, संस्मरण और पत्र-साहित्य के विकास-परिष्कार की ओर भी ध्यान दिया गया। इनमें से अंतिम तीन का तो प्रवर्तन ही इस युग में हुआ।"

समाजी लेखकों ने विशेष ध्यान दिया है।[1] हिंदी में वैयक्तिक पत्र-संग्रहों के प्रकाशन की परम्परा का शुभारम्भ भी आर्य-समाजी लेखकों ने ही किया है। महाशय मुंशीराम जिज्ञासु (स्वामी श्रद्धानंद) द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानंद का पत्र-व्यवहार" भाग-१ इस परम्परा की प्रथम कड़ी है। यह पत्र-संग्रह सन् १९१० ई. में यंत्रालय गुरूकुल कांगड़ी से प्रकाशित हुआ था।[2] हिंदी साहित्य के प्रमुख इतिहास-ग्रंथों में भी हिंदी के प्रथम पत्र-संग्रह के रूप में इसी पुस्तक की चर्चा की गयी है, किंतु इसके शीर्षक एवं प्रकाशन-वर्ष के संबंध में निश्चित जानकारी नहीं दी गयी। डा. हरवंशलाल शर्मा द्वारा सम्पादित "हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास" चतुर्दशभाग के खण्ड-६, अध्याय-५ में कहा गया है—

"जब हम पत्र-साहित्य के इतिहास पर दृष्टिप्रक्षेप करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि किसी पत्र-संग्रह को सर्वप्रथम प्रकाशित रूप में लाने का श्रेय स्व. मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानंद) को है। स्वामीजी ने आज से लगभग ६४ वर्ष पूर्व संभवतः सन् १९०४ में स्वामी दयानन्द सरस्वती संबंधी पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित कराया था।"[3]

इसी प्रकार डा. नगेन्द्र द्वारा "हिंदी साहित्य का इतिहास" में द्विवेदी-युग के गद्य-साहित्य की अन्य विधाओं के विवेचन में उक्त पत्र-संग्रह के संबंध में लिखा गया है:—

"आलोच्य युग में पत्र-साहित्य-विषयक दो महत्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुए। महात्मा मुंशीराम ने सन् १९०४ में स्वामी दयानंद सरस्वती संबंधी पत्रों का संकलन किया। यह आलोच्य युग का ही नहीं, समूचे हिंदी-साहित्य में पहला प्रकाशित पत्र-संग्रह है।"[4]

इन दोनों उद्धरणों को ध्यानपूर्वक पढ़ने से ज्ञात होता है कि एक तो इनमें स्व. महात्मा मुंशीराम द्वारा सम्पादित स्वामी दयानंद सरस्वती संबंधी पत्रों के संग्रह के शीर्षक का कहीं भी उल्लेख नहीं है। दूसरे, इनमें पत्र-संग्रह के प्रकाशन-वर्ष की निश्चित सूचना नहीं दी गयी है। प्रथम उद्धरण में तो प्रकाशन-वर्ष से पहले "संभवतः" शब्द का प्रयोग किया गया है, किन्तु द्वितीय उद्धरण में ऐसी सम्भावना भी व्यक्त नहीं की गयी। ऐसा प्रतीत होता है कि द्वितीय उद्धरण के लेखक ने प्रथम उद्धरण के लेखक का आधार लेकर और प्रथम उद्धरण के लेखक ने प्रसिद्ध आर्य-समाजी लेखक पं. हरिशंकर शर्मा के अग्रांकित कथन का आधार

---

1. "डा. चंद्रभानु सोनवणे : "हिंदी गद्य-साहित्य" (१९७५), पृ. २९२
2. परोपकारिणी सभा, अजमेर के मंत्री डा. भवानीलाल भारतीय के पुस्तकालय से उपलब्ध प्रस्तुत पत्र-संग्रह के प्रथम संस्करण के आधार पर।
3. "हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास," चतुर्दश भाग, पृ. ५०९-५१०।
4. "हिंदी-साहित्य का इतिहास" (१९७३), पृ. ५३०।

ग्रहण कर प्रस्तुत पत्र-संग्रह का हिंदी के सर्वप्रथम पत्र-संग्रह के रूप में उल्लेख कर दिया है—

"जहां तक हमें ज्ञात है, पचास वर्ष पूर्व स्व. महात्मा मुंशीरामजी (श्री-स्वामी श्रद्धानंद जी) ने सबसे पहले हिंदी में श्री स्वामी दयानंद सरस्वती के संबंध की चिट्ठियों का एक संग्रह प्रकाशित किया था।"[1]

इस प्रकार स्व. महात्मा मुंशीराम सम्पादित स्वामी दयानंद सरस्वती संबंधी पत्रों का संग्रह "ऋषि दयानंद का पत्र व्यवहार" भाग-१ हिंदी का सर्वप्रथम पत्र-संग्रह है। इस संग्रह में स्वामी दयानंद सरस्वती के लिखे हुए पत्र कम और उनको लिखे हुए पत्र अधिक हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा जिन व्यक्तियों को पत्र लिखे गये हैं, उनमें श्री सेवकलाल कृष्णदास (मंत्री-आर्यसमाज, बम्बई), भाई जवाहरसिंह (मंत्री-आर्यसमाज, लाहौर), मनोहरदास खत्री (सम्पादक- "भारत मित्र") आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। श्री सेवकलाल को प्रेषित पत्र से विदित होता है कि भारत में गोरक्षा की ओर सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करने वाले स्वामी दयानंद सरस्वती ही थे[2] भाई जवाहरसिंह को लिखे गये पत्र में स्वामीजी का हिंदी भाषा के प्रति प्रेम प्रकट होता है[3] तो "भारत मित्र" के सम्पादक के पास भेजे गये पत्र में हमें उनकी वैदिक संस्कृति के प्रति अपार आस्था की झांकी मिलती है।[4] इस प्रकार इन पत्रों से भारतीय नवजागरण की महान् विभूति स्वामी दयानंद सरस्वती के व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन का यथार्थ परिचय प्राप्त होता है।

जिन व्यक्तियों ने स्वामीजी के नाम पत्र लिख भेजे हैं, उनमें स्वामी सहजानन्द, पं. सुन्दरलाल, ठाकुर रघुनाथसिंह, सेवकलाल, स्वामी आलाराम, पं. गोपालराव हरि देशमुख, पं. ज्वालादत्त आदि मनीषियों के नाम विशेषरूप से उल्लेख्य हैं। इन पत्रों से स्वामीजी के विशाल-जन सम्पर्क का पता चलता है और आर्य-समाज की अनेक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ-सूत्र उपलब्ध होते हैं; जैसे, पं. सुन्दरलाल के पत्र से प्रकट होता है कि सं.१८८२ ई. से पहले ही लाहोर के आर्य-समाज के सामयिक अधिकारी वैदिक यंत्रालय को लाहोर ले जाने के पीछे पड़े हुए थे।[5] श्री सेवकलाल ने अपने पत्र में आर्य-समाज में निष्ठावन कार्यकर्त्ताओं के अभाव के प्रति खेद व्यक्त किया है।[6] इस प्रकार ये पत्र पुनर्जागरणकाल की अनेक घटनाओं पर प्रकाश डालते हैं।

1. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६) प्राक्कथन, पृ. ९।
2. "ऋषि दयानंद का पत्र व्यवहार" भाग-१ (१९१०), पृ. २६८।
3. —वही—, पृ. १२५।
4. —वही—, पृ. ६८।
5. —वही—, पृ. ६५।
6. —वही—, पृ. २४६।

सारांशतः जिन महान् विभूति ने हिंदी को "आर्य भाषा" घोषित कर उसके प्रचार-प्रसार के लिए अनवरत प्रयत्न किये, उन्हीं से सम्बन्धित पत्रों के संग्रह से हिन्दी में पत्र-साहित्य की विधिवत् परम्परा का शुभारम्भ हुआ; यह न केवल हिंदी-पत्र साहित्य के लिए वरन् समस्त हिन्दी-साहित्य के लिए गौरव का विषय है।

हिंदी में प्रकाशित अन्य पत्र–संग्रहों का संक्षिप्त परिचय :

स्व. महात्मा मुंशीराम द्वारा सम्पादित उपर्युक्त प्रथम पत्र-संग्रह के कुछ वर्ष बाद आर्य-समाज के प्रसिद्ध विद्वान् पं. भगवद्दत्तजी ने बड़े परिश्रम और प्रयत्न से खोज-खोज कर स्वामी दयानंद सरस्वती के पत्रों का एक स्वतंत्र संग्रह १९८१ ई. में "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" भाग-१ शीर्षक से प्रकाशित कराया। हिन्दी साहित्य के इतिहास-ग्रंथों में इस पत्र-संग्रह को १९०९ ई. में प्रकाशित बताया गया है और इसका शीर्षक "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार" दिया गया है।[1] परन्तु रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर से प्रकाशित इस पत्र-संग्रह के चारों भागों के संयुक्त संस्करण की भूमिका में प्रत्येक संग्रह के प्रकाशन वर्ष का स्पष्ट उल्लेख किया है।[2]

पं. भगवद्दत जी द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानंद सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" भाग-१ में ८२ पत्र और विज्ञापन संकलित हैं। इनमें संस्कृत और अंग्रेजी में लिखे हुए पत्र भी देखने को मिलते हैं। अहमदाबाद के जज गोपालराव हरि-देशमुख के नाम लिखे गये संस्कृत-पत्रों में हमें विशुद्ध संस्कृत पत्र-लेखन शैली के दर्शन होते हैं, किन्तु हिन्दी में लिखे गये पत्रों में "स्वस्ति श्री" से आरम्भ होनेवाली परम्परागत शैली नहीं दिखाई पड़ती। १५ जुलाई १८७८ को अपने प्रिय शिष्य प्रसिद्ध क्रांतिकारी नेता श्याम जी कृष्ण वर्मा को लिखा गया पत्र स्वामी जी

1. (क) "हिंदी साहित्य का बृहत् इतिहास" चतुर्दश भाग (सं. २०२७वि.) संपा. डा. हरवंशलाल शर्मा, पृ. ५१०।

"कुछ समय बाद संभवतः १९०९ ई. में पं. भगवद्दत्त ने अथक परिश्रम और खोजबीन करके स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्रों का एक विशाल संकलन "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार" शीर्षक से सद्धर्म प्रचारक यंत्रालय, गुरूकुल कांगड़ी से प्रकाशित किया।"

(ख) "हिन्दी साहित्य का इतिहास" (१९७३), संपा. डा. नगेन्द्र पृ. ५३०।

"तदनन्तर पं. भगवद्दत्त ने पर्याप्त परिश्रम तथा अनुसंधान के बाद "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार" (१९०९) शीर्षक पत्र-संग्रह सम्पादित किया।"

2. देखिए: "ऋषि दयानंद सरस्वती के पत्र और विज्ञापन," द्वि. सं. १९५५, रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर, भूमिका, पृ. २।

की स्वदेश भक्ति का उत्कृष्ट उदाहरण है ।[1] इस प्रकार प्रस्तुत संग्रह में स्वामी जी के लिखे पत्र ही संकलित होने के कारण उनके व्यक्तित्व का उद्घाटन पूर्व प्रकाशित पत्र-संग्रह की अपेक्षा अधिक हुआ है ।

इस पत्र-संग्रह के प्रकाशित होने के एक ही वर्ष के पश्चात् इसका द्वितीय भाग प्रकाशित हुआ जिसमें ५५ पत्र और विज्ञापन संकलित हैं । यह पत्र-संग्रह भी स्वामी जी के चिंतन-मनन एवं उनकी पैनी दृष्टि का परिचय देते हैं ।

पं. भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित उक्त दो पत्र-संग्रह के बाद चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा ने स्वामी विवेकानन्द के पत्रों का एक छोटा-सा संग्रह "पत्रावली" शीर्षक से प्रकाशित किया । इसी प्रकार सन् १९२२ ई. में बंगाली लेखक सतीशचन्द्र चक्रवर्ती के "स्त्रीकपत्र" का हिंदी रूपान्तर "पत्रांजली" शीर्षक से गंगा पुस्तकमाला द्वारा प्रकाशित हुआ । इसी वर्ष एक और उल्लेखनीय पत्र-संग्रह "महात्मा गांधी के निजी पत्र" शीर्षक से पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी के सम्पादकत्व में प्रकाशित हुआ । इसमें महात्माजी द्वारा आत्मीयजनों को लिखे गये ८१ पत्र संकलित हैं । ये पत्र उस समय के हैं जब दक्षिण अफ्रिका में महात्माजी अहिंसक आंदोलन चला रहे थे । तब अधिकतर पत्र चिरंजीव मणिलाल को सम्बोधित हैं जिनमें सत्य और अहिंसा के पालन पर बल दिया गया है । हिंदी में महात्मा गांधी के पत्रों का यह कदाचित् प्रथम प्रकाशित संग्रह है ।

सन् १९२७ ई. में पं. भगवद्दत्त जी ने स्वसम्पादित "ऋषि-दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" का तीसरा और चौथा भाग क्रमशः प्रकाशित किया । इन संग्रहों में सम्पादक ने अनेक स्थलों से प्राप्त स्वामी जी के अनेक नये पत्र संकलित किये हैं । अब ये चारों भाग रामलाल कपूर ट्रस्ट अमृतसर द्वारा प्रकाशित बृहत् संग्रह में सम्मिलित हैं । हिंदी-पत्र-साहित्य के इतिहास में पं. भगवद्दत्त जी का यह भगीरथ प्रयास सदैव स्मरणीय रहेगा ।

सन् १९२८ से १९३४ के बीच की अवधि में हिंदी में लिखित कोई महत्वपूर्ण पत्र-संग्रह देखने में नहीं आया । सन् १९३१ में गीता प्रेस गोरखपुर से प्रकाशित "परमार्थ पत्रावली" भाग-१ में संकलित पत्रों में कहीं भी तिथि-तारीख एवं सम्बोधन-अभिवादन का निर्देश नहीं है । अतः इन्हें पत्र न मानकर प्रश्नोत्तर शैली में लिखित "आध्यात्मिक संवाद" कहना उपयुक्त होगा । इस काल खण्ड में कुछ ऐसे अनूदित पत्र-संग्रह प्रकाशन में आये जिनकी प्रेरणा से लोगों में विविध विषयों के पत्रों को प्रकाशित करने का उत्साह बढ़ा । इन पत्र-संग्रहों में प्रेमचन्द द्वारा अनूदित "पिता के पत्र पुत्री के नाम" (१९३१), शांतिप्रिय आत्माराम द्वारा अनूदित "आलमगीर के पत्र" (१९३१), आचार्य चतुरसेन शास्त्री द्वारा अनूदित "गदर के पत्र" (१९३४) आदि उल्लेख्य हैं ।

1. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" भाग-१, (१९१८), पत्र-क्रमांक-५४ ।

सन् १९३५ में पं. चमूपति द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-२" प्रकाशित हुआ। इसमें स्व. महात्मा मुंशीराम द्वारा सम्पादित प्रथम भाग से स्वामी जी के पत्र अपेक्षाकृत अधिक संख्या में दिये गये हैं। इस संग्रह की दूसरी विशेषता यह है कि इसमें शाहपुरा के राजाधिराज नाहरसिंह, रावजी बहादुरसिंह, जनरल सर प्रतापसिंह, ठाकुर कृष्णसिंह बारहट, जोधपुर-नरेश जसवन्तसिंह, उदयपुर-नरेश सज्जनसिंह, आदि देशी राजाओं के साथ हुआ स्वामी जी का विस्तृत पत्र-व्यवहार संकलित है। इन पत्रों से ज्ञात होता है कि भारत के देशी राजाओं में स्वामी जी की कितनी प्रतिष्ठा थी, किस प्रकार प्रत्येक नरेश ऋषि के दर्शन के लिए लालायित रहता था, किस निर्भीकता और नीति-निपुणता से स्वामीजी उनके वैयक्तिक जीवन तथा राज्य-शासन का एक साथ सुधार कर रहे थे। उपर्युक्त राजा-महाराजाओं के अतिरिक्त भारत के प्रसिद्ध विद्वानों—जैसे, पं. मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, कविराजा श्यामलदास, पं. छगनलाल द्विवेदी आदि के साथ हुआ स्वामी जी का पत्र-व्यवहार भी इस पुस्तक में दिया गया है। इसलिए स्वामीजी का बहुमुखी व्यक्तित्व इस पत्र-संग्रह में पूर्व प्रकाशित उनके सभी पत्र-संग्रहों से अधिक स्पष्ट रूप में झलकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १९३५ तक हिन्दी पत्र-साहित्य के भण्डार में स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्र-रत्न ही सर्वत्र अपनी प्रभा विकीर्ण कर रहे थे। पं. चमूपति द्वारा सम्पादित उपर्युक्त पत्र-संग्रह के बाद तीन वर्ष तक हिन्दी में प्रकाशित कोई पत्र-संग्रह उपलब्ध नहीं होता।

सन् १९३८ में श्री सूर्यबली सिंह के सम्पादकत्व में "मनोहरपत्र" (लव-लेटर्स) शीर्षक एक सुन्दर पत्र-संग्रह काशी-पुस्तक भण्डार, बनारस से प्रकाशित हुआ। इसमें संकलित बहुत-से पत्र "चांद" के पत्रांक में बहुत पहले ही प्रकाशित हो चुके थे। इसमें मौलिक, अनूदित, काल्पनिक, वास्तविक, औपचारिक, अनौपचारिक आदि अनेक प्रकार के पत्र-संग्रहीत हैं। इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें भारत के अनेक महापुरुषों—जैसे, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, अरविन्द घोष, सुभाषचन्द्र बोस, बालगंगाधर तिलक, जवाहरलाल नेहरू आदि के पत्र उनके चित्रों एवं सन्दर्भों के साथ उद्धृत किये गये हैं। पं. देवनारायण द्विवेदी, बाबू ब्रजरत्नदास आदि विद्वानों के पत्र-लेखनकला विषयक महत्वपूर्ण लेख भी इसमें संकलित हैं। हिंदी साहित्य के कुछ इतिहास ग्रंथों[1] में इस पत्र-संग्रह को १९५२ ई. में प्रकाशित बताया गया है, परन्तु इस संग्रह की भूमिका के लेखक पं. कृष्णकांत मालवीय ने अपने वक्तव्य के अन्त में दिनांक १-११-३८ का स्पष्ट निर्देश दिया है।[2] यही नहीं, सम्पादक ने भी अपने "कृतज्ञता-प्रकाश" में शिवरात्रि वि. १९९५ का स्पष्ट उल्लेख किया है। अतः इस महत्व-

1. देखिए : (क) हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास," चतुर्दश भाग, पृ. ५११।
(ख) "हिन्दी साहित्य का इतिहास"-संपा. डा. नगेन्द्र, पृ. ७२२
2. "मनोहर पत्र" (१९५६), भूमिका।

पूर्ण पत्र-संग्रह को स्वातंत्र्य-पूर्व हिन्दी-पत्र-साहित्य की उपलब्धि मानना ही उपयुक्त होगा।

"मनोहर पत्र" के बाद लगभग दो वर्ष तक हिन्दी में पत्र-संग्रह के प्रकाशन की प्रवृत्ति स्थगित रही। सन् १९४० से १९४४ के बीच कुछ ऐसी पुस्तकें प्रकाशित हुई जिनमें दिये गये पत्र बाह्यतः पत्र होते हुए भी वास्तव में साहित्यिक कृति के रूप में लिखे और प्रकाशित किये गये हैं। इस प्रकार की पुस्तकों में श्री भदन्तानन्द कौशल्यायन कृत "भिक्षु के पत्र" (१९४०), डा. धीरेन्द्र वर्मा कृत "योरप के पत्र" (सं २००० वि.) और रामनाथ 'सुमन" कृत "भाई के पत्र" (१९४४) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।[1]

छात्र हितकारी पुस्तकमाला से प्रकाशित "भिक्षु के पत्र" शीर्षक पुस्तक में १८ पत्र मुद्रित हैं। ये सभी पत्र "योगेन्द्र" नामक व्यक्ति को सम्बोधित हैं। डा. नगेन्द्र ने "संस्कृति, साहित्य और भाषा" शीर्षक एक अधुनातन पत्र-संग्रह की भूमिका में श्री भदन्तानन्द कौशल्यायन की इस कृति का व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संकलन के रूप में उल्लेख किया है।[2] परन्तु लेखक श्री कौशल्यायन जी ने पुस्तक की भूमिका में पहले ही यह स्पष्ट कर दिया है कि "यह योगेन्द्र कोई व्यक्ति-विशेष न होकर उन सब परिचितों तथा अपरिचितों के प्रतिनिधि हैं जिनकी बुद्ध धर्म सम्बन्धी लिखित या मौखिक जिज्ञासाएं ही इन पत्रों के लिखे जाने का कारण हुई हैं।"[3] इससे स्पष्ट है कि लेखक का मुख्य उद्देश्य बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण है। इसके अंतिम पत्र—"मैं भिक्षु क्यों बना ?"—को छोड़कर कहीं लेखक ने अपने व्यक्तिगत जीवन की चर्चा नहीं की है। अतः हमारे विचार में इसे व्यक्तिगत पत्रों का स्वतंत्र संग्रह न मानकर आध्यात्मिक या उपदेश प्रधान पत्रात्मक निबन्धों का संग्रह मानना अधिक समीचीन जान पड़ता है।

"योरप के पत्र" शीर्षक पुस्तक में डा. धीरेन्द्र वर्मा ने पत्रों के रूप में अपनी योरप-यात्रा का विवरण प्रस्तुत किया है। इसमें मुद्रित बहुत से पत्र पहले "सुधा" में छप चुके थे।[4] यद्यपि लेखक ने पुस्तक के "परिचय" में यह

---

1. "मनोहर पत्र, कृतज्ञता-प्रकाश," । पृ. २।
2. "संस्कृति, साहित्य और भाषा" (१९७९), संपा. डा. त्रिलोकीनाथ ब्रजवाल और अन्य, भूमिका, पृ. १।

   "सन् १९४० ई. में श्री भदन्त आनन्द कौशल्यायन का पत्र-साहित्य "भिक्षु के पत्र" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। यह व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संकलन के रूप में था।"
3. "भिक्षु के पत्र" (१९४०), "पत्रपरिचय"।
4. "देखिए:—"पेरिस से पहला विस्तृत पत्र," सुधा, मार्गशीर्ष, ३१४, वर्ष-१०, खण्ड-१ सं.५।

बात स्वीकार नहीं कि ये पत्र, पत्र की शैली में लिखी साहित्यिक रचनाएं हैं,[1] किन्तु प्रकाशित पत्रों से यही प्रकट होता है यह पत्रात्मक यात्रा-वर्णन की पुस्तक है। पत्रों में तिथि-तारीख और स्थल का निर्देश तो है, परन्तु सम्बोधन, अभिवादन, परिचय, हस्ताक्षर आदि का संकेत नहीं है। डा. सुरेन्द्र माथुर ने भी अपने "यात्रा-साहित्य: उद्भव और विकास" शीर्षक शोध-प्रबन्ध में प्रस्तुत पुस्तक की विवेचना "पत्र-शैली में लिखे गये यात्रा-साहित्य के अन्तर्गत की है।[2] इस प्रकार इसे व्यक्तिगत पत्रों का स्वतंत्र संकलन नहीं कहा जा सकता।

रामनाथ "सुमन" लिखित "भाई के पत्र" शीर्षक पुस्तक में "भगवती" बहन के नाम एक भाई के पत्र प्रकाशित हैं। इसमें पत्रों के माध्यम से विवाह-समस्या, स्त्री-जीवन और मातृत्व पर विस्तार से प्रकाश डाला है। विवेचन की सुविधा की दृष्टि से पुस्तक के मुख्य विषय को तीन खण्डों—कन्या, नारी और माता—में विभक्त किया गया है। खण्ड-४ में कुछ सच्चे पत्र भी दिये गये हैं, किन्तु इन दो-चार पत्रों से इसे व्यक्तिगत पत्रों का संग्रह मान लेना ठीक न होगा।

सन् १९४५ से १९४९ के बीच "कमला के पत्र" (१९४६) अनु. एक अभागा ग्रेज्युएट, "रूस की चिट्ठी" (१९४७) अनु. धन्यकुमार जैन, "मित्र के नाम पत्र" (१९४७) अनु. सुरेशचन्द्र शर्मा आदि कुछ अनूदित पत्र-संग्रहों को छोड़कर कोई उल्लेख्य पत्र-संग्रह प्रकाश में नहीं आया।

सन् १९५० में सत्याश्रम वर्धा से "अनमोल पत्र" शीर्षक एक छोटा-सा पत्र-संग्रह प्रकाशित हुआ जिसमें स्वामी सत्यभक्त द्वारा लिखे गये पत्रों के महत्व-पूर्ण अंश संकलित किये गये हैं। इसमें कुल मिलाकर ३८ पत्रों के महत्वपूर्ण अंश प्रकाशित हैं। अधिकतर पत्रों के अंश स्वामी जी के अनुयायियों से सम्बन्धित हैं, किन्तु इसमें महात्मा गांधी के नाम प्रेषित कुछ पत्रों के अंश भी दिये गये हैं। इन पत्रांशों में स्वामी जी की चिन्तनशीलता, सत्यप्रियता और निर्भीकता का सुन्दर परिचय मिलता है। इसी वर्ष से नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद की ओर से "बापू के पत्र" शीर्षक गांधीजी के पत्रों की पुस्तकमाला का आरम्भ हुआ और "बापू के पत्र आश्रम की बहनों के नाम" (१९५०), "बापू के पत्र मीराँ के नाम" (१९५१) आदि पत्र-संग्रह समय-समय पर प्रकाशित होते रहे। सन् १९५१ में श्रीरामजीलाल बघौतिया ने "उपमन्यु के पत्र" शीर्षक एक पुस्तक विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा से प्रकाशित कराई जिसमें पत्रों के रूप में छात्रोपयोगी निबन्ध दिये गये हैं।

सन् १९५२ में श्री बेढब बनारसी की एक पुस्तक "महत्व के गुमनाम पत्र" शीर्षक से लोकसेवा प्रकाशन, बनारस द्वारा प्रकाशित हुई। इसमें देश के विभिन्न क्षेत्रों के प्रसिद्ध व्यक्तियों को सम्बोधित कर उन क्षेत्रों से सम्बद्ध विसंगतियों पर

1. "योरप के पत्र" (सं. २००० वि.), "परिचय", पृ. ३।
2. "यात्रा-साहित्य: उद्भव और विकास" (१९६२), पृ. ३१७।

व्यंग्य किया गया है। इसमें महात्मा गांधी, मौलाना आजाद, विजयलक्ष्मी पंडित आदि देश के बड़े-बड़े नेताओं के अतिरिक्त बनारस के कोतवाल, विश्वविद्यालय के प्रोफेसर आदि के नाम पत्र लिखे गये हैं। इस प्रकार ये पत्र खुले पत्रों की श्रेणी के अंतर्गत आते हैं। इसी वर्ष श्री महादेव साहा ने "शरत् पत्रावली" शीर्षक से शरदबाबू के पत्रों का संग्रह तथा श्री नारायण स्वामी ने "राम-पत्र" शीर्षक से स्वामी रामतीर्थ के पत्रों का संग्रह प्रकाशित किया। सन् १९५३ में छायावाद की सुप्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा के सम्बन्ध में विश्वम्भर "मानव" को लिखे गये शिवचन्द्र नागर के पत्र "महादेवी: विचार और व्यक्तित्व" शीर्षक से पुस्तकाकार प्रकाशित हुए। इसमें पत्रों के रूप में महादेवी जी के व्यक्तित्व के विविध पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। एक दृष्टि से यह पत्रात्मक समीक्षा ही है। मानवजी इसे पत्र-साहित्य का अंग मानते हैं।[1]

हिंदी पत्र-साहित्य के इतिहास में सन् १९५४ ई. विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हिंदी साहित्यकारों के व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संग्रहों के प्रकाशन की परम्परा का आरम्भ इसी वर्ष में हुआ। श्री बैजनाथसिंह "विनोद" द्वारा सम्पादित "द्विवेदी पत्रावली" इस परम्परा की प्रथम कड़ी है। इसमें आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा पं. श्रीधर पाठक, बाबू राधाकृष्णदास, पं. पद्मसिंह शर्मा, मैथिलीशरण गुप्त, पं. लल्लीप्रसाद पाण्डेय आदि साहित्यकारों को लिखे गये १८४ पत्र संकलित हैं। जैसा कि डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने कहा है, "इन पत्रों से बीसवीं शताब्दी के हिंदी साहित्य के प्रथम पैंतीस-छत्तीस वर्षों की बड़ी सुन्दर झांकी मिलती है।"[2] इस प्रकार हिंदी साहित्यकारों के व्यक्तिगत पत्रों का पुस्तकाकार प्रकाशन आचार्य द्विवेदी की इस पत्रावली से प्रारम्भ हुआ, इसलिए इस पत्र-संग्रह का साहित्यिक दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व है।

सन् १९५५ में यात्रा-विषयक पत्रों की दो पुस्तकें प्राप्त होती हैं—एक श्रीमती विमला कपूर द्वारा लिखित "अजाने देशों में" और दूसरी डा. भगवतशरण उपाध्याय लिखित "कलकत्ता में पेकिंग"। प्रथम पुस्तक में श्रीमती कपूर की योरप-यात्रा का वर्णन है और दूसरी में डा. उपाध्याय की पेकिंग-यात्रा का। विद्वानों ने इन पुस्तकों की चर्चा पत्र-शैली में लिखित यात्रा-साहित्य में की है।[3]

सन् १९५६ में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी तथा हरिशंकर शर्मा की सम्पादकता में प्रकाशित "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" शीर्षक पत्र-संग्रह अपने आकार-प्रकार, प्राक्कथन-भूमिका, पत्रों के क्रम, आदि कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। "पत्र-लेखन कला" शीर्षक भूमिका में देश-विदेश के महान् पत्र-लेखकों के पत्र, ब्लाक-सहित

---

1. श्री विश्वम्भर "मानव" से हुई प्रत्यक्ष भेंट के आधार पर।
2. "आलोचना," जनवरी, १९५५, पृ. १२६।
3. देखिए—"यात्रा-साहित्य का उद्भव और विकास" (१९६२), डा. सुरेन्द्र माथुर, पृ. ३१७।

मुद्रित हैं। प्रस्तुत संग्रह में पं. शर्मा जी के ३२ हिंदी साहित्यकारों के नाम प्रेषित २६८ पत्र संकलित हैं। जिन साहित्यकारों के नाम पत्र लिखे गये हैं, उनमें सर्वश्री पारसनाथसिंह, वियोगी हरि, हरिशंकर शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री राम शर्मा, हरिदत्त शास्त्री, ज्वालादत्त शर्मा, जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी, भीमसेन शर्मा, नाथूराम, शंकर शर्मा आदि के नाम उल्लेख्य हैं। इन पत्रों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि पं. पद्मसिंह शर्मा केवल धुरंधर विद्वान् ही नहीं थे, वरन् उनमें व्यावहारिक सूझ-बूझ, साहस, निर्भीकता, विचारों की दृढ़ता, स्पष्टवादिता आदि अनेक उच्च कोटि के गुण भी विद्यमान थे। भाषा, व्याकरण, रचनादर्श और साहित्यिक मूल्य की दृष्टि से भी ये पत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं।

सन् १९५८ में श्री बैजनाथसिंह "विनोद" द्वारा सम्पादित "द्विवेदीयुग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" और पं. किशोरीदास वाजपेयी द्वारा सम्पादित "साहित्यिकों के पत्र" शीर्षक दो उल्लेखनीय पत्र-संग्रह प्रकाशित हुए।

"द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" शीर्षक पत्र-संग्रह श्री "विनोद" की सम्पादन-कला का उत्तम नमूना है। इसमें आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और पं. पद्मसिंह शर्मा के पत्रों के अतिरिक्त पं. श्रीधर पाठक, पं. बालकृष्ण भट्ट, बाबू बालमुकुन्द गुप्त और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के महत्वपूर्ण पत्र संकलित हैं। पत्रों का लेखन-काल १९०३ ई. से प्रारम्भ होता है। इस पत्र-संग्रह के विषय में हिन्दुस्तानी एकेडेमी के तत्कालीन मंत्री डा. धीरेन्द्र वर्मा ने बहुत उपयुक्त कहा है—"आचार्य द्विवेदी जी तथा उनके समकालीन लेखकों के व्यक्तित्व का परिचय अधूरा है। उनके वैयक्तिक पत्र इस अधूरी जानकारी को पूरा करते हैं।"[1] इस प्रकार यह पत्र-संग्रह द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के वास्तविक व्यक्तित्व का परिचायक है।

पं. किशोरीदास वाजपेयी द्वारा सम्पादित "साहित्यिकों के पत्र" एक छोटा-सा संग्रह होते हुए भी हिंदी पत्र-साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। इस संग्रह की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, अयोध्यासिंह उपाध्याय, मिश्र बंधु, डा. अमरनाथ झा, रामदास गौड़, आचार्य अम्बिका प्रसाद वाजपेयी आदि हिंदी के २४ महान् साहित्यिकों के पत्र उनके ब्लाक सहित मुद्रित हैं। पत्रों के साथ सम्पादकों ने सम्बन्धित पत्र लेखक के व्यक्तित्व-कृतित्व पर किंचित् प्रकाश डालते हुए हिन्दी-साहित्य की अनेक रोचक घटनाओं का उल्लेख भी किया है। इस प्रकार यह संग्रह हिंदी पत्र-साहित्य में अपने ढंग का अकेला पत्र-संग्रह है।

१९५८ ई. में प्रकाशित उपर्युक्त दो महत्वपूर्ण साहित्यिक पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त राजनैतिक दृष्टि से उपयोगी दो पत्र-संग्रह भी प्रकाशित हुए हैं। ये दोनों

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), "प्रकाशकीय" से उद्धृत।

ही पत्र-संग्रह स्वतंत्रता-संग्राम के सेनानी और प्रसिद्ध गांधीवादी समाज-सेवक सेठ जमनालाल बजाज से सम्बन्धित हैं। जिस प्रकार नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद की ओर से "बापू के पत्र" शीर्षक पुस्तक-माला प्रकाशित हुई है, उसी प्रकार सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली की ओर से सेठ जमनालाल बजाज सम्बन्धी पत्र "पत्र व्यवहार" शीर्षक से कई खण्डों में प्रकाशित हुए हैं। इन सभी खण्डों का सम्पादन सेठ जी के सुपुत्र श्री रामकृष्ण बजाज ने किया है। सन् १८५८ में प्रकाशित इस पुस्तक-माला के प्रथम दो खण्डों में क्रमश: सेठ जमनालाल बजाज का देश के राजनैतिक नेताओं तथा देशी रियासतों के कार्यकर्ताओं से हुआ पत्र-व्यवहार संकलित है। ये दोनों ही पत्र-संग्रह भारत के स्वाधीनता-संग्राम के अनेक तथ्यों को उद्घाटित करते हैं और सेठ जी की कार्यकुशलता, कर्तव्यनिष्ठा, सेवा भावना, त्याग-वृत्ति आदि चारित्रिक विशेषताओं का परिचय देते हैं।

हिंदी पत्र-लेखन की प्राचीन परम्परा के विश्लेषण में डा. धीरेन्द्र वर्मा तथा डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा सम्पादित ईस्ट-इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शासन से सम्बद्ध जिस "प्राचीन पत्र-संग्रह" की चर्चा हम कर चुके हैं, वह सन् १९५९ में इलाहाबाद विश्वविद्यालय से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह के पत्रों का लेखन-काल वि. सं. १८४९-१८७१ (सन् १७९३-१८२० ई.) है। इस प्रकार इन पत्रों से एक ओर जहां भारतीय राजाओं और नवाबों की राजनैतिक सत्ता के विघटन तथा अंग्रेजी राज्य-सत्ता के विस्तार से सम्बन्धित घटनाओं के सूत्र प्राप्त होते हैं, वहां दूसरी ओर १८ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तथा १९ वीं शताब्दी के प्रथम चरण के हिंदी-गद्य के स्वरूप की झांकी भी मिलती है।

सन् १९६० में पं. वियोगी हरि द्वारा सम्पादित एक छोटा-सा किन्तु अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्र-संग्रह "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" शीर्षक से प्रकाशित हुआ। इसमें छह बड़े व्यक्तियों-महात्मा गांधी, महादेव देसाई, किशोरीलाल मशरूवाला, ठक्कर बापा, विनोबा भावे और राजर्षि टंडन—के प्रेरणादायक पत्र संकलित हैं। सम्पादक ने हर पत्र से पहले उसकी पृष्ठभूमि का संस्मरणात्मक शैली में सुन्दर विवरण प्रस्तुत किया है जिससे पत्रों को पढ़ते समय एक रोचक कहानी-सा आंनद मिलता है। "पत्र व्यवहार" का तीसरा भाग भी इसी सन् में प्रकाशित हुआ है जिसमें सेठ जमनालाल बजाज का रचनात्मक कार्यकर्त्ताओं के के साथ हुआ पत्र-व्यवहार संगृहीत है।

सन् १९६२ में प्रकाशित प्रमुख पत्र-संग्रहों के नाम हैं— श्री अमृतराय और मदनगोपाल द्वारा सम्पादित "चिट्ठी-पत्री" भाग १-२, पं. कमलापति त्रिपाठी लिखित "बन्दी की चेतना (द्वि.सं.) और श्री रामकृष्ण बजाज द्वारा सम्पादित "विनोबा के पत्र"। "चिट्ठी-पत्री" भाग-१ में प्रेमचन्द जी के १८१ पत्र संकलित हैं। ये सभी पत्र उर्दू के प्रसिद्ध समाचार-पत्र "जमाना" के सम्पादक मुंशी दयानारायण निगम के नाम लिखे गये हैं। इन पत्रों में हमें

प्रेमचन्द जी के साहित्यिक जीवन के प्रारम्भिक वर्षों की झांकी मिलती है और निगम साहब से उनकी प्रगाढ़ मैत्री का परिचय प्राप्त होता है। "चिट्ठी-पत्री" भाग-२ में प्रेमचन्दजी द्वारा विभिन्न साहित्यकारों को लिखे गये पत्रों के साथ उनको प्राप्त हुए कुछ पत्र भी संकलित हैं। इसमें कुल मिलाकर २८३ पत्र प्रकाशित हैं। जिन साहित्यकारों के साथ प्रेमचन्द जी का पत्र-व्यवहार हुआ है, उनमें जैनेन्द्रकुमार और बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। इस पत्र-व्यवहार में राजनैतिक और साहित्यिक क्षेत्र की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द जी द्वारा श्रीराम शर्मा, शिवपूजन सहाय, उपेन्द्रनाथ अश्क, विष्णु प्रभाकर आदि साहित्यकारों को लिखे गये पत्र भी साहित्यिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। "बन्दी की चेतना" शीर्षक पुस्तक में पं. कमलापति त्रिपाठी द्वारा उनके आत्मज श्री-लोकपति त्रिपाठी (लल्लू) को लिखे गये १९ पत्र प्रकाशित हैं। ये सभी पत्र पं॰ त्रिपाठी जी ने १९४२ ई. की महान् क्रांति के दौरान नैनी जेल में बन्दी की हैसियत से लिखे थे। पत्र अत्यन्त लम्बे और चिंतनपूर्ण हैं। श्री रामकृष्ण बजाज द्वारा सम्पादित "विनोबा के पत्र" के प्रथम खण्ड में बजाज परिवार के नाम लिखे गये विनोबा जी के विचारोत्तेजक पत्र संकलित हैं। ये पत्र आचार्य विनोबा के साधक व्यक्तित्व को उजागर करते हैं।

सन् १९६३ में प्रकाशित पत्र-संग्रहों में आचार्य काका कालेलकर द्वारा सम्पादित "बापू के पत्र", रामकृष्ण बजाज द्वारा सम्पादित 'पत्र व्यवहार" भाग-४ तथा श्रीमती कौशल्या अश्क लिखित "शैली रंगे पत्र" उल्लेख्य हैं। "बापू के पत्र" शीर्षक संग्रह में महात्मा गांधी द्वारा बजाज-परिवार के नाम लिखे गये ३९२ पत्र संकलित हैं। इन पत्रों से एक ओर जहां बजाज–परिवार के प्रति बापू के अपार स्नेह एवं ममत्व की झलक मिलती है, वहां दूसरी ओर अनेक सामाजिक-राजनैतिक प्रसंगों की स्मृति भी मानस-पटल पर अंकित हो उठती है। 'पत्र व्यवहार" भाग-४ में सेठ जमनालाल बजाज का अपनी पत्नी जानकी देवी बजाज के साथ हुआ पत्र-व्यवहार संकलित है। ये पत्र एक आदर्श भारतीय दम्पत्ति का सुन्दर चित्र हमारे सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। "शैली रंगे पत्र" में चीन के भारत पर आक्रमण के समय देश के सैनिकों के नाम लिखे गये तथा उनकी ओर से पाये गये पत्र प्रकाशित हैं। ये सभी काल्पनिक हैं, परन्तु जैसा कि लेखिका ने सूचित किया है, उन्हें पत्र लिखनेवाला सतीश तथा अमृतेश को पत्र लिखने वाली तोषी काल्पनिक पात्र नहीं हैं। लेखिका के साथ उनका घनिष्ठ सम्बन्ध है। सतीश उनके मौसेरे भाई हैं। और तोषी उनकी चचेरी बहन हैं।[1] इसी कारण इन पत्रों में हमें आत्मीयता का पुट मिलता है।

---

1. शोधकर्ता को प्राप्त कौशल्या अश्क के एक व्यक्तिगत पत्र से।

सन् १९६४ से १९६९ के बीच की अवधि में प्रकाशित कुछ महत्वपूर्ण पत्र-संग्रहों के नाम हैं— "पत्र-व्यवहार" भाग-५ (१९६४), डा. जगदीशचन्द्र जैन लिखित "सोवियत रूस पिता के पत्रों में" (१९६६), "पत्र-व्यवहार" भाग-६ (१९६८), हरिशंकर परसाई लिखित "और अन्त में" (१९६८) और "पत्र-व्यवहार" भाग-८ (१९६९) । "पत्र व्यवहार" के पांचवे भाग में जमनालाल बजाज का अपने परिवार के साथ हुआ विस्तृत पत्र-व्यवहार संकलित है। "सोवियत रूस पिता के पत्रों में" शीर्षक पुस्तक में लेखक ने पत्रों के माध्यम से अपनी रूस-यात्रा का मनोरम वर्णन प्रस्तुत किया है। वस्तुत: यह यात्रा-वृत्त की पुस्तक है। "पत्र व्यवहार" के छठे भाग में सेठ जी का राज्याधिकारियों से हुआ पत्र व्यवहार संकलित है। "पत्र व्यवहार" पुस्तक-माला में यह सबसे बृहत् पत्र-संग्रह है। "और अन्त में" शीर्षक पुस्तक में परसाई जी के ३४ व्यंग्यात्मक पत्र प्रकाशित हैं जो उन्होंने "कल्पना" के सम्पादक के नाम लिखे थे । "पत्र व्यवहार" के आठवें और अंतिम भाग में सेठ जी का राजनैतिक व्यक्तियों तथा समाज-सेवियों के साथ हुआ पत्र-व्यवहार प्रकाशित है।

सन् १९७० में "उग्र" जी ने "फाइल और प्रोफाइल", बच्चनजी ने "बच्चन के नाम पंत के सौ पत्र", और डा. जीवनप्रकाश जोशी ने "बच्चन: पत्रों में" शीर्षक पत्र-संग्रह सम्पादित कर हिन्दी पत्र-साहित्य को समृद्ध किया । "फाइल और प्रोफाइल" में "उग्र" जी को प्राप्त विभिन्न हिन्दी साहित्यकारों के पत्र संकलित हैं। द्विवेदी-युग से लेकर वर्तमान युग के प्राय: सभी प्रसिद्ध साहित्यकारों के पत्र हमें इसमें उपलब्ध होते हैं। संग्रह में भूमिका ("पूर्वाभास") के बाद सभी पत्र-लेखकों का संक्षिप्त परिचय भी दिया गया है। इस प्रकार एक प्रसिद्ध साहित्यकार के नाम इतने अधिक साहित्यिकों के पत्र जिसमें प्रकाशित हों, ऐसा यह प्रथम पत्र-संग्रह है। बच्चन जी के नाम लिखे गये पन्त के सौ पत्रों में दो प्रसिद्ध हिंदी साहित्यकारों की प्रगाढ़ मैत्री का परिचय मिलता है। ये पत्र १९६० से १९६२ के बीच की अवधि में लिखे गये हैं। "बच्चन: पत्रों में" शीर्षक पत्र-संग्रह में डा. जीवन प्रकाश जोशी के नाम लिखे गये बच्चनजी के १०५ पत्र संकलित हैं। इन पत्रों का लेखन-काल १९५६-१९७० ई. है। इसमें "प्रश्न: पत्रोत्तर" विभाग में सम्पादक के प्रश्नों के उत्तर में बच्चनजी ने जो उत्तर लिख भेजे हैं, उसमें उनके जीवन-चरित्र के अनेक सूत्र प्राप्त होते हैं। संग्रह का "परिशिष्ट" भी अपने ढंग का अनूठा है।

सन् १९७१ में प्रकाशित पत्र-संग्रहों में जानकीवल्लभ शास्त्री द्वारा सम्पादित "निराला के पत्र," बच्चन द्वारा सम्पादित "पंत के दो सौ पत्र" और बाबू वृन्दावनदास द्वारा सम्पादित "डॉ. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" शीर्षक पत्र-संग्रहों के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। "निराला के पत्र" में महाकवि निराला द्वारा जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे गये १०९ पत्र संकलित

हैं। ये पत्र जुलाई सन् १९३५ में शुरू होते हैं और जनवरी १९५७ में समाप्त होते हैं। महाकवि निराला के जीवन चरित के अध्ययन के लिए ये पत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। संग्रह की भूमिका और पाद-टिप्पणियों में कहीं-कहीं अनावश्यक विस्तार हो गया है। "बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र" में संकलित पत्र १९६२ से १९६७ के बीच की अवधि में लिखे गये हैं। इन पत्रों में पन्त जी के चिंतन-मनन और परिहास-प्रिय स्वभाव का सुन्दर परिचय मिलता है। इसी पत्र-संग्रह के कुछ अंशों को आपत्तिजनक समझकर पंत जी ने बच्चन जी को उन्हें संग्रह से निकाल देने की सलाह दी थी, किन्तु बच्चन जी पत्रों को हूबहू प्रकाशित करने में पत्र-साहित्य का महत्व समझते हैं। अतः उन्होंने पंत जी का सुझाव स्वीकार नहीं किया। फलतः पंत जी ने उन पर मुकद्दमा दायर कर दिया। "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" शीर्षक पत्र-संग्रह में पत्र-साहित्य के मर्मी विद्वान् पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के २२१ पत्र संगृहीत हैं। इनमें से १५० पत्र, संग्रह के सम्पादक बाबू वृन्दावनदास को लिखे गये हैं। अन्य जिन विद्वानों के नाम चतुर्वेदी के पत्र संकलित हैं, उनमें कुछ प्रमुख साहित्यकारों के नाम हैं—सर्वश्री श्रीनारायण चतुर्वेदी, डा. हजारीप्रसाद द्विवेदी, श्री रामधारीसिंह "दिनकर," अक्षयकुमार जैन, प्रभुदयाल मित्तल, डा. सत्येन्द्र, डा. प्रभाकर माचवे आदि। इन पत्रों में चतुर्वेदी जी के विनोदी स्वभाव, उनकी विभिन्न योजनाओं, शहीदों के प्रति उनकी श्रद्धा, छुटभइयों के प्रति उनकी सहानुभूति आदि अनेक महत्वपूर्ण विशेषताएं दृष्टिगोचर होती हैं।

सन् १९७२-७३ में प्रकाशित पत्र-संग्रहों में श्री निरंकार देव सेवक द्वारा सम्पादित "बच्चन के पत्र" और सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली की ओर से प्रकाशित "स्वतंत्र भारत की झलक"—ये दो पत्र-संग्रह उल्लेख के योग्य हैं। "बच्चन के पत्र" शीर्षक पत्र-संग्रह में बच्चन जी द्वारा निरंकारदेव सेवक को लिखे गये ७० पत्र संकलित हैं। ये पत्र जुलाई सन् १९३८ से आरम्भ होते हैं और सितम्बर सन् १९६७ में समाप्त होते हैं। इन पत्रों में बच्चन जी का व्यक्तित्व पूर्व प्रकाशित "बच्चनःपत्रों में" संग्रह में संकलित पत्रों से अपेक्षाकृत अधिक खुलकर प्रकट हुआ है। "स्वतंत्र भारत की झलक" में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद की ओर से उनकी पुत्री तुल्य डा. ज्ञानवती दरबार के नाम लिखे गये पत्र प्रकाशित हैं। इन पत्रों में स्वतंत्र भारत की अनेक राजनैतिक घटनाओं की झलक प्रस्तुत की गयी है।

सन् १९७४ में, बाबू वृन्दावनदास ने डा. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यिकों के नाम लिखे गये पत्रों को संगृहीत कर "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" शीर्षक एक संग्रह प्रकाशित किया। प्रस्तुत संग्रह में डा. अग्रवाल के ३०२ पत्र संकलित हैं। संग्रह के प्राक्कथन और भूमिका में संपादक ने पत्र-साहित्य के महत्व पर प्रकाश डालते हुए डा. अग्रवाल की बहुमुखी प्रतिभा का विस्तार से परिचय दिया है। परिशिष्ट में पं. रामशंकर द्विवेदी,

डा. अम्बाप्रसाद "सुमन;" श्री वेदप्रकाश गर्ग, डा. श्याम वर्मा तथा डा. रामस्वरूप आर्य के विद्वत्तापूर्ण लेख संकलित हैं जिनमें डा. अग्रवाल के पत्र-साहित्य की विस्तृत चर्चा की गयी है। डा. अग्रवाल द्वारा जिन साहित्यकारों के नाम पत्र लिखे गये हैं, उनमें श्री कृष्णानन्द गुप्त, अगरचंद नाहटा, बनारसीदास चतुर्वेदी, डा. सत्येन्द्र, प्रभुदयाल मित्ताल, गणेश चौबे, डा. अम्बाप्रसाद "सुमन" आदि के नाम उल्लेख्य हैं। डा. अग्रवाल के धीर-गम्भीर और चिंतनशील व्यक्तित्व का सुन्दर परिचय हमें इन पत्रों में मिलता है। इसी वर्ष में मुहम्मद यूनुस द्वारा लिखित "क़ैदी के खत" नामक एक पुस्तक प्रकाशित हुई, जिसमें २६ ख़त दिये गये हैं। इनमें २५ विभिन्न जेलों में १८ अक्टूबर, १९४२ से २२ मार्च १९४५ के बीच एक क़ैदी की हैसियत से और अंतिम पत्र ९ जनवरी १९७४ को दिल्ली में लिखा गया है। ये पत्र लेखक ने किसी के पास भेजने के लिए नहीं, बल्कि अपने एकांत के दर्द को भुलाने के लिए लिखे हैं। अतः ये व्यक्तिगत पत्र नहीं हैं। इन पत्रों की तुलना डीरिच बोन्हफ़ेर (Dietrich Bonhoeffer) द्वारा लिखित "लेटर्स एण्ड पेपर्स फ्रॉम प्रिज़न"[1] से की जा सकती है।

सन् १९७६ में दो अत्यन्त महत्वपूर्ण पत्र-संग्रह प्रकाश में आये—एक श्री रत्नशंकर प्रसाद तथा डा. गिरीशचंद्र त्रिपाठी द्वारा सम्पादित "प्रसाद के नाम पत्र" और दूसरा डा. रामविलास शर्मा द्वारा सम्पादित "निराला की साहित्य-साधना" खण्ड-३। प्रथम संग्रह में प्रसाद जी के नाम लिखे गये छोटे-बड़े ६७ साहित्यकारों के पत्र संकलित हैं। इनमें से प्रायः सभी "प्रसाद" जी के समकालीन साहित्यकार, सम्पादक और प्रकाशक हैं। इन्हों ने समय-समय पर जो पत्र लिखे हैं, उनमें किसी पत्र-पत्रिका के लिए प्रकाशनार्थ रचना भेजने का आग्रह अथवा किसी कवि सम्मेलन में सम्मिलित होने का अनुरोध है। ग्रंथ की सामग्री सुनियोजित है। लेखकों के पत्र-अकारादि क्रम से रखे गये हैं किंतु जैसा कि डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित ने मत व्यक्त किया है— "यदि इन पत्रों को तिथि–क्रम के अनुसार रखा जाता है तो इनके द्वारा कई वृत्तांतों का प्रामाणिक (साथ ही विकासात्मक-विवरण) प्राप्त होता है।"[2] संक्षेप में इन पत्रों में छायावादयुगीन हिंदी जगत् के अनेक स्पंदन हैं।

हिंदी साहित्यकारों के प्रकाशित पत्र-संग्रहों में "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" एक अनुपम पत्र-संग्रह है। यहां हमें निराला जी को लिखे हुए तथा उनके लिखे हुए पत्र एक साथ पढ़ने को मिलते हैं। इस प्रकार यहां हम निराला जी के सहयोगियों के माध्यम से स्वयं निराला जी को देखते हैं और निराला जी के माध्यम से उनके सहयोगियों को। सम्पादक ने बड़ी

---

1. देखिए—"Letters and Papers from Prison" by Dietrich Bonhoeffer (1956), P. 41-54.
2. "प्रकर", जून १९७७, पृ. ८।

कुशलता से संग्रह का संपादन किया है। यह बृहत् पत्र-संग्रह तीन खण्डों में विभाजित है। प्रथम खण्ड में निराला जी को विभिन्न साहित्यकारों द्वारा लिखे गये पत्र कालक्रमानुसार संकलित हैं, द्वितीय खण्ड में निराला जी द्वारा अपने समकालीन और परवर्ती लेखकों तथा स्वजनों को लिखे गये पत्र संगृहीत हैं और तृतीय खण्ड में कुछ आवश्यक कागज़–पत्र संकलित हैं जो या तो निराला जी के बारे में सूचना देते हैं या फिर उनके व्यक्तित्व और मानसिकता को समझने में सहायता करते हैं। इस प्रकार निराला के युग और परिवेश की गम्भीर, आंतरिक और मार्मिक जानकारी के लिए इस पत्र-संग्रह का ऐतिहासिक महत्व निर्विवाद है।

सन् १९७७ में हमें श्री मधुरेश द्वारा सम्पादित "यशपाल के पत्र" और सुश्री वीरेन्द्र सिंधु द्वारा सम्पादित "सरदार भगतसिंह : पत्र और दस्तावेज़" शीर्षक दो महत्वपूर्ण पत्र-संग्रह प्राप्त होते हैं। इनमें साहित्यिक दृष्टि से "यशपाल-के पत्र" शीर्षक संग्रह अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें मधुरेश के नाम लिखे गये यशपाल जी के ७१ पत्र संकलित हैं। ये पत्र १९५५ और १९७६ के बीच की अवधि में लिखे गये हैं। पत्र-संग्रह की भूमिका का स्वरूप एक लम्बे संस्मरणात्मक निबंध जैसा है जिसमें सम्पादक ने लेखक से अपनी पहचान का परिचय दिया है। पत्रों के संदर्भों की जानकारी के लिए स्थान–स्थान पर टिप्पणियां दी गई हैं। अपनी कृतियों के बारे में यशपाल जी ने इन पत्रों में अनेक ऐसी सूचनाएं दी हैं जिनसे उनके कथाकार को समझने में हमें पर्याप्त सहायता मिलती है। डा. प्रेमशंकर के शब्दों में "यशपाल के ये पत्र कथाकार के विषय में ढेर सारी सामग्री देते हैं—संक्षेप में ही सही, इससे किसी भी शोधकार्य अथवा समीक्षा में निश्चित सहायता मिलती है।"[1] "सरदार भगतसिंह : पत्र और दस्तावेज़" शीर्षक संग्रह में अमर शहीद भगतसिंह द्वारा अपने स्वजन-परिजनों तथा इष्ट-मित्रों को लिखे गये कुछ महत्वपूर्ण पत्र संकलित हैं। इन पत्रों से ज्ञात होता है कि भगतसिंह एक अध्ययनशील, कर्मठ और राष्ट्र-प्रेमी व्यक्ति थे।

सन् १९७८ ई. में प्रकाशित पत्र-संग्रहों में श्री रमण शांडिल्य द्वारा सम्पादित "बाबू वृंदावनदास के पत्र" तथा इमरोज़ द्वारा सम्पादित "दस्तावेज़" विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। बाबू वृंदावनदास हिंदी पत्र-विधा के प्रमुख उन्नायकों में से हैं। वे एक कुशल सम्पादक और अच्छे पत्र-लेखक हैं। उनके द्वारा समय-समय पर हिंदी के विभिन्न क्षेत्रों के विद्वानों को लिखे गये पत्र "बाबू वृंदावनदास के पत्र" शीर्षक संग्रह में प्रकाशित हैं। इसमें कुल मिलाकर ४९१ पत्र संकलित हैं। जिन विद्वानों को पत्र लिखे गये हैं, उनमें पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र, "प्रभाकर", यशपाल जैन जैसे हिंदी के वरिष्ठ

1. "समीक्षा", जनवरी-फरवरी १९७९, पृ. ३०।

साहित्यकार, श्री अगरचन्द नाहटा, कृष्णानन्द गुप्त, उदयशंकर शास्त्री जैसे पुरातत्व एवं लोकसाहित्य के ज्ञाता और डा. रामशंकर द्विवेदी, डा रामस्वरूप आर्य, डा. लक्ष्मीनारायण दुबे, डा. लल्लन मिश्र जैसे विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों का समावेश है। इन पत्रों से बाबू जी के विशाल सम्पर्क का पता चलता है और उनकी हिंदी-सेवा का साक्षात्कार होता है। "दस्तावेज़" शीर्षक संग्रह में हिंदी की प्रसिद्ध कथा-लेखिका अमृता प्रीतम द्वारा इमरोज़ के नाम लिखे गए पत्र संकलित हैं। इन पत्रों में सर्वत्र एक नारी-हृदय का स्पन्दन मिलता है। हिंदी के उत्तम प्रेम-पत्रों में इनकी गिनती की जा सकती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिंदी में महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों को संगृहीत कर पुस्तकाकार प्रकाशित करने की प्रवृत्ति का प्रारम्भ १९१० ई. से ही हो गया था, किंतु प्रारम्भिक दशकों में आर्य-समाजी लेखकों के सिवा अन्य हिंदी लेखकों एवं विद्वानों ने इस विधा के विकास की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया। प्रारम्भ में हमारे यहां पत्रों के संग्रह, सम्पादन और प्रकाशन का आदर्श भी सम्यक् रूप से स्थापित नहीं हुआ जिसके कारण इस दिशा में अपेक्षित कार्य नहीं हो पाया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिंदी पत्र-साहित्य के विकास में अधिक गतिशीलता परिलक्षित होती है। हिंदी के महान् साहित्यकारों के पत्र-संग्रह स्वातंत्र्योत्तरकाल में ही प्रकाशित हुए हैं। पिछले तीन दशकों से अनेक महान् साहित्यिकों के पत्र-संग्रह प्रकाश में आ चुके हैं। इन पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त अनेक स्मृति-ग्रंथों, अभिनंदन-ग्रंथों, शोध-प्रबन्धों, पत्र-पत्रिकाओं आदि में भी साहित्यकारों तथा महापुरुषों के मूल्यवान् पत्र प्रकाशित हुए हैं। अतः यहां उनका संक्षिप्त विवरण अप्रासंगिक न होगा।

हिन्दी के विविध ग्रंथों एवं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पत्र-साहित्य :

साहित्य, राजनीति आदि विभिन्न क्षेत्रों की महान् विभूतियों से सम्बद्ध ग्रंथों एवं दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं में भी पत्र-साहित्य का अमूल्य भण्डार संकलित हैं। अवलोकन की सुविधा की दृष्टि से इसे निम्नांकित शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है:—

(१) स्मृति एवं अभिनंदन-ग्रंथों में संकलित पत्र,
(२) शोध-प्रबन्धों के परिशिष्टों में संगृहीत पत्र,
(३) जीवन-चरित एवं व्यक्तित्व-कृतित्व-विषयक ग्रंथों में उपलब्ध पत्र और—
(४) दैनिक, साप्ताहिक, मासिक आदि पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित पत्र।

साहित्यिक विद्वानों तथा राजनैतिक नेताओं को भेंट करने के लिए प्रकाशित किये गये स्मृति-ग्रंथों एवं अभिनंदन-ग्रंथों में पत्र-साहित्य का एक विशाल भण्डार भरा है। यहां कुछ मुख्य ग्रंथों में संकलित पत्रों का विवरण दिया जाता है।

श्री झाबरमल्ल शर्मा तथा बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" (१९५०) में महामना पं. मदनमोहन मालवीय, पं. श्रीधर पाठक, पं. प्रतापनारायण मिश्र आदि साहित्यिकों द्वारा गुप्त जी को लिखे गये पत्र अनेक स्थलों पर ससन्दर्भ उद्धृत किये गये हैं। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा गुप्त जी का पत्र-व्यवहार भी इसमें प्रकाशित किया गया है। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल और अन्य विद्वानों द्वारा सम्पादित "राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनंदन-ग्रंथ" (१९५९) के द्वितीय-खण्ड "जीवनी और पत्र"—में गुप्त जी के बहुमूल्य पत्र संकलित हैं। नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली से "एक व्यक्ति : एक संस्था" (१९६६) शीर्षक से प्रकाशित "क्षेमचंद्र" सुमन अभिनंदन-ग्रंथ" में "सुमन" जी के नाम लिखे गए माखनलाल चतुर्वेदी, कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर," सियारामशरण गुप्त, राजर्षि टंडन, उदयशंकर भट्ट, आचार्य चतुरसेन शास्त्री आदि साहित्यिकों के महत्वपूर्ण पत्र प्रकाशित हैं। श्री शिवप्रसाद सिंह द्वारा सम्पादित "आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ— "शांतिनिकेतन से शिवालिक" (१९६७) के "एक इण्टरव्यू : कुछ पत्र" शीर्षक खण्ड में आचार्य द्विवेदी को प्रेषित महादेवी वर्मा, सोहनलाल द्विवेदी, वियोगी हरि, राहुल सांकृत्यायन, नन्ददुलारे वाजपेयी, बनारसीदास चतुर्वेदी, शिवमंगलसिंह "सुमन," सुमित्रानंदन पंत आदि साहित्यकारों के पत्र संकलित हैं। "एक कवि : एक देश" (१९६९) शीर्षक से प्रकाशित सोहनलाल द्विवेदी अभिनन्दन ग्रंथ में श्री निरंकारदेव के नाम लिखे गये द्विवेदी जी के कुछ मधुर पत्र "हृदय की धड़कनों के स्वर"—शीर्षक लेख में उद्धृत किये गये हैं। डा. शिवनंदन प्रसाद और अन्य विद्वानों द्वारा सम्पादित "राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह अभिनंदन ग्रंथ" (१९६९) के "पत्रांजलि" शीर्षक खण्ड में डा. वासुदेवनंदन प्रसाद तथा डा. गोपालप्रसाद "वंशी" को लिखे राजा साहब के अनेक अनूठे पत्र संकलित हैं। शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी, आगरा से प्रकाशित "बाबू गुलाबराय स्मृति-ग्रंथ (१९७०) में बाबूजी द्वारा डा. विजयेन्द्र स्नातक तथा डा. गंगाप्रसाद गुप्त को लिखे गये पत्रों में बाबू जी के जीवन और उनकी साहित्यसाधना का सुन्दर परिचय मिलता है। सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली से "प्रेरक साधक" (१९७०) शीर्षक से प्रकाशित पं. बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन-ग्रंथ के खण्ड-४ में चतुर्वेदी जी के अनेक "प्रेरक पत्र" संकलित हैं। इस प्रकार हिंदी पत्र-साहित्य के विकास में इन ग्रंथों का योग कम महत्वपूर्ण नहीं है।

हिंदी के कुछ शोध-प्रबन्धों के परिशिष्टों में शोध-कर्त्ताओं द्वारा संगृहीत अनेक बहुमूल्य पत्र प्रकाशित हुए हैं। इन पत्रों में हिंदी साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों तथा विधाओं के सम्बन्ध में अच्छी जानकारी मिलती है। यहां हम इस प्रकार की पत्र-सामग्री का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं।

डा. शितिकण्ठ मिश्र लिखित "खड़ी बोली का आंदोलन" (१९५६) के परिशिष्ट (क) में प्रकाशित अयोध्याप्रसाद खत्री और पं. श्रीधर पाठक के पत्र खड़ी बोली आंदोलन को समझने के लिए अत्यन्त उपयोगी हैं। डा. पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" लिखित "हिंदी गद्य-काव्य" (१९५८) के परिशिष्ट-२ में हिंदी के अनेक प्रसिद्ध विद्वानों एवं गद्य-काव्य-लेखकों (वृन्दावनलाल वर्मा,-वियोगी हरि, विनोदशंकर व्यास, सद्गुरूशरण अवस्थी, डा. रघुवीर सिंह आदि) के पत्र प्रकाशित हैं। प्रबन्ध-लेखक को गद्य काव्य के स्वरूप-निर्धारण में इन पत्रों से पर्याप्त सहायता मिली है। डा. रामेश्वर लाल खण्डेलवाल लिखित "जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला" (१९६८) के परिशिष्ट-६ में प्रसादजी की साहित्य-साधना के विषय में प्रबन्ध-लेखक तथा आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी के बीच हुए पत्र-व्यवहार के कुछ महत्पपूर्ण अंश प्रश्नोत्तर रूप में प्रकाशित हैं। डा. शांति प्रकाश वर्मा लिखित "प्रतापनारायण मिश्र की हिंदी गद्य को देन" (१९७०) के परिशिष्ट-४ में मिश्र जी द्वारा बाबू बालमुकुन्द गुप्त, राधाकृष्णदास आदि साहित्यकारों को प्रेषित कुछ रोचक पत्र प्रकाशित हैं। डा. मधुकर भट्ट लिखित "पं. बालकृष्ण भट्ट : व्यक्तित्व और कृतित्व" (१९७२) के परिशिष्ट-५ में भट्ट जी के जो तीन-चार पत्र दिये गये हैं, उनमें पं. श्रीधर पाठक के नाम लिखा एक पद्य-बद्ध पत्र भी सम्मिलित है। डा रवेलचन्द आनन्द लिखित "महापंडित राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य" (१९७३) के परिशिष्ट-४ में उद्धृत डा. कमला सांकृत्यायन, डा. महादेव साहा तथा भदन्तानन्द कौशल्यायन के पत्रों से राहुल जी के सजर्नात्मक साहित्य के सम्बन्ध में अनेक नयी बातें जानने को मिलती हैं। डा. रामचन्द्र पुरोहित-लिखित "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६) के परिशिष्ट-२ में "प्रेमघन" जी द्वारा प्रेषित और प्राप्त अनेक मूल्यवान् पत्र प्रकाशित हैं। डा. रमाकांत श्रीवास्तव लिखित "व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के सन्दर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा (१९७७) के परिशिष्ट-२ में संकलित पत्रों से वर्मा जी के जीवन-दर्शन की झांकी मिलती है। इस प्रकार इन पत्रों का अपना पृथक् महत्व है।

जीवन-चरित एवं व्यक्तित्व कृतित्व सम्बन्धी अनेक ग्रंथों में विपुल पत्र-सामग्री उपलब्ध होती है। हिंदी में ऐसी कई जीवनियां एवं आत्मकथाएं मिलती हैं जिनमें चरित-नायक से सम्बन्धित कुछ महत्वपूर्ण पत्र या तो एक स्वतंत्र प्रकरण में प्रकाशित किये गये हैं या परिशिष्ट में। इस प्रकार के ग्रंथों में बाबू शिवनन्दन सहाय कृत "हरिश्चन्द्र" (१९०५), सेठ गोविन्ददास कृत "आत्म-निरीक्षण" भाग-३ (१९५८), ब्रजरत्नदास कृत "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९६२), आचार्य चतुरसेन शास्त्री कृत "मेरी कहानी" (१९६२), डा. भगवतीप्रसाद सिंह कृत "मनीषी की लोकयात्रा" (१९६८). शम्भुप्रसाद बहुगुणा कृत "गोविंदवल्लभ पंत : एक जीवनी" (१९७२) आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

निम्नलिखित जीवन-चरित्रों में प्रसंगोपात चरित्र-नायक से सम्बन्धित पत्र उद्धृत किये गये हैं:—

पं. बनारसी दास चतुर्वेदी कृत "कविरत्न सत्यनारायणजी की जीवनी" (१९२६), पं. लक्ष्मीशंकर व्यास कृत "पराड़कर जी और पत्रकारिता" (१९६०), अमृतराय कृत "प्रेमचन्द : कलम का सिपाही" (१९६२), मदनगोपाल कृत "कलम-का मजदूर प्रेमचन्द" (१९६५), डा. रामविलास शर्मा कृत "निराला की साहित्य-साधना, भाग-१" (१९६९), मदनगोपाल कृत "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९७६), और डा. शांति जोशी कृत "सुमित्रानन्दन पंत : जीवनी और साहित्य" भाग-२ (१९७७)।

जिन संस्मरण ग्रंथों में हिंदी साहित्यकारों के उत्प्रेरक एवं मनोरंजक पत्र देखने को मिले हैं, उनमें पं. बनारसीदास चतुर्वेदी कृत "संस्मरण" (१९५२), राहुल सांस्कृत्यायन कृत "यात्रा के पन्ने" (१९५२), आचार्य किशोरीदास वाजपेयी कृत "द्विवेदी जी और उनके संगी-साथी" (१९६५), रामनाथ सुमन कृत "छायायुगीन स्मृतियां" (१९७५) तथा "मैंने स्मृति के दीप जलाये (१९७६), श्रीनारायण चतुर्वेदी कृत" "मनोरंजक संस्मरण" (१९७७) आदि ग्रंथों के नाम उल्लेखनीय हैं।

लेखक के व्यक्तित्व और कृतित्व-विषयक ग्रंथों में भी प्रसंगोपात अथवा परिशिष्ट रूप में पत्रों को स्थान देने की परम्परा चल पड़ी है। इस प्रकार के ग्रंथों में डा. प्रभाकर माचवे द्वारा सम्पादित "जैनेन्द्र के विचार" (१९३८), हरिवंशराय "बच्चन" कृत "कवियों में सौम्य संत" (१९६०) गोविंद अग्रवाल कृत "पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदासजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व" (१९६८), डा. ब्रह्मानन्द द्वारा सम्पादित "राहुल सांकृत्यायन : व्यक्तित्व और कृतित्व" "(१९७१), जगदीशप्रसाद पीयूष द्वारा सम्पादित "पं. रामनरेश त्रिपाठी : एक युग एक व्यक्तित्व" (१९७४) रवीन्द्र कालिया द्वारा सम्पादित "अमरकांत" (१९७७) आदि ग्रंथ स्मरणीय हैं।

आधुनिक युग की अन्य गद्य-विधाओं के समान पत्र-विधा के विकास में भी हिंदी पत्रकारिता से अपूर्व सहयोग प्राप्त हुआ है। महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्र पुस्तक के रूप में प्रकाशित होने से पहले पत्र-पत्रिकाओं में ही प्रकाशित हुए हैं। अब भी हिंदी का प्रचुर पत्र-साहित्य पत्र-पत्रिकाओं के अंकों में बिखरा पड़ा है। कुछ पत्रिकाओं ने पत्र-विशेषांक भी प्रकाशित किये हैं। श्री नंदकिशोर तिवारी के सम्पादकत्व में प्रकाशित "चांद" का पत्रांक (मई १९२८) स्वतंत्रता-पूर्व पत्र-साहित्य के स्वरूप की झलक प्रस्तुत करता है और स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद के पत्र-साहित्य के स्वरूप एवं विकास की झांकी हमें श्री लक्ष्मीचन्द्र जैन तथा शरद देवड़ा द्वारा सम्पादित "ज्ञानोदय" के पत्रांक (नवम्बर १९६३)

में मिलती है। इन पत्र-विशेषांकों के अतिरिक्त "वीणा" के नवीन-स्मृति-अंक (१९६०), "सम्मेलन पत्रिका" के श्रद्धांजली-अंक (१९६२), "नर्मदा" के नवीन-अंक (१९६३), "भाषा" के द्विवेदी-स्मृति-अंक (१९६४), "साहित्य" (त्रै.) के शिवपूजन–स्मृति–अंक (१९६४), "राष्ट्रवाणी" के मुक्तिबोध अभिनंदन-अंक (१९६५), "वीणा" के अकविता-विशेषांक (१९६६), "पाञ्चजन्य" के क्रांति-संस्मरण अंक (१९६८), "रसवंती" के माखनलाल चतुर्वेदी-अंक (१९६९) आदि में भी हिंदी के प्रसिद्ध साहित्यकारों तथा राष्ट्र के उन्नायकों के मूल्यवान पत्र प्रकाशित हुए हैं।

हिंदी-पत्र-साहित्य के विकास में "सरस्वती" "विशाल भारत," "नागरी प्रचारिणी पत्रिका," "सम्मेलन पत्रिका" "हिंदुस्तानी," "माध्यम," "आलोचना," "साप्ताहिक हिन्दुस्तान," "धर्मयुग," "भारतीय साहित्य" आदि पत्र-पत्रिकाओं का योग भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पुस्तक रूप में जो पत्र-साहित्य प्रकाश में आया है, उससे कहीं अधिक मात्रा में हिंदी के विविध ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं के अंकों में प्रकाशित हुआ है। इसलिए हिंदी पत्र-साहित्य के विकास की चर्चा में इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। अब यहाँ हम समग्ररूप में प्रकाशित सामग्री के आधार पर हिन्दी पत्र-साहित्य के विभिन्न चरणों का विश्लेषण करेंगे।

प्रकाशित सामग्री के आधार पर हिन्दी पत्र-साहित्य के विभिन्न चरणों का विश्लेषण

हिंदी में प्राचीन युग से लेकर अब तक का जो प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाश में आया है, उसके विभिन्न चरणों को निम्नलिखित चार शीर्षकों में वर्गीकृत किया जा सकता है:—

(१) पूर्व-भारतेन्दु युगीन पत्र-साहित्य,

(२) भारतेन्दु-युगीन पत्र-साहित्य

(३) द्विवेदी-युगीन पत्र-साहित्य और

(४) वर्तमान-युगीन पत्र-साहित्य।

आगे प्रत्येक युग के पत्र-साहित्य पर यथावश्यक प्रकाश डाला गया है।

पूर्व-भारतेन्दु-युगीन पत्र-साहित्य

पूर्व-भारतेन्दु-युगीन पत्र-साहित्य का स्वरूप अधिकांशतः दस्तावेजी-साहित्य जैसा है। दूसरे शब्दों में आलोच्य युग में पत्र-लेखन से कहीं अधिक पत्रों का आलेखन ही हुआ है। यही कारण है कि कलम को कागज पर रखकर जैसे भाव बहे, विचार उमड़े, लिखते चले जाने की प्रवृत्ति इस युग में कम पायी

जाती है और कारण है इस काल के पत्रों में लेखक के व्यक्तित्व का सहज स्फुरण कम मिलता है। इसके बावजूद भी इस काल के पत्रों का महत्व इसलिए है कि इनमें हमें प्राचीन राजनीति, समाज-व्यवस्था, धार्मिक प्रवृत्ति, भाषा-विकास आदि की यथार्थ जानकारी मिलती है। विषय की दृष्टि से इस काल के पत्रों को दो विभागों में बांटा जा सकता है:—(अ) प्रशासनिक पत्र और (आ) व्यक्तिगत पत्र।

(अ) प्रशासनिक पत्र :

प्रशासन या सरकारी काम-काज से सम्बन्धित पत्रों को प्रशासनिक या सरकारी पत्र कहा जाता है। ये कई प्रकार के होते थे। जैसे—फरमान, निशान, अर्जदाश्त, सनद, परवाना, रुक्का, इत्यादि। बादशाही पत्रों को फरमान कहते हैं। उन्हें बादशाह किसी दूसरे व्यक्ति से लिखवाता या स्वयं लिखता है। निशान वे पत्र हैं जिन्हे शाहजादे, बादशाह को छोड़कर, अन्य व्यक्तियों को लिखते हैं। अर्जदास्त उन पत्रों को कहा जाता है जिन्हें प्रजावर्ग के लोग बादशाहों या शाहजादे को लिखते हैं। इसका संक्षिप्त रूप अर्जी है। सनद एक प्रकार का नियुक्त पत्र है। किन्तु सूबेदारों की नियुक्ति के लिए फरमान शब्द ही प्रयुक्त है। परवाना उस प्रशासनिक पत्र की संज्ञा है जो अपने से छोटे अधिकारी को लिखा जाता है। रुक्का यद्यपि प्राइवेट पत्र की संज्ञा है, किंतु राजा की ओर से प्राप्त पत्र को परवर्तीकाल में खास रुक्का कहने लगे।[1]

उपर्युक्त सभी पत्रों के उदाहरण हमें डा. नारायणसिंह भाटी द्वारा सम्पादित "परम्परा" भाग-२४ तथा डा. काशिनाथ शंकर केलकर द्वारा लिखित "१८वीं शती के हिंदी पत्र" में प्राप्त होते हैं। इसके अतिरिक्त डा. धीरेन्द्र वर्मा तथा डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा सम्पादित "प्राचीन हिंदी पत्र-संग्रह" में भी विभिन्न प्रकार के प्रशासनिक पत्र संकलित हैं। इन पत्रों में प्राप्त राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक सन्दर्भों की विस्तृत चर्चा आगे यथास्थान की जायेगी।

(आ) व्यक्तिगत पत्र

व्यक्तिगत सम्बन्धों तथा समस्याओं की चर्चा जिन पत्रों में की जाती है, उन्हें व्यक्तिगत पत्र कहते हैं। प्राचीनकाल में राजाओं द्वारा अपने मित्रों, स्वजनों आदि को लिखे गये पत्र तथा धर्माचार्यों द्वारा अपने सहयोगियों, शिष्यों, आदि को लिखे गये पत्र व्यक्तिगत पत्र के अन्तर्गत रखे जा सकते हैं। ये पत्र परम्परा-सम्मत शैली में लिखे गये हैं और उनमें तत्कालीन शिष्टाचार का पूरा ध्यान रखा गया है। "परम्परा" : भाग-२४ में राजस्थान के अनेक ऐतिहासिक व्यक्तियों के वैयक्तिक पत्र-

---

1. "कुछ ऐतिहासिक रुक्के परवाने" (लेख), डा. दशरथ शर्मा, "परम्परा" भाग-२४, परिशिष्ट [illegible]

रुक्के-संकलित हैं। इसी प्रकार "१८ वीं शती के हिंदी पत्र" शीर्षक शोधप्रबन्ध में मराठा-शासकों के अनेक व्यक्तिगत पत्र संगृहीत हैं। "प्राचीन हिंदी पत्र-संग्रह" में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शासनकाल में नागरी अक्षरों में लिखे गये पत्र प्रकाशित हैं। ये पत्र देशी राजाओं, नवाबों, कम्पनी के गवर्नरों आदि के द्वारा लिखे गये हैं। इनके अतिरिक्त डा. महेंद्रप्रतापसिंह द्वारा सम्पादित "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल" शीर्षक ग्रंथ में महाराजा छत्रसाल के अनेक सुन्दर वैयक्तिक पत्र संकलित हैं। जैसा कि हम पीछे देख चुके हैं, इन पत्रों के प्रारम्भ में लम्बी-लम्बी प्रशस्तियां देकर परस्पर के कुशल समाचार का उल्लेख किया जाता था। जैसे—"श्री महाराजाधीराज श्री राजराजेन्द्र की सवाई माधोसिंघजी योग्ये राज्यश्री जयाजी सींदे सुबेदारकेन श्री बंचणा आप्रंच अठाकों समाचार भला छे आपको सदा सर्वदा भलें चाहीजे........"[1]

इस प्रकार इस युग के व्यक्तिगत पत्र भी एक तरह से रूढ़ पत्र प्रतीत होते हैं। इनमें साहित्यिक सौंदर्य बहुत कम है, तथापि इनका ऐतिहासिक महत्व है। अतः इनका उपयोग हम आगे यथास्थान करेंगे।

भरतेन्दु-युगीन पत्र-साहित्य :

भारतेन्दु-युग को "पुनर्जागरण—काल" कहा गया है। श्री केसरीकुमार ने तो यहां तक कहा है कि—"भारतेन्दु का युग, भारत के लिए ही नहीं, अपितु संसार भर के लिए एक महान् जागरण का युग था। स्वदेश में ब्राह्म-समाज के प्रवर्तक राजा राममोहन राय थे, आर्य समाज के विधाता ऋषि दयानंद थे। राजनैतिक नेता सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, दादाभाई नौरोजी, सर सैयद अहमद इत्यादि थे। आधुनिक शिक्षा के शिलान्यासक ईश्वरचंद्र विद्यासागर थे। मोसद्दस के कवि हाली, वन्देमातरम् के काव्य—प्रणेता बंकिमचंद्र थे। विदेश में साम्यवाद के अवतार कार्ल मार्क्स और महर्षि इंजिल्स थे। मनोविश्लेषण के आचार्य फ्रायड थे।"[2] इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतेन्दु-युग समग्र दृष्टि से नव-जागरण का युग था।

यद्यपि भारतेन्दु-युग में किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के पत्रों का कोई स्वतंत्र संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ, किंतु पत्र-पत्रिकाओं में साहित्यकारों तथा अन्य क्षेत्रों की विभूतियों के पत्रों को प्रकाशित करने की प्रवृत्ति का आरम्भ इसी युग में हो चुका था।[3] यही नहीं, 'ऋषि दयानंद का पत्र व्यवहार भाग-१" शीर्षक जिस पत्र-संग्रह से हिंदी में पत्र-साहित्य की विधिवत् परम्परा का सूत्रपात हुआ, उस

1. "१८ वीं शती के हिंदी पत्र" (१९७०), पृ. ४०६।
2. "साहित्य और समीक्षा" (प्र. सं.), पृ, ३१।
3. देखिए:—"ब्राह्मण," खण्ड-४, सं.-१२, पृ. १२ पर प्रकाशित पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय "हरिऔध" का १३-५-१८८२ का पत्र।

संग्रह में संकलित पत्रों का सम्बन्ध इसी युग से है। ऋषि दयानंद सरस्वती भारतेन्दु-युग अर्थात् पुनर्जागरणकाल की ही एक महान् विभूति थे। अतः इसी युग को हिंदी पत्र-साहित्य का यथार्थ विकास चरण मानना युक्ति संगत प्रतीत होता है। पूर्व-भारतेन्दु युग से सम्बन्धित जो पत्र-सामग्री प्राप्त होती है, वह ऐतिहासिक दृष्टि से तो उपयोगी है, किंतु साहित्यिक दृष्टि से उसका अधिक महत्व नहीं है। पत्रों में साहित्यिक विषयों की चर्चा का आरम्भ भारतेन्दु-युग से ही हुआ है। यद्यपि इस युग के प्रमुख साहित्यकारों के पत्रों का कोई स्वतंत्र संग्रह देखने को नहीं मिलता, किंतु हिंदी के विविध ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं के अंकों में इस युग के साहित्यकारों के जो पत्र प्रकाशित हुए हैं, उनको देखने से पता चलता है इस युग में पत्र, लेखन-कला का स्तरीय विकास हो चुका था।

(अ) प्रमुख पत्र-लेखक :

आलोच्य युग के प्रमुख पत्र-लेखकों में भारतेन्दु हरिश्चंद्र और महर्षि दयानंद सरस्वती के नाम विशेष रूप से स्मरणीय हैं। ये दोनों पुनर्जागरण-काल की महान् विभूतियां हैं। डा. चंद्रभानु सोनवणे के शब्दों में "स्वामी दयानंद सरस्वती एवं भारतेन्दु हिंदी भाषी प्रदेश में आधुनिकता के अग्रदूत रहे हैं। स्वामी दयानंद सरस्वती ने धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में पुनर्जागरण के आंदोलन का नेतृत्व किया था, तो भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने साहित्यिक क्षेत्र में।"[1] इस प्रकार इस युग के साहित्यिक क्षेत्र में जो स्थान भारतेन्दु हरिश्चंद्र को प्राप्त है, वही स्थान सांस्कृतिक क्षेत्र में स्वामी दयानंद सरस्वती को। भारतेन्दु जी ने अपने पत्रों से हिंदी साहित्य के विकास में सहयोग प्रदान किया तो स्वामी जी ने अपने पत्रों से हिंदी-भाषी प्रदेशों में सांस्कृतिक चेतना का विकास किया। अतः यहां हम सबसे पहले इन दोनों के पत्र-साहित्य का संक्षिप्त परिचय देकर अन्य पत्र-लेखकों की चर्चा करेंगे। इन प्रमुख पत्र-लेखकों का विस्तार से अध्ययन अगले अध्याय में करेंगे।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र :

इस बात का संकेत किया जा चुका है कि हिंदी साहित्य में सर्वप्रथम पत्र-लेखक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हुए हैं। हिन्दी में नये चाल के पत्र उन्होंने ही चलाये। पत्र-लेखन कला विषयक उनकी गहरी सूझ-बूझ का परिचय हमें उनकी "प्रशस्ति—संग्रह अथवा पत्र-बोध" शीर्षक पुस्तक में मिलता है। प्रस्तुत पुस्तक में उन्होंने अपने समय में प्रचलित पत्रोत्तर देने की एक कलात्मक रीति का सुन्दर

1. "भारतेन्दु के विचार : एक पुनर्विचार" (१९७७) पृ. ८।

उदाहरण भी दिया है ।[1] इससे स्पष्ट होता है कि उनके युग में पत्र-व्यवहार ने साहित्यिक विनोद का रूप धारण कर लिया था ।

भारतेन्दु द्वारा लिखे गये पत्रों का कोई स्वतंत्र संग्रह तो उपलब्ध नहीं होता, परंतु उन पर लिखे गये जीवनी-ग्रंथों तथा उनके सहयोगी साहित्यकारों पर लिखे गये शोध-प्रबंधों के परिशिष्टों में उनके जो पत्र प्राप्त होते हैं, उनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि वे एक उच्चकोटि के पत्र-लेखक थे । उनके पत्र-साहित्य की विस्तृत चर्चा हम अगले अध्याय में करेंगे ।

महर्षि दयानन्द सरस्वती :

जैसा कि कहा जा चुका है, हिंदी-भाषी प्रदेशों में, धार्मिक एवं सामाजिक क्षेत्र में पुनर्जागरण के आन्दोलन का नेतृत्व स्वामी दयानन्द सरस्वती ने किया था । उन्होंने अपने मंतव्यों का प्रचार करने के लिए हिन्दी को अपने विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया । पहले वे संस्कृत में पत्र लिखते थे अथवा दूसरों को बोल कर लिखवाते थे अथवा लिखने को कह दिया करते थे और हस्ताक्षर कर देते थे, किन्तु सन् १८७३ ई. के अंत भाग से हिन्दी में उनका पत्र-व्यवहार आरम्भ हुआ और अंतिम समय सन् १८८३ तक चलता रहा । उन्हों ने इन दस वर्षों में सैंकड़ों पत्र लिखे । स्व. महात्मा मुंशीराम, पं. भगवद्दत्त, पं. चमूपति आदि आर्य-समाजी विद्वानों ने उनका पत्र-साहित्य पुस्तक के रूप में प्रकाशित कर हिन्दी पत्र-साहित्य की महती सेवा की है । स्वामी जी के पत्र-साहित्य की विस्तृत समीक्षा अगले अध्याय में प्रस्तुत की जायेगी । यहां यही कहना पर्याप्त होगा कि भारतेन्दु-युग में महर्षि दयानन्द सरस्वती ही एक ऐसी विभूति हैं जिनका पत्र-साहित्य कई खण्डों में प्रकाशित हो चुका है । अतः आलोच्य युग के प्रमुख पत्र-लेखकों में भारतेन्दु के बाद उन्हीं का स्थान है ।

---

1. "प्रशस्ति संग्रह,"
भारत कला भवन, बनारस में सुरक्षित टंकित प्रति, पृ. १२ ।
"श्रीयुत राजा शिवप्रसाद साहब को मैंने एक बेर रुक्का लिखा था । (उन्हों ने अपना फोटोग्राफ देने को कहा था, वह मंगाने हेतु) :
"इसी शेर के मुताबिक जवाब दीजिएगा—
कमाल शौके-मुलाकात उसने लिखा है
चलूं मैं आप ही कासिद जवाब के बदले ।"
उन्होंने लिफाफे में अपना फोटोग्राफ रख दिया और मेरे रुक्के को यों काट दिया—
"इसी शेर के मुताबिक जवाब दीजिएगा,
दिया है—कमाल शौके—मुलाआत उसने लिखा है
चला मैं आप ही कासिद जवाब के बदले ।"

(आ) अन्य पत्र-लेखक :

भारतेन्दु-युग के अन्य पत्र-लेखकों में भारतेन्दु-मण्डल के उन साहित्यकारों का उल्लेख किया जा सकता है, जिनके कुछ महत्वपूर्ण पत्र प्रकाश में आये हैं। इस दृष्टि से यहां तीन साहित्यकारों—बदरीप्रसाद उपाध्याय "प्रेमघन," प्रताप-नारायण मिश्र और राधाकृष्णदास के नाम उल्लेखनीय हैं ।

बदरीप्रसाद उपाध्याय "प्रेमघन" :

भारतेन्दु-मण्डल के साहित्यकारों में "प्रेमघन" जी का प्रमुख स्थान था। वे "आनन्दकादम्बिनी" के यशस्वी सम्पादक थे। अपने समकालीन साहित्य-कारों से उनका अच्छा सम्पर्क था। डा. रामचन्द्र पुरोहित ने अपने "प्रेमघन और उनका कृतित्व" शीर्षक शोध-प्रवन्ध के परिशिष्ट-२ में उनका पत्र-व्यवहार प्रकाशित किया है। यद्यपि इसमें "प्रेमघन" जी के लिखे हुए पत्र कम हैं, फिर भी इन पत्रों से उनके कलात्मक व्यक्तित्व का अच्छा परिचय मिलता है।

"प्रेमघन और उनका कृतित्व" शीर्षक प्रवन्ध में हमें "प्रेमवन" जी के चार पत्र मिलते हैं। एक उन्होंने अपने अनुज पं. मथुराप्रसाद उपाध्याय को लिखा है, दूसरा डा. ग्रियर्सन को," तीसरा पं. रामगरीब चौबे को और चौथा पं. लोचनप्रसाद पाण्डेय को ! इनमें डा. ग्रियर्सन और उनके सहकारी पं. रामगरीब चौबे को लिखे गये पत्र विषय और शैली की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। ग्रियर्सन के नाम लिखे पत्र से एक ओर जहां इन दोनों साहित्यिकों के पारस्परिक सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है, वहां दूसरी ओर "प्रेमघन" जी की रंगीन तबीयत का संकेत भी मिलता है। पूरा पत्र अनुप्रास की छटा से ओतप्रोत है। यहां हम उसका प्रारम्भिक अंश प्रस्तुत करते हैं :

"मित्रवर,

आजकल फागुन का अध्याय है, शहर में व्याह-शादियों की धूम-धाम है, इसी से मुझे भी बरातों से काम है, नाच व रंग से दिल को बहुत आराम है, कि इसी से फुरसत न कोई काम है।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि "प्रेमघन" के निबन्धों की तरह उनके पत्र भी आलंकारिक सौंदर्य से अभिमंडित होते थे। उनकी निबन्ध-लेखनकला के सम्बन्ध में व्यक्त किया गया डा. ओंकारनाथ शर्मा का यह मत कि—"ये अलंकार-शैली के प्रकांड पंडित थे, तथा शब्द-चयन पर इनकी विशेष दृष्टि रहती थी। इन्होंने गद्य में कोमल पद-रचना का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है,"[2]—उनकी पत्र-लेखन कला पर भी चरितार्थ होता है।

---

1. "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), परिशिष्ट-२, पृ. ७।
2. "हिन्दी निबन्ध का विकास" (१९६४), पृ.-१२६।

"प्रेमघन" जी के कवित्वमय पत्र पाकर मित्र लोग झूम उठते थे । उनके एक पत्र के उत्तर में श्री कृष्णशरण सिंह ने लिखा है कि—"प्रियवर । वल्लाह, खत क्या है खतों का एसन्स (essence) याने रूव है, जौहर है, लुव्वलुवाव है, निचोड़ है, खुलासा है ·· ...."[1]

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि न केवल भारतेन्दु-युगीन पत्र-साहित्य में, वरन् समस्त हिन्दी-पत्र-साहित्य में आलंकारिक शैली की दृष्टि से "प्रेमघन" जी के पत्रों का विशिष्ट स्थान है ।

प्रताप नारायण मिश्र :

भारतेन्दु-मण्डली के लेखकों में पं. प्रतापनारायण मिश्र का नाम उनके चुलबुलेपन, मसखरेपन, फक्कड़पन, अल्हड़पन आदि के कारण विशेष रूप से स्मरणीय है । "प्रतापनारायण-ग्रंथावली" के सम्पादक श्री विजयशंकर मल्ल ने उनके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि—"वे खूब चैतन्य साहित्यकार हैं । युग-चेतना के प्रकाशन-योग्य नये मुहावरे और नई कलम के वे धनी लेखक हैं। भारतेन्दु-युग के लेखकों में उनका व्यक्तित्व अद्भुत है ।"[2]

मिश्र जी के पत्रों में हमें उनके व्यक्तित्व की उपर्युक्त सभी विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं । समकालीन साहित्यकारों के नाम लिखे गये उनके कुछ पत्र डा. शांतिप्रकाश वर्मा लिखित "प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन" शोध-प्रबन्ध में संगृहीत हैं । बाबू बालमुकुन्द गुप्त के नाम लिखे गये उनके तीन-चार पत्र "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रन्थ" में उद्धृत हैं और "प्रेमघन" जी के नाम लिखा एक पत्र "प्रेमघन और उनका कृतित्व" शीर्षक प्रबन्ध में प्रकाशित है ।

मिश्र जी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के परम मित्र थे। बाबूराधाकृष्णदास को लिखे एक पत्र में उन्होंने "भारत दुर्दशा" शीर्षक नाटक खेलने के सम्बन्ध में भारतेन्दु जी की सम्मति मांगी है ।[3] एक अन्य पत्र में राधाकृष्णदास जी को अपने यहां पधारने का निमन्त्रण देते हुए लिखते हैं—"बुढ़वा मंगल पर बनेगा तो बिन बुलाये यार लोग हाजिर हैं पर इंशा अल्लाह कभी तो आप जानिब भी झोंपड़ी को रौनक बख्शने का कष्ट फर्मावें । तुम्हारे ढंग का तो यह शहर नहीं पर दो चार के लिए तो पृथ्वी निरजीव नहीं है ।"[4]

पं. श्रीधर पाठक के नाम लिखे मिश्रजी के कुछ पत्र भी प्रकाशित हुए हैं । "प्रतापनारायण ग्रंथावली" के प्रथम पृष्ठ पर पाठक जी के नाम लिखा

1. "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), परिशिष्ट-२, पृ. १७ ।
2. "प्रतापनारायण ग्रन्थावली" भाग-१ (सं. २०१४), "वक्तव्य" से उद्धृत ।
3. "प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन" (१९७०), परिशिष्ट-४ पृ.-४७९ ।
4. —वही—, पृ. ४८० ।

उनका एक कार्ड उनके हस्ताक्षरों के रूप में मुद्रित है।[1] वे अधिकतर कार्ड ही लिखा करते थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त के नाम प्रेषित उनका ५ जनवरी १८९२ का पत्र उनके प्रेम, आन्तरिक स्वभाव तथा दिनचर्या की सुन्दर झांकी प्रस्तुत करता है। पत्र के कुछ अंश यहां हम उदाहरण स्वरूप उद्धृत करते हैं :

"प्रियवरेषु,

शुभमस्तु—सब आनन्द हैं, नित्योत्सवंहि वैतेषां नित्यश्री नित्य मंगलं। येषां हृदिस्थो भगवान् मंगलायतनो हरि:" ब्राह्मण स्वर्ग तो नहीं गया पर बांकीपुर खंगविलास प्रेस चला गया यह उसका सौभाग्य है ।.......भला कानपुर में और जो ? कहां होता है अस्मादेव कारणात्, कांग्रेस विषयेपि तदेव टांय टांय फिस-अवकाश दिन रात है, गुजारे का बन्दोबस्त पिताजी खुद ही कर गये हैं, ऊपर से दो घण्टे मात्र मिहनत पर एक अंग्रेज बहादुर पन्द्रह रुपया महीना भी देते हैं—निदान सब मजा है केवल शरीर गड़बड़ रहता है सो उसका नाम ही शरीर (फारसीवाला) है किन्तु डाक्टर भोलानाथ की जै हो उनकी दया से उनकी भी शरारत दबी ही रहती है। ...."[2] इससे प्रकट होता है मिश्र जी एक प्रतिभाशाली, विनोद-प्रिय और मनस्वी साहित्यकार थे। उनके पत्रों को पढ़ने पर डा. सुरेशचन्द्र शुक्ल का यह कथन सार्थक जान पड़ता है कि—"प्रतापनारायण जी विलक्षण प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। अधिक पढ़े-लिखे न होते हुए भी उन्होंने अपनी प्रतिभा के बल से जीवन में अद्वितीय सफलता प्राप्त की।"[3] हिन्दी के उन्मुक्त पत्र-लेखकों में मिश्र जी का अग्रिम स्थान है।

राधाकृष्णदास:—

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के फुफेरे भाई राधाकृष्णदास बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने भारतेन्दुजी की स्मृति को चिरस्थायी बनाने के लिए समकालीन साहित्यकारों को जो पत्र लिखे हैं, वे साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। "भारतेन्दु-स्मारक" के सम्बन्ध में राधाचरण गोस्वामी को उन्होंने लिखा था—"बाबू हरिश्चन्द्र का स्मारक अवश्य होना चाहिए । मेरी बुद्धि में इसकी "कमिटी" अवश्य होनी चाहिए, और वह काशी में ही हो, अब वह कमिटी स्थिर हो जाय तब उसमें क्या स्मारक हो, यह विचार हो।"[4]

---

1. देखिए:—प्रतापनारायण ग्रंथावली" भाग-१ के प्रारम्भ में दी गयी मिश्र जी के पत्र की फोटो-प्रतिलिपि।
2. "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" (१९५०), संपा. झाबरमल्ल शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ. ४९-५०।
3. 'पं. प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य" (सं. २०२१ वि.)पृ. ३९।
4. "भारतेन्दु की खड़ी बोली का भाषा-विश्लेषण" (सं. २०१८ वि) डा. उषा माथुर, पृ. ४३ से उद्धृत।

इसी प्रकार भारतेन्दु जी की जीवनी लिखवाने के लिए भी उन्होंने पं. प्रतापनारायण मिश्र और बाबू बालमुकुन्द गुप्त से पत्र-व्यवहार किया था। गुप्त जी के नाम लिखे गये उनके पत्र "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रंथ [1] में देखे जा सकते हैं। इन पत्रों से पता चलता है कि वे भारतेन्दु जी की कीर्ति-रक्षा के लिए सतत चिन्तित एवं प्रयत्नशील रहते थे।

इन साहित्यकारों के अतिरिक्त पं. किशोरीलाल गोस्वामी, ठाकुर जगमोहन सिंह आदि के पत्र हमें "प्रेमघन और उनका कृतित्व" में देखने को मिलते हैं। इस युग के कई साहित्यकारों के पत्र भारतकला भवन बनारस में सुरक्षित हैं। यद्यपि द्विवेदी-युग तथा वर्तमान-युग की तुलना में विवेच्य युग का पत्र-साहित्य बहुत कम प्रकाशित हुआ है, परन्तु वस्तु और कला की दृष्टि से इसकी स्थिति क्षीण-हीन नहीं है। इस युग से सम्बन्धित बिखरी हुई पत्र सामग्री को एकत्र कर पुस्तकाकार प्रकाशित करने की महती आवश्यकता है।

द्विवेदी-युगीन पत्र-साहित्य :

आधुनिक हिन्दी-साहित्य के इतिहास में द्विवेदीयुग का अपना विशिष्ट स्थान है। डा. रामविलास शर्मा इसे हिन्दी नवजागरण का तीसरा चरण मानते हैं।[2] डा. उदयभानु सिंह इसकी महत्ता प्रदर्शित करते हुए लिखते हैं—"आधुनिक हिन्दी साहित्य की मुख्य चार विशेषताएं हैं—पद्य में खड़ी बोली की प्रतिष्ठा, गद्य साहित्य का गौरव, विविध विषयक लोकोपयोगी वाङ्मय की सृष्टि और देश-देशान्तर में हिन्दी का प्रचार। इन सभी दृष्टियों से द्विवेदी-युग महत्तम है।"[3]

जैसा कि हम देख चुके हैं, हिन्दी में पत्र-साहित्य की विधिवत् परम्परा का सूत्रपात द्विवेदी-युग में ही हुआ है। हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों का स्वतन्त्र संग्रह सर्व प्रथम "द्विवेदी-पत्रावली" के रूप में प्रकाशित हुआ। श्री बैजनाथसिंह "विनोद" द्वारा सम्पादित "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" शीर्षक संग्रह में भी आलोच्य युग के प्रमुख साहित्यकारों की मूल्यवान पत्र-सामग्री संकलित है। इन दो स्वतन्त्र पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त आचार्य किशोरीदास वाजपेयी कृत "द्विवेदी जी और उनके संगी-साथी" शीर्षक संस्मरण में भी इस युग के अनेक साहित्यकारों के पत्र सप्रसंग उद्धृत किये गये हैं। इसके अतिरिक्त प्रेमचन्द, "निराला," प्रसाद और "उग्र" से सम्बन्धित पत्र-संग्रहों में भी

1. देखिए:—"बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रंथ", पृ. ५५-५७।
2. "महावीर प्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण" (१९७७), पृ. १५।
   "हिन्दी नवजागरण का तीसरा चरण महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनके सहयोगियों का कार्यकाल है।"
3. "महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग" (सं. २००८ वि.) पृ २६८।

आलोच्य युग के साहित्यिकों के अनेक पत्र संकलित हैं। स्मृति एवं अभिनन्दन-ग्रंथों, जीवन-चरित्र-विषयक ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं में आलोच्य युग का प्रचुर पत्र-साहित्य उपलब्ध होता है। इससे स्पष्ट होता है कि हिन्दी पत्र-साहित्य के इतिहास में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी का युग सबसे महत्वपूर्ण है।

(अ) प्रमुख पत्र-लेखक :

द्विवेदी-युग के प्रायः सभी प्रसिद्ध साहित्यिकों के पत्र प्रकाशित हो चुके हैं। "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" शीर्षक स्वतंत्र पत्र-संग्रह में विवेच्य युग के छह प्रसिद्ध साहित्यकारों-आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, पं. पद्मसिंह शर्मा, पं. श्रीधर पाठक, पं. बालकृष्ण भट्ट, बाबू बालमुकुन्द गुप्त और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के महत्वपूर्ण पत्र प्रकाशित हैं। परन्तु इनमें से आचार्य द्विवेदी और पं. पद्मसिंह शर्मा-ये दो ही ऐसे साहित्यकार हैं जिनका पत्र-साहित्य अत्यन्त विस्तृत है और इनके पत्रों का एक-एक स्वतंत्र संकलन भी प्रकाशित हो चुका है। यही नहीं, विषय और शैली की दृष्टि से भी इन साहित्यकारों के पत्र सर्वोच्च स्थान रखते हैं। अतः आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और पं. पद्मसिंह शर्मा को ही विवेच्य युग के प्रमुख पत्र-लेखक के रूप में स्थान देना समुचित जान पड़ता है।

महावीरप्रसाद द्विवेदी :

महावीरप्रसाद द्विवेदी अपने युग के प्रथम आचार्य थे। उनका व्यक्तित्व सुधारवादी था। वे एक उत्तम गद्यकार और अच्छे पत्र-लेखक थे। "सरस्वती" के सम्पादक की हैसियत से उन्होंने हिन्दी के छोटे-बड़े साहित्यकारों को सैकड़ों पत्र लिखे हैं। वे अपने पत्र-व्यवहार में अत्यन्त नियमित एवं चुस्त थे। आंखों की बीमारी से पीड़ित होते हुए भी वे आवश्यक पत्रों का यथाशीघ्र उत्तर देते थे। पत्रों की सुरक्षा और उनके संग्रह के प्रति भी वे सजग थे। उनके नाम आये सैंकड़ों पत्र नागरी प्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित हैं जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण पत्र "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के "पौराणिकी" स्तम्भ के अन्तर्गत प्रकाशित भी हो चुके हैं। इस दृष्टि से उनके विस्तृत पत्र-साहित्य की अलग से चर्चा करना अभीष्ट है।

पद्मसिंह शर्मा :

पं. पद्मसिंह शर्मा पत्र-लेखन कला में पारंगत थे। आचार्य द्विवेदी की तरह इनका पत्र-साहित्य भी अत्यन्त विशाल है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी तथा पं. हरिशंकर शर्मा के सम्पादकत्व में उनके पत्रों का एक स्वतंत्र संकलन "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" शीर्षक से प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त समकालीन साहित्यकारों द्वारा उनको प्राप्त हुए पत्र "भारतीय साहित्य" के कई अंकों में "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र संग्रह" शीर्षक से प्रकाशित हो चुके हैं। इस प्रकार

आचार्य द्विवेदी के समान इनका पत्र-साहित्य भी पृथक् अध्ययन की अपेक्षा रखता है।

(आ) अन्य पत्र-लेखक :

द्विवेदी-युग के अन्य पत्र-लेखकों की सूची लम्बी है। अन्य पत्र-लेखकों के रूप में यहां हम कुछ ऐसे लेखकों की चर्चा करना चाहते हैं जिनके पत्र विविध ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं। इन पत्र-लेखकों के नाम हैं—श्रीधर पाठक, बालमुकुन्द गुप्त, सैयद अमीर अली मीर, राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, मैथिलीशरण गुप्त इत्यादि।

श्रीधर पाठक :

श्रीधर पाठक द्विवेदी-युग के वरिष्ठ साहित्यकारों में थे। श्री बैजनाथसिंह "विनोद" द्वारा सम्पादित 'द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" शीर्षक संग्रह में उनके नौ पत्र संकलित हैं। इसके अतिरिक्त पं. बनारसीदास चतुर्वेदी लिखित "संस्मरण" और "श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य" शीर्षक प्रबन्ध की भूमिका में भी पाठक जी के पत्र प्रकाशित हैं।

आचार्य द्विवेदी के नाम लिखे गये पत्रों में अधिकांशत: तत्कालीन लेखन-प्रणाली और व्याकरण-सम्बन्धी विवाद की चर्चा है। पाठक जी द्विवेदी जी के परम मित्र थे। अपने पत्रों में वे द्विवेदीजी को "श्रद्धेय मित्र," "प्रिय सखे" आदि शब्दों से सम्बोधित करते थे, किन्तु वे द्विवेदी जी की नयी लेखन प्रणाली से सहमत नहीं थे। अपने २२-८-१९०५ के पत्र के अंत में उन्होंने अपना मंतव्य प्रकट करते हुए लिखा है कि—"मैं कोई नवीन प्रणाली निकालना नहीं चाहता, परन्तु शिष्ट और सूक्ष्म प्रथा का परम पक्षपाती हूँ— मुझे राजा शिवप्रसाद, पं. राधाचरण गोस्वामी, लाला बालमुकुन्द गुप्त की लेख शैली बहुत रुचती है — और मुझे असीम प्रसन्नता हो यदि आप इन सुलेखकों का अनुसरण कर सकें।"[1] इससे स्पष्ट होता है कि लेखन की नयी प्रणाली के सम्बन्ध में दोनों में काफी मतभेद था और इसी को लेकर दोनों के मध्य कुछ तनाव-सी स्थिति भी उत्पन्न हो गयी थी। परन्तु पाठक जी यह नहीं चाहते थे कि इस विवाद के कारण उनकी मित्रता को क्षति पहुँचे, इसलिए श्रावणी १९६१ वि. के पत्र में द्विवेदीजी से क्षमा-याचना करते हुए उन्होंने लिखा—"आप तो कुछ खफा से हो चले। मैं मुआफी मांगता हूँ—मित्रों में विवाद उठना सचमुच अनुचित है—"[2] इस प्रकार इन पत्रों का ऐतिहासिक महत्व है।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपनी "संस्मरण" शीर्षक पुस्तक में पाठक जी के जो पत्र उद्धृत किये हैं, उनमें अधिकतर पत्र अंग्रेजी में लिखे हुए हैं। हिन्दी

१. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १९९।
2. —वही—, पृ. २०१।

में लिखित दो-तीन चिट्ठियों में "भौत दिनतें दस्सन पस्सन नाय भये।"[1] वाली चिट्ठी अत्यन्त प्रेमपूर्ण है। "श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य" प्रबन्ध की भूमिका में चतुर्वेदी जी ने पाठक जी के जो पत्र उद्धृत किये हैं उनमें पाठक जी द्वारा रामदास गौड़ के नाम लिखा गया एक पद्य-बद्ध पत्र भी है, किन्तु इन पत्रों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण पत्र ९-३-१९२० का है। इस पत्र में पाठकजी ने जीवनी-साहित्य के सम्बन्ध में अपना मत व्यक्त करते हुए लिखा है कि— "जीवनियों के सम्बन्ध में मेरा स्थिर मत यह है कि साहित्य में स्थान केवल उन्हीं जीवनियों को मिलना चाहिए जो साहित्यिक दृष्टि से रुचिर होने के अतिरिक्त सच्चे लोकोपकार की क्षमता भी रखती हों।"[2]——इस प्रकार पाठक जी के पत्रों में उनका प्रभावशाली, अध्ययनशील, ऋजु एवं आदर्शवादी व्यक्तित्व स्पष्ट रूप में झलकता है।

बालमुकुन्द गुप्त :

बाबू बालमुकुन्द गुप्त हिन्दी के एक सफल गद्यकार एवं पत्रकार होने के साथ-साथ एक अच्छे पत्र-लेखक भी थे। आचार्य द्विवेदी के समान वे भी पत्र-व्यवहार में नियमित और चुस्त थे। पत्राचार के लिए वे अलग रजिस्टर रखते थे।[3] श्री बैजनाथ सिंह "विनोद" द्वारा सम्पादित "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" शीर्षक संग्रह में पं. श्रीधर पाठक के नाम गुप्त जी के १४ पत्र संकलित हैं। इसके अतिरिक्त श्री, झाबरमल्ल शर्मा तथा बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा सम्पादित "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" में भी उनके द्वारा प्रेषित तथा प्राप्त किये गये अनेक पत्र सन्दर्भ-सहित उद्धृत हैं।

पं. श्रीधर पाठक के नाम लिखे गुप्त जी के पत्रों में सुदूर अतीत की अनेक जानने योग्य बातें हैं। तत्कालीन साहित्यिक चोरी और विवादों के अनेक सन्दर्भ-सूत्र इन पत्रों में मिलते हैं। ये पत्र गुप्त जी तथा पाठकजी के व्यक्तित्व पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डालते हैं। जैसे, १४ मार्च १९०० के पत्र में गुप्त जी ने लिखा है कि—"होली की बाबत आपका जैसा कुछ खयाल है सो ठीक ही है। परन्तु जैसी आपको उससे नफरत है, वैसी ही उससे मुझे मुहब्बत है।—"[4] इसी प्रकार १७-९-१९०० के पत्र में पाठक जी के शंकाशील स्वभाव की ओर संकेत करते हुए उन्होंने लिखा है कि—"आपका जी इतना कच्चा है कि उसमें हरदम सन्देह उठते हैं और यही ख्याल हो जाता है कि सब दोष बालमुकुन्द करता है और

---

1. "संस्मरण" (१९५२), पृ. २८।
2. "श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य" (१९५९), डा. रामचन्द्रमिश्र, भूमिका, पृ. ४।
3. देखिए:—"बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" (१९५०), पृ. २४।
4. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८) पृ. २०६।

जानबूझ कर करता है।"[1] इस प्रकार इन पत्रों से जहां तत्कालीन साहित्यिक विवादों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, वहां इन दोनों साहित्यकारों के स्वभाव, अभिरुचि आदि के सम्बन्ध में भी अच्छी जानकारी मिलती है।

"बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" में अन्य हिन्दी साहित्यकारों के अतिरिक्त आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के नाम भी गुप्त जी के कुछ महत्वपूर्ण पत्र दिये गये हैं। इन पत्रों से पता चलता है कि "अनस्थिरता" विवाद से पहले इन दोनों साहित्यकारों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध था। द्विवेदी जी ने लाला सीताराम की काव्य-पुस्तक की कड़ी आलोचना "भारत-मित्र" में की थी। इस पर गुप्त जी ने द्विवेदी जी को लिखा था कि—"किसी अच्छे लेखक से कुछ भूल हो तो उस पर अधिक कटाक्ष न होने पावे।"[2] इसके साथ ही २५-२-१९०० के पत्र में द्विवेदी जी के मत का स्वागत करते हुए उन्होंने लिखा था—

"स्थावर, स्थान, स्नेह आदि को पद्य के आदि में लाना हिन्दी भाषा में मैं तो गलती ही समझता हूँ और मेरी समझ में उनके आने से वजन खराब हो जाता है। पर जब आप कहते हैं कि ठीक है तो ठीक ही है क्योंकि भूल वह होती है, जो भूल से लिखी जावे। जो बात मनुष्य जानकर लिखे, वह तो भूल नहीं, वह राय है।"[3]

इससे स्पष्ट होता है कि गुप्त जी आचार्य द्विवेदी जी को कितने आदर भाव की दृष्टि से देखते थे। इन पत्रों के अतिरिक्त पं. अमृतलाल चक्रवर्ती तथा पं. भुवनेश्वर मिश्र के साथ हुए गुप्त जी के पत्र-व्यवहार की विस्तृत चर्चा डा. नत्थन सिंह ने अपनी "गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त"[4] शीर्षक पुस्तक में की है। इस प्रकार द्विवेदी-युग के पत्र-लेखकों में गुप्त जी का पत्र-साहित्य अनेक दृष्टियों से महत्व रखता है। उनके द्वारा लिखे गये "शिवशम्भु के चिट्ठे" को हिन्दी-साहित्य में विशेष ख्याति मिली है, किन्तु ये वैयक्तिक पत्र नहीं हैं।

सैयद अमीर अली मीर :

सैयद अमीर अली मीर द्विवेदी-युग के प्रसिद्ध एवं प्रतिभा सम्पन्न साहित्यकार थे। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे गये उनके पत्रों में हमें उनकी साहित्य-साधना का अच्छा परिचय मिलता है। ये पत्र "सम्मेलन पत्रिका" में प्रकाशित हुए हैं। इन पत्रों में हिन्दू-मुसलमान-एकता, हिन्दी और हिन्दुस्तानी-विवाद, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन की कार्य-पद्धति आदि अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर चर्चा छेड़ी गयी है। इसके साथ मीर साहब के व्यक्तिगत जीवन की झलक भी मिलती है। आर्थिक संकट के कारण उनको एक रियासत की नौकरी का

1. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र (१९५८) पृ. २०६।
2. "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" (१९५०) पृ. १२३। 3. -वही-पृ. १२७।
4. देखिए : "गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त" (१९५६), पृ. ४९-५०।

स्वीकार करना पड़ा और इसके कारण हिन्दी की सेवा में जो व्याघात पहुँचा, उसका संकेत हमें उनके इन शब्दों में मिलता है—"पंडित जी, एक पेंशनर आदमी की तरह मैं हिन्दी-साहित्य-सेवा की ओर से उदासीन-सा हो गया हूँ, इसका मुझे दुःख है।"[1] इस प्रकार मीर साहब के पत्रों में एक साहित्यानुरागी का दिल धड़कता है। मीर साहब के कुछ पत्र "काव्य सुधाधर" में भी प्रकाशित हुए हैं। इनमें कुछ पत्र पद्य में लिखे गये हैं।[2] अतः इन पत्रों का अपना अलग महत्व है।

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह :

राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह द्विवेदी-युग के लब्धकीर्ति कथाकार थे। आचार्य काका कालेलकर उनको "राष्ट्रीय साहित्य के शैलीकार" मानते हैं।[3] राजा साहब अनूठे पत्र-लेखक भी थे। डा. गोपालप्रसाद वंशी ने मई १९६५ ई. की "रसवन्ती" में "राजा साहब के अनूठे पत्र" शीर्षक से जो पत्र प्रकाशित किये हैं उनमें हमें राजा साहब के शील-सौंदर्य की स्पष्ट झलक मिलती है। ये पत्र अब "राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह अभिनन्दन-ग्रंथ" में संकलित हैं। ये पत्र कार्ड के रूप में ही हैं, परन्तु कवित्वमय हैं। प्रत्येक पत्र में उर्दू का कोई-न-कोई अनूठा शेर उद्धृत किया गया है। जैसे—

"प्रियवर,

आपने सुना होगा—

खुशी महसूस करता हूँ, न गम महसूस करता हूँ,
मैं जिस आलम में हूँ, तेरा करम महसूस करता हूँ।
बस यही हाल है अपना सब कुछ लुट-छिन गया।[4]

राजा साहब द्वारा डा. वासुदेवनन्दन प्रसाद को लिखे गये ३४ पत्र उनके उक्त अभिनन्दन-ग्रंथ में प्रकाशित हैं। इन पत्रों में भी हमें उनके दर्दे-दिल की धड़कनें स्पष्टतः सुनाई देती हैं। १-३-१९६४ के पत्र का यह अंश देखिए—

"मेरी जिन्दगी की झोली में तो अब होली है न दीवाली—जब थी, तब थी। हाँ, आपकी होली है, आपकी खुशहाली—जिनकी जवानी उनका ज़माना। हाँ,

---

1. "सम्मेलन पत्रिका," भाग-४९, सं. ३-४, पृ. १०६।
2. देखिएः—"काव्य-सुधाधर," पंचम वर्ष, सन् १९०२-१९०३, पृ. ७।
   "जाने महि नभराशिरवी, बिरचे सो करतार।
   काव्य सुधाधर को करे सुयश जगत परचार॥"
3. "राजा राधिकारमण प्रसादसिंह अभिनन्दन-ग्रंथ" (१९६९), पृ. ८०।
4. "रसवन्ती," मई १९६५, पृ. ३९।

जिनदिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार।
अब रही अलि गुलाब में, अपत कटीली डार ॥

× × ×

शमा बुझ कर रह गई—परवाना जलकर रह गया।
याद आये हुस्न-इश्क-एक दाग दिल पर रह गया।[1]

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि राजा साहब एक कुशल पत्र-लेखक थे। उनके पत्र हमारे साहित्य की संपत्ति हैं।

मैथिलीशरण गुप्त :

मैथिलीशरण गुप्त भारतीय संस्कृति के व्याख्याता और राष्ट्रीय-चेतना के अग्रदूत थे। आचार्य द्विवेदी, पं, पद्मसिंह शर्मा, बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि के समान वे भी आवश्यक पत्रों का अविलम्ब उत्तर देते थे। उनके कई महत्वपूर्ण पत्र "राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रंथ" में प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त "उग्र" जी के नाम लिखे उनके तीन पत्र "फाइल और प्रोफाइल" में, "प्रसाद" जी के नाम लिखे लगभग २५ पत्र "प्रसाद के नाम पत्र" में और विश्वम्भर "मानव" को लिखे १४ पत्र "सम्मेलन पत्रिका" में प्रकाशित हैं।

गुप्त जी अधिकतर कार्ड ही लिखते थे जिन पर शीर्षक के रूप में "श्रीराम" शब्द अंकित रहते थे। उनके अभिनन्दन-ग्रंथ में संकलित पत्रों में श्री राय कृष्णदास के नाम लिखे पत्र अधिक आत्मीयतापूर्ण, रोचक एवं मधुर हैं। दिनांक १२-२-१९१२ के पत्र की प्रारम्भिक पंक्तियां यहां हम उद्धृत करते हैं—

"प्रिय राय साहब,

जय जानकी जीवन। कृपा कार्ड प्राप्त हुआ। खुशी हुई। भला "राष्ट्रकवि" की योग्यता मुझमें कहां। मुझे तो आप लोगों का "गुप्तजी" ही रहना बहुत है।

"मुझे आपका यही भाव है शुभफल सारा।
कि है मैथिलीशरण गुप्त भी एक हमारा ॥"[2]

इन पंक्तियों में राष्ट्रकवि की नम्रता, सरलता, भावुकता, आत्मीयता आदि अनेक चारित्रिक विशेषताएं प्रतिबिम्बित हैं।

"उग्र" जी के नाम लिखे पत्रों में हमें गुप्त जी की उदारता एवं निर्भीकता के दर्शन होते हैं। उन्होंने "उग्र" जी की लेखनी की खुलकर तारीफ की है— "आपकी लेखनी सबल है, इसका तो कुछ कहना ही नहीं, भले ही किसी की रुचि अथवा संस्कार भिन्न प्रकार के हों।"[3] "प्रसाद" जी के नाम उनके पत्रों में हमें

---

1. "राजा राधिकारमण प्रसादसिंह अभिनन्दन ग्रंथ" (१९६९), खण्ड-२, पृ. ८।
2. "राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रंथ" (१९५९), पृ. ३३०।
3. "फाइल और प्रोफाइल" (१९७०), पृ. २९१।

दोनों महाकवियों के स्नेहिल सम्बन्ध का सुन्दर परिचय मिलता है। एक पत्र में वे लिखते हैं—"...........अभी तो काशी आने का कोई विचार नहीं। जब आऊंगा, आपको पकड़ूंगा ही। आशा है, समाधि निर्विघ्न जमती होगी।"[1] "मानव" जी के नाम प्रेषित पत्रों में हमें उनकी सहृदयता और वर्तमान युग के विषम व्यवहार के प्रति खिन्नता स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। इस सम्बन्ध में उनके १९-३-१९६१ के पत्र की यह उक्ति द्रष्टव्य है—"आज हाथ जोड़ना, कल लात मारने में भी भले मानुसों को कुछ भी नहीं लगता।"[2] इस प्रकार राष्ट्रकवि के इन पत्रों में सर्वत्र उनका सरल–निश्छल हृदय धड़कता है। ये पत्र हमारे राष्ट्र की धरोहर के समान हैं।

द्विवेदी-युग के इन लेखकों के अतिरिक्त मुंशी अजमेरी, रामचन्द्र शुक्ल, बाबू गुलाबराय, पं. रामनरेश त्रिपाठी आदि अनेक साहित्यकारों के पत्र विविध ग्रंथों और पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध होते हैं। उपर्युक्त लेखकों के पत्र-साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे पत्रोत्तर, पत्र-सुरक्षा और पत्र-संग्रह की ओर अधिक सतर्क थे। विश्वम्भर "मानव" ने गुप्त जी के पत्रों की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए हिन्दी के तथाकथित बड़े लेखकों के बारे में लिखा है कि—"हिन्दी में कई लेखक ऐसे भी हैं जो आवश्यक पत्रों का उत्तर देना भी अपनी प्रतिष्ठा के विरुद्ध मानते हैं।[3]

द्विवेदी-युग का विपुल पत्र-साहित्य प्रकाश में आ सका तो उसका एक कारण यह भी है कि इस युग के पत्र-लेखक आवश्यक पत्रों का अविलम्ब उत्तर देते थे। पत्र-साहित्य के विकास के लिए यह भी ज़रूरी बात है। पश्चिम के महान् पत्र-लेखकों में भी हमें इसी विशेषता के दर्शन होते हैं। प्रथम अध्याय में हम देख चुके हैं कि महान् साहित्यकार लियो टाल्सटाय ने रोमां रोलां जैसे मामूली विद्यार्थी के पत्र का उत्तर ३८ पृष्ठों में लिख भेजा था। सुप्रसिद्ध मनोविद् सायमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud) के पुत्र ने अपने पिता के विशाल पत्र-साहित्य की चर्चा में इसी बात पर बल दिया है कि वे प्रत्येक पत्र का नियमानुसार २४ घण्टे में उत्तर दे देते थे।[4] पाश्चात्य पत्र-साहित्य के विकास और समृद्धि में यह भी एक उल्लेख-

1. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ. ८५।
2. लेखकों के पत्र (लेख), सम्मेलन पत्रिका, भाग-६२, सं. ३-४, पृ.-३७।
3. —वही—, पृ. ३४।
4. "Letters of Sigmund Freud" Preface.

"As a letter-writer my father was unusually politic and conscientious. He dealt with his Voluminous correspondence unassisted and in long-hand. He answered every letter he recieved, no matter from whom and as a rule this answer was in the post within twenty-four hours."

नीय तथ्य है ।

इस युग के पत्र-साहित्य की दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता भावों की निश्छल अभिव्यक्ति है । इस युग के पत्र-लेखक बिना किसी आडम्बर और मिथ्याभिमान के पत्र लिखते थे । विषय और शैली की दृष्टि से भी इस युग का पत्र-साहित्य श्रेष्ठ स्थान का अधिकारी है । हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक पं. पद्मसिंह शर्मा इसी युग की विभूति हैं ।

वर्तमान-युगीन पत्र-साहित्य :

हिन्दी साहित्य में वर्तमान-युग का आरम्भ छायावाद-काल से माना जाता है । इस काल के साहित्यकारों ने मानव-जीवन का कल्पना, सौंदर्य-चेतना, प्रकृति तथा समाज से जो सम्बन्ध स्थापित किया, वह हिन्दी के लिए अभूतपूर्व था । दूसरी ओर साहित्येतर क्षेत्र में भी नवीनता और परिवर्तनशीलता के लक्षण इसी काल-खण्ड में दृष्टिगत होते हैं । राजनैतिक क्षेत्र में महात्मा गांधी का प्रभाव सर्वत्र छा गया था । गांधी-युग का आरम्भ भी लगभग छायावाद-युग के साथ ही होता है । डा. सिस्टर क्लेमेंट मेरी ने भी अपने "हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य" शीर्षक शोध-प्रबन्ध में वैचारिक साहित्य के चार सोपानों के उल्लेख में छायावादी युग को "गांधी-युग" के समान्तर रखा है ।[1] इस दृष्टि से वर्तमान युग के पत्र-साहित्य में साहित्य और साहित्येतर दोनों प्रकार के पत्र-लेखकों का समावेश होता है ।

(अ) प्रमुख पत्र-लेखक :

आलोच्य युग के प्रमुख पत्र-लेखकों को उनके क्षेत्र की दृष्टि से दो विभागों में बांटा जा सकता है—(१) साहित्यिक क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखक और (२) साहित्येतर क्षेत्रों के प्रमुख पत्र-लेखक । यहां पहले हम साहित्यिक क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखकों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे ।

(i) साहित्यिक क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखक :

साहित्यिक क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखकों में कालक्रम के अनुसार जिन लेखकों के नाम उल्लेखनीय हैं, वे हैं—प्रेमचन्द, बनारसीदास चतुर्वेदी, सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला," सुमित्रानन्दन पन्त, यशपाल, डा. वासुदेवशरण अग्रवाल, बाबू वृन्दावनदास, और हरिवंशराय "बच्चन" । इन सभी लेखकों के पत्र स्वतन्त्र संकलनों के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं । विविध ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं में भी इनके अनेक महत्वपूर्ण पत्र उपलब्ध होते हैं । इन सभी लेखकों के पत्र-साहित्य का विस्तार से अनुशीलन हम अलग अध्याय में करेंगे । यहां उनके पत्र-साहित्य का संक्षिप्त परिचय ही दे रहे हैं ।

---

1. हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य" (प्र. सं.), पृ. ६-७ ।

प्रेमचन्द :

प्रेमचन्दजी वर्तमान-युग के श्रेष्ठ कथा-लेखक तो थे ही, एक उत्तम पत्र-लेखक भी थे। जिस प्रकार आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और पं. पद्मसिंह शर्मा ने अपने पत्रकार जीवन में सहस्रों पत्र लिखे और पाये, उसी प्रकार प्रेमचन्द जी को भी सुदीर्घ पत्रकारिता और साहित्यिक यात्रा में सहस्रों पत्र लिखने पड़े हैं। जैसा कि हम देख चुके हैं, अमृतराय और मदनगोपाल के सम्पादकत्व में उनके पत्रों के दो संकलन स्वतन्त्र रूप से प्रकाशित हो चुके हैं। उन पर लिखे गये जीवन ग्रंथों, आलोचना-ग्रंथों, शोध-प्रबन्धों आदि में भी उनके महत्वपूर्ण पत्र प्रकाशित हुए हैं। इस प्रकार उनका पत्र-साहित्य अत्यन्त विशाल है।

बनारसीदास चतुर्वेदी :

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी पत्र-साहित्य के मर्म विद्वान और महान् पत्र-लेखक हैं। हिन्दी साहित्य में सबसे अधिक पत्र लिखने और पाने में चतुर्वेदीजी का स्थान सर्वोपरि है। हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों को सर्वाधिक संख्या में प्रकाशित करने का श्रेय भी उन्हीं को है। पत्र-व्यवहार उनका प्रिय व्यसन रहा है। पत्रों की सुरक्षा और उनके संग्रह में वे अपने साहित्यिक जीवन के प्रारम्भ से ही सजग रहे हैं। उनके निजी संग्रहालय में देश-विदेश के महान् साहित्यकारों के अनेक मूल्यवान पत्र सुरक्षित हैं। उनके पत्रों का एक संग्रह "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त उनके अभिनन्दन-ग्रंथ तथा अन्य ग्रंथों एवं पत्र-पत्रिकाओं में भी उनके उत्प्रेरक पत्र प्राप्त होते हैं। इस प्रकार उनके पत्र-साहित्य का हिन्दी-पत्र साहित्य में सर्वाधिक महत्व है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" :

छायावाद के प्रवर्तकों में सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" का अन्यतम स्थान है। उनका व्यक्तित्व विशिष्ट था। आस्था, निष्ठा, चिन्तन की स्वतन्त्रता और ओजस्विता उनके व्यक्तित्व की प्रमुख विशेषताएँ हैं। ये सभी विशेषताएं हमें उनके पत्र-साहित्य में उपलब्ध होती हैं। उनका विस्तृत पत्र-साहित्य डा. रामविलास शर्मा द्वारा सम्पादित "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" में संकलित है। हिन्दी का यह अद्वितीय-पत्र संग्रह है।

सुमित्रानन्दन पन्त :

कविवर सुमित्रानन्दन पंत आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख आलोक-स्तम्भ हैं। उनके काव्य-साहित्य के समान उनका पत्र-साहित्य भी सरस और सुन्दर है। बच्चन जी के नाम लिखे उनके पत्रों के दो स्वतंत्र संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त प्रसादजी और निराला जी से सम्बन्धित पत्र-संग्रहों में भी उनके अनेक बहुमूल्य पत्र संकलित हैं। इस प्रकार पंत जी का पत्र-

साहित्य उनके व्यक्तित्व तथा युग-परिवेश के अध्ययन के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

यशपाल :

यशपाल जी प्रेमचंद जी की परम्परा के हिन्दी कथा-लेखक हैं। प्रेमचंदजी की तरह उन्होंने भी अनेक पत्र लिखे हैं। यद्यपि स्वतंत्र संग्रह के रूप में उनके पत्र-साहित्य पर एक ही पुस्तक उपलब्ध होती है, किन्तु अनेक शोध-प्रबंधों, आलोचना-ग्रंथों और पत्र-पत्रिकाओं में उनका विस्तृत पत्र साहित्य प्रकाशित हुआ है। ये पत्र उनके कथाकार को समझने तथा उनके बहुमुखी व्यक्तित्व की पहचान में हमारी पर्याप्त सहायता करते हैं।

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल :

जनपदीय आंदोलन के प्रवर्तक और भारतीय संस्कृति के अन्यतम व्याख्याता डा. वासुदेवशरण अग्रवाल को पत्र-लेखन में गहरी दिलचस्पी थी। उन्होंने श्रीकृष्णानन्द गुप्त, अगरचन्द नाहटा, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, डा. सत्येन्द्र आदि अनेक हिन्दी साहित्यकारों के नाम मूल्यवान पत्र लिखे हैं। उनके पत्रों का विशाल स्वतंत्र संकलन बाबू वृन्दावनदास ने "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" शीर्षक से प्रकाशित कराया है। इसके अतिरिक्त अन्य ग्रंथों और पत्रिकाओं में उनके अनेक पत्र उपलब्ध होते हैं। डा. अग्रवाल के पत्र जनपदीय आंदोलन के विश्वकोश हैं।

बाबू वृन्दावनदास :

बाबू वृन्दावनदास पत्र-विधा के उन्नायकों में से हैं। उन्होंने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी और डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र पुस्तकाकार प्रकाशित कर पत्र-साहित्य की समृद्धि और श्रीवृद्धि में अन्यतम सहयोग दिया है। वे स्वयं भी अच्छे पत्र-लेखक हैं। उनका सम्पर्क-क्षेत्र विशाल है। श्री रमण शांडिल्य ने उनकी पत्र-राशि को एकत्रित कर एक स्वतंत्र संग्रह के रूप में प्रकाशित किया है। इसके अतिरिक्त "उत्तर-विहार," भारत-सावित्री" आदि अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उनके पत्र मिलते हैं।

हरिवंशराय "बच्चन" :

बच्चन जी एक लोकप्रिय कवि और सशक्त गद्यकार होने के साथ-साथ एक उच्चकोटि के पत्र-लेखक भी हैं। आधुनिक साहित्यकारों एवं पत्र-लेखकों में उनका महत्वपूर्ण स्थान है। वे आवश्यक पत्रों का अविलम्ब उत्तर देते हैं। उन्होंने पंतजी के पत्रों को दो स्वतंत्र संकलनों में प्रकाशित कर हिन्दी पत्र-साहित्य के विकास में अपूर्व योग दिया है। डा. जीवनप्रकाश जोशी और निरंकारदेव सेवक ने उनके पत्रों को पुस्तकाकार प्रकाशित कर हिन्दी को मूल्यवान पत्र-साहित्य भेंट किया है।

(ii) साहित्येतर क्षेत्रों के प्रमुख पत्र-लेखक :

वर्तमान युग के साहित्येतर क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखकों में महात्मा गांधी, सेठ जमनालाल बजाज और आचार्य विनोबा भावे के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लेखकों के पत्रों का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टियों से बहुत बड़ा महत्व है। महात्मा जी तथा सेठ जी के पत्र कई खण्डों में प्रकाशित हो चुके हैं। आचार्य विनोबाजी के पत्रों का एक स्वतंत्र संकलन प्राप्त होता है। अतः इन लेखकों के पत्र-साहित्य पर विस्तार से विचार हम अगले अध्याय में करेंगे। यहाँ इनके पत्र-साहित्य पर किंचित् प्रकाश डाला जाता है।

महात्मा गांधी :

जीवन में जितना पत्र-व्यवहार महात्मा गांधी को करना पड़ा, उतना शायद ही किसी को करना पड़ा होगा। डायरी-साहित्य के विकास की तरह पत्र-साहित्य के विकास में भी महात्मा जी का अनन्य योग रहा है। उनके दैनिक कार्यक्रम में पत्र-व्यवहार के लिए निश्चित समय होता था। उनके सहस्रों पत्र "गांधी-स्मारक निधि" के अंतर्गत एकत्र किये गये हैं। नवजीवन प्रकाशन मंदिर, अहमदाबाद की ओर से "बापू के पत्र" शीर्षक से अनेक पत्र-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। विश्व के महान् पत्र-लेखकों में उनकी गिनती की जाती है।

सेठ जमनालाल बजाज :

सेठ जमनालाल बजाज हमारे स्वाधीनता-संग्राम के महान् सेनानी थे। महात्मा गांधी को उन्होंने अपना जीवन समर्पित कर दिया था। आज़ादी की लड़ाई में बापू के सम्पर्क में आने के बाद सेठजी को देश के राजनैतिक, सामाजिक और रचनात्मक कार्यकर्ताओं के साथ विस्तृत पत्र-व्यवहार करना पड़ा। उनका पत्र-व्यवहार आठ खण्डों में सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली से प्रकाशित हुआ है। वे एक कुशल पत्र-लेखक थे।

आचार्य विनोबा भावे :

आचार्य विनोबा महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी हैं। महात्मा जी के समान उनका भी बजाज-परिवार से घनिष्ठ सम्पर्क है। बजाज-परिवार के नाम लिखे उनके पत्रों का एक स्वतंत्र संग्रह सस्ता साहित्य मंडल, दिल्ली की ओर से प्रकाशित हो चुका है। पं. वियोगी हरि द्वारा सम्पादित "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" शीर्षक संग्रह में भी उनके कुछ प्रेरणाप्रद पत्र संकलित हैं। उनके पत्रों में हमें उनके संत-स्वभाव एवं आध्यात्मिक चिन्तन की स्पष्ट झलक मिलती है। भाषा-शैली की दृष्टि से भी उनके पत्र मधुर और मोहक हैं।

(आ) अन्य पत्र-लेखक :

वर्तमान युग के प्रमुख पत्र-लेखकों के समान अन्य पत्र-लेखकों को भी दो श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है—(१) साहित्यिक क्षेत्र के पत्र-लेखक और (२) साहित्येतर क्षेत्रों के पत्र-लेखक। सर्वप्रथम यहां हम साहित्यिक क्षेत्र के पत्र लेखकों पर विचार करेंगे।

(i) साहित्यिक क्षेत्र के अन्य पत्र-लेखक :

वर्तमान युग में साहित्यिक क्षेत्र के प्राय: सभी प्रसिद्ध लेखकों के पत्र विविध ग्रंथों और पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुके हैं। यहां हम कुछ महत्वपूर्ण लेखकों के पत्र-साहित्य का अवलोकन करेंगे।

माखनलाल चतुर्वेदी :

माखनलाल चतुर्वेदी एक तप: पूत साहित्य-साधक थे। वे जितने सफल कवि थे, उतने ही सफल पत्रकार और पत्र लेखक थे। उन्होंने न जाने कितने कवियों और लेखकों को अपने पत्रों से प्रेरित और प्रोत्साहित किया होगा। उनके बहुमूल्य पत्र यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। वे छोटे-बड़े सभी लेखकों के पत्रों का यथाशीघ्र उत्तर देते थे। श्री क्षेमचन्द्र "सुमन" ने अपनी "अंजलि" शीर्षक कविता-पुस्तक उनको भूमिका लिखने के लिए भेजी थी। इसके उत्तर में उन्होंने "सुमन" जी को पत्र लिखा है, वह उनके व्यक्तित्व के कई महत्वपूर्ण पहलुओं को उजागर करता है। इस पत्र का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है :

"प्यारे क्षेमचन्द्र जी,

सादर नमन।

क्षमा कीजिए आपने भूमिका लिखने के लिए अच्छा आदमी नहीं चुना। आप मेरी बीमार देह, मजदूर ज़िन्दगी और कठिनाइयों से परिचित न होंगे, नहीं तो कदाचित् यह भूल आप न करते। खैर………दो शब्द लिख दिये………" और अंत में उन्होंने लिखा है—"मैंने जीवन में याद नहीं आता कि आपको कभी देखा है। पहचान होती तो चिट्ठी जरा लम्बी लिखता और उसमें कुछ अधिक ऊटपटांग लिखता।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि पं. माखनलाल चतुर्वेदी अपने मित्रों और परिचितों को दिल खोलकर पत्र लिखते थे। उदाहरण के लिए पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे २-४-१९४१ के पत्र का निम्नांकित अंश देखिए—

"मेरे पत्र न देने का कारण, मेरी नाराजी के सिवा क्या कोई नहीं होता? मेरी कपाल रेखाओं में संकट भी तो किसी रेखा का नाम हो सकता है। बढ़ते खून में वह रेखा घटी रहती थी, घटते खून में वह बढ़ने का

1. "एक व्यक्ति : एक संस्था" (१९६६), पृ. ५४७-४८।

उपद्रव क्यों न करे ?"[1]

"रसवन्ती" के "माखनलाल चतुर्वेदी-अंक" में चतुर्वेदी जी के अनेक रोचक पत्र प्रकाशित हुए हैं। श्री नर्मदाप्रसाद खरे के नाम प्रेषित एक पत्र में हमें उनके जीवन-दर्शन का सुन्दर परिचय मिलता है। इस पत्र का एक अंश इस प्रकार है— "प्रसन्न रहो, इतने की चहकती चिड़ियां, महकती कलियां और झरनों की बहती धाराएं सकुचा जायें। किन्तु संयत रहो इतने कि तुम्हारी ध्वनि धारा में से चुननेवालों को विष-बिन्दु, विकार-बिन्दु और विद्वेष-बिन्दु न मिलें, उस ध्वनि धारा में अश्रु-बिन्दु, श्रम-बिन्दु और रक्त-बिन्दु की त्रिवेणी में मज्जन करना नसीब हो।"[2]

इन पत्रों को पढ़कर हमें डा. प्रेमशंकर लिखित "माखनलाल चतुर्वेदी का गद्य" शीर्षक निबन्ध के इन शब्दों का स्मरण हो आता है कि— "उन्हें एक शब्द-शिल्पी भी कहा जा सकता है जो प्रत्येक शब्द के परिवेश को जानते हुए उसका सार्थक प्रयोग करता है और प्रतिभा से मिलाकर उसे एक सहज रूप देता है।"[3]

इन पत्रों के अतिरिक्त पं माखनलाख चतुर्वेदी द्वारा श्रीरामनाथ "सुमन" को लिखे कुछ पत्र "छायावादयुगीन स्मृतियां"[4] में भी उद्धृत हैं। ये पत्र उनके कलात्मक व्यक्तित्व के परिचायक हैं। इन सभी पत्रों को संगृहीत कर पुस्तकाकार प्रकाशित करने से हिन्दी पत्र-साहित्य की श्रीवृद्धि होगी।

जयशंकर "प्रसाद" :

जयशंकर "प्रसाद" एक मनीषी कवि थे। वे प्रकृति से अध्ययनशील और एकांतप्रिय थे। यात्रा और पत्र-व्यवहार से वे प्रायः दूर रहा करते थे। इस सम्बन्ध में उनके अंतरंग मित्र श्री विनोदशंकर व्यास ने लिखा है—"प्रसाद जी पत्र-व्यवहार से बहुत हिचकते थे। कुछ विशेष व्यक्तियों को छोड़कर बहुत कम लोग ऐसे होंगे जिन्हें प्रसाद जी की लेखनी से उत्तर मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनकी रचनाएं सम्पादकों के पास मैं ही भेजा करता था। इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह अपनी लेखनी को विशेष महत्व देते थे अथवा अभिमान के कारण ऐसा करते थे। वास्तव में बात यह थी कि कोई उनके पत्रों का दुरुपयोग न करे।"[5] यही कारण है कि "प्रसाद" जी के नाम आये पत्र तो स्वतंत्र संग्रह के रूप में प्रकाशित हो गये, उनके पत्रों का कोई संग्रह अभी तक देखने में नहीं आया।

---

1. "सम्मेलन पत्रिका," भाग-५६, सं. २-३, पृ. ३९-४०।
2. "रसवन्ती", अक्टूबर १९६८, पृ. ६९-७०।
3. "माखनलाल चतुर्वेदी : यात्रा-पुरुष" (१९६९), संपा. श्रीकांत जोशी, पृ. ५०५
4. देखिए: "छायावादयुगीन स्मृतियां" (१९७५), पृ. ७६।
5. "प्रसाद और उनका साहित्य" (१९५६), पृ. २४।

महाकवि "निराला" के नाम लिखे "प्रसाद" जी के कुछ पत्र हमें डा. रामविलास शर्मा द्वारा सम्पादित "निराला की साहित्य साधना" भाग ३ में उपलब्ध होते हैं। ये पत्र अत्यन्त छोटे हैं किन्तु आत्मीयतापूर्ण हैं। इन पत्रों से ज्ञात होता है कि प्रसाद जी "निराला" जी के स्वास्थ्य के लिए कितने चिन्तित रहते थे। १२-८-१९२७ के पत्र में उन्होंने लिखा है—"प्रिय "निराला" जी, बहुत दिनों के बाद आपका पत्र मिला। यह जानकर प्रसन्नता हुई कि अब आपका स्वास्थ्य सुधर रहा है। परन्तु अभी बहुत सावधान रहने की आवश्यकता है। औषधि की आवश्यकता हो तो लिखिएगा। मैं समझता हूँ कि रोग जब तक निर्मूल न हो तब तक उसका सेवन करते रहिए। मैं सकुशल हूँ, अपना कुशल समाचार बराबर लिखते रहिए।"[1]

श्री रमाशंकर "चंचल" ने भारत-कला भवन, बनारस में संगृहीत "प्रसाद" जी के कुछ पत्रों की चर्चा अपने "प्रसाद" के कुछ पत्र" शीर्षक लेख में की है। ये सभी संक्षिप्त हैं, किन्तु उनका विषय बड़ा व्यापक है, या यों भी कह सकते हैं कि ये पत्र "प्रसाद" जी के व्यस्त जीवन की झांकी हैं। कुछ पत्रों में ऐतिहासिक विषय की चर्चा भी मिलती है। जैसे, "प्रियवर, चौलुक्य शब्द पुलकेशिन के लिए आया होगा। स्मिथ को देख लीजिएगा। सम्भवत: पुलकेशिन चालुक्य के वंश का था, फिर से देख लीजिए।"[2] इस प्रकार "प्रसाद" जी, बड़ी संयत और स्पष्ट भाषा में संक्षिप्त पत्र लिखते थे।

शिवपूजन सहाय :

बहुमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य शिवपूजन सहाय को पत्र-लेखन कला में भी पूर्ण प्रावीण्य प्राप्त था। उनके पास हिन्दी के अनेक सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के पत्रों का भण्डार भरा था, परन्तु उसके ऊपर एक चोर ने हाथ साफ कर दिया। वे पत्र-व्यवहार में अत्यन्त नियमित थे। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी द्वारा स्थापित "पत्र-व्यवहार गोष्ठी" के वे सक्रिय सदस्य थे।[3]

आचार्य शिव जी के अनेक महत्वपूर्ण पत्र समकालीन साहित्यकारों से सम्बन्धित पत्र-संग्रहों में संकलित हैं। "उग्र" जी द्वारा सम्पादित "फाइल और प्रोफाइल" में उनके ४३ पत्र, "प्रसाद के नाम पत्र" शीर्षक संग्रह में २० पत्र और "निराला की साहित्य-साधना"भाग-३ में उनके १२पत्र संकलित हैं। इसके अतिरिक्त पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे पत्र "नई धारा" के "शिवपूजन-स्मृति-अंक" में "वे पत्र : वे दिन" शीर्षक से प्रकाशित हुए हैं। "साहित्य"

---

1. "निराला की साहित्य-साधना" भाग-३, (१९७६), पृ. ९६।
2. "प्रसाद के कुछ पत्र' (लेख), "हिन्दुस्तानी", जुलाई-सितम्बर १९७१, पृ. १०५।
3. देखिए : पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम शिवजी का पत्र, "नईधारा," वर्ष-१४. "शिवपूजन-स्मृति-अंक," पृ. ४७४।

(त्रैमासिक) के "शिवपूजन स्मृति-अंक" में भी उनके कई मूल्यवान पत्र प्राप्त होते हैं।

"फाइल और प्रोफाइल" में संकलित पत्र शिवजी की विनम्रता, सदाशयता, भावुकता आदि चारित्रिक विशेषताएं प्रकट करते हैं और "उग्र" जी के साथ उनके स्नेहिल सम्बन्ध की सूचना देते हैं। जैसे, १३-५-१९२४ के पत्र में वे लिखते हैं"……… ……मेरे जैसे दरिद्र, पतित, अधमाधम और हृदयहीन व्यक्ति पर भी तुम्हारा इतना स्वाभाविक स्नेह है। मुझ जैसे मनुष्यत्वहीन और सिद्धांत-हीन व्यक्ति के साथ संसार में किसी की सहानुभूति न होती तो मैं सचमुच जीने का साहस नहीं करता। तुम्हारे जैसे उदाराशय सज्जन अपनी सहानुभूति-सुधा से सींच-सींचकर मुझे जिला रहे हैं।"[1] "प्रसाद के नाम प्रेषित शिवजी के पत्रों में "प्रसाद" जी के प्रति उनके आदर भाव तथा "निराला" के नाम लिखे पत्रों में "निराला" जी के आर्थिक संकट में सहायभूत होने की सतत प्रयत्नशीलता के दर्शन होते हैं। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गये पत्रों में उनका सरल, सौम्य, समन्वयशील एवं सात्विक व्यक्तित्व स्पष्ट रूपेण झलकता है। उदाहरण के लिए १९-१०-१९५४ के पत्र का निम्नलिखित अंश देखिए—

"…. मैं आपकी छत्रच्छाया में शीतलता और शांति का अनुभव करता हूँ। दलबन्दी से डरता हूँ। आपके सुझाए मार्ग पर यथाशक्य अग्रसर होते हुए अपने प्रान्त की छोटी सीमा में साहित्यिक कार्य कर रहा हूं। आपका जो कुछ भी आदेश आता रहेगा, उसका पालन करता रहूंगा।[2]

इसके स्पष्ट है कि शिवजी एक सफल पत्र-लेखक थे। डा. लक्ष्मीनारायण दुबे ने बहुत उपयुक्त कहा है कि "उनके सहस्रों पत्र यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं जिनका संचयन और व्यवस्थित प्रकाशन, न केवल शिवजी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व के अनेक सूत्रों को खोलेगा, अपितु उनसे हिन्दी के वर्तमान युग से सम्बद्ध बीसियों घटनाओं, सूचनाओं और प्रकरणों पर भी सम्यक् प्रकाश पड़ेगा।"[3]

बालकृष्ण शर्मा "नवीन" :

पं. बालकृष्ण शर्मा "नवीन" नवयुग के एक क्रांतिकारी कवि थे। "उनका व्यक्तित्व विरोधाभासों का इन्द्रधनुष था। वे महान् और लघु साथ-साथ थे। वे अक्खड़ और विनयशील साथ-साथ थे। वे आसक्त और अनासक्त साथ-साथ थे। वे उपनिषद् के "तेन त्यक्तेन मुंजीथा :" के मूर्तिमन्त प्रमाण थे।[4]

1. "फाइल और प्रोफाइल" (१९७०), पृ. ३५७।
2. 'नई धारा," शिवपूजन-स्मृति-अंक, पृ. ४५६।
3. "आचार्य शिवजी : पत्र-लेखक के रूप में" (लेख). "साहित्य" (त्रै०), शिवपूजन-स्मृति-अंक, पृ. २०५।
4. "वीणा", नवीन-स्मृति अंक, सितम्बर १९६०, सम्पादकीय।

"नवीन" जी के पत्रों में हमें उनके इस विरोधाभासी व्यक्तित्व की स्पष्ट झलक मिलती है।

हिन्दी के उन्मुक्त पत्र-लेखकों में "नवीन" जी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। पं. प्रतापनारायण मिश्र के पत्रों में भी हमें उनके फक्कड़पन की झांकी मिलती है, किन्तु उनके पत्र अधिक संख्या में प्राप्त नहीं होते। "नर्मदा" के नवीन-अंक में प्रकाशित पत्र "नवीन" जी के मस्त और मनमौजी व्यक्तित्व के परिचायक हैं। ये सभी पत्र पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे गये हैं। इन पत्रों से इन दोनों साहित्यकारों के अंतरंग सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है। २०-१०-१९४९ के पत्र का प्रारम्भिक अंश द्रष्टव्य है—

"प्रियवर चौबेजी,

नमस्कार।

लोग जो यह समझ रहे हैं कि आपने कोई अभिनन्दन कम्पनी लिमिटेड या अनलिमिटेड खोली है, तो क्या भूल करते हैं? आपके लच्छन ही हैं ऐसे, जो उन्हें इस प्रकार सोचने पर बाध्य करते हैं। मैं कहता हूं आप एक "अभिनन्दन-श्राद्ध-तर्पण-मुण्डन कम्पनी अनलिमिटेड" खोल लीजिए।........"[1]

अपने नाम आये "नवीन" जी के विलक्षण पत्रों के सम्बन्ध में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने १-९-१९६३ के पत्र में श्री नरेश चतुर्वेदी को लिखा है—

"नवीन जी के पत्रों को पढ़कर आप प्रसन्न हो जायेंगे। सन् २००१ ई. में जब कोई छात्र जिज्ञासा से पूछ बैठेगा—यह बनारसीदास कौन था? तो दूसरा जवाब देगा, वही जिसे नवीन जी ने मज़ेदार पत्र लिखे थे।[2]

"नर्मदा" के नवीन-अंक के अतिरिक्त वीणा के 'नवीन-स्मृति-अंक" में भी पं. सूर्यनारायण व्यास, रामनारायण उपाध्याय आदि साहित्यिकों को लिखे "नवीन" जी के कुछ पत्र प्रकाशित हुए हैं। श्री दामोदर झलानी, रामानुजलाल श्रीवास्तव आदि के नाम प्रेषित "नवीन" के कुछ अनूठे पत्र "माध्यम" (दिसम्बर १९६५) में भी देखे जा सकते हैं। इन सभी पत्रों में मस्ती और ममता का जैसा आलम दिखाई पड़ता है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अतः कहा जा सकता है कि "नवीन" जी के ये पत्र, हिन्दी पत्र-साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं।

जैनेन्द्रकुमार :

साहित्यकारों के व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन से सम्बन्धित पुस्तकों में उनके वैयक्तिक पत्रों को प्रकाशित करने की परम्परा सम्भवतः "जैनेन्द्र के विचार" से

1. "नर्मदा," नवीन-अंक, १९६३, पृ. २८।
2. "प्रेरक साधक" (१९७०) पृ. ५०२।

स्थापित हुई है। यह पुस्तक डा. प्रभाकर माचवे के सम्पादकत्व में सर्वप्रथम सन् १९३७ में प्रकाशित हुई थी। इसमें माचवे जी ने अपने नाम आये जैनेन्द्रकुमार के पत्रों के महत्वपूर्ण अंश प्रकाशित किये हैं। इन पत्रांशों से जैनेन्द्रकुमार की "परख" में एक "वातायन" खुल सकता है। इन पत्रों में सवाल-जवाब भी हैं, कुछ चर्चाओं का ज़िक्र और कुछ विवाद भी। जीवन-दर्शी जैनेन्द्र और उनकी पत्र-लेखन शैली का सुन्दर परिचय हमें इन पत्रों में प्राप्त होता है। उदाहरण के लिए यहां हम १-८-१९३५ के पत्र का एक अंश प्रस्तुत करते हैं—

"भाई माचवेजी,

पत्र मिला।............

मेरे बारे में यह बात आप जान लें कि किताबों में मेरी पहुँच कम है। इसलिए मेरा जवाब थोड़ा और सादा ही हो सकता है।

जीवन से कला को तोड़कर मैं देख नहीं पाता। सत्याभिमुख जीवन की अभिव्यक्ति कला हैं। शब्दांकित अभिव्यक्ति साहित्य है।"[1]

जैनेन्द्रकुमार और प्रेमचन्दजी का आत्मीयता से भरा पत्र-व्यवहार, मदन-गोपाल और अमृतराय द्वारा सम्पादित "चिट्ठी-पत्री भाग-२" में प्रकाशित है। इसे पढ़ने से ज्ञात होता है कि जैनेन्द्रकुमार प्रेमचन्दजी को अपना मार्गदर्शक मानते थे। १६ अप्रैल १९३१ के पत्र में उन्होंने लिखा है कि—"मैं यहां आपकी सलाह और मदद से कुछ अपनी ज़िन्दगी की समस्याओं को हल करने की सोच रहा था।"[2] डा. विजय कुलश्रेष्ठ की "जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना" शीर्षक पुस्तक में भी जैनेन्द्रकुमार के कुछ पत्र प्रकाशित हुए हैं। दिनांक ५-३-१९७० को लिखे एक पत्र में अपने उपन्यासों के विकास-क्रम की चर्चा करते हुए उन्होंने अपने लेखन के उद्देश्य को भी प्रकट किया है। उन्होने लिखा है—"मैं "कमाई" के विरुद्ध हो गया था और मेरे लिखने का सम्बन्ध "कमाई" से नहीं है।"[3] इस प्रकार जैनेन्द्रकुमार के पत्र, उनके व्यक्तित्व और जीवन-दर्शन पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं।

उपर्युक्त पत्र-लेखकों के अतिरिक्त वृन्दावनलाल वर्मा, राहुल सांकृत्यायन, नन्ददुलारे वाजपेयी, रामधारीसिंह "दिनकर," गजानन माधव "मुक्तिबोध" आदि लेखकों के पत्र भी विविध ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। इन पत्रों में भी हिन्दी साहित्य की अनेक घटनाओं, विवादों और प्रकरणों के महत्वपूर्ण सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं। पत्र-लेखन कला की दृष्टि से भी ये पत्र अत्यन्त उत्कृष्ट हैं, किन्तु विस्तार-भय से यहां इन लेखकों के पत्र-साहित्य की

---

1. "जैनेन्द्र के विचार" (द्वि. सं. १९७७), पृ. १८१।
2. "चिट्ठी-पत्री भाग-२" (१९६२), पृ. २२।
3. "जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना" (१९७६), लेखकीय, पृ. ५।

चर्चा नहीं की जा सकती। आगे यथास्थान इनके पत्रों की विशेषताओं का उल्लेख किया जायेगा।

(ıı) साहित्येतर क्षेत्रों के अन्य पत्र-लेखक :

जिस प्रकार साहित्येतर क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखकों—महात्मा गांधी, सेठ जमनालाल बजाज और आचार्य विनोबा भावे ने अपने उत्प्रेरक एवं विचारोत्तेजक पत्रों से हिन्दी पत्र-साहित्य को समृद्ध किया है, उसी प्रकार इन्हीं महापुरुषों के समकालीन कुछ प्रसिद्ध राजनयिकों, दार्शनिकों एवं समाज-सुधारकों के पत्रों से भी हिन्दी पत्र-साहित्य के विकास में यथेष्ट सहायता मिली है। अतः यहां विविध क्षेत्रों के अन्य उल्लेखनीय पत्र-लेखकों की संक्षिप्त चर्चा की जाती है।

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन :

हिन्दी के अनन्य आराधक और "हिन्दी साहित्य सम्मेलन" के प्राणाधार राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन हमारे स्वतंत्रता-सग्राम के निर्भय सेनानी थे। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने उनको "हिन्दी-गंगा के भगीरथ" कहा है।[1] राजर्षि टंडन के पत्रों का कोई स्वतंत्र संग्रह तो देखने में नहीं आया, परन्तु विविध पत्र-संग्रहों तथा ग्रंथों में उनके अनेक महत्वपूर्ण पत्र प्रकाशित हुए हैं। श्री वियोगी हरि द्वारा सम्पादित "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" में टंडन जी के भी कुछ प्रेरक पत्र संकलित हैं। इन पत्रों में उनके चरित्र की दृढ़ता, निर्लिप्तता आदि अनेक विशेषताएं देखने को मिलती हैं। जैसे, उड़ीसा के राज्यपाल-पद के सम्बन्ध में लिखा गया उनका १६ जनवरी १९५४ का यह पत्र देखिए—

"प्रिय हरिजी,

नमस्कार।

राज्यपाल-पद के लिए तुम से दिल्ली में बात हुई थी, उस पर विचार करता रहा। स्वीकृति का पत्र भी लिखने बैठा, परन्तु हृदय ने बलवा कर दिया, और अंत में अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए उस पद की स्वीकृति से मैंने क्षमा मांगी।"[2]

सिद्धांत के लिए बड़े से बड़ा त्याग करना पड़े तो उसके लिए टंडनजी हमेशा तत्पर रहते थे। महात्मा गांधी को हिन्दी साहित्य सम्मेलन में वे ही लाये थे, परन्तु जब महात्मा जी हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाने का आग्रह करने लगे तो टंडन जी उनसे सहमत नहीं हुए। इस सम्बन्ध में इन दोनों महापुरुषों के बीच जो ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार हुआ,[3] वह "बापू-बाबू पत्र-व्यवहार" के नाम से प्रसिद्ध

---

1. देखिए: "सम्मेलन पत्रिका," गांधी-टंडन-स्मृति-अंक, शक-१८९१, पृ. २०७।
2. "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" (१९६०), पृ. ८२।
3. देखिए: श्रीगोपालप्रसाद व्यास द्वारा सम्पादित "गांधी हिन्दी दर्शन" पृ. २२६-२३१ पर प्रकाशित-"हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर ऐतिहासिक गांधी-टंडन पत्र-व्यवहार"।

है। इस प्रकार टंडन जी के पत्रों का ऐतिहासिक महत्व है।

डा. राजेन्द्र प्रसाद :

देशरत्न डा. राजेन्द्रप्रसाद महात्मा गांधी के प्रमुख सहयोगी और स्वतंत्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति थे। सेवा, सादगी, शालीनता, सहिष्णुता आदि सद्गुणों के कारण उन्होंने भारत की जनता का हृदय जीत लिया था। उनके वास्तविक व्यक्तित्व का परिचय हमें उनकी 'स्वतंत्र-भारत की झलक'' शीर्षक पुस्तक से प्राप्त होता है इस पुस्तक में उनके कुछ चुने हुए पत्र प्रकाशित हैं जो उन्होंने समय-समय पर अपनी पुत्री-तुल्य डा. ज्ञानवती दरबार के नाम लिखे थे। इन पत्रों में स्वतंत्र भारत की अनेक राजनैतिक घटनाओं की झलक प्रस्तुत की गयी है। इनमें संविधान का निर्माण, संविधान और संसद, प्रथम राष्ट्रपति के गणतंत्र-दिवस-समारोह आदि घटनाओं का केवल विवरण ही नहीं है, इन घटनाओं के संदर्भ में लेखक ने अपनी प्रतिक्रिया भी दी है। उदाहरणतः गणतंत्र-दिवस-समारोह में प्रस्तुत की गयी झांकियों के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

"प्रिय ज्ञान,

गणतंत्र-दिवस-समारोह में भारतीय झांकियों के दृश्य और नृत्य ने भारतीय जीवन की विभिन्नता का पूरी तरह प्रतिनिधित्व किया है। लेकिन उसमें कुछ ऐसी असंगतियां भी देखने को मिलीं जिनकी ओर आयोजकों का शायद ध्यान ही न गया हो।"[1]

डा राजेन्द्रप्रसाद केवल एक राजनैतिक नेता ही नहीं थे, एक उत्तम लेखक भी थे। वे पं. पद्मसिंह शर्मा के साहित्यिक शिष्य थे और शर्मा जी को सदैव "परम पूजनीय श्रद्धेयवर" लिखा करते थे। पं. श्रीनारायण चतुर्वेदी ने अपनी "मनोरंजक संस्मरण" शीर्षक पुस्तक में पं. शर्माजी के नाम राजेन्द्र बाबू का सन् १९१० में लिखा पत्र उद्धृत किया है जिसमें "भारतोदय" में प्रकाशित उनके "समाज-संशोधन" शीर्षक लेख के प्रकाशन के लिए हार्दिक कृतज्ञता व्यक्त की गयी है।[2] पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने "श्रद्धेय बाबू राजेन्द्रप्रसाद" शीर्षक रेखाचित्र में भी राजेन्द्र बाबू के दो तीन पत्र उद्धृत किये हैं जिनमें २-८-१९४५ के पत्र में उन्होंने लिखा है कि—"हिन्दी को किसी भी भाषा से शब्दों को लेने में संकोच नहीं करना चाहिए।"[3] श्री कपिलदेव सिंह "सुहृद" ने अपनी 'व्यक्ति और व्यक्तित्व" शीर्षक पुस्तक में भी स्वाधीनता-संग्राम की गतिविधियों से सम्बन्धित राजेन्द्र बाबू के कुछ महत्वपूर्ण पत्र उद्धृत किये हैं।[4] इस प्रकार डा. राजेन्द्रप्रसाद का पत्र-साहित्य राजनैतिक एवं साहित्य दोनों ही दृष्टियों से महत्व रखता है।

1. "स्वतंत्र भारत की झलक" (१९७३), पृ. ४८।
2. "मनोरंजक संस्मरण" (१९७७), पृ. २०७।
3. "रेखाचित्र" (१९५२), पृ. ९४।
4. "व्यक्ति और व्यक्तित्व" (१९६७), पृ. ५-९।

इसके अतिरिक्त स्वाधीनता संग्राम के समय चूरू (राजस्थान) में चेतना की चिनगारी जगाने वाले स्वामी गोपालदासजी के अनेक प्रेरणा-दायक पत्र गोविन्द अग्रवाल कृत "पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदासजी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व" शीर्षक पुस्तक में प्रकाशित हैं। स्वामी सत्यभक्त के चिन्तनशील पत्रों के अंश "अनमोल पत्र" शीर्षक संग्रह में संकलित हैं। महामहोपाध्याय पं. कविराज गोपीनाथ का आध्यात्मिक पत्र-व्यवहार डा. भगवतीप्रसाद सिंह लिखित "मनीषी की लोकयात्रा" शीर्षक जीवनी के "पत्रालोक" प्रकरण में संकलित है और सन् १९४२ में अहमदनगर जेल से श्री गोविन्दवल्लभ पन्त द्वारा अपने बच्चों के नाम लिखे गये ज्ञानवर्धक पत्र श्री शम्भूप्रसाद शाह कृत "गोविन्दवल्लभ पन्त : एक जीवनी" के "बापू के पत्र राजा के नाम" शीर्षक प्रकरण में प्रकाशित हैं। इस प्रकार हिन्दी पत्र-साहित्य के विकास में साहित्येतर क्षेत्रों के मनीषियों का योग भी कम महत्वपूर्ण नहीं है।

निष्कर्ष :

पत्र-साहित्य की पृष्ठभूमि और हिन्दी में उसके विकास के अनुशीलन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पत्र-लेखन सबसे प्राचीन, सुकुमार एवं मानवीय विधा है। मानव-सभ्यता के विकास के साथ पत्र के अन्तर्बाह्य स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहा है। साहित्य से उसका सम्बन्ध मुख्यतः आधुनिक युग में ही हुआ है। यद्यपि प्राचीन संस्कृत साहित्य में किसी प्रसिद्ध व्यक्ति के पत्रों का स्वतन्त्र संग्रह उपलब्ध नहीं होता, किन्तु ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि ई. पू. ७०० के समीप भारत में पत्र-लेखन कला का विकास हो चुका था। भारतीय नवजागरण (१८५७ ई.) के आरम्भ तक हिन्दी में संस्कृत की परम्परागत शैली में ही पत्र लिखे जाते थे। नवजागरण-काल में हिन्दी साहित्य की अन्य रूप-विधाओं के साथ पत्र-विधा पर भी पाश्चात्य साहित्य का प्रभाव पड़ा और महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्र प्रकाश में आने लगे।

हिन्दी पत्र-लेखन के क्षेत्र में नवीन प्रयोगों का आरम्भ भारतेन्दु-युग में ही हो गया था। यद्यपि इस युग में किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति के पत्रों का कोई स्वतंत्र संग्रह प्रकाशित नहीं हुआ, किन्तु इसमें साहित्यिक महत्व के अनेक पत्र लिखे गये हैं। हिन्दी में पत्र-साहित्य की विधिवत् परम्परा का सूत्रपात द्विवेदी-युग में, आर्य-समाजी लेखकों ने किया। स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद हिन्दी पत्र-साहित्य के विकास में अधिक गतिशीलता आई और विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के स्वतंत्र पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त विविध ग्रंथों तथा पत्र-पत्रिकाओं में भी प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाश में आया। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि हिन्दी में अब भी पत्र-साहित्य की स्थिति क्षीण-हीन है। सच तो यह है कि हिन्दी में पत्र-साहित्य का स्तरीय विकास हुआ है।

हिन्दी में पत्र-साहित्य का महत्व प्रतिष्ठित कर उसे परिश्रमपूर्वक प्रकाश में लाने का सर्वाधिक प्रशंसनीय कार्य पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने किया है। उन्होंने साहित्य और साहित्येतर क्षेत्रों की अनेक विभूतियों के पत्रों को संगृहीत कर पत्र-पत्रिकाओं तथा पुस्तकों में उनके यथासमय प्रकाशन का स्वयं भी प्रयत्न किया और अन्य व्यक्तियों को भी प्रेरित किया। अतः हिन्दी पत्र-साहित्य के विकासेतिहास में उनका नाम सदैव स्मरणीय रहेगा।

जैसा कि हम देख चुके हैं, पत्र के रूढ़ और मूल रूप के अतिरिक्त हिन्दी में ऐसा भी साहित्य प्रकाशित हुआ है जो पत्र के बाहरी ढांचे और नाम में वस्तुतः अन्य विधाओं का साहित्य है। दूसरे शब्दों में, पत्र-शैली में लिखे गये निबन्धों, यात्रावृत्तों, संस्मरणों आदि को विशुद्ध पत्र-साहित्य नहीं कहा जा सकता। अतः हमने प्रमुख और अन्य पत्र-लेखकों के रूप में उन्हीं मनीषियों की चर्चा की है जिन्होंने समय-समय पर पत्र लिखकर अनेक व्यक्तियों को प्रेरित और प्रोत्साहित किया है और सामाजिक, धार्मिक, राजनैतिक एवं साहित्यिक गतिविधियों पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला है। प्रमुख पत्र-लेखकों का पत्र-साहित्य विस्तृत होने के कारण प्रस्तुत अध्याय में इसका संक्षिप्त परिचय ही दिया गया है। इसकी विस्तृत चर्चा अब हम अगले अध्याय में करेंगे।

अध्याय ३

हिन्दी के प्रमुख पत्र-लेखक, उनका पत्र-साहित्य और पत्रों में प्रतिबिम्बित उनका व्यक्तित्व

पत्र-साहित्य और व्यक्तित्व :

साहित्य वैयक्तिक अनुभूतियों के आधार पर प्रतिष्ठित होता है। महान् व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति ही महान् साहित्य हैं।[1] साहित्य के कुछ ऐसे प्रकार हैं जहां लेखक प्रत्यक्ष न आकर अप्रत्यक्ष रूप से अपने पात्रों के माध्यम से हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। परन्तु आत्मकथा, निबन्ध इत्यादि साहित्य के ऐसे प्रकार हैं जिसमें लेखक का व्यक्तित्व प्रत्यक्ष रूप से प्रकट होता है । पत्र-साहित्य भी प्रत्यक्ष आत्माभिव्यंजक साहित्य का एक प्रकार है। जो लोग अपने जीवन में "दुहरे व्यक्तित्व" के अभ्यासी हैं, उनके पत्रों में बनावटीपन हो सकता है, किन्तु सहज स्वभाव से लिखे गये पत्रों में लेखक का व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से झलकता है। इस दृष्टि से व्यक्ति का जितना निखरा हुआ चित्र उसके पत्रों में प्राप्त होता है, उतना उसकी अन्य किसी रचना अथवा मौखिक वार्तालाप में नहीं होता। अतः किसी व्यक्ति-विशेष के अध्ययन के लिए उसके पत्रों का अध्ययन अनिवार्य है।

व्यक्तित्व की परिभाषा :

"व्यक्तित्व का मतलब होता है व्यक्ति का भाव।" "वस्तुतः "व्यक्तित्व" "व्यक्ति" की भाववाचक संज्ञा है, अतः व्यक्ति के क्षेत्र में जिन-जिन गुणों एवं विशेषताओं का समावेश होता है वे सब "व्यक्तित्व" के अन्तर्गत भी ली जा

---

1. "The work of so and so is good because it is the perfect expression of his personality.'
—Sir Arthur Quiller Couch.
(उद्धृत : "समीक्षा-शास्त्र" (प्र. सं.), डा. दशरथ ओझा, पृ. ३९।)

सकती हैं।''[1] यह शब्द प्रायः किसी व्यक्ति की वेश-भूषा तथा शारीरिक विशेषताओं के अर्थ में प्रयुक्त होता है, परन्तु यह अर्थ बहुत संकुचित और एकपक्षीय है। डा. सत्येन्द्र ने व्यक्तित्व की परिभाषा देते हुए लिखा है कि ''मनुष्य का समस्त स्वरूप ही वस्तुतः उसका व्यक्तित्व है। उसके गुण-अवगुण, उसका चरित्र, उसके आचार-व्यवहार, उसका स्वभाव, उसका आंतरिक मन, उसकी संस्कृति अथवा सांस्कृतिक उपार्जन, इन सब की एक ऐसी रसायन प्रस्तुत होती है कि वह उस व्यक्ति के स्वरूप को एक पृथक् महत्व प्रदान कर सकती है।''[2] ''दी मेकिंग ऑफ ए हेल्दी पर्सनैलिटी'' शीर्षक अंग्रेजी पुस्तक में भी व्यक्तित्व से यही अभिप्राय प्रकट किया गया है। उसमें कहा गया है कि ''व्यक्तित्व से हमारा तात्पर्य है सोचना, अनुभव करना, व्यक्तियों से आचार-व्यवहार जो कि एक आवश्यक भाग है जिससे वह अपने आपका खूब विचार करता है एवं जो एक व्यक्ति को अन्य व्यक्तियों पृथक् करता है।''[3]

इससे स्पष्ट होता है कि व्यक्तित्व के मुख्य दो पक्ष हैं—(१) शारीरिक पक्ष—जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के शरीर की लम्बाई, चौड़ाई, वज़न, गठन, चेहरे की अभिव्यक्ति, रंग आदि अनेक बातें सम्मिलित हैं और (२) मानसिक पक्ष—जिसमें ज्ञान, इच्छा और क्रिया का समावेश होता है। ''चरित्र'' का सम्बन्ध भी मानसिक पक्ष से होता है।

पत्रों में प्रतिबिम्बित लेखक के व्यक्तित्व का स्वरूप :

पत्र-साहित्य में मुख्यतया लेखक की भावनाओं और विचार-धाराओं, मनोवृत्तियों और आकांक्षाओं, सफलताओं और असफलताओं आदि का ही चित्रण होता है।[4] अतः इसमें लेखक के व्यक्तित्व के शारीरिक पक्ष की अपेक्षा मानसिक पक्ष का उद्घाटन अधिक होता है। इसके साथ ही, लेखक के जीवन-चरित्र से सम्बन्धित तथ्यों—जैसे उसकी शिक्षा-दीक्षा, पारिवारिक स्थिति, कार्यक्षेत्र कष्ट

---

1. साहित्य-शैली के सिद्धांत'' (१९७१), डा. गणपतिचंद्र गुप्त, पृ. ३७-३८।
2. ''समीक्षा के सिद्धांत'' (१९६८), पृ. ३१।
3. "The Making of a Healthy Personality,"
   by Heleyn Leland Witmer Ruth Ketinsty, P, 3.

   "We mean by personality the thinking, feeling, acting human being, who for the most part conceives of himself as an individual separate from other individuals and objects."
   (उद्धृत : ''आधुनिक हिन्दी का जोवनीपरक साहित्य, डा. शांति खन्ना, पृ. २०)
4. प्रत्येक मनुष्य की आत्मगत दुर्बलताएं मित्रों, स्नेहियों और घनिष्ठ परिचितों को लिखे गये पत्रों में ही मिलती हैं।

   —डा. गोविन्द त्रिगुणायत, शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत-२, पृ. ५१३।

और याचनाएं, सम्मान पुरस्कार आदि की झलक भी पत्रों में मिलती है। इन तथ्यों का सम्बंध भी उसके व्यक्तित्व से होता है। लेखक की जीवनी लिखने के लिए इन तथ्यों से अन्यतम सहायता मिलती है। इस प्रकार पत्रों में प्रतिबिम्बित लेखक के व्यक्तित्व का परिचय हमें मुख्यतः तीन रूपों में प्राप्त होता है:— (क) जीवनी—विषयक तथ्यों या सूत्रों के रूप में, (ख) चारित्रिक विशेषताएं या गुण-दोष के रूप में और (ग) दृष्टिकोण या विचारधारा के रूप में। अब हम इन्हीं रूपों को ध्यान में रखकर साहित्यिक तथा साहित्येतर क्षेत्रों के प्रमुख पत्र-लेखकों के व्यक्तित्व का अध्ययन करेंगे।

(अ) साहित्यिक क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखक

साहित्यकार सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील और भावुक होता है। उसमें निरीक्षण की शक्ति, भावना की तीव्रता, विविध अनुभवों तथा मानसिक चित्रों को एकत्रित करके नवीन रूप में प्रस्तुत करने की क्षमता—ये सभी असाधारण मात्रा में विद्यमान रहते हैं। यही कारण है कि उसके पत्र अपेक्षाकृत अधिक रोचक, आकर्षक और प्रभावोत्पादक होते हैं।

जैसा कि हम पहले बता चुके हैं, कवि या लेखक जिन उद्‌गारों को कविताओं और निबंधों में व्यक्त नहीं करते या कर पाते, उन्हें वे अपने पत्रों में अवश्य प्रकट करते हैं। अतः उनके वास्तविक व्यक्तित्व या प्रकृत चरित्र को जानने के लिए उनके पत्र सर्वाधिक सबल साधन हैं। डा. विश्वनाथ शुक्ल के शब्दों में कहें तो "किसी साहित्यिक को जहां किसी विशिष्ट विधा के साहित्य-सर्जन में एक आभिजात्य मर्यादा का पालन करना होता है, वहां पत्र-लेखन उसका एक ऐसा निभृत कक्ष है, एक ऐसा स्वच्छंद और उन्मुक्त मनोराज्य है, जहां का वह एक मात्र स्वामी और एकछत्र सम्राट् होता है। इसलिए यदि किसी व्यक्ति को हम उसके मुक्त और सहज रूप में देखना चाहें तो उसके पत्रों में देख सकते हैं।[1]

कवि या साहित्यकार के व्यक्तित्व और चरित्र को लेकर विद्वानों ने अलग-अलग विचार प्रकट किये हैं। डा. रामरतन भटनागर ने इस सम्बन्ध में लिखा है : "व्यक्तित्व चरित्र का उदात्तीकृत रूप है जो आत्मिक गुणों का प्रकटीकरण है।.......... कवि कालिदास व्यक्ति कालिदास से भिन्न भी हो सकता है और समरूप भी, परन्तु उनकी कृतियों में हम व्यक्ति कालिदास का ही आग्रह क्यों करें।"[2] कवि कालीदास की कृतियों में हम व्यक्ति कालिदास का आग्रह करें या न करें, यह अलग बात है, परन्तु यह निर्विवाद है कि व्यक्ति कालिदास को समझे बिना कवि कालिदास का अध्ययन अपूर्ण रहेगा। कवि के व्यक्तित्व के

1. "हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास," चतुर्दश भाग, (सं.२०२७ वि), संपा. डा. हरवंशलाल शर्मा, पृ. ५०६।
2. "मूल्य और मूल्यांकन" (१९६२), पृ. ९१-९२।

सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय का यह मत है कि—" वास्तव में कवि के दो व्यक्तित्व होते हैं—एक लौकिक और दूसरा साधारणीकृत सहानुभूतिपूर्ण कलाकार का व्यक्तित्व । इसके अतिरिक्त उसका (भावक का) तीसरा व्यक्तित्व भी होता है ।"[1] पत्रों में हमें साहित्यकार के इन तीनों व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं । पत्रों में उसका लौकिक व्यक्तित्व वहां प्रकट होता है, जहां वह साधारण मनुष्यों की भांति सुख में हँसता है और दुख में रोता है । उसके कलाकार का व्यक्तित्व वहां झलकता है, जहां उसके रोने में भी एक सुरीला राग सुनाई देता है तथा उसका भावक वहां दृष्टिगोचर होता है, जहां वह अपनी तथा अपने मित्रों की कृतियों की व्याख्या करता है । इस प्रकार साहित्यकारों के पत्रों में उनके व्यक्तित्व का जो परिचय मिलता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है । अब यहां हम कालक्रमानुसार साहित्यिक क्षेत्र के उन प्रमुख पत्र-लेखकों की विस्तार से चर्चा करेंगे जिनका संक्षिप्त परिचय पिछले अध्याय में दिया जा चुका है ।

1. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (१८५०–१८८५) :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र आधुनिक हिन्दी के प्रवर्तक हैं । उन्हीं की प्रेरणा से रीतिकालीन प्रवृत्तियों का अवसान या संस्कार होकर नूतन परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ । "निज भाषा की उन्नति अहै सब उन्नति को मूल" का सूत्र अपनाकर उन्होंने हिन्दी की उन्नति और प्रगति के लिए सतत परिश्रम और प्रयास किया । साहित्य का मन्दिर इस प्रतिभा सम्पन्न साधक के गद्य के अगरू-धूम से महक उठा । श्री किशोरीलाल गुप्त ने अपने "भारतेन्दु और उनके पूर्ववर्ती कवि" शीर्षक लेख में इस महान् कलाकार की साहित्य-साधना का परिचय देते हुए लिखा है कि— भारतेन्दु श्री हरिश्चन्द्र की गणना सर्वदा विलक्षण एवं मौलिक प्रतिभाशाली रचनाकारों में की जाएगी । अपने कार्यव्यस्त अल्प जीवन में समाज और कुटुम्ब-कृत निन्दा और विरोध, शासन की कोप दृष्टि तथा अर्थाभावजन्य कष्टों को सहन करते हुए भी जिसने १७-१८ वर्षों के भीतर उतनी रचनाएं प्रस्तुत की जितनी प्रस्तुत करने में साधारणत: किसी बड़े कवि या लेखक को ५०-६० वर्ष से कम न लगते, जिसकी प्रत्येक बात में कुछ न कुछ अनूठापन रहता था और जिसमें स्वाभिमान की मात्रा भी कुछ कम नहीं थी ।"[2] इस प्रकार भारतेन्दु हरिश्चन्द्र साहित्यिक क्षेत्र में आधुनिकता के प्रथम अग्रदूत थे ।

(अ) भारतेन्दु जी का पत्र–साहित्य :

हिन्दी में पत्र-साहित्य के विकास के विवेचन के प्रसंग में हम देख चुके हैं कि साहित्य के अन्य क्षेत्रों के समान पत्र-लेखन में भी सर्वप्रथम नवीनता लाने का प्रयास भारतेन्दु जी ने ही किया है । उन्होंने प्राचीनकाल से चली आ रही परम्प-

---

1. "सिद्धांत और अध्ययन" (१९७०), पृ. २११ ।
2. "नागरी प्रचारिणी पत्रिका", भारतेन्दु जन्मशती अंक, सं. २००७ वि., पृ. २१ ।

रागत पत्र-लेखन शैली को नया रूप प्रदान किया और हिन्दी में नयी चाल के पत्र उन्होंने ही चलाये। पत्र लेखन-कला सम्बन्धी उनकी गहरी सूझ-बूझ का परिचय हमें उनकी "प्रशस्तिसंग्रह अथवा पत्र-बोध" शीर्षक पुस्तक में प्राप्त होता है। उन्होंने स्वयं सैकड़ों पत्र लिखे और अपने सहयोगी साहित्यिकों को भी इस दिशा में प्रेरित किया। साहित्यिक पत्रों का शुभारम्भ भी उन्होंने ही किया। इसलिए हम उनको "हिन्दी का सर्वप्रथम पत्र-लेखक" कह सकते हैं।

भारतेन्दु जी का कार्यक्षेत्र अत्यन्त व्यापक था और उनकी लेखन-शक्ति अद्भुत थी। उनकी कलम कभी न रुकती थी। डा. राजेन्द्रलाल मित्र उनको "राइटिंग-मशीन" (writing machine) कहा करते थे।[1] उनके द्वारा लिखे गये सैकड़ों पत्र यत्र-तत्र बिखरे पड़े हैं। उनके अनेक अप्रकाशित पत्र भारतकला भवन, बनारस में संरक्षित हैं। खेद का विषय है कि इस महान् पत्र-लेखक के पत्रों का कोई स्वतंत्र संग्रह अभी तक प्रकाशित नहीं है। उनके कुछ महत्वपूर्ण पत्र उन पर लिखे गये जीवन-चरित्रों में प्रकाशित हैं। कुछ पत्र उनके सहयोगी साहित्यकारों पर लिखे गये शोध-प्रबन्धों के परिशिष्टों में प्राप्त हैं। उनके प्रकाशित पत्र-साहित्य का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

1. भारतेन्दु ग्रंथावली भाग-३, संपा. ब्रजरत्नदास।

इसमें भारतेन्दु जी द्वारा राधाचरण गोस्वामी को लिखे गये २० बहुमूल्य पत्र संकलित हैं। "प्रेमघन" जी के नाम लिखे गये दो पत्र भी इसमें दिये गये हैं।

2. हरिश्चन्द्र—ले. बाबू शिवनंदन सहाय।

इस प्रसिद्ध जीवन-चरित-ग्रंथ के उपसंहार में "कई एक चिट्ठी-पत्री" शीर्षक के अंतर्गत भारतेन्दु जी को लिखे गये तथा उनके द्वारा लिखे गये कई मूल्यवान पत्र प्रकाशित हैं।

3. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—ले. ब्रजरत्नदास।

इस जीवनी के परिशिष्ट-अ में "पत्र-व्यवहार" शीर्षक के अंतर्गत भारतेन्दु जी का अनेक साहित्यकारों तथा अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों के साथ हुआ पत्र-व्यवहार संकलित है।

4. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—ले. मदनगोपाल।

इस जीवन-चरित के अनेक प्रकरणों में प्रसंगतः भारतेन्दुजी के महत्वपूर्ण पत्र उद्धृत किये गये हैं।

5. प्रेमघन और उनका कृतित्व—डा. रामचन्द्र पुरोहित।

इस शोध-प्रबंध के परिशिष्ट-२ में "प्रेमघन" जी के नाम लिखे गये भारतेन्दु जी के छह मैत्रीपूर्ण पत्र प्रकाशित हैं।

---

1. "राधाकृष्ण ग्रंथावली" (१९३०), संपा. श्यामसुन्दरदास, पृ. ३९०।

इसके अतिरिक्त "सम्मेलन पत्रिका" के भारतेन्दु-अंक, ज्ञानोदय" के पत्रांक आदि में भी अनेक पत्र प्रकाशित किये गये हैं। इस प्रकार "द्विवेदी-पत्रावली" के समान भारतेन्दु-पत्रावली का प्रकाशन भी हो सकता है। भारतेन्दु जी का पत्र-साहित्य भी कम रंजक या महत्वपूर्ण नहीं है।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित भारतेन्दु जी का व्यक्तित्व :

भारतेन्दु जी का व्यक्तित्व एक सच्चे कलाकार का व्यक्तित्व था। "कलाकार की कला यदि जीवन से न फूटे तो उसे शब्द, मूर्ति तथा झंकार में खोजना व्यर्थ है। हृदय का धनी ही साहित्य का धनी हो सकेगा। भारतेन्दु हृदय के धनी थे। एक ऐसा हृदय विधाता की भूल से उन्हें मिल गया था जिसके सम्मुख सम्भवतः समस्त विश्व-याचना सनाथ हो सकती थी।" [1] भारतेन्दु जी के पत्रों में उनका कलात्मक व्यक्तित्व स्पष्ट रूप से झलकता है।

(क) जीवनी-सूत्र :

भारतेन्दु जी के पत्रों में हमें उनके जीवन के अनेक प्रसंगों का रोचक वर्णन प्राप्त होता है। कुछ महत्वपूर्ण प्रसंगों की यहां हम झांकी प्रस्तुत करते हैं।

(i) उत्तर भारत की यात्रा :

जैसा कि हम पहले बतला चुके हैं, सन् १८५७ के स्वतंत्रता-संग्राम में भारतीयों की हार के बाद अंग्रेजों की सत्ता यहां अच्छी तरह स्थापित हो गयी थी। इस व्यवस्था का एक प्रतीक था, यातायात के नये साधन। भारतेन्दु जी उन साहित्यिकों तथा विचारकों में अग्रतम थे जिन्होंने यातायात के नये साधनों का लाभ उठाया। वे सन् १८७१ ई. के आरम्भ में उत्तर भारत की यात्रा पर निकले। इस यात्रा में उन्होंने कई रोचक पत्र लिखे। उनके यात्रा-वृत्त से सम्बंधित कुछ पत्र छद्म नाम से "कविवचनसुधा" में भी प्रकाशित हुए हैं। उक्त पत्रिका में "सम्पादक के नाम पत्र" शीर्षक के अंतर्गत प्रकाशित पत्र वस्तुतः भारतेन्दु जी द्वारा ही लिखे गये थे। इस विषय में डा. ब्रजकिशोर पाठक का यह मत उद्धरणीय है कि—"कविवचन-सुधा" के सम्पादक के पास उक्त पत्र छद्म नाम से भेजने का अर्थ यही है कि उसके लेखक भारतेन्दु थे, चूंकि उक्त पत्रिका के सम्पादक स्वयं भारतेन्दु थे और अपने ही नाम से अगर वह पत्र प्रकाशित करते तो शैली में विशेषता नहीं आती।"[2] इस प्रकार ये पत्र भारतेन्दु जी की पर्यटन-प्रियता के परिचायक हैं।

---

1. "भारतेन्दु का व्यक्तित्व" (लेख), प्रकाशचंद्र वर्मा, "साहित्य-संदेश", नवम्बर १९५२, पृ. १८३।
2. "भारतेन्दु की गद्यभाषा" (प्र. सं.), पृ. ३३

कुछ भारतीय रजवाड़ों के प्रति भारतेन्दु जी की पूरी श्रद्धा थी। उदयपुर के महाराणा सज्जनसिंह हिंदी प्रेमी थे। वे भारतेन्दु जी के प्रशंसक ही नहीं, उनसे उनका परिचय भी था। सन् १८८२ ई. में उदयपुर की यात्रा के समय भारतेन्दु जी ने उनको एक पद्य-पत्र लिखा था जिसकी प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार थीं:—

"श्रीचरणयुगल सरसीरुहेषु निवेदनम्
कह्यो वृत्त सब ग्राज को, पंडा जू समझाय।
जल पयान सह श्रीचरन, दरसन हेतु उपाय।"[1]

(ii) रुग्णावस्था :

उदयपुर की यात्रा में भारतेन्दु बुरी तरह बीमार पड़ गये। श्वास, खांसी, तथा ज्वर तीनों प्रवल हो उठे। फिर उन्हें हैज़ा भी हो गया। शरीर ऐंठने लगा। बच तो गये, परन्तु शरीर बहुत कमज़ोर हो गया। इसी निराशा की स्थिति में उन्होंने ग्रपने छोटे भाई गोकुलचंद्र को जो पत्र लिख भेजा था, वह उनके जीवन ग्रौर व्यक्तित्व के कई महत्वपूर्ण पहलुग्रों पर प्रकाश डालता है। इस पत्र के कुछ अंश यहां हम उद्धृत करते हैं:—

"विदेश से हम लौटकर न ग्रावें तो इस बात का जो हम यहां लिखते हैं ध्यान रखना। ध्यान क्या ग्रपने पर फर्ज़ समझना। किंतु हम जल्दी जीते जागते फिरेंगे। कोई चिंता नहीं है। सिर्फ संयोग के वश होकर लिखा है। यदि ऐसा हो तो चार बातों का ग्रवश्य ध्यान रखना।

× × ×

दो बात की हमको चिंता है। प्रथम कर्ज, दूसरी मल्लिका की रक्षा। थोड़ी सी डिगरी जो बच गई है, उसको चुका देना। ग्रौर जीवन भर दीन हीन मल्लिका की, जिसको हमने धर्मपूर्वक ग्रपनाया है, रक्षा करना। कृष्ण को ऊंची शिक्षा संस्कृत, अंग्रेजी ग्रौर बंगला की हो। जो ग्रंथ हमारे या बाबूजी के बे-छपे रह जायं, वे छपैं।"[2]

इस पत्र में भारतेन्दु जी का भावुक किंतु कर्तव्यनिष्ठ व्यक्तित्व साकार हो उठा है। कर्ज चुका देने के साथ वे मल्लिका की रक्षा पर भी जोर देते हैं। इससे स्पष्ट होता है कि उनकी रसिकता उत्तरदायित्वहीन एवं स्नेहशून्य भोग-लालसा मात्र न थी। वे ग्रपनी संतति के साथ-साथ मानस-संतति के भविष्य के लिए भी कितने सजग थे, इस बात का प्रमाण भी इस पत्र से मिलता है।

(iii) पारिवारिक सम्बन्ध :

ग्रपने छोटे भाई के नाम लिखे ऊपर के पत्र से पता चलता है कि भारतेन्दु

1. "हरिश्चंद्र" (द्वि. सं. १९७५), बाबू शिवनंदन सहाय, पृ. ५७।
2. "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९७६), मदनगोपाल, पृ. १२८।

का अपने परिजनों से अच्छा सम्बंध था। उक्त पत्र में एक स्थान पर उन्होंने लिखा है कि "यह तुम जानते हो कि तुम्हारी भाभी की हमको कुछ चिंता नहीं क्योंकि तुम्हारे ऐसा देवर जिनका वर्तमान है उसको और क्या चाहिए।"[1] इससे स्पष्ट है कि गोकुलचंद्र के प्रति उनके मन में अपार स्नेह था।

अपने फुफेरे भाई राधाकृष्णदास के साथ भी भारतेन्दु जी का हार्दिक सम्बंध था। वे उनको "बच्चा" के प्यार-भरे नाम से पुकारते थे। "नीलादेवी" नाटक की प्रति भेजने के लिए उन्होंने राधाकृष्णदास को कविता में एक स्नेहपूर्ण पत्र लिखा था। इस पत्र की प्रारम्भिक चार पंक्तियां यहां उद्धृत की जाती हैं :

"अज़ीज अज़ जान मन बच्चा बहादुर।
मेरे दिल के सदफ़ के वे बहादुर॥
बहुत ही जल्द भेजो नीलादेवी।
इसी दम चाहिए इक उसकी कापी॥"[2]

यह पत्र जहां दोनों भाइयों के प्रेमपूर्ण सम्बन्ध पर प्रकाश डालता है, वहां भारतेन्दु जी की पत्र-शैली और उनकी भाषा के रूप को भी प्रकट करता है। इस प्रकार भारतेन्दु जी के पत्रों में उनके जीवन-चरित्र के अनेक सूत्र उपलब्ध होते हैं।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

इष्ट-मित्रों और सगे-सम्बंधियों को लिखे गये निजीपत्रों में लेखक के हृदय का वास्तविक चित्र अंकित होता है। भारतेन्दु जी द्वारा बदरीनारायण चौधरी "प्रेमघन", राधाचरण गोस्वामी आदि मित्रों को लिखे गये पत्रों में उनके चरित्र की अनेक विशेषताओं का उद्घाटन हुआ है।

(i) रसिकता :

भारतेन्दु जी एक रंगीन तबीयत के व्यक्ति थे "चाहिबे की चाह" की अतृप्ति के कारण उनका मन असली या नकली तृप्ति के लिए व्याकुल रहता था। उनके दरबार में चमेली जान आदि वेश्याएं हाजिरी भी देती थीं। वेश्याओं की अंधेरी नगरी में ही उन्हें अपनी कविसुलभ सहृदयता के कारण माधवी-सा माधवी पुष्प प्राप्त हुआ।[3] उन्होंने उसके लिए एक मकान भी मोल लेकर रखा था। वे कई बार वहीं ठहरते भी थे। इस सम्बन्ध में "प्रेमघन" जी के नाम लिखा उनका एक पत्र मिला है। यह एक गोपनीय घटना से सम्बद्ध है। इससे भारतेन्दु जी के चरित्र की स्पष्ट झलक मिलती है, इसलिए उसका प्रारम्भिक अंश यहां हम प्रस्तुत करते हैं:—

---

1. "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९७६), मदनगोपाल, पृ. १२८।
2. "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९६२), व्रजरत्नदास, पृ. २९६।
3. "भारतेन्दु के विचार: एक पुनर्विचार" (१९७७), डा. चन्द्रभानु सोनवणे पृ. ९।

"प्रिय !

एक गुप्त बात हैं। इसमें बड़ी सावधानी से सहायता दीजिएगा। गोवर्धन-दास रोडा उर्फ खरदूसनदास से इन दिनों माधवी से बिगाड़ हो गया है। वह चित्त का ऐसा कुनरी है कि उस बिगाड़ का बदला यों लेना चाहता है कि माधवी की एक किता हुंडी २३००) रु. की जो वास्तव में माधवी के रुपये की है मगर उसके नाम की है उसको हज़म किया चाहता है।............"[1]

इस प्रकार यह पत्र भारतेन्दु जी की रसिकता और "प्रेमघन" जी से उनकी आत्मीयता का द्योतक है। इसी रसिकता के कारण ही भारतेन्दु जी को "चन्द्रिका" अर्थात् मल्लिका से तादात्म्य प्राप्त हुआ था। मल्लिका के प्रति उनके मन में कितना प्रेम था, इसका संकेत हमें गोकुलचन्द्र को प्रेषित उनके पूर्व उद्धृत पत्र में मिलता है। इसके अतिरिक्त मल्लिका द्वारा भारतेन्दु के नाम लिखे गये पत्रों से भी प्रकट होता है कि इन दोनों के बीच अनन्य प्रेम सम्बंध था। ये पत्र "ज्ञानोदय" के पत्र-परिशिष्टांक[2] में प्रकाशित हुए हैं।

(ii) आर्थिक संकट और ऋण :

भारतेन्दु जी एक रसिक, रंगीन और शाह-दिल व्यक्ति थे। अपनी रसिकता और उदारता के कारण अनेक बार वे आर्थिक संकट में फंस जाते थे और ऋण लेने की नौबत आ जाती थी। "प्रेमघन" जी उनके निकटतम सहयोगियों में से थे। अतः उनके पास भेजे गये पत्रों में भारतेन्दु के आर्थिक संकट का विशद विवरण प्राप्त होता है। चैत्र कृष्णा १२ सं १९३३ वि. को लिखे पत्र का यह अंश देखिए:—

"मेरे प्यारे। हाथ थर्राते हैं, लिखा नहीं जाता। आप कृपापूर्वक २००) मुझे उधार दीजिए इसके बदले हमारे जीवन में सबसे बेशक़ीमत चीज़ ईमान को आप रेहन रखिए। ईश्वरेच्छानुकूल है तो २० व ३० दिन ही में मैं लौटा दूंगा। न जाने किस संकट से और क्या सोचकर आपको लिखा है। एक लिखा १००० जानिएगा विलम्ब तनिक मत कीजिएगा। प्राण संकट में हैं। इस मनुष्य से कुछ मत पूछिएगा। मैं छिपा हुआ दुःखी हूँ। बस बहुत नहीं लिख सकता। हाय। यह दिन भी आये। खैर"[3]

इस पत्र में शाहखर्च भारतेन्दु जी का कवि-हृदय मूर्तिमंत हो उठा है।

---

1. "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), परिशिष्ट-२, पृ. १३।
2. देखिए: "भारतेन्दु के नाम मल्लिका की प्रणय-पातियां", प्रस्तुतकर्ता लक्ष्मी-शंकर व्यास, "ज्ञानोदय", दिसम्बर १९६३, पृ. १४५।
3. "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६); परिशिष्ट-२ पृ. १४-१५।

(iii) हिन्दी की उन्नति के लिए सतत चिन्ता :

भारतेन्दु जी हिन्दी की उन्नति के लिए सतत चिंतित रहते थे। वे यह भी चाहते थे कि हिन्दी राजभाषा हो। उन्होंने इसके लिए आंदोलन भी चलाया था। इसी कारण राजा शिवप्रसाद "सितारे हिन्द" से उनका मतभेद हो गया था। राजा साहब शुद्ध हिंदी का विरोध कर उसमें फारसी का मिश्रण कर रहे थे। अपने आंदोलन के लिए भारतेन्दु जी को सरकार के कोप का भाजन भी बनना पड़ा। अपने एक कलकत्ता निवासी मित्र के नाम लिखे पत्र में वे महाराजा कुमार रामदीनसिंह और अपने हिंदी-प्रेम के सम्बंध में लिखते हैं—"............ परंतु ईश्वर का धन्यवाद है कि उसने इतने दिनों के बाद एक सच्चा प्रेमी मिला दिया जो कि हिंदी के लिए बड़े व्यग्र हैं और हिंदी की उन्नति के लिए ठीक मेरी तरह तन, मन, धन श्रीकृष्णार्पण करने को कटिबद्ध हैं।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु जी ने हिन्दी की उन्नति के लिए अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया था। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने उन्हें श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए वहुत उपयुक्त लिखा है :

"कौन कहता है कि कितना काम किया है।
हिन्दी पर सर्वस्व इन्होंने वार दिया है।"[2]

(iv) अध्ययनशीलता और जिज्ञासा :

भारतेन्दुजी एक अध्ययनशील और जिज्ञासु साहित्यकार थे। जिस विषय पर कुछ लिखना चाहते थे, उसका पहले पूरी तरह अध्ययन कर लेते थे और उस विषय के अधिकारी विद्वानों के पास पत्र भेजकर आवश्यक जानकारी एकत्र कर लेते थे। महाप्रभु चैतन्य पर नाटक लिखने से पहले उन्होंने महाप्रभु के जीवन-चरित का गहराई से अध्ययन किया था और इस सम्बन्ध में राधाचरण गोस्वामी से विस्तृत पत्र-व्यवहार भी किया था।[3] इस प्रकार वे एक सच्चे साहित्य-साधक थे।

(ग) दृष्टिकोण :

भारतेन्दु जी पुष्टिमार्गी कृष्णभक्त थे। उन्हें अपने कृष्ण में अनन्य प्रेम था। अपने नये चाल के पत्रों पर उन्होंने जो "सिद्धान्त-वाक्य"—(Motto) छपवाये थे, वे उनकी प्रेम लक्षणा भक्ति के परिचायक हैं। ये सिद्धान्त वाक्य हैं :—

---

1. "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९७६), मदन गोपाल, पृ. १३९।
2. "नागरी प्रचारिणी पत्रिका", भारतेन्दु-जन्मशती अंक, सं. २००७ वि. पृ १।
3. देखिए—"भारतेन्दु ग्रंथावली भाग-३" (सं. २०१० वि.), पृ. ९७३-७४।

१—"यतो धर्मस्ततः कृष्णो यतः कृष्णस्ततो जय ।"

२—"भक्त्या त्वनन्ययालभ्यो हरिरन्यद्विडम्बनम् ।"

३—"Love is heaven and heaven is love."[1]

श्री राधाचरण गोस्वामी के नाम लिखे एक पत्र में उपर्युक्त तीन सिद्धांत-वाक्यों में से अंतिम दोनों वाक्य मुद्रित हैं ।[2]

जहां तक भाषा-नीति का सम्बन्ध है, हम देख चुके हैं कि भारतेन्दु जी का अरबी-फारसी बहुला हिंदी से विरोध था । वे उसकी मूल भारतीय प्रवृत्ति की रक्षा करते हुए उदारतापूर्वक अत्यन्त प्रचलित अरबी-फारसी शब्दों को ही नहीं, अंग्रेजी आदि के शब्दों को भी पचा लेने के पक्ष में थे । वे राष्ट्रीय दृष्टिकोण से सोचते और लिखते थे ।

जिस प्रकार भारतेन्दु जी के व्यक्तित्व में कहीं कृत्रिमता नहीं है, उसी प्रकार उनकी पत्र-शैली में भी कहीं कृत्रिमता नहीं है । हां, कथ्य के अनुरूप कथन के ढंग में अन्तर अवश्य मिलता है । जैसे, छोटे भाई गोकुलचन्द्र को लिखे पत्र और फुफेरे भाई राधाकृष्णदास को लिखे पत्र की शैलियां भिन्न-भिन्न हैं । एक मृत्यु की निकटता का अनुभव करते हुए लिखा गया है और दूसरा हर्षोल्लास में । इसी प्रकार "प्रेमघन" जी के नाम लिखे गये पत्रों में आत्मीयता एवं मैत्री-भावना की स्पष्ट झलक मिलती है । "प्रेमघन" जी भारतेन्दु जी के इतने निकट थे कि पत्रों में उनके प्रति अभिवादन की भारतेन्दु जी ने आवश्यकता ही नहीं समझी है । उनके प्रति पत्रों में प्रयुक्त सम्बोधन—जैसे, "प्रिय", "मित्रवर", "प्रिय-मित्रवर" आदि—संक्षिप्त और आपसी सम्बन्ध के अनुरूप हैं । इसके विपरीत राधाचरण गोस्वामी को वे आदर भाव की दृष्टि से देखते थे । एक पत्र में उन्होंने लिखा भी है— "अलौकिक और लौकिक दोनों सम्बन्ध से हमारे आप पूज्य हैं ।"[3] अतः उनको लिखे गये पत्रों में "महोदयेषु", "प्रिय पूज्य चरणेषु" आदि सम्बोधनों के साथ अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत् "प्रणाम" आदि अभिवादन के शब्द भी मिलते हैं । इससे प्रकट होता है कि भारतेन्दु जी अपने पत्रों में शिष्टाचार का भी पूरा ध्यान रखते थे । संक्षेप में उनकी पत्र-शैली उनकी प्रतिभा की प्रतीक है । यद्यपि उनके पत्र अभी इधर-उधर बिखरे ही पड़े हैं, तथापि उनमें हिंदी साहित्य की मूल्यवान सामग्री उपलब्ध होती है । इन पत्रों को एकत्र कर उनके सुव्यवस्थित प्रकाशन से हिंदी साहित्य के इतिहास की अनेक घटनाओं की प्रामाणिक जानकारी प्राप्त होगी । और हिंदी के इस महान् सपूत की एक स्थायी स्मृति भी कायम होगी । उनके पत्रों के स्वतंत्र संकलन से सचमुच ही "प्यारे हरिश्चन्द्र की कहानी रह जायेगी ।"

---

1. "प्रशस्ति-संग्रह", भारतकला भवन, काशी में सुरक्षित टंकित प्रति, पृ. ८ ।
2. "भारतेन्दु-ग्रंथावली भाग-३", पृ. ९७२ ।
3. "भारतेन्दु ग्रंथावली भाग-३", पृ. ९७३ ।

२. महावीरप्रसाद द्विवेदी (१८६४-१९३८) :

पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रथम आचार्य थे। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने साहित्य का जो पौधा लगाया, उसे पल्लवित-पुष्पित करने का श्रेय आचार्य द्विवेदी को ही है । डा. रामचंद्रप्रसाद के शब्दों में "वस्तुत: द्विवेदीजी हिन्दी-साहित्य के वैसे ही शहीद थे, जैसे भारतेन्दु । इन दोनों ने रात-रात एक कर साहित्य की अथक सेवा की और इसकी इमारत को एक ऐसी सुदृढ़ पीठिका पर कायम करना चाहा, जो युग-युग तक अक्षुण्ण रहे।"[1] आचार्य द्विवेदी की इस अनवरत सेवा-साधना को लक्षित कर श्री रूपनारायण पाण्डेय ने उनको "ऋषि दधीचि" कहा है।[2] पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के मतानुसार "वे एक महा-पुरुष ही नहीं, महामानव भी थे।"[3] इस प्रकार आचार्य द्विवेदी एक युग-विधायक विभूति थे।

(अ) द्विवेदी जी का पत्र-साहित्य :

भारतेन्दु हरिश्चंद्र के समान आचार्य द्विवेदी भी पत्राचार के प्रति अत्यन्त सजग थे, यद्यपि उन्होंने पत्रों की बाहरी सजावट पर ध्यान नहीं दिया है। यहां तक कि पत्र-लेखन के लिए उन्हें पैड की कभी आवश्यकता ही नहीं प्रतीत हुई, साधारण कागद पर ही वे पत्र लिखा करते थे।[4] वे प्रायः सभी पत्रों का उत्तर स्वयं हाथ से लिखकर ही दिया करते थे। "सरस्वती" से अवकाश ग्रहण करने के बाद उनका स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता था, आंखें कमज़ोर हो गयीं थीं, फिर भी छोटे-बड़े सभी लोगों के पत्रों का उत्तर देने के लिए वे तत्पर रहते थे। "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" के "पौराणिकी"[5] स्तम्भ के अंतर्गत उनको लिखे हुए विभिन्न साहित्यिकों के जो पत्र प्रकाशित हुए हैं, उन्हें देखने से ज्ञात होता है कि वे सभी पत्रों पर नोट और तारीख़ सहित हस्ताक्षर करते थे। उत्तरित पत्रों पर वे, "रिप्लाइड" लिखकर सुरक्षित रखते थे। इस प्रकार आचार्य द्विवेदी पत्र-साहित्य के महत्व से भली भांति परिचित थे।

हिन्दी साहित्यकारों में सर्वप्रथम आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के ही पत्र पुस्तकाकार प्रकाशित हुए हैं। श्री बैजनाथसिंह "विनोद" द्वारा सम्पादित "द्विवेदी-पत्रावली" में पं. श्रीधर पाठक, बाबू राधाकृष्णदास, पं. पद्मसिंह शर्मा, श्री मैथिलीशरण गुप्त आदि साहित्यकारों के नाम लिखे आचार्य द्विवेदी के १८३ पत्र संकलित हैं। श्री "विनोद" द्वारा सम्पादित "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ

---

1. "आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व" (१९७७), डा. शैव्या झा. भूमिका ।
2. "आचार्य द्विवेदी" (१९६४), संपादिका निर्मल तालवार, श्रद्धांजलियां ।
3. "रेखाचित्र" (१९५२), पृ. १२ ।
4. "महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग" (१९५१), डा.उदयभानुसिंह, पृ. ५६ ।
5. देखिए : "नागरी प्रचारिणी पत्रिका" वर्ष ६९, अंक-१,२,३,४ ।

पत्र'' शीर्षक संग्रह में आचार्य द्विवेदी के कुल मिलाकर १०१ पत्रों का संकलन है जिनमें ४८ पत्र पं. जनार्दन झा 'जनसीदन'' के नाम, २० ज्वालादत्त शर्मा के नाम, ८ कामताप्रसाद गुरु के नाम, १० बाबू श्यामसुन्दरदास के नाम, ७ पं. बलदेवप्रसाद मिश्र के नाम, ३ श्री राम शर्मा के नाम, ३ श्री हरिभाऊ उपाध्याय के नाम, १ भारतीय आत्मा के नाम और १ पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम है। आचार्य जी द्वारा महाकवि ''निराला'' के नाम लिखे गये ६ पत्र ''निराला की साहित्य-साधना भाग-२'' में प्रकाशित हैं। इसके अतिरिक्त पं. किशोरीदास वाजपेयी लिखित ''आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी'' तथा निर्मल तालवार द्वारा सम्पादित ''आचार्य द्विवेदी'' शीर्षक पुस्तकों में भी आचार्य जी के अनेक महत्वपूर्ण पत्र प्राप्त होते हैं।

पत्र-पत्रिकाओं के विशेषांकों तथा सामान्य अंकों में भी आचार्य द्विवेदी के कई अनमोल पत्र बिखरे पड़े हैं। पं. पद्मसिंह शर्मा के नाम लिखे उनके सैकड़ों पत्र ''भारतीय साहित्य'' के पुराने अंकों में देखने को मिलते हैं। ''भाषा'' के द्विवेदी स्मृति-अंक में उनका मूल्यवान पत्र-साहित्य सन्दर्भ प्रकाशित हुआ है। पं. श्रीधर पाठक के साथ हुआ उनका विस्तृत पत्र-व्यवहार ''सम्मेलन पत्रिका'' के भाग-५५ (पौष-ज्येष्ठ १८९१) में देखा जा सकता है। इस प्रकार आचार्य द्विवेदी का पत्र-साहित्य बहुत विशाल है। श्री परमात्माशरण बंसल ने उनके पत्र-साहित्य को काल-क्रम की दृष्टि से मुख्य तीन भागों में विभक्त किया है:—(१) १९०३ ई. से पूर्व, (२) १९०३ ई. से १९२० ई. तक (सरस्वती सम्पादन) और (३) १९२० ई. के पश्चात्।[1] इन तीनों भागों में सरस्वती-सम्पादन-काल में लिखे गये पत्र विशेष महत्वपूर्ण हैं। इन पत्रों से उनके जीवन के अनेक पक्ष सामने आते हैं।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित द्विवेदी जी का व्यक्तित्व :

पं. महावीरप्रसाद द्विवेदी के आचार्यत्व की गरिमा से युक्त और विशद व्यक्तित्व का वास्तविक परिचय हमें उनके पत्रों में ही मिलता है। उनके जीवन के अनेक पक्षों का उद्घाटन भी पत्रों में हुआ है।

(क) जीवनी-सूत्र :

आचार्य द्विवेदी के पत्रों में अनेक स्थलों पर उनकी जीवन-रेखाएं उभर कर सामने आती हैं। कुछ रेखाओं पर यहां संक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है।

(i) रेलवे की नौकरी :

आचार्य द्विवेदी ने श्रीराम शर्मा के नाम लिखे अपने ४-९-१९३२ के पत्र में अपने पूर्व-व्यवसाय रेलवे की नौकरी का विवरण लिख भेजा है। उन्होंने लिखा है ''मैं रेलवे में १५०) तनख्वाह ५०) अलौंस = २००) पाता था। एक मेरे साहब

1. ''साहित्य वाचस्पति का पत्र-साहित्य'' (लेख), ''भाषा'' १९६४, पृ. १५१।

ने मुझसे अपने मातहत क्लर्कों पर जुल्म करवाना चाहा । मैंने इनकार कर दिया । वह बोला-तुम्हारी जगह पर दूसरा आदमी रखूंगा । मैंने तत्क्षण ही इस्तीफा लिखकर उसकी मेज पर फेंक दिया और घर चला आया । फिर मनाने-पथाने पर भी इस्तीफा वापस न लिया ।"[1]

इस पत्र में हमें आचार्य द्विवेदी के सत्यनिष्ठ और स्वाभिमानी व्यक्तित्व का परिचय मिलता है । रेलवे की नौकरी से त्याग पत्र देने की यह घटना हिन्दी के इतिहास में सदा को स्मरणीय और अमर हो गयी है ।

(ii) सरस्वती का सम्पादन :

रेलवे की नौकरी से त्यागपत्र देने के बाद सन् १९०३ ई. में आचार्य द्विवेदी ने "सरस्वती" पत्रिका का सम्पादन-भार ग्रहण किया । उस समय उन्हें इण्डियन प्रेस की ओर से अधिक पैसे नहीं मिलते थे । "सरस्वती" के ग्राहकों की संख्या भी सीमित थी । आचार्य द्विवेदी जी की सम्पादन-कला से "सरस्वती" का अंग-अंग निखरने लगा और ग्राहकों की संख्या भी बढ़ने लगी । पं. जनार्दन झा को लिखे दिनांक २०-९-१९०४ के पत्र में आचार्य द्विवेदी जी ने सूचित किया है कि......
"जब हमने "सरस्वती" का अधिकार अपने हाथों में लिया था तब उसकी दशा हीन-बहुत ही हीन थी । पर अब यह बात नहीं । अब उसका प्रचार तब से करीब-करीब दूना हो गया है ।"[2]

इस पत्र से स्पष्ट हो जाता है कि एक वर्ष में ही द्विवेदीजी के कुशल सम्पादकत्व में "सरस्वती" की काया पलट गयी । पं. पद्मसिंह शर्मा के नाम लिखे आचार्य द्विवेदी जी के १०-१०-१९०६ के पत्र से ज्ञात होता है कि उस समय "सरस्वती" के ग्राहकों की संख्या १५०० तक पहुँच गयी थी ।[3] परिश्रम की अधिकता ने उनके स्वास्थ्य पर पर्याप्त बुरा प्रभाव डाला । उसी अस्वस्थता के कारण उन्हें सन् १९१० ई. में पूरे एक वर्ष की छुट्टी "सरस्वती" से लेनी पड़ी ।[4] सत्रह वर्ष तक वे "सरस्वती" की पूरे प्राणपण से सेवा करते रहे । इस महान् सेवा-साधना के कारण सन् १९०३ से १९२० तक के काल-खण्ड को हिन्दी साहित्य के इतिहास में "द्विवेदी-युग" कहा जाता है ।

(iii) पारिवारिक स्थिति :

आचार्य द्विवेदी का निजी पारिवारिक जीवन सुखी नहीं था । उनकी पत्नी विशेष सुन्दर नहीं थीं और हिस्टीरिया की मरीज़ थीं, फिर भी उन्हें अपनी पत्नी से बड़ा प्रेम था । परन्तु दुर्भाग्य से उनके कोई संतान नहीं हुई । उन्होंने अपने

---

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के पत्र" (१९५८), पृ. ६४ ।
2. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १२ ।
3. "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह", "भारतीय साहित्य," जुलाई १९६१, पृ. १८० ।
4. —वही—, पृ. १९१ ।

पत्रों में प्रसंगवश कई स्थानों पर अपने पारिवारिक जीवन का संकेत किया है। २४-९-१९०३ के पत्र में पं. जनार्दन झा को लिखते हैं :

',हम अपने वंश में कूलद्रुम हो रहे हैं। वृद्धा माता और स्त्री के सिवाय हमारा और निकट सम्बन्धी अथवा कुटुम्बी नहीं है ।"[1]

परिवार की इस अभावात्मक स्थिति से ऊबकर उन्होंने श्री कमलकिशोर त्रिपाठी को अपना कल्पित भांजा बनाया। परन्तु इससे भी उन्हें सुख-शांति का अनुभव नहीं हुआ। मैथिलीशरण गुप्त के नाम लिखे २५-५-१९१५ के पत्र में वे अपने कौटुम्बिक जीवन की दशा का वर्णन इन शब्दों में करते हैं:—

"मैंने अपना हाल अपको नहीं लिखा। मेरा कौटुम्बिक जीवन विषमय हो रहा है। मेरे शरीर की रक्षा करनेवाला कोई नहीं। जिनको मैंने अपना कुटुम्बी बनाया है, वे मुझे फलवान् वृक्ष समझकर डंडों और ईंटों की मार से शीघ्र ही कच्चे, पक्के फल गिराकर हड़प जाना चाहते हैं।"[2]

इस प्रकार माता और पत्नी की मृत्यु के बाद द्विवेदी जी का पारिवारिक जीवन अत्यन्त कष्टदायक बन गया था। वे परिवार में एक अजनबी की भांति जीवन व्यतीत करते थे। पं. किशोरीदास वाजपेयी को २२-८-१९३३ के पत्र में वे लिखते हैं:—"अपना निज का कोई नहीं, दूर-दूर की चिड़ियां जमा हुई हैं। खूब चुगती हैं। पुरस्कार स्वरूप दिन-रात पीड़ित किये रहती हैं।"[3] ये शब्द कितने हृदयद्रावक हैं।

(iv) कष्ट और यातनाएं :

जैसा कि हम कह चुके हैं, सन् १९१० ई. में अस्वस्थता के कारण आचार्य द्विवेदी को पूरे एक वर्ष तक की छुट्टी "सरस्वती" से लेनी पड़ी थी। रात को देर तक उन्हें नींद नहीं आती थी। इसी वर्ष उनकी मां का देहावसान भी हुआ।[4] इसके दो ही वर्ष बाद उनकी पत्नी भी संसार से चल बसी। अपनी पत्नी के वियोग में वे कितने दुःखी थे, वह बात पं. पद्मसिंह शर्मा को प्रेषित १३-७-१९१२ के निम्नांकित पत्र से स्पष्ट प्रमाणित होती है—

"प्रणाम। कार्ड मिला। क्या लिखूं? यहां भी बुरा है। पत्नी मेरी इस संसार से कूच कर गई। मै चाहता हूं कि मेरी भी जल्दी बारी आवे।"[5]

बाबू बालमुकुन्द गुप्त, बी.एन. शर्मा आदि से हुए विवादों के कारण भी उन्हें काफी कष्ट पहुंचा। अपने जीवन के अंतिम वर्षों में उन्हें अनेक यातनाएं

1. "द्विवेद-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ७।
2. "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ. १३३।
3. "आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी" (१९६५), पृ. १६-१७।
4. पं. पद्मसिंह शर्मा को लिखित पत्र, "भारतीय साहित्य", जुलाई १९६१, पृ. १९६, "दो नवम्बर को अम्मा का देहांत हो गया।"
5. "सरस्वती", नवम्बर १९४०।

उठानी पड़ीं । पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम अपने २२-१०-१९२८ के पत्र में उन्होंने लिखा है—"............बहुत दूर के रिश्ते में मेरी एक भानजी है । वही यहां रह गई है । वही मुझे जिला रही है । छटांक भर गेहूं का दलिया, थोड़ी सी तरकारी (फल यहां मिलते नहीं) और सेर भर दूध, बस यही मेरी ख़ुराक २४ घण्टे में है ।"[1] ९ मार्च १९३५ को पं. बलदेवप्रसाद मिश्र के नाम प्रेषित पत्र में वे लिखते हैं:—

"मैं बहुत बूढ़ा हुआ । ७२ वर्ष का होने को आया पर स्वागत के लिए मेरी तैयारी देखकर भी मेरा महाप्रस्थान अब भी दूर ही मालूम होता है । हाथ पैर बहुत ही कम काम करते हैं । बाईं आंख बेकार-सी हो रही है, उस पर मोतिया बिन्द ने चढ़ाई बोल दी है ·········रायगढ़ के राजा साहब की कल्याण कामना करने और उनके खाते में जमा होने के लिए राम नाम जपने वाले कुछ ऐसे भी अपाहिज हैं जिनके नाम आपके दफ्तर की किसी फर्द या रजिस्टर में दर्ज हों और जिनको उनके इस काम के एवज में कुछ मासिक वृत्ति मिलती हो । यदि हों और उनमें एक-आध और भी नाम लिखे जाने की गुंजाइश हो तो मुझ प्रार्थी का भी नाम दर्ज कर दीजिए ।"[2]

यह पत्र नहीं, किन्तु परम मार्मिक काव्य है । इससे स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी को अंतिम वर्षों में अनेक यातनाएं उठानी पड़ी थीं ।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

आचार्य द्विवेदी एक ईमानदार पत्र-लेखक थे । वे अपने मनोभावों को बड़ी सादगी और साहजिकता से काग़ज़ पर रख देते थे । अतः उनके पत्रों में उनके चरित्र की सभी विशेषताएं मूर्तिमन्त हो उठी हैं ।

(i) स्वाभिमान :

द्विवेदी जी बड़े स्वाभिमानी पुरुष थे । आत्म-गौरव उनमें कूट-कूट कर भरा था । हम देख चुके हैं कि आत्म-गौरव की रक्षा के लिए ही उन्होंने दो सौ रुपये की मासिक आय ठुकराकर "सरस्वती" के तेईस रुपये की मासिक वृत्ति स्वीकार कर ली । नागरी प्रचारिणी सभा से एक बार जब उनका सैद्धांतिक मतभेद हुआ तब बहुत समय तक उन्होंने सभा-भवन में पैर नहीं रखे । इस सम्बन्ध में राय कृष्णदास जी के नाम लिखे उनके २-१०-१९१० के पत्र का यह अंश द्रष्टव्य है:—

"जिस सभा ने मुझे सभा से हटाने की कोशिश की और जिसके मैंने इतने दोष दिखलाये, उससे मैं अब सम्पर्क नहीं रखना चाहता । यह मेरी कैफ़ियत आपके जानने के लिए है, प्रकाशित करने के लिए नहीं ।"[3]

---

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ७२ ।
2. "द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ५६ ।
3. "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ. १४१ ।

इसी प्रकार बी. एन. शर्मा की हरकतों के विषय में उन्होंने पं. पद्मसिंह शर्मा को लिखा था कि "बी. एन. की मनमथ शब्द वाली बात हमारे चरित्र पर धब्बा लगाने वाली है, इसी से कुछ करना होगा। हमारा पक्का इरादा इन पर मुकद्दमा चलाने का है।"[1] इस प्रकार द्विवेदी जी आत्म-सम्मानी व्यक्ति थे।

(ii) निर्भीकता एवं स्पष्टवादिता :

आचार्य द्विवेदी एक निर्भीक और स्पष्टवक्ता लेखक थे। दबना उनकी प्रकृति में नहीं था। पं. पद्मसिंह शर्मा के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा था : "एक बात लिखना उस तरफ भूल गये। हम कवियों क्या महाकवियों तक की नाराजी की परवा नहीं करते।"[2] इसी प्रकार राष्ट्र कवि मैथिलीशरण गुप्त के "साकेत" पर अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में कह दिया था :

"तुलसी की कविता से आपको अपनी कविता की तुलना करना शोभा नहीं देता।"[3]

"द्विवेदी जी की इस स्पष्टवादिता ने लोगों के मन में यह धारणा उत्पन्न कर दी थी कि उनमें अकड़ एवं अहम्मन्यता है। परन्तु वस्तु-स्थिति ऐसी नहीं थी। वे बड़े सरल हृदय के थे और सच्ची और स्पष्ट बात कहते थे।

द्विवेदी जी के उपर्युक्त पत्र से गुप्त जी तिलमिला उठे थे। उन्होंने २८ जनवरी १९३२ के पत्र में लिखा—"आज पच्चीस वर्ष से ऊपर हुए मैं आपकी छत्र-छाया में हूँ। यह बात औरों के कहने के लिए रहने दीजिए।............मैंने अपनी ध्यान-समाधि में जैसा देखा वैसा लिखा।"[4] इस पर द्विवेदी जी ने उत्तर दिया—"आपने मुझ से राय मांगी, मुझे जो कुछ उचित समझ पड़ा, लिखकर मैंने आपकी इच्छा की पूर्ति कर दी।........ ध्यान-समाधि लगाकर पुस्तक लिखनेवालों को मेरे और बनारसीदास जैसे मनुष्यों की राय की परवा ही क्यों करनी चाहिए? वे अपनी राह जायं, आप अपनी। आपकी राय ठीक, मेरी और बनारसीदास की गलत सही-तुष्यतु भवान्।"[5]

द्विवेदी जी के इस पत्र से गुप्तजी को अपनी भूल का अहसास हुआ और उन्होंने द्विवेदी जी से क्षमा याचना की। इस प्रकार द्विवेदी जी की उग्रता के मूल में दुर्भावना नहीं होती थी।

---

1. "भारतीय साहित्य", जुलाई-अक्टूबर १९६२, पृ. १६३।
2. "भारतीय साहित्य," अप्रैल १९६२, पृ. १५७।
3. "महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग" (सं २००८ वि.) डा. उदयभानु सिंह, पृ. ४५ से उद्धृत।
4. —वही—
5. —वही—

आचार्य द्विवेदी के चरित्र की उक्त विशेषताओं के सम्बन्ध में डा. शैव्या झा का यह मत उद्धरणीय है कि— "यदि आचार्य द्विवेदी में निर्भयता, आत्मगौरव और उग्रता की ये स्वभावगत विशेषताएं न होतीं, तो वे अपने समसामयिक साहित्यकारों को डांट—फटकार कर हिंदी-भाषा और उसके साहित्य को एक नया मोड़ देने में समर्थ नहीं होते।"[1]

(iii) नम्रता एव सरलता :

आचार्य द्विवेदी जितने स्वाभिमानी और उग्र प्रकृति के थे, उतने ही नम्र और सरल थे। एक बार पं. जनार्दन झा ने उनको पत्र लिखकर "सरस्वती" में रह गयी भूलों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया था। इस पत्र का उत्तर देते हुए आचार्य जी ने लिखा— "हमारे सदृश अल्पज्ञों से यदि भूलें हों तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।"[2] इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त की रामायण-विषयक जानकारी की सराहना करते हुए उन्होंने लिखा था— "मेरी राय है कि आप इस विषय में मुझसे अधिक ज्ञान रखते हैं।"[3]

अपने सरल स्वभाव के बारे में द्विवेदी जी ने पं. पद्मसिंह शर्मा को लिखा था— "हम सरल हृदय मनुष्य हैं। दाँव-पेंच की बात हम नहीं जानते।"[4]

इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी विनम्र, गुणग्राही, क्षमाशील और सरल हृदय व्यक्ति थे।

(iv) भावुकता एवं आस्तिकता :

द्विवेदी सरलता, नम्रता, भावुकता और आस्तिकता के अवतार थे। वी. एन. शर्मा के आरोपों से वे उत्तेजित हो उठते थे, अतः पं. पद्मसिंह शर्मा को एक पत्र में उन्होंने अपनी भावना प्रकट करते हुए लिखा था—"यदि बी. एन. आगे कुछ और लिखें तो उसके लेख की कटिंग हमें न भेजिएगा। पढ़ने से तबीअत उत्तेजित हो उठती है।"[5] इसी प्रकार डा. बलदेवप्रसाद मिश्र को अपनी श्रद्धा-भक्ति का परिचय देते हुए एक पत्र में उन्होंने कहा कि—"भैया, मिश्रजी, मैं रामायण का भक्त हूँ। रोज सुबह उठकर कहता हूँ—"मो सम दीन न, दीनहित, तुम समान रघुवीर।"[6]

(v) कर्तव्यपरायणता एवं दानशीलता :

आचार्य द्विवेदी प्रत्येक कार्य को उत्साह, लगन और निष्ठा से अपनाते थे।

---

1. "आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी: व्यक्तित्व और कर्तृत्व" (१९६७), पृ. ४१
2. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. २।
3. "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), १३४।
4. "भारतीय साहित्य", जुलाई १९६१, पृ. १८८।
5. "भारतीय साहित्य", जनवरी १९६२, पृ. १०९।
6. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ६०।

पं. पद्मसिंह शर्मा के नाम प्रेषित उनके एक पत्र में हमें एक सूक्ति मिलती है कि—"अवकाश आलसी आदमियों को ही रहा करता है।[1] वे हमेशा कार्यरत रहते थे। "सरस्वती" से अवकाश ग्रहण करने के बाद जब वे अपने गांव दौलतपुर में रहने लगे, तब अपने गांव के प्रति उनकी कर्तव्यपरायणता और बढ़ गयी। अपने गांव में उन्होंने हिन्दी पाठशाला, डाकघर और एक अस्पताल का प्रबन्ध किया। इस सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी हमें "द्विवेदी-पत्रावली" में संकलित "विविध पत्र" से मिलती है। उन्होंने अपनी गाढ़ी कमाई के ६४०० रु. काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय को दान कर दिये। इस प्रकार वे एक कर्मठ और दानवीर पुरुष थे।

(vi) प्रतिभा की परख :

आचार्य द्विवेदी न केवल प्रतिभा के धनी ही थे, वरन् औरों की प्रतिभा को परखने की अन्तर्दृष्टि भी उनमें थी। दूसरे शब्दों में, वे एक सबल साहित्यकार ही नहीं थे, एक सफल साहित्यकार-निर्माता भी थे। अपने समय की १७ वर्ष की "सरस्वती" की हस्तलिखित कापियां नागरी प्रचारिणी सभा को सौंपने की इच्छा प्रकट करते हुए उन्होंने बाबू श्याम सुन्दरदास को एक पत्र में लिखा है—"उनको देखने से पता लगेगा कि आज-कल के हिन्दी के अनेक धुरंधर लेखक किस तरह राह पर लाये गये थे।"[2] इस विषय में आचार्य किशोरीदास वाजपेयी ने बहुत उपयुक्त कहा है—"आचार्य-द्विवेदी ने साहित्य कम, साहित्यिक अधिक पैदा किये। इस युग के बड़े-से-बड़े लेखक, महाकवि उन्हीं के बनाये हैं।"[3] इस प्रकार द्विवेदी जी होनहार साहित्य-सेवियों को हर सम्भव प्रोत्साहन देते थे और उनकी प्रतिभा भली भांति परखते थे।

आचार्य द्विवेदी के चरित्र की उपर्युक्त विशेषताओं के अध्ययन से विदित होता है कि उनके चरित्र में मिठास और तिक्तता, करुणा और कठोरता, दया और रोष, भावुकता और यथार्थ का एक अभूतपूर्व मेल था। पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उनके चरित्र की इन विशेषताओं को लक्षित कर सर्वथा योग्य लिखा है—"द्विवेदी जी सचमुच "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" चरित्र वाले लोकोत्तर पुरुष थे।"[4]

(ग) दृष्टिकोण :

आचार्य द्विवेदी गरीब घर में पैदा हुए थे, गरीबी में पले थे और कठोर संघर्ष करके आगे बढ़े थे। अतः धनी बनना, धन बटोर कर, धन के बल पर अथवा पद के बल पर बड़ा आदमी बनना उनका आदर्श नहीं था। सत्य को स्पष्ट

1. भा. सा. जुलाई-अक्टूबर ९९६२ पृ. १५७।
2. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र, पृ. ४८।
3. "साहित्यिकों के पत्र" (१९५८), पृ. २।
4. "हिन्दी का सामयिक साहित्य" (सं. २००८ वि.) पृ. २५।

रूप में कहने की अटूट दृढ़ता उनके व्यक्तित्व का सबसे बड़ा गुण था। इसी कारण उनसे प्रायः लोगों की लड़ाइयां हो जाया करती थीं किन्तु लड़ाइयों में भी वे संयम रखते थे। उनके वाद-प्रतिवाद का धरातल ऊंचा होता था। भाषा और व्याकरण के मामले को लेकर बाबू बालमुकुन्द गुप्त से उनका प्रखर संघर्ष हो गया था। इस विवाद के अनेक सन्दर्भ-सूत्र उनके पत्र-साहित्य में उपलब्ध होते हैं जिनसे पता चलता है कि उनके विवादों में भी व्यापक दृष्टि और सिद्धांत की गम्भीरता होती थी। सत्य-प्रियता, न्याय-निष्ठा, स्पष्टवादिता और हिन्दी हितैषिता से हटकर उन्होंने विवाद किया ही नहीं।[1]

द्विवेदी जी के पत्रों में हमें उनके काव्य-सिद्धांत विषयक दृष्टिकोण का विशद परिचय मिलता है। डा. बलदेव प्रसाद मिश्र को प्रेषित एक लम्बे पत्र में उन्होंने उत्तम, मध्यम और अधम काव्य के विषय में अपनी मान्यताओं को सोदाहरण स्पष्ट किया है। उत्तम काव्य की --व्याख्या करते हुए उन्होंने लिखा है :—

"मनुष्य का हृदय नाना प्रकार के विकारों का आकार है। यही विकार भाव भी कहे जा सकते हैं। ये प्रस्तुत रहते हैं। अनुकूल सामग्री उपस्थित होने पर ये उद्दीप्त हो जाते, जाग उठते हैं। जिस कविता के आकलन से इनकी उद्दीप्ति होती है, वही उत्तम काव्य है।"[2]

इसी प्रकार मैथिलीशरण गुप्त को लिखे २२-५-१९१० के पत्र में अमर कविता का लक्षण उन्होंने इन शब्दों में प्रकट किया है—"काव्य ऐसा होना चाहिए जो सबके मनोविकारों को उत्तेजित करे—देशकाल से मर्यादाबद्ध न हो, ऐसी ही कविता अमर होती है।"[3]

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि द्विवेदी जी युग-युगीन साहित्य के सृजन में आस्था रखते थे।

आचार्य द्विवेदी के पत्र-साहित्य में उनका व्यक्तित्व पूर्णतः प्रतिबिम्बित होता है। सहज सत्य की अभिव्यक्ति उनके पत्रों का सबसे बड़ा आकर्षण है। उनसे पत्र-व्यवहार करने में साहित्यिकों को बड़ा आनन्द आता था। बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने "भाषा की अनस्थिरता" विवाद से पहले उनके अनेक पत्र पाये हैं। अपने १३-१२-१९०० के पत्र में वे द्विवेदी जी को लिखते हैं—"आपसे पत्र-व्यवहार करने में हमको बड़ा आनन्द होता है, सत्य जानिए।"[4]

पं. पद्मसिंह शर्मा स्वयं एक श्रेष्ठ पत्र-लेखक थे, किन्तु उन्हें भी आचार्य द्विवेदी के पत्रों से अपूर्व आनन्द प्राप्त होता था। द्विवेदी जी के नाम प्रेषित अपने

1. "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ. २८।
2. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ६०।
3. "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ. ११४।
4. "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रंथ" (१९५०), पृ. १२४।

२३-९-१९०७ के पत्र में उन्होंने लिखा है—"........इन झंझटों में पड़कर जहां अन्य हानियां उठानी पड़ीं, वहां सबसे अधिक कष्ट यह प्रतीत हुआ कि आपसे पत्र व्यवहार बन्द रहा, जिससे दिल बहला करता था।"[1]

इससे स्पष्ट है कि द्विवेदी जी एक उच्च कोटि के पत्र-लेखक थे। उनके पत्र-साहित्य के अध्ययन के बिना उनके लोकोत्तर चरित्र का अध्ययन अपूर्ण होगा।

3. पद्मसिंह शर्मा (१८७६-१९३२) :

आचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा हिन्दी साहित्य के एक जाज्वल्यमान् नक्षत्र थे। वे एक काव्य मर्मज्ञ, निष्पक्ष समालोचक, सत्काव्यानुरागी अत्युच्च साहित्यकार थे। उनकी साहित्यिक तन्मयता के विषय में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने कहा है— "अपने विस्तृत साहित्यिक जीवन में हमें कोई ऐसा दूसरा व्यक्ति नहीं मिला, जिसमें साहित्यिक तन्मयता इतनी अधिक मात्रा में विद्यमान हो। आचार्य की तरह के विद्वान् तथा समीक्षक तो सम्भवत: कई होंगे, पर साहित्य के लिए अपना सम्पूर्ण समय, शक्ति तथा साधनों को अर्पित करनेवाला शायद ही कोई दूसरा हो।"[2] इस प्रकार पं. पद्मसिंह शर्मा एक महामहिम मनीषी एवं शुद्ध साहित्यिक व्यक्ति थे।

(अ) शर्मा जी का पत्र-साहित्य :

पत्र-लेखन पं. पद्मसिंह शर्मा का प्रिय विषय था। उन्होने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ "पद्मपराग" में एक स्थान पर लिखा है कि— "पत्र व्यवहार का मुझे एक व्यसन रहा है। पत्र लिखते-लिखते ही मैंने कुछ लिखना सीखा है।"[3] वे अपने पत्र-व्यवहार में उतने ही निष्ठावान थे जितने कि साहित्य-सृजन में। आवश्यक पत्रों का यथाशीघ्र उत्तर देना वे अपना कर्तव्य समझते थे। एक बार पं. हरिशंकर शर्मा की ओर से समय पर उत्तर न मिलने पर वे तिलमिला उठे थे। हरिशंकर जी को स्पष्ट शब्दों में उन्होंने लिख दिया था—

"मालूम होता है महात्मा जी की मदहसराई करके अब तुम मामूली आदमियों से बात करना शान के खिलाफ़ समझने लगे हो। ख़त का जवाब भी नहीं देते। २०-२५ दिन हुए एक ज़रूरी कार्ड लिखा था, आज तक जवाब मिलता है। महात्माजी भी लोगों के पत्रों का जवाब देते हैं और वक़्त पर देते हैं। जैसा कि पं. बनारसीदास जी कहते हैं। जो कुछ हो, यह पत्र हजम करने की आदत

---

1. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" पृ. १३८।
2. "आचार्य पद्मसिंह शर्मा : व्यक्ति और साहित्य" (१९७४), संपा. पं. बनारसीदास चतुर्वेदी और अन्य, दो शब्द, पृ. १०।
3. "पत्र व्यवहार—एक मनोरंजक व्यसन" (लेख), पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, "विशाल भारत" सितम्बर १९५१, पृ. १६४ से उद्धृत।

अच्छी नहीं, डकार तक नहीं लेते।"[1]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के समान आचार्य पद्मसिंह शर्मा का पत्र-साहित्य भी विस्तृत और समृद्ध है। पत्रों की सुरक्षा और सम्भाल में भी वे आचार्य द्विवेदी जी की तरह सजग और सतर्क थे। विभिन्न साहित्यिकों द्वारा उनको लिखे गये पत्रों के कई बक्से हिन्दी विद्यापीठ आगरा-विश्वविद्यालय ने अपनी सुरक्षा में लिये हैं। इनमें से कुछ पत्र क्रमश: "भारतीय-साहित्य" में "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह" शीर्षक से प्रकाशित भी हुए हैं।

पं. पद्मसिंह शर्मा के पत्रों का स्वतंत्र संग्रह बनारसीदास चतुर्वेदी और हरिशंकर शर्मा के सम्पादकत्व में "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में हिन्दी के प्रसिद्ध ३२ साहित्यिकों के नाम शर्मा जी के २६८ पत्रों का संकलन है। श्री "विनोद" द्वारा सम्पादित "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" शीर्षक संग्रह में आचार्य द्विवेदी के नाम शर्मा जी के ९१ पत्र, श्री लल्लीप्रसाद पाण्डेय के नाम उनके ४ पत्र तथा श्रीधर पाठक के नाम उनका एक पत्र संकलित हैं। इसके अतिरिक्त पं. बनारसीदास चतुर्वेदी और अन्य विद्वानों द्वारा सम्पादित पद्मसिंह शर्मा स्मृति-ग्रंथ "आचार्य पद्मसिंह शर्मा : व्यक्ति और साहित्य" में भी शर्माजी के पत्र-साहित्य पर विस्तार से विभिन्न लेखों द्वारा प्रकाश डाला गया है। पं. शर्माजी को लिखे गये आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के कुछ पत्र "द्विवेदी-पत्रावली" में संकलित हैं और कुछ "भारतीय साहित्य" के विभिन्न अंकों में प्रकाशित हैं। इन पत्रों के उत्तर "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" में संकलित शर्माजी के ९१ पत्रों में उपलब्ध होते हैं। अत: तीनों को मिलाकर पढ़ने से और अधिक आनन्द मिलता है और हिन्दी साहित्य की अनेक गतिविधियों पर प्रकाश पड़ता है। पं. शर्मा के पत्रों का लेखनकाल सामान्यत: १९०५ से १९३२ है। इस प्रकार उनका पत्र-साहित्य द्विवेदी-युग, छायावाद युग तथा स्वराज्य-आंदोलन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाओं की झलक प्रस्तुत करता है। पत्र-लेखन कला की दृष्टि से भी उनका पत्र-साहित्य अद्वितीय है। उनके बहुमुखी व्यक्तित्व का सही-स्वाभाविक परिचय हमें उनके पत्रों में ही प्राप्त होता है।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित शर्मा जी का व्यक्तित्व :

प्रखर प्रतिभा के धनी पं. पद्मसिंह शर्मा का व्यक्तित्व हिन्दी को आधुनिकता प्रदान करनेवाले इने-गिने साहित्यकारों में अन्यतम है। यद्यपि शर्मा जी के पत्रों में अधिकांशत: उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का ही प्रतिबिम्बन हुआ है, तथापि उनके जीवन के कई महत्वपूर्ण प्रसंगों की झांकी भी मिलती है।

(क) जीवनी-सूत्र :

"आचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा का व्यक्तित्व एवं उनके पत्र" शीर्षक एक

---

1. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. ४४-४५।

लेख में बाबू वृन्दावनदास ने लिखा है कि—"आचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा सर्वतोभावेन तथा मनसा-वाचा-कर्मणा साहित्यकार थे। वे अपने को न नेता मानते थे और न सामाजिक कार्यकर्ता। वे शुद्ध साहित्यिक व्यक्ति थे।'[1] अतः उनके पत्रों में साहित्यिक विषयों की चर्चा अधिक मिलती है। उनके वैयक्तिक प्रसंगों का सम्बन्ध भी किसी-न–किसी रूप में साहित्यिक जीवन से है। यहां हम उन्हीं प्रसंगों पर किंचित् प्रकाश डालेंगे।

(i) "परोपकारी" से त्याग-पत्र :

पं. शर्मा जी सन् १९०८ ई. में अजमेर चले गये थे। वहां से परोपकारिणी सभा, अजमेर द्वारा प्रकाशित "परोपकारी" का सम्पादन करते थे। परन्तु बी. एन. शर्मा आदि आर्य-समाजी लेखकों के अभद्रतापूर्ण व्यवहार से उन्हें आर्य-समाज से नफ़रत हो गयी थी। आचार्य द्विवेदी के नाम अपने २८-९-१९०८ के पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा है—"हमें तो ऐसी-ऐसी बातें देखकर इस समाज से घृणा सी हो गई है।"[2] १३-१२-१९०८ के पत्र में वे लिखते हैं— "मैं "आर्यमित्र" की संपादकता स्वीकार नहीं कर सकता। कई कारण हैं, प्रधान कारण यह है कि आर्य-सामाजिक नौकरियों में स्वतंत्रता नहीं रहती, गुलामी की दशा से बदतर है।........बड़े दिन की छुट्टियों में परोपकारिणी का अधिवेशन होगा। उसी में इस्तीफा देकर मैं छुट्टी हासिल करूंगा।"[3] इस प्रकार इन पत्रों से ज्ञात होता है कि शर्मा जी आर्य-समाज के प्रचारक होते हुए भी उसकी संकीर्णता से मुक्त थे।

(ii) "भारतोदय" का प्रकाशन :

सन् १९०९ ई. में महाविद्यालय ज्वालापुर से पं. पद्मसिंह शर्मा की सम्पादकता में "भारतोदय" पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इसके प्रारम्भिक अंक के सम्बन्ध में उन्होंने आचार्य द्विवेदी के नाम अपने ९-६-१९०९ के पत्र में लिखा था—"भारतोदय" बड़ी गड़बड़ की हालत में निकला। आपको पसंद आ गया, शुक्र है।"[4] शर्मा जी के सम्पादन, लेखन से "भारतोदय" मासिक से साप्ताहिक होकर हिन्दी में लोकप्रिय हुआ। बहुत से नये लेखक "भारतोदय" से प्रकाश में आये। भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद का "समाज संशोधन" शीर्षक लेख "भारतोदय" में ही छपा था जिसकी शर्मा जी ने बहुत प्रशंसा की थी। डा. राजेन्द्रप्रसाद ने संवत् १९६७ (सन् १९१०) पौष शुक्ल १४ को शर्मा जी के नाम पत्र भेजकर अपनी कृतार्थता इन शब्दों में व्यक्त की थी—"........समाज-संशोधन" वाला लेख आपको इतना पसन्द होगा, यह मुझे कभी धारणा नहीं थी।

---

1. "आचार्य पद्मसिंह शर्मा स्मृति-ग्रंथ" (१९७४), पृ. २२७।
2. द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १५७।
3. –वही–, पृ. १६२-६३।
4. -वही-, १६८।

मेरा हिन्दी-लेखन जन्म सफल हुआ।"[1] इससे स्पष्ट है कि पं. शर्मा जी एक कुशल सम्पादक थे।

(iii) सम्मान पुरस्कार :

सन् १९२२ ई. में पं. पद्मसिंह शर्मा को संजीवन भाष्य एवं बिहारी सतसई-प्रथम भाग पर मंगलाप्रसाद पारितोषिक प्राप्त हुआ। इस पारितोषिक समिति के निर्णायक थे पं. श्रीधर पाठक, पं. वियोगी हरि और प्रो. रामदास गौड़। पं. शर्मा जी ने वैशाख कृ. ८, १९८० वि. को पं. श्रीधर पाठक के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए लिखा था— "आपकी उदारता और कृपा का नितान्त अनुगृहीत हूँ। श्रीमान् ने मेरी तुच्छ रचना को इतना आदर दिया, इसका कारण केवल आपकी महानुभावता है, धन्यवाद और कृतज्ञता प्रकाशन करके मैं इस उपकार से "उऋण" नहीं हो सकूंगा।"[2]

इस पत्र के उत्तर में पं. श्रीधर पाठक ने पं. शर्मा जी की प्रतिभा के सम्बन्ध में अपने विचार प्रदर्शित करते हुए लिखा—"........आप अपनी ईश्वर-प्रदत्त साहित्यिक क्षमता से समभिज्ञ नहीं हैं। उसकी क्षमता का अन्दाज़ दूसरे लोग ही कुछ-कुछ लगा सकते हैं। तुच्छ बारह सौ मुद्रा आपकी अमूल्य कृति के बारह वाक्य क्या, बारह शब्दों पर वार दिये जाने को यथेष्ट नहीं। यों तो "मान कौ बीरा हीरा के समान है" परन्तु आपके अपरिमेय परिश्रम का यह अल्प मात्रिक पारितोषिक मातृभाषा की साहित्यात्मा को पर्याप्त परितोषप्रद नहीं हो सकता।"[3]

पं. श्रीधर पाठक के इस पत्र से हमें शर्माजी की प्रतिभा का वास्तविक परिचय प्राप्त होता है।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

पं. पद्मसिंह शर्मा बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वे एक श्रेष्ठ समालोचक, कुशल सम्पादक, सहृदय साहित्य-सेवक, विद्वान् व्याख्याता, सिद्धहस्त अध्यापक और सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक थे। उनका बहुमुखी व्यक्तित्व स्पष्ट रूप में उनके पत्रों के पृष्ठों पर अंकित है। पत्रों में प्रतिबिम्बित उनके चरित्र की मुख्य विशेषताएं इस प्रकार हैं:—

(i) भावुकता :

पं. पद्मसिंह शर्मा एक अत्यन्त भावुक और संवेदनशील साहित्यकार थे। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने २९-१-१९२० के पत्र में उनको लिखा था—

---

1. "मनोरंजक संस्मरण" (१९७०), श्रीनारायण चतुर्वेदी, पृ. २०७ से उद्धृत।
2. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १९१।
3. -वही-, पृ. २०२।

"मैं खुशामद नहीं करता, लेकिन मुझे कहना पड़ता है कि ठाकुर गदाधरसिंह जी को छोड़कर मैं किसी दूसरे हिन्दी लेखक का नाम नहीं ले सकता जिसमें आपके समान भावुकता हो।"[1]

पं. शर्मा जी अपने साहित्यिक मित्रों को स्वजन से भी अधिक मानते थे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के प्रति उनके मन में अपार आदर था। जैसा कि हम कह आये हैं, द्विवेदी से पत्र-व्यवहार करने में उन्हें अत्यन्त आनन्द मिलता था। एक बार बीमारी के कारण वे द्विवेदी जी को कई दिनों तक पत्र नहीं लिख पाये। द्विवेदी जी ने पत्र भेजकर कहा कि—'क्या आप हमें भूल तो नहीं गये ?" इसके उत्तर में शर्मा जी ने लिखा कि—"मैं और आपको भूल सकता हूँ ? यदि यह सम्भव हो "तदात्मानमपि विस्मरिक्ष्यामि।"[2]

इसी प्रकार पं. हरिशंकर ने उनको एक पत्र लिखकर पूछा था कि—"क्या आप मुझसे नाराज़ हैं ?" इसके उत्तर में उन्होंने हरिशंकरजी को भावपूर्ण पत्र भेजते हुए कहा—"आप मुझे अपने से अप्रसन्न या नाराज समझें, इससे अधिक भयंकर अभियोग मुझ पर नहीं लगाया जा सकता। मैं अपनी ज़िन्दगी से बेज़ार हो सकता हूँ पर आपसे अप्रसन्न नहीं हो सकता। जिस दिन ऐसा विचित्र परिवर्तन मेरे स्वभाव में दिखलाई दे तो समझ जाइए कि " दिन किनारे आ लगे हैं।"[3]

इन उद्धरणों से प्रकट होता है कि पं. शर्मा जी सहृदय और संवेदनशील व्यक्ति थे।

(ii) रसिकता :

पं. पद्मसिंह शर्मा एक रसज्ञ विद्वान् थे। रसिक कवि बिहारी की सतसई पर संजीवन भाष्य लिखकर उन्होंने अपनी रसिकता एवं रस-मर्मज्ञता का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। उनके पत्रों में भी हमें यत्र-तत्र उनके रसिक हृदय का साक्षात्कार होता है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के "तरुणोपदेश" पढ़ने की उत्सुकता प्रकट करते हुए उन्होंने अपने ६-८-१९०५ के पत्र में लिखा था—"मैं अभी वृद्ध नहीं हुआ। वात्स्यायन कामसूत्र मैंने पढ़े हैं और कई बार पढ़े हैं। ये मेरे पास हैं भी। परन्तु आपके तरुणोपदेश में निरा वही विषय तो नहीं होगा।[4]

एक अन्य पत्र में वे आचार्य द्विवेदी को लिखते हैं— "यद्यपि सभी रस अपने अपने मौके पर मेरे चित्त को अधिकृत कर लेते हैं परन्तु उनमें से शृंगार

---

1. "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा : पत्र-संग्रह" भारतीय साहित्य, वर्ष-१४, अंक १-२, पृ. २१७।
2. "द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १४२।
3. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. ३०।
4. "द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), ८१।

ग्रौर करुणा-ये दो मुझे ग्रधिक प्रिय हैं।"[1]

पं. शर्मा जी बिहारी सतसई पर इतनी एवं विदग्धतापूर्ण विवेचना कर सके, इसका कारण उनके हृदय की यह रसिकता एवं शृंगार-रस के प्रति गहरी रुचि है।

(iii) मनस्विता :

पं. शर्मा जी एक मनस्वी लेखक थे। ग्रात्म-सम्मान की रक्षा के लिए ही उन्होंने परोपकारिणी सभा का परित्याग किया था। ग्रात्मगौरव को ग्रक्षुण्ण रखने के लिए उनको बहुत कुछ सहन करना पड़ा था। पं. वियोगी हरि के नाम प्रेषित दिनांक १३-४-१९२९ के पत्र में उन्होंने सूचित किया है—"मनस्विता की कमी मुझ में नहीं है। इसके पीछे मैंने ग्रपने को तबाह कर लिया है, पर किसी मित्र के लिए तो भीख मांगने में भी मुझे संकोच नहीं, फिर यह तो एक व्यवहार की बात है, ग्रपना कर्त्तव्य है।"[2] इस प्रकार शर्माजी मनस्वी साहित्यकार थे, परन्तु मित्रों के प्रति उनके मनमें ग्रापार स्नेह था।

(iv) नम्रता :

शर्माजी संस्कृत भाषा के प्रकांड पंडित थे। उर्दू के भी वे ग्रच्छे ज्ञात थे, तथापि ग्रपने पांडित्य का उन्हें लेशमात्र ग्रभिमान नहीं था। ग्राचार्य द्विवेदी को एक पत्र में वे लिखते हैं - "पंडित जी, मैं कुछ संस्कृत, मामूली हिन्दी ग्रौर उर्दू ग्रौर थोड़ी-सी फारसी के ग्रतिरिक्त ग्रौर कोई भाषा नहीं जानता।"[3] कविवर नाथुराम शंकर शर्मा की कविता के प्रति ग्रपने मनोभाव व्यक्त करते हुए उन्होंने लिखा था —"·····मेरा तो रोम-रोम ग्रापकी कविता का ग्रनन्य भक्त है।"[4] इस प्रकार शर्मा जी एक धुरंधर विद्वान एवं समर्थ कवि होते हुए भी विनम्र एवं सरल प्रकृति के व्यक्ति थे।

(V) स्पष्टवादिता एवं निर्भयता :

पं. पद्मसिंह शर्मा एक स्पष्टवक्ता थे। वे ग्रपने साहित्यिक मित्रों का सम्मान ग्रवश्य करते थे, किन्तु कोई उन पर दबाव डाले, यह सम्भव न था। हरिशंकर जी को पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के विषय में ग्रपनी स्पष्ट प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा है— "मैं उनका सम्मान करता हूँ, पर जिस बात में मत नहीं मिलता, उसमें मैं किसी का लिहाज नहीं करता।"[5] इसी प्रकार ग्रपना स्पष्ट मंतव्य प्रकट करते हुए उन्होंने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को भी लिख दिया था — 'मैं महात्मा गाँधी का ग्रनुयायी नहीं हूँ—यानी ग्रहिंसा-

1. द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र, पृ. ९२।
2. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. २८।
3. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ९१।
4. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. २४३।
5. —वही—, पृ. ४६।

वादी। मैं लोकमान्य तिलक का भक्त हूँ। मुझे जो बात ठीक मालूम देती है और विशेषतया ऐसे प्रसंगों पर, उसे जोरदार शब्दों में प्रकट किये बिना नहीं रहा जाता।''[1]

पं. शर्मा जी को ढोंगी लीडरों से घृणा थी। उन्होंने बड़ी निर्भीकता से लीडरों पर प्रहार किये हैं। एक पत्र में उन्होंने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को सूचित किया है कि वे ''लीडर-लीला'' लिखना चाहते हैं।''[2] इस प्रकार पंडित शर्मा जी भी आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जी की भांति स्पष्टवक्ता और निर्भीक साहित्य सेवी थे।

(vi) परिहार-प्रियता :

पं. शर्मा जी बड़े विनोदी प्रकृति के व्यक्ति थे। उनके पत्रों में हास्य-व्यंग्य की प्रचुर सामग्री मिल जाती है।

यही नहीं, उनके पत्रों में विनोद के साथ व्यंग्य का पुट भी मिलता है। जैसा कि डा. गिरिराज शरण अग्रवाल ने कहा है, ''अपने संगी-साथियों पर भी वे व्यंग्य का प्रयोग करते हुए दिखाई देते हैं, परन्तु ऐसे स्थलों पर उनका उद्देश्य उनकी अप्रशंसा करना नहीं होता वरन् उन विनोदपूर्ण मीठी झिड़कियों में प्रेरणा, स्नेह और सहानुभूति छिपी हुई मिलती है।''[3] उदाहरण स्वरूप पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम परम्परागत शैली में लिखे निम्नांकित पत्र में विनोद की बानगी लीजिए—

''स्वस्ति श्री सर्वोपमान योग्य सकल गुण-निधान, प्रवासी भारतीयों की जान, परम सुजान, सद्गुण रत्नों की खान, घासलेटी-आंदोलन के महायान, गंगाजल निर्मल, यमुना—जल शीतल, पावन पवित्र, अति विचित्र, ज्ञातिशिरोमणि इत्यादि विविध बिरुदावली विराजमान श्री-(एक सौ अनगिनत) मान् चतुर्वेदी जी उर्फ़ ''ऋखीजी'' महाराज, जय जमना मैया की।''[4]

इसी प्रकार पर्याप्त समय की प्रतीक्षा के पश्चात् श्री वियोगी हरि से पत्रोत्तर प्राप्त होने पर शर्माजी ने अपनी विनोदी वृत्ति के अनुकूल उन्हें लिखा— ''प्रिय वियोगी हरिजी महाराज, नमो नमस्ते स्तु सहस्र कृत्वः। आखिर आपकी निद्रा टूटी, अज्ञातवास से प्रकाश में आना ही पड़ा। मैं हैरान था कि किस कन्दरा में जा छिपे। क्या बात हुई जो इस तरह एकदम मौनी बाबा बन गए।''[5]

---

1. ''पदमसिंह शर्मा के पत्र'' (१९५६), पृ. ७०।
2. —वही—, पृ. ५९।
3. ''आचार्य पद्मसिंह शर्मा के पत्रों में व्यंग्य विनोद'' (लेख), ''आचार्य पद्मसिंह शर्मा : व्यक्ति और साहित्य'' (१९७४), पृ. २३०।
4. ''पद्मसिंह शर्मा के पत्र'' (१९५६), पृ. १११।
5. -वही-, पृ. २५।

पं. शर्मा जी अपने ऊपर हँसने की कला में भी निपुण थे। उन्होंने ८ दिसम्बर १९२२ को पं. भीमसेन शर्मा के नाम प्रेषित अपने पत्र में अपनी जुकाम-पीड़ा के बारे में लिखा था—

"मुझे कल रात से जुकाम और बुखार भी है। रात भर नींद नहीं आई—

नाक से बहता है मेरी दोस्ते मन दरियाए गंग।
सिर मेरा क्या आज यह कैलाश पर्वत हो गया॥[1]

इन पत्रांशों से स्पष्ट है कि पं. शर्मा जी एक परिहासप्रिय व्यक्ति थे।

(vii) स्वाध्यायशीलता :

हिन्दी में पद्मसिंह शर्मा जैसे अध्ययनशील साहित्यिक बहुत कम मिलते हैं। वे रात को तीन बजे तक पढ़ते रहते थे। उनके यहां कई आलमारियां पुस्तकों एवं पत्रिकाओं से ठसाठस भरी होती थीं। पं. ज्वालादत्त शर्मा को लिखे एक पत्र में उन्होंने अपनी अध्ययनशील प्रकृति के सम्बन्ध में कहा है कि—"यों तो मुझे पढ़ने का भस्मक रोग है। जाने क्या-क्या पढ़ डालता हूँ, फिर भी नीयत नहीं भरती।"[2] उनके प्रत्येक पत्र में संस्कृत का कोई सुभाषित या श्लोक, उर्दू का कोई शेर अथवा हिन्दी का कोई नवीन मुहावरा हमें अवश्य देखने को मिलता है।

(viii) नवोदित तथा प्रसिद्ध लेखकों को प्रोत्साहन तथा दाद देना :

नवयुवकों और नवोदित लेखकों को प्रोत्साहित करना तथा प्रसिद्ध साहित्यिकों को दाद देना, पं. शर्माजी के व्यक्तित्व का महान् गुण था। "दाद" शब्द बराबर उनकी याद दिलाता रहता है। अपने पत्रों में कहीं वे श्री द्वारका प्रसाद "सेवक" की "प्रवासी भारतवासी" शीर्षक पुस्तक की प्रशंसा करते हैं[3] तो कहीं साहित्यिक विनोद पर हरिशंकर शर्मा को दाद देते हैं।[4] कहीं वियोगी हरि को "वीर सतसई" पर बधाई देते हैं[5] तो कहीं, मोहनलाल महतो "वियोगी" को "छायावादियों में आपका लिखने का ढंग अभिनन्दनीय है" कहकर प्रोत्साहित करते हैं।[6] इससे स्पष्ट होता है कि पं. शर्मा गुणग्राही तथा प्रतिभा के पारखी थे।

(ग) दृष्टिकोण :

पं. पद्मसिंह शर्मा एक विशुद्ध साहित्यकार थे। साहित्य के प्रति उनकी

1. "पदमसिंह शर्मा के पत्र"(१९५६), पृ. २०६।
2. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ, १८१।
3. वही, पृ. १५८।
4. वही, पृ. ३७।
5. वही, पृ. १९-२०।
6. वही, पृ. २२२-२३।

अपार निष्ठा ही उन्हें राजनीति एवं समाज-सुधार आदि से दूर रखती थी। उनका मत था कि साहित्य-सेवा के व्रती को व्यर्थ के पचड़ों में न पड़कर साहित्यिक कार्य निष्ठा से करना चाहिए। अपने इस दृष्टिकोण को प्रकट करते हुए उन्होंने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र में लिखा है—

भई, साहित्य-सेवा करो, और इधर आसन जमाओ। बोलपुर का "शांति-निकेतन" और साबरमती का "सत्याग्रह आश्रम" हिन्दी साहित्य-सेवा के लिए उपयुक्त स्थान नहीं हैं।"[1]

जैसा कि पूर्ववर्ती पृष्ठों में हम देख चुके हैं, शर्मा जी की महात्मा गांधी की अहिंसावादिता में आस्था बहुत कम थी। वे लोकमान्य तिलक की विचारधारा का अनुसरण करने में विश्वास रखते थे।

पं. शर्मा जी के पत्रों में भाषा और व्याकरण-सम्बन्धी सिद्धान्तों की विस्तृत जानकारी मिलती है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को लिखे गये पत्रों में कई स्थलों पर व्याकरण-विषयक चर्चा मिलती है। पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी को उन्होंने लिंग-सम्बन्धी महत्वपूर्ण सिद्धांत पत्रों में लिख भेजे हैं।[2]

आचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा पत्र-लेखन कला में पारंगत थे। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी उनको हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक मानते हैं।[3] भावुक सहृदयता और जिन्दादिली के कारण उनके पत्र उत्तम काव्य-सा आनन्द प्रदान करते हैं। उनकी शैली प्रभावशाली और विनोदमयी है। उर्दू के महाकवि अकबर ने उनकी पत्र-शैली की प्रशंसा करते हुए उनके नाम एक पत्र में लिखा है—"आपके ख़त को आंखें ढूंढती थीं।·········आपकी काबलीयत और सुख़नफ़हमी ने मुझको आपका आशक़ बना दिया है।"[4] निःसंदेह पं. शर्माजी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक थे। उनका यह प्रिय शेर—

यूं तो होती है मुंह देखे की मुहब्बत सबको।
मैं तो तब जानूं जब मरने के बाद मेरी याद रहे॥

उनके पत्र-साहित्य पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होता है।

४ प्रेमचन्द (१८८०-१९३६) :

प्रेमचन्द का भारतीय-साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी अप्रतिम स्थान है। उन्होंने अपनी अमर लेखनी से नये तथ्यों का और भारतीय समाज की तत्कालीन परिस्थितियों को विस्तृत परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने की अद्भुत प्रसिद्धि अर्जित की है। जैसा कि श्री गंगाप्रसाद विमल ने लिखा है—"उनकी कृतियां दो महायुद्धों के बीच के विराट मानव-सन्दर्भों की रचनाएं हैं, ये रचनाएं रचनाकाल

1. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ ५३।
2. -वही-, पृ. १७४-१७६।
3. पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के एक व्यक्तिगत पत्र से।
4. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र", भूमिका पृ. ३८।

के दृश्य संसार के संघर्षमय जीवन की सच्ची-झूठी गाथाएं ही नहीं हैं, बल्कि प्रेमचन्द के व्यक्तित्व की परिचय-कथाएं हैं। प्रेमचन्द का अपना निजी जीवन कहीं-न-कहीं उस बड़े सन्दर्भ से जुड़ा है।"[1] यद्यपि प्रेमचन्द जी के जीवन की प्रमुख घटनाएं और उनके व्यक्तित्व की विविध रेखाएं उनकी कृतियों तथा उन पर लिखी गयी "प्रेमचन्द : कलम का सिपाही", "कलम का मज़दूर : प्रेमचन्द" आदि जीवनियों में उभर कर सामने आती हैं, किन्तु उनके लिखे पत्रों तथा समकालीन लेखकों द्वारा उनको लिखे गये पत्रों में उनका जीवन और व्यक्तित्व कहीं अधिक स्पष्ट रूप में झलकता है। उक्त जीवनियां भी प्रेमचन्द के पत्र-साहित्य के आधार पर ही लिखी गयी हैं।

(अ) प्रेमचन्द जी का पत्र-साहित्य :

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और पं. पद्मसिंह शर्मा की तरह मुंशी प्रेमचन्द को भी अपनी सुदीर्घ पत्रकारिता और साहित्यिक यात्रा में सहस्रों पत्र लिखने पड़े हैं। वे भी उक्त आचार्यों की परम्परा के पत्र-लेखक थे जो प्रायः सभी पत्रों का अविलम्ब उत्तर देते थे। इस सम्बन्ध में डा. कृष्णबिहारी मिश्र का निम्नांकित कथन द्रष्टव्य है—

"प्रेमचन्द जो स्वयं को क़लम का मज़दूर समझते थे, दरबारी-सरकारी वातावरण से दूर रहकर सहज गृहस्थ जीवन जीने के आकांक्षी थे और सभा-समितियों की औपचारिकता से कतराते-घबराते रहते थे, सामान्य व्यक्तियों की भावनाओं का बड़ा ख़्याल रखते थे। उन्हें बराबर ख्याल रहता था कि कहीं उनकी ओर से किसी की उपेक्षा न हो जाय। इसलिए छोटे-बड़े, आत्मीय-अनात्मीय का विचार छोड़कर वे लोगों के पत्रों का जवाब देते थे, अनौपचारिक बतकही में घण्टों अपना महत्वपूर्ण समय देते थे और उससे जीवन अर्जित करते थे। जीवन के प्रति प्रेमचन्द की इतनी प्रगाढ़ सम्पृक्ति न होती तो उनका साहित्य इतना समृद्ध न हो पाता।"[2]

इससे स्पष्ट है प्रेमचन्द जी के साहित्य-सृजन में पत्र-लेखन का योग कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनके पत्रों का संकलन उनके सुपुत्र अमृतराय ने मदनगोपाल की सहायता से "चिट्ठी-पत्री"-भाग-१,२ में किया है। प्रथम भाग में प्रेमचन्द द्वारा उनके घनिष्ठ मित्र मुंशी दयानारायण निगम को लिखे गये २८१ पत्र संकलित हैं। निगम साहब उर्दू के प्रसिद्ध पत्र "ज़माना" के सम्पादक थे। उनके साथ प्रेमचन्द जी की चिट्ठी-पत्री का सिलसिला सन् १९०५ ई. में आरम्भ हुआ—एक पत्र-सम्पादक और एक नये लेखक के पारस्परिक सम्बन्ध-सूत्र के रूप

---

1. "प्रेमचन्द" (आज के सन्दर्भ में) : १९६८, पृ. १३।
2. "चिट्ठियों से झांकता मुंशी प्रेमचन्द का चेहरा" (लेख), आलोक पंथा (१९७७), पृ. ४८-४९।

में। धीरे-धीरे उसने आत्मीयता का रूप लिया, जो मरते दम तक चली। इन दोनों मित्रों के स्वभाव में बुनियादी अंतर होते हुए भी एक चीज़ जो दोनों के मिज़ाज में यकसां मिलती थी, वह थी उनकी वज़ादारी जो कि पुराने ज़माने की ही एक चीज़ थी और उनके साथ ही मिट गई।[1] इस प्रकार ये पत्र इक्कीस बरस की दोस्ती की अनूठी कहानी कहते हैं।

"चिट्ठी-पत्री भाग-२" में कुल मिलाकर २८३ पत्रों का संकलन है। इसमें प्रेमचन्द के लिखे हुए पत्रों के साथ उनको लिखे गये पत्र भी संकलित हैं। उर्दू और अंग्रेजी में लिखे गये पत्र भी यहां देखने को मिलते हैं। उर्दू पत्र लिपि बदलकर तथा पाद टिप्पणियों में कठिन शब्दों का अर्थ देकर प्रकाशित किये गये हैं और अंग्रेजी पत्र अनूदित रूप में। जिन साहित्यिकों के नाम प्रेमचन्द जी ने पत्र लिखे हैं, उनमें सर्वश्री जैनेन्द्रकुमार, बनारसीदास चतुर्वेदी, विनोदशंकर व्यास, श्रीराम शर्मा, शिवपूजन सहाय, सद्गुरूशरण अवस्थी आदि के नाम उल्लेख्य हैं। प्रेमचन्द जी को पत्र लिखने वाले प्रमुख साहित्यिकों के नाम हैं—जैनेन्द्रकुमार, बनारसीदास चतुर्वेदी, सुदर्शन, मौलवी अब्दुल हक़, अमरनाथ झा, नरेन्द्र देव आदि। इन पत्रों से प्रेमचन्द जी के जीवन और साहित्य के विभिन्न पक्ष उजागर होते हैं।

इन दो पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त "उग्र" जी के नाम लिखे प्रेमचन्द जी के कुछ पत्र "फाइल और प्रोफाइल" में संकलित हैं। इसी प्रकार जयशंकर प्रसाद और सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला" को लिखे उनके पत्र क्रमशः "प्रसाद के नाम पत्र" तथा "निराला की साहित्य-साधना-३" में संकलित हैं। अमृत राय तथा मदन-गोपाल द्वारा लिखे गये प्रेमचन्द के उक्त जीवन-चरित्रों में भी अनेक स्थलों पर प्रेमचन्द से सम्बन्धित पत्र उद्धृत किये गये हैं। डा. इन्द्रनाथ मदान ने "प्रेमचन्द : एक विवेचन" के परिशिष्ट में भी प्रेमचन्द जी के महत्वपूर्ण पत्र प्रकाशित किये हैं। श्री हंसराज रहबर लिखित "प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व" शीर्षक पुस्तक में भी प्रेमचन्दजी के कई पत्र प्रसंगोपात उद्धृत किये गये हैं। श्री प्रकाशचंद गुप्त ने प्रेमचंद जी के कुछ पत्र "हंस" (अक्टूबर १९४८) में प्रकाशित किये थे। इस प्रकार प्रेमचन्द जी का पत्र साहित्य अति व्यापक है।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित प्रेमचन्द जी का व्यक्तित्व :

यद्यपि यह सही है कि प्रेमचन्द जी के जीवन की प्रमुख घटनाएं उनकी कथाओं में मिल जाती हैं, किन्तु फिर भी उनकी कथा-कृतियां "जीवनियां" नहीं हैं। उनमें प्रेमचन्द जी का निजी व्यक्तित्व प्रकट नहीं हुआ है। उनका वास्तविक जीवन एवं व्यक्तित्व उनके पत्रों में ही प्रतिबिम्बित है। उन्होंने पत्रों में अपने जीवन की अनेक घटनाओं का बड़ी तन्मयता से चित्रण किया है। अपने जीवन-दर्शन को

1. अमृतराय : "प्रेमचन्द : कलम का सिपाही" (विद्यार्थी संस्करण), पृ. ६८।

भी उन्होंने पत्रों द्वारा स्पष्ट किया है। सर्वप्रथम हम पत्रों में अंकित उनकी जीवन-रेखाओं को देखेंगे।

(क) जीवनी-सूत्र :

प्रेमचन्द जी ने मित्रों एवं आलोचकों द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में अपने व्यक्तिगत तथा साहित्यिक जीवन के अनेक सूत्र उद्घाटित किये हैं। पत्रों में प्राप्त उनके जीवनी-सूत्रों में कहीं-कहीं तारतम्यगत शिथिलता भी प्रतीत होती है। यहां हम मुख्य-मुख्य सूत्रों का परिचय दे रहे हैं।

(i) जन्मकाल और जन्मस्थान :

प्रेमचन्द जी ने सबसे पहले अपने जीवन का संक्षिप्त वृत्तांत अपने परम मित्र मुंशी दयानारायण निगम को १७ जुलाई १९२६ के पत्र में लिख भेजा था। उन्होंने लिखा था—"........मेरे हालात नोट कर लें। तारीख पैदाइश संवत् १९३७। बाप का नाम मुंशी अजायब लाल। सुकूनत मौज़ा मढ़वां, लमही। मुत्त-सिल पाण्डेपुर। बनारस।[1] इसके बाद उन्होंने अपने जन्मकाल एवं जन्म स्थान की सूचना ७ अप्रेल १९२७ को विनोदशंकर व्यास के नाम लिखे पत्र में दी है, जो इस प्रकार हैं - "रही मेरी जन्म की तिथि आदि। मेरा जन्म सं. १९३७ में हुआ। काशी के उत्तर की ओर पाण्डेपुर के निकट लमही ग्राम का निवासी हूं"[2] इस प्रकार प्रेमचन्दजी के जन्म-काल और जन्म-स्थान का प्रामाणिक विवरण उन्हीं के द्वारा प्राप्त हो जाता है।

(ii) बचपन और शिक्षा :

अपने बचपन के सम्बन्ध में प्रेमचन्द जी ने डा. इन्द्रनाथ मदान को लिखा है कि—"बचपन में मेरे ऊपर मेरे घर का जो प्रभाव पड़ा है वह बिलकुल मामूली है। न तो उसे बहुत अच्छा ही कहा जा सकता है और न बुरा ही। जब मैं आठ वर्ष का था तभी मेरी मां चली गई। उससे पहले की स्मृति बड़ी धुंधली है।"[3] इस प्रकार प्रेमचन्द जी को बचपन में ही माता का वियोग सहन करना पड़ा था। इस वियोग का प्रभाव उनकी "प्रेरणा", "घर जमाई", आदि कहानियों में स्पष्टतः दिखाई पड़ता है। "कर्म-भूमि" उपन्यास का अमरकांत भी बचपन में मां के स्नेह से वंचित हो जाता है।

अपनी शिक्षा के सम्बन्ध में जानकारी देते हुए प्रेमचन्दजी ने निगम साहब को लिखा है—"इब्तदाअन आठ साल तक फ़ारसी पढ़ी फिर अंग्रेजी शुरू की। बनारस के कालेजिएट स्कूल से एण्ट्रेन्स पास किया। वालिद का इन्तकाल पन्द्रह

---

1. "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), पृ. १६१।
2. -वही,- भाग-२, पृ. १८२।
3. "प्रेमचन्द : एक विवेचन" (१९६८), परिशिष्ट, पृ. १४६।

साल की उम्र में हो गया। वालिदा सातवें साल में गुज़र चुकी थी।"[1] इससे स्पष्ट है कि प्रेमचन्द जी ने महाविद्यालय की शिक्षा नहीं प्राप्त की थी, फिर भी जीवन के व्यापक अनुभव से उन्होंने बहुत-कुछ सीख लिया था।

इस पत्र में प्रेमचन्द जी ने अपनी मां के निधन की सूचना डा. मदान को प्रेषित पत्र से एक साल पहले की दी है। श्री हंसराज रहबर ने निगम साहब के पत्र का अनुसरण किया है जब कि मदनगोपाल ने "क़लम का मज़दूर प्रेमचन्द" में लिखा है कि जब धनपतराय की आयु सात या आठ वर्ष की थी, आनन्दीदेवी बीमार पड़ीं।"[2] इस प्रकार यह निश्चित है कि सात-आठ वर्ष की अवस्था में प्रेमचन्द जी मातृस्नेह से वंचित हो गये थे।

(ii) साहित्यिक जीवन का आरम्भ :

प्रेमचन्द जी के साहित्य का इतिहास हमारे देश के राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तनों का इतिहास है। इसके आरम्भ के सम्बन्ध में उन्होंने निगम साहब के नाम प्रेषित पत्र में लिखा है—"........सन् १९०१ ई. से लिटरेरी ज़िन्दगी शुरू की। रिसाला ज़माना में लिखता रहा। कई साल तक मुत्तफ़र्रिक़ मज़ामीन लिखे। सन् १९०४ में एक हिन्दी नाविल प्रेमा लिखकर इण्डियन प्रेस से शाया कराया।"[3]

श्री विनोदशंकर व्यास को लिखे पत्र में "प्रेमा" उपन्यास का रचनाकाल १९०० बताया गया है।[4] डा. इन्द्रनाथ मदान के प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ के सम्बन्ध में लिखा है कि—"मेरा पहला लेख १९०१ में छपा और पहली पुस्तक १९०३ में।"[5]

उपर्युक्त तीनों पत्रों में भिन्न-भिन्न तिथियां दी गयी हैं अतः प्रेमचन्द जी ने कब और कहां लिखना आरम्भ किया, इसके बारे में निश्चित रूप से कुछ कहना कठिन है।

(iv) नाम-उपनाम

प्रेमचन्द जी का मूल नाम धनपतराय था। उनके पिता प्यार से उन्हें "नवाब" के नाम से पुकारा करते थे। अतः अपने साहित्यिक जीवन के आरम्भ में वे "नवाबराय" नाम से लिखते थे। परन्तु जब "सोज़े-वतन" की बेज़ाब्ताज़ब्ती के बाद उनके अफसरों ने उन्हें लिखने और किताबें छापने की मनाही कर दी तो उनको यह नाम छोड़ना पड़ा। मुंशी दयानारायण निगम ने उनको

---

1. "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२) पृ. १६१।
2. "क़लम का मज़दूर प्रेमचन्द" (१९६५), पृ. १३।
3. "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), पृ. १६१-६२।
4. "वही-, भाग-२, पृ. १८२।
5. "प्रेमचन्द : एक विवेचन" (१९६८), पृ. १४५।

"प्रेमचन्द" के नाम से लिखने का पत्र द्वारा अनुरोध किया था। इस पत्र के उत्तर में उन्होंने मुंशी जी को लिखा था:—

'प्रेमचन्द" अच्छा नाम है, मुझे भी पसन्द है। अफ़सोस सिर्फ यह है कि पांच-छः साल में "नवाबराय" को फिरोग देने—(प्रसिद्ध करने) की जो मेहनत की गई, वह सब अकारथ गई।"[1]

इस प्रकार रिवाज़ के मुताबिक प्रेमचन्द जी का नाम धनपतराय था। उनके पिता जी उन्हें दुलार से "नवाब" कहते थे। अतः प्रेमचन्द जी इसे अपना उपनाम बनाकर देर तक "नवाबराय" के नाम से लिखते रहे। बाद में वे "प्रेमचन्द" बन गये। यह नाम आज विश्व-साहित्य में अमर है।

(v) उर्दू से हिन्दी क्षेत्र में प्रवेश :

बाबू बालमुकुन्द गुप्त के समान मुंशी प्रेमचन्द ने भी अपना साहित्यिक जीवन उर्दू से आरम्भ किया था। परन्तु उन्हें अपनी रचनाओं से आमदनी नहीं के बराबर होती थी। "बाज़ारे हुस्न" अर्थात् "सेवा-सदन" उपन्यास उन्होंने उर्दू में लिखा था। प्रकाशित पहले हिन्दी में हुआ। कलकत्ता पुस्तक एजेंसी ने उसके पहले संस्करण के लिए एक मुश्त चार सौ रुपये दिये। प्रेमचन्द को अपने साहित्यिक जीवन में इतनी बड़ी रक़म पहली बार मिली थी। इसी कारण उनका झुकाव हिन्दी की ओर हुआ। १ सितम्बर १९१५ को बस्ती से उन्होंने सम्पादक "ज़माना" के नाम पत्र लिखा—

"............अब हिन्दी लिखने की मश्क़ भी कर रहा हूँ। उर्दू में अब गुज़र नहीं है। यह मालूम होता है कि बालमुकुन्द गुप्त मरहूम की तरह मैं भी हिन्दी लिखने में ज़िन्दगी सर्फ़ कर दूंगा। उर्दू नवीसी में किस हिन्दू को फ़ैज़ है जो मुझे हो जायेगा।"[2]

इससे प्रकट होता है कि हिन्दी में उर्दू की अपेक्षा प्रेमचन्द जी को पैसे और प्रसिद्धी अधिक प्राप्त हुई, अतः उन्होंने हिन्दी में साहित्य-सृजन पर अपना ध्यान केन्द्रित किया।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

प्रेमचन्द जी एक सजग और सचेत साहित्यकार थे। उनके चरित्र में प्रौढ़ता और दृढ़ता थी जो निश्चित ही अनुभव और क्रियाशीलता से उत्पन्न हुई थी। पत्रों के प्रकाश में उनके चरित्र की निम्नांकित विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं :—

(i) कर्मठता :

प्रेमचन्द जी एक कर्मशील व्यक्ति थे। कर्तव्यपरायणता उनके जीवन का

---

1. "प्रेमचन्द : जीवन, कला और कृतित्व" (१९६२), हंसराज रहबर, पृ. ४९।
2. "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), पृ. ४६।

मूल मन्त्र था। वे जीवन भर परिस्थितियों से संघर्ष करते रहे। डा. इन्द्रनाथ मदान के नाम लिखे एक पत्र में उन्होंने सूचित किया है—"जीवन मेरे लिए अनवरत कार्य रहा है। जब मैं सरकारी नौकर था, तब भी मेरा सारा समय साहित्य-रचना में लगता था। मैं काम करने में आनन्द पाता हूं।"[1] इसी प्रकार कार्यमय जीवन व्यतीत करने तथा संघर्ष से जूझने का संकेत करते हुए उन्होंने जैनेन्द्रकुमार को लिखा है :—

"भाई, यह संसार चुपके से रामभरोसे बैठने वाले के लिए नहीं है। यहां तो अन्त समय तक (खटना) और लड़ना है।"[2]

प्रेमचन्द जी के इन पत्रों से ज्ञात होता है कि वे कर्ममय जीवन में विश्वास रखते थे।

(ii) भावुकता से यथार्थवादिता की ओर झुकाव :

प्रेमचन्द जी के पत्रों के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वे अपने प्रारम्भिक जीवन में अत्यधिक भावुक थे, परन्तु संघर्षमय जीवन के कारण उनका यथार्थवादिता की ओर झुकाव हुआ। इस सम्बन्ध में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे १४ नवम्बर १९३२ के पत्र का निम्नलिखित अंश दृष्टव्य है :—

"एक समय ऐसा था जब किसी की एक अमित्रतापूर्ण चोट से रात की रात जागता रह जाता था, आंखों की नींद उड़ जाती थी। मगर अब वह हालत गुज़र चुकी है और मैं अपने आपको पहले से कहीं ज्यादा अच्छी तरह जानता हूँ।"[3]

जीवन के कड़वे अनुभवों से वे कितने सहिष्णु और वज्रहृदय बन गये थे, इसका पता हमें जैनन्द्रकुमार के नाम लिखित १७ जनवरी १९३३ के पत्र से चलता है। यह पत्र जैनेन्द्रकुमार के बच्चे की मृत्यु के समाचार पढ़ने के बाद लिखा गया है। देखिए—

"बच्चा चला गया। ख़त पढ़ते ही पहले तो कलेजा सन्न हो गया, लेकिन फिर मन शांत हो गया। यही जीवन के कड़वे अनुभव हैं। इन्हें झेले जाओ तो सब कुछ सरल हो जाता है।........तुम रोये नहीं, इससे मेरा चित्त बहुत शांत हुआ। तुम यहां होते तो तुम्हारी पीठ ठोकता।[4]

(iii) संकोचशील स्वभाव :

प्रेमचन्द जी का स्वभाव संकोचशील था। वे सभा-समारम्भों में बहुत कम जाते थे। वे अपने स्वभाव से भली प्रकार परिचित थे। इस प्रकार की प्रकृति के

1. "प्रेमचन्द : एक विवेचन" (१९६८), पृ. १४८।
2. "चिट्ठी-पत्री भाग-२", पृ. ३५।
3. -वही-, पृ. ८०।
4. -वही-, पृ. २९।

कारण उनको बहुत सहन करना पड़ा था । अतः जैनेन्द्रकुमार को सलाह देते हुए लिखते हैं :

"यहां झेंपू और मेरे जैसे शर्मीले आदमियों का गुजारा नहीं । उनके लिए तो कोई स्थान ही नहीं । तुम अपने में यह ऐब न आने दो ।[1]

इस पत्रांश से प्रेमचन्द जी के स्वभाव तथा जैनेन्द्रकुमार के साथ उनके घनिष्ठ सम्बन्ध पर प्रकाश पड़ता है ।

(iv) विनोदशीलता :

स्वभाव से शर्मीले होते हुए भी प्रेमचन्दजी विनोद-प्रिय व्यक्ति थे । वे क़हक़हे लगाकर हँसते थे । इसी कारण उनके मित्रों ने उनका नम "बम्बूक" (बहुत हँसने और क़हक़हे लगाने वाला) रखा था । उनके पत्रों में भी हमें उनके विनोदी स्वभाव की स्पष्ट झलक मिल जाती है । जैसे, जैनेन्द्रकुमार को पुत्र-जन्म पर बधाई-पत्र भेजते हुए लिखते हैं :

"पुत्र मुबारक । ईश्वर चिरायु करें । या या कहूँ, चिरायु हो । मैं तो पुराने ख़याल का आदमी हूँ । दो पुत्रों तक तो बधाई दूंगा, इसके बाद ज़रा सोचूंगा ।"[2]

जैनेन्द्रजी को ही लिखे गये एक अन्य पत्र के "पुनश्च" में कहते हैं—"तुम अपना तौलिया यहाँ छोड़ गये जिससे बन्दा देह पोंछता है ।"[3] इसी प्रकार २४ अगस्त १९३३ को पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे पत्र के "पुनश्च" में लिखते हैं :—

"आप अपना घर क्यों नहीं बसाते ? संन्यास ले रहे हैं जबकि आपको गृहस्थ होना चाहिए । भला हो विधवा-विवाह का........"[4]

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि प्रेमचन्द जी विनोदशील व्यक्ति थे ।

(v) स्पष्टवादिता :

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी एवं पं. पद्मसिंह शर्मा के समान प्रेमचन्द जी स्पष्टवक्ता साहित्यकार थे । धुरंधर साहित्यिकों की पुस्तकों की आलोचना भी वे स्पष्ट शब्दों में और बड़ी निर्भयता से करते थे । जयशंकर प्रसाद की पुस्तक "समुद्रगुप्त" की आलोचना करते हुए उन्होंने लिखा था—इसमें गड़े-मुर्दे उखाड़े गये हैं ।[5] इसी प्रकार जैनेन्द्रकुमार की "सुनीता" पर अपनी सम्मति प्रकट करते हुए एक पत्र में लिखा—"सुनीता" ध्वजाधारिणी बने, इसमें कोई हर्ज नहीं । वह गौरव की बात

---

1. "चिट्ठी-पत्री भाग-२", (१९६२), पृ. ३५ ।
2. -वही-, पृ. १३ ।
3. -वही-, पृ. २१ ।
4. -वही-, पृ. ८७ ।
5. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ. ६१ ।

है। उसके लिए और देश के लिए भी। लेकिन हरिप्रसन्न के मन में यह कुत्सित भावना क्यों? ध्वजा-धारिणी के पद से गिराकर उसे व्यभिचारिणी के पद पर क्यों लाना चाहता है?"[1]

जैनेन्द्रकुमार प्रेमचन्दजी के अभिन्न मित्र थे, तथापि प्रेमचन्द जी उनकी कृतियों की स्पष्ट और निष्पक्ष आलोचना करने तथा उनकी भूलों को साफ़ शब्दों में व्यक्त करने में संकोच नहीं करते थे। १७ जुलाई १९३३ के पत्र में मीठी झिड़की देते हुए वे जैनेन्द्र जी को लिखते हैं :

प्रिय जैनेन्द्र,

आदाबअर्ज़। भई वाह! मानता हूं। जून गया, जुलाई गया और अगस्त का मैटर भी जाने वाला है। जुलाई बीस तक निकल जायगा। लेकिन हजूर को याद ही नहीं। क्यों याद आये। बड़े आदमी होने में यही तो ऐब है। रुपये तो अभी कहीं मिले नहीं। लेकिन यश तो मिल गया है और यश के धनी धन के धनी से क्या कुछ कम मग़रूर और भुलक्कड़ होते हैं?"[2]

इस प्रकार प्रेमचन्द जी जो दिल में आये, वह साफ-साफ कह देते थे।

(vi) नवोदित कथाकारों एवं लेखकों को प्रोत्साहन :

प्रेमचन्द जी ने अपने पत्रों से अनेक नवोदित कथाकारों तथा लेखकों को प्रोत्साहन दिया है। जैसे उपेन्द्रनाथ अश्क को २५-२-१९३२ के पत्र में सलाह देते हुए लिखते हैं—"मगर मेरी सलाह तो यही है कि अभी ज्यादा लिखने के मुकाबले में लिटरेचर और फिलासफी का अध्ययन करते जाओ, क्योंकि इस वक्त का अध्ययन ज़िन्दगी भर के लिए उपयोगी होगा।[3] इसी प्रकार विष्णु प्रभाकर को हिदायत देते हैं कि—गल्प में संभाषण का भाग (अधिक), वर्णन कम होना चाहिए।"[4] इन पत्रांशों से प्रकट होता है कि प्रेमचन्दजी युगनिर्माता साहित्यकार थे।

(ग) दृष्टिकोण :

प्रेमचन्द जी अपने को क़लम का मज़दूर मानते थे। वे सामाजिक विकास में विश्वास रखते थे। उनकी दृष्टि में विकास के लिए लोगों का चरित्र ही निर्णायक तत्व है। कोई समाज-व्यवस्था नहीं पनप सकती जब तक कि हम व्यक्तिश: उन्नत न हों। उनके विचार में आदर्श समाज वह है जिसमें सबको समान अवसर मिले।[5]

---

1. "चिट्ठी-पत्री भाग-२" (१९६२), पृ. ६२।
2. -वही-, पृ. ३२।
3. "चिट्ठी-पत्री-२", पृ. २३९।
4. वही, पृ. २४३।
5. वही, पृ. २३७।

प्रेमचन्दजी साहित्य-सर्जन में प्रतिभा को सर्वोपरि मानते थे। उषादेवी मित्रा के नाम पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा है—"……… असली चीज़ प्रतिभा है। यदि आप में वह है तो मैं या कोई दूसरा मनुष्य चाहे आपका स्वागत न करें, वह आप अपना मार्ग निकाल लेगी।"[1]

अपने ऊपर किन-किन विदेशी साहित्यकारों का प्रभाव पड़ा है, इसे स्पष्ट करते हुए उन्होंने एक पत्र में कहा है कि—"मेरे ऊपर टालसटाय, विक्टर ह्यूगो और रोमा रोलां का असर पड़ा है।[2] अपनी शैली के सम्बन्ध में उन्होंने जैनेन्द्रकुमार को लिखा था कि— "मैं पुराना हो गया हूँ और पुरानी शैली निभाये जाता हूं।"[3] इस प्रकार पत्रों में प्रेमचन्द जी की विचारधारा का विशद परिचय मिलता है।

प्रेमचन्द जी के पत्र सीधे-सादे ढंग से लिखे गये हैं। अमृतराय के शब्दों में "इनमें किसी तरह की बनावट या तकल्लुफ़ नहीं है, काग़ज़-कलम उठाया और लिख मारी एक चिट्ठी जैसे आमने-सामने बैठे बातें कर रहे हैं।"[4] इसी कारण उनके पत्र उनके व्यक्तित्व के दर्पण और समकालीन साहित्य के दस्तावेज़ हैं।

5. बनारसीदास चतुर्वेदी (१८८२ ई.) :

प. बनारसीदास चतुर्वेदी एक प्रबुद्ध साहित्यकार, यशस्वी पत्रकार, कुशल पत्र-लेखक और लब्धप्रतिष्ठ पत्र-संग्राहक हैं। हिन्दी पत्र-साहित्य में उनका नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है। राष्ट्रकवि "दिनकर" के शब्दों में "चतुर्वेदी जी हिन्दी में शायद एक ही पत्र-लेखक हैं।"[5] जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, हिन्दी पत्र-साहित्य के महत्व को प्रतिष्ठित कर परिश्रमपूर्वक विधिवत् प्रकाश में लाने का श्रेय उन्हीं को है। अनेक विद्वान् उनको पत्र-विधा का पुरस्कर्ता मानते हैं।[6] उन्होंने इस विधा के विकास की ओर न केवल स्वयं ध्यान दिया, अपितु अन्य

---

1. चिट्ठी-पत्री-२, पृ. १९४।
2. वही, पृ. २३६।
3. वही, पृ. १३।
4. वही, भाग-१, भूमिका, पृ. ५।
5. "पूज्य और वरेण्य (लेख), "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ३०।
6. (क) डा. आदित्यनाथ झा : "अभिनन्दिनी" (संपा. रमेशचन्द्र दुबे) पृ. ४५।

   हिन्दी में पत्र-साहिय के महत्व को दिग्दर्शित करनेवाले वे शीर्षस्थ साहित्यकार हैं।"

   (ख) पं. रामशंकर द्विवेदी : "हिन्दी में पत्र-साहित्य" (लेख), परिषद पत्रिका, जनवरी १९७२, पृ. ९०।

   "इस विधा की ओर सर्वप्रथम ध्यान पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का गया।"

अनेक व्यक्तियों को भी इस कार्य की प्रेरणा दी। उन्हीं के परिश्रम और प्रयास से हिन्दी में पत्र-साहित्य का स्तरीय विकास हुआ है।

(अ) चतुर्वेदी जी का पत्र-साहित्य :

हिन्दी साहित्यकारों में जितने पत्र प. बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखे और पाये हैं, उतने किसी ने नहीं। इस सम्बन्ध में श्री सीताराम सेकसरिया ने बहुत उपयुक्त कहा है कि— "चतुर्वेदी जी ने शायद जितने पत्र लिखे हैं, जितने लोगों को लिखे हैं तथा जितने कामों और विषयों के लिए लिखे हैं, उतने और किसी ने लिखे हों, मैं नहीं जानता।"[1] चतुर्वेदी जी ने बाबू वृन्दावनदास के नाम प्रेषित २०-१२-१९६१ के पत्र में सूचित किया है कि उन्होंने कम से कम एक लाख चिट्ठियां तो लिखी ही होंगी।[2]

पत्र-व्यवहार चतुर्वेदी जी का प्रिय व्यसन रहा है। इस मनोरंजक व्यसन पर उन्होंने कई पत्रिकाओं में सुन्दर लेख भी लिखे हैं।[3] प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को एक पत्र द्वारा उन्होंने यह सूचना भी दी है कि वे "पत्र-व्यवहार : मेरा व्यसन" नामक एक पुस्तक लिखना चाहते थे, किन्तु व्यस्ततावश नहीं लिख पाये।[4] अपने साहित्यिक मित्रों को लिखे पत्रों में भी उन्होंने यत्र-तत्र अपने इस रोचक व्यसन की बड़े लाक्षणिक ढंग से चर्चा की है।[5] श्री श्यामसुन्दर खत्री ने उनके इस मनोरम

---

1. "जैसा मैंने देखा" (लेख), "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ६४।
2. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. १११।
3. देखिए।
   (क) "पत्र व्यवहार—एक मनोरंजक व्यसन," 'विशाल भारत", सितम्बर १९५१।
   (ख) "पत्र व्यवहार मेरा व्यसन," "लोकशिक्षक", मार्च १९७७, पृ. ३
4. शोधकर्त्ता को लिखित १८-७-१९७८ का पत्र।
5. (क) पं. झाबरमल्ल शर्मा को लिखित २०-६-१९७० का पत्र :
   "प्रातः काल ४, ४।। बजे उठकर चाय बनाकर पीना और तत्पश्चात् कुछ स्वाध्याय और फिर पत्र-व्यवहार का व्यसन।
   —"डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र," पृ. २५८।
   (ख) बाबू वृन्दावनदास को लिखित १४-८-१९६८ का पत्र :
   "पत्रों की दृष्टि से मैं लखपति हूँ। सौ वर्ष बाद उन पत्रों का मूल्य इतना तो हो ही जायेगा।"
   —वही—, पृ. ७८।
   (ग) पं. रामनारायण उपाध्याय को लिखत १२-१-१९६१ का पत्र :
   "बात दरअसल यह है कि पत्र-व्यवहार मेरे लिए व्यसन हो गया है और बावजूद घोर प्रयत्नों के मैं उसे छोड़ नहीं पाता।"
   —प्रेरक साधक पृ. ५३१।

व्यसन की झलक इस प्रकार प्रस्तुत की है :—

"चार बजे उठ भोर को लिखने लगते पत्र ।
किन्हें कहां कैसे कहें ? यत्र तत्र सर्वत्र ।।" [1]

अपनी दीर्घकालीन पत्रकारिता और शुष्क-एकाकी जीवन में कुछ रस लाने के लिए चतुर्वेदी जी को पत्र-व्यवहार का आश्रय लेना पड़ा । फिर तो वह उनके लिए रचनात्मक कार्य (Creation) और विश्राम (Recreation) दोनों का काम देने लगा । परदु:खकातर महापुरुषों के सम्पर्क-सान्निध्य के कारण वे अपनी अस्वस्थ अवस्था में भी पत्र लिखे बिना नहीं रह सकते ।[2]

हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकारों के पत्र प्राप्त करने के लिए चतुर्वेदी जी ने एक पत्र-लेखन-मण्डल या पत्र व्यवहार गोष्ठी की स्थापना की थी । आचार्य शिवपूजन सहाय इस मण्डल के सक्रिय सदस्य थे । डा. वासुदेवशरण अग्रवाल भी इस गोष्ठी में समय-समय पर अपना बहुमूल्य सहयोग देते थे । उन्होंने पत्र-लेखन-मण्डल के माध्यम से तथा अपने प्रिय व्यसन के द्वारा अनेक मूर्धन्य साहित्यकारों तथा महापुरुषों के मूल्यवान पत्र प्राप्त किये हैं ।

चतुर्वेदी जी का पत्र-संग्रहालय अगाध है । इसमें छोटे-बड़े विद्वान्, विचारक लेखक, समाज-सेवक, पत्रकार, राजनीतिज्ञ, साहित्यकार आदि अनेक व्यक्तियों के बहुमूल्य पत्र संगृहीत हैं । प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को शोध-यात्रा के सिलसिले में हिन्दी के चिन्तनशील कवि डा. त्रिलोकीनाथ व्रजबाल की प्रेरणा से चतुर्वेदी जी का पत्र-संग्रहालय देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । यद्यपि उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण पत्र राष्ट्रीय अभिलेखागार दिल्ली में सुरक्षित करा दिये हैं, तथापि उनकी प्रतिलिपियां, प्रकाशित प्रतियां, फोटो-प्रति-प्रतिलिपियां उनके पास संरक्षित हैं । इस संग्रह को देखने पर श्री विष्णु प्रभाकर के इस कथन का स्मरण हो आया कि— "महापुरुषों और प्रियजनों के पत्रों का संग्रह अद्भुत है । भारत भर में

1. "लोकशिक्षक," १५ दिसम्बर, १९७६, पृ. ४ ।
2. (क) "मुझे लेटे रहने के लिए कहा गया है, फिर भी आप जैसे सुहृदों को पत्र लिखे बिना नहीं रह सकता ।"
—बाबू वृन्दावनदास के नाम लिखे पत्र का अंश ।
(डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र", पृ. ७१)
(ख) "तुर्गनेव जब मरणासन्न थे, तब भी उन्होंने किसी युवक ग्रंथकार के लिए सिफारिशी चिट्ठी किसी प्रकाशक को लिख दी थी और स्टीफन ज़्विग भी इसी आदर्श का पालन करते थे । रोम्यां रोलां को भी सहस्रों पत्र लिखने पड़े थे । मैं इन तीनों का प्रशंसक हूँ, इसलिए यह सम्भव नहीं कि मैं किसी संकटग्रस्त सज्जन के पत्र का उत्तर न दूं ।"
—पं. रामनारायण उपाध्याय के नाम लिखे पत्र का अंश । ("प्रेरक-साधक", पृ. ५३१)

इतना विशाल संग्रह कहीं भी न होगा।"[1]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के नाम लिखे २७-७-१९६९ के पत्र में चतुर्वेदी जी ने अपने पत्र-संग्रहालय में किन-किन विभूतियों के कितने पत्र हैं, इसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया है:—

"—महात्मा गांधी के १०१ मूल पत्रों के १८७ पृष्ठ मेरे संग्रहालय में सुरक्षित हैं।

—दीनबन्धु सी. एफ. एण्ड्रूज की १९२१ तक की सम्पूर्ण सामग्री-पचासों पत्र।

—रोम्यां रोलां के तीन पत्र।

—भारत के सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक श्रीनिवास शास्त्री के ४० पत्र।

—मौलवी अब्दुल हक़ साहब के ४० पत्र।

—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के ७० पत्र।

—"नवीन" जी के ९ पत्र।

—प्रेमचन्द जी के २० पत्र।

—श्रीधर पाठक के जीवन-चरित्र की सामग्री।

—स्व. गुप्त बन्धुओं के दर्जनों पत्र।

—हरिशंकर शर्मा के ३०० पत्र।

—वंशीधर जी के ३०० पत्र।

—स्वयं आपके सभी पत्र।

स्व. वासुदेवशरण जी, मुंशी अजमेरी जी, माखनलाल जी, पीर मुहम्मद युनिस, शिवपूजन सहायजी, सैयद अमीर अली मीर प्रभृति के पत्र छपवा चुका हूँ। अन्य लेखकों के सहस्रों पत्र हैं।"[2]

ये पत्र चतुर्वेदी जी के उदात्त व्यक्तित्व और उनकी सशक्त लेखनी के ज्वलन्त प्रमाण हैं। श्री श्यामसुन्दर खत्री ने ठीक ही कहा है—

"बड़े-बड़े भी हो गये सहजों उनके मित्र, उनके पत्रों में भरी ऐसी शक्ति विचित्र।"[3]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी, रामधारीसिंह दिनकर, अक्षय कुमार जैन, सत्येन्द्र, प्रभुदयाल मित्तल, प्रभाकर माचवे आदि साहित्यकारों के नाम लिखे गये चतुर्वेदी जी के पत्रों का स्वतंत्र संग्रह—"डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" बाबू वृन्दावनदास की संपादकता में प्रकाशित हो चुका है। इसमें कुल मिलाकर २२१ पत्र संकलित हैं। ये पत्र चतुर्वेदी जी के शुभ्र विचारों के दर्पण हैं।

---

1. "वह लभ्य प्रेम" (लेख), "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ५०।
2. "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ५५९।
3. लोक शिक्षक, १५ दिसम्बर, १९७६, पृ. ४।

उपर्युक्त स्वतंत्र पत्र-संग्रह के अतिरिक्त "चिट्ठी-पत्री भाग-२", "फाइल और प्रोफाइल", "प्रसाद के नाम पत्र" "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" आदि पत्र-संग्रहों में भी चतुर्वेदी जी के कई बहुमूल्य पत्र संकलित हैं। उनके अनेक प्रेरक पत्र उन्हें भेंट किये गये अभिनन्दन-ग्रन्थ "प्रेरक-साधक" में प्रकाशित हैं। "ब्रजभारती", "लोक शिक्षक", "फिरोजाबाद-संदेश" "कादम्बिनी" आदि पत्रिकाओं में भी समय-समय पर उनके पत्र प्रकाशित होते रहे हैं। इस प्रकार हिन्दी साहित्यकारों में चतुर्वेदी जी का पत्र-साहित्य सबसे विशाल है।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित चतुर्वेदी जी का व्यक्तित्व :

प. बनारसीदास चतुर्वेदी ने छपने के ख़याल से पत्र नहीं लिखे हैं। अतः उनके पत्रों में उनके जीवन की अनेक महत्वपूर्ण घटनाएं तथा उनके चरित्र की प्रायः सभी विशेषताएं मूर्तिमन्त हो उठी हैं। पहले यहां हम पत्रों द्वारा उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं का परिचय प्राप्त करेंगे।

(क) जीवनी-सूत्र :

चतुर्वेदी जी के दीर्घ जीवन में अनेक कटु-मधुर घटनाएं घटी हैं, जिन पर एक स्वतन्त्र ग्रंथ लिखा जा सकता है। यहां हम उनके जीवन की दो-तीन प्रमुख घटनाओं पर ही उनके पत्रों के माध्यम से प्रकाश डाल रहे हैं।

(i) साहित्यिक जीवन का आरम्भ :

चतुर्वेदीजी की साहित्य-साधना का आरम्भ द्विवेदी-युग में ही हो चुका था, किन्तु साहित्यिक जगत् में उनको विशेष प्रसिद्धि "विशाल-भारत" के सम्पादक बनने के बाद प्राप्त हुई है। आज भी वे बड़ी निष्ठा से साहित्य की सेवा कर रहे हैं। अपने साहित्यिक जीवन का रोचक विवरण उन्होंने अक्षयकुमार जैन को लिखे २४-१२-१९७० के पत्र में लिखा है। वे लिखते हैं :

"........मैंने सन् १९१२ में लिखना शुरू किया था और कलम घसीटते-घसीटते अब ५० वीं वर्ष चल रही है।

मै जानता हूँ कि हिन्दी के पाठक अब तक तंग आ चुके होंगे, पर क्या किया जाय ?"[1]

इस प्रकार सन् १९१२ से अब तक अनवरत रूप से वे साहित्य-सेवा में लग्न-रत हैं।

(ii) जाति से बहिष्कृत होने की घटना :

बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक के प्रारम्भ में चतुर्वेदी जी पूर्व अफ्रीका गये थे। वे शाकाहारी भोजन, जो शुद्धता के साथ बनाया गया हो, चाहे जिस भले मानस के यहां कर लेते थे। उन दिनों वह भी एक भयंकर अपराध माना जाता

---

1. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. २०८।

था। अतः उनको जाति से बहिष्कृत कर दिया गया था। इस घटना का वर्णन करते हुए वे युगलकिशोर चतुर्वेदी को लिखते हैं :

"पूर्व अफ्रीका से लौटने के बाद मैं जाति से बहिष्कृत कर दिया गया था। जनेऊ फिर कराना पड़ा और गंगा स्नान के लिए प्रयाग भी जाना पड़ा। यह बात शायद १९२५ की है। अब इस घटना पर स्वयं मुझे हँसी आती है।"[1]

ii) पत्नी की आकस्मिक मृत्यु :

चतुर्वेदी जी एक संवेदनशील साहित्यिक हैं। किसी भी संवेदनशील साहित्यिक के लिए अपनी पत्नी की आकस्मिक मृत्यु एक असह्य घटना बन जाती है। इस घटना के सम्बन्ध में चतुर्वेदी जी की व्यथित मनोदशा का दर्शन हमें बाबू वृन्दावनदास को लिखित २६-१२-७० के पत्र में होता है। इस पत्र का एक अंश यहां हम उद्धृत करते हैं :—

"मेरी पत्नी की आकस्मिक मृत्यु सन् १९३० में हो गई, जबकि मैं कुल जमा ३८ वर्ष का ही था। उससे मेरा सम्पूर्ण जीवन ही अस्त-व्यस्त हो गया।"[2]

इससे प्रकट होता है कि इस घटना से चतुर्वेदी जी को गहरा आघात पहुंचा था। उनके "सम्पादक की समाधि" शीर्षक रेखाचित्र में भी इस घटना का हृदयस्पर्शी चित्रण किया गया है।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

चतुर्वेदी जी के पत्रों में उनके चरित्र के अनेक पहलू उजागर हुए हैं। उनको लिखे गये अन्य व्यक्तियों के पत्रों में भी उनके चरित्र की रेखाएं उभर कर सामने आती हैं। उन्होंने अपने नाम आये पत्रों को हूबहू प्रकाशित किया है। अतः उनके प्रकृत चरित्र का चित्र पत्रों के पृष्ठ पर ही अंकित है।

(i) साहसिकता और निर्भयता :

चतुर्वेदी जी एक साहसिक एवं निर्भीक साहित्य-सेवी हैं। उनकी साहसिकता एवं निर्भयता का विषद परिचय उनके द्वारा चलाये गये विविध साहित्यिक आन्दोलनों से प्राप्त होता है। उनकी साहसिकता तथा निर्भयता की झांकी प्रसाद जी के नाम लिखे १४-९-१९२८ के पत्र के निम्नांकित अंश में भी मिलती है—

"कृपया इस भ्रम को दूर कर दीजिए कि मैं छायावाद का अथवा आपका विरोधी हूं। यदि होता तो अवश्यमेव खुल्लमखुल्ला विरोध करता।[3]

1. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), २१८।
2. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. १७२।
3. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ. ६८।

चतुर्वेदी जी ने स्वर्गीय "नवीन" जी के फक्कड़पन से भरे पत्रों को ज्यों का त्यों प्रकाशित कर निःसन्देह ही एक साहसिक कदम उठाया है। उनसे हुई एक भेंट-वार्त्ता में प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक द्वारा यह पूछे जाने पर कि स्वर्गीय नवीन जी के पत्र प्रकाशित होने से पाठकों के मन में आपके चरित्र के प्रति घोर आशंका उत्पन्न हो जायेगी, यह जानते हुए भी आपने इन पत्रों को क्यों प्रकाशित किया ? चतुर्वेदी जी ने उत्तर दिया :

"मैं अपना जीवन खुली हुई किताब के रूप में रखने का पक्षपाती हूं—जिसका जी चाहे सो पढ़ लें। मैं अपनी चारित्रिक या किसी भी प्रकार की त्रुटियों को छिपाना नहीं चाहता। उनको छिपाना तो दम्भपूर्ण होगा। नवीन जी के चरित्र के हूबहू चित्रण के लिए उनके पत्रों का प्रकाशन अति आवश्यक था और यदि इसके लिए मुझे कुछ त्याग करना पड़ा तो वह मेरा कर्तव्य ही था।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि चतुर्वेदी जी एक साहसिक एवं निर्भीक साहित्यकार हैं।

(ii) सरलता और निष्कपटता :

चतुर्वेदी जी सरल प्रकृति के व्यक्ति हैं। उन्होंने निष्कपट होकर अपनी भूलों को स्वीकार किया है। मोहनसिंह सेंगर को घासलेटी आन्दोलन के विषय में लिखे गये पत्रों में उन्होंने विनम्रता प्रदर्शित करते हुए लिखा है कि—"मुझ से सैंकड़ों भूलें—नहीं भयानक भूलें बन पड़ी हैं, लेकिन मैं उन्हें छिपाऊंगा नहीं।"[2] आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के सम्बन्ध में पहले चतुर्वेदी जी के मन में कुछ पूर्वग्रह था परन्तु द्विवेदी जी का पत्र पाकर उनका भ्रम दूर हो गया। इस सम्बन्ध में उन्होंने द्विवेदी जी को लिखा है—

"आपकी बड़ी कठोर मूर्ति मैंने अपने मस्तिष्क में बना रक्खी थी। मेरी यह भूल थी।"[3]

इसी प्रकार आचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा के समक्ष अपनी प्रचारवादी प्रवृत्तियों से मुक्त होने की अभिलाषा प्रकट करते हुए वे लिखते हैं:—

"ख्यातिप्रेम की धूल से भरी हुई "प्रचार कार्य" या "प्रोप्रेगैण्डा" की सड़क पर लेखों की मोटर दौड़ाते-दौड़ाते हैरान हो गया हूं और साहित्यिक क्षेत्र की रमणीक वनस्थलियों की सैर पैदल ही करना चाहता हूँ।"[1]

इन पत्रों में चतुर्वेदी जी का सरल और निष्कपट हृदय सहज ही प्रतिविम्बित हो उठा है।

---

1. "पं. चतुर्वेदी जी से हुई प्रत्यक्ष भेंट के आधार पर।
2. "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ५१७।
3. "नागरी प्रचारिणी पत्रिका," सं. २०२१, अंक-१,२, पृ. १६१।
4. "भारतीय साहित्य", वर्ष-१४, अंक-१,२, पृ. २२३।

(iii) शहीदों का श्राद्ध :

शहीदों का श्राद्ध भी चतुर्वेदी का प्रिय विषय रहा है। अनेक शहीदों के परिजन उनके द्वारा लाभान्वित हुए हैं। बाबा पृथ्वीसिंह आज़ाद ने उनको "शहीदों के सखा" की उपाधि से सम्मानित किया है।"[1] श्री अटलबिहारी वाजपेयी के के नाम अपने ३-१२-१९७० को लिखे पत्र में चतुर्वेदी जी ने सूचित किया है—

"मेरे क्षुद्र जीवन के २२ वर्ष प्रवासी भारतीयों की सेवा में बीते और २५ वर्ष शहीदों के श्राद्ध में।"[2]

"नवभारत टाइम्स" के तत्कालीन सम्पादक श्री अक्षयकुमार जैन को प्रेषित २-७-१९६८ के पत्र में उन्होंने सूचना दी है कि— "टीकमगढ़ के शहीद नारायणदास खरे के विषय में मेरी जो छोटी-सी चिट्ठी "नवभारत टाइम्स" में छपी थी, वह एक बिस्कुट बनानेवाले व्यापारी के हाथ में आ गयी और उसने पत्र की अपील से प्रभावित होकर शहीद की पत्नी को ४०१ रुपये भेज दिये।"[3] इस प्रकार शहीदों के श्राद्ध के लिए चतुर्वेदीजी सतत चिन्तित और प्रयत्नशील रहे हैं।

(iv) विनोदप्रियता :

चतुर्वेदी जी खुली तबीयत के व्यक्ति हैं। वे डटकर विनोद करते हैं और इसी कारण वे जल्दी ही घुल-मिल जाते हैं। उनके पत्रों में भी यत्र-तत्र उनकी विनोद-वृत्ति स्पष्ट रूप से झलकती है। इस विषय में पं. रामनारायण उपाध्याय को उन्होंने लिखा है—"हँसी-मज़ाक करने का मेरा स्वभाव रहा है और वह पत्रों में भी प्रतिबिम्बित हो जाता है।"[4]

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को टीकमगढ़ से दिनांक ३-७-१९४७ को उन्होंने एक विनोदपूर्ण गोपनीय पत्र लिख भेजा था। इसमें एक अच्छा नुसख़ा सुझाते हुए उन्होंने लिखा था :

"हम लोग अपनी स्पिरिट को तरोताज़ा बनाये रखें और वयोवृद्धों की सूची में नाम लिखाने से इन्कार कर दें तो नवयुवक-मण्डली हमारे साथ रहेगी। (इस नुसखे में धृष्टता-धूर्तता की कुछ-कुछ मात्रा और चाहिए) श्री जैनेन्द्र जी मुझे "अकाल युवा" कहते हैं। प्राइवेट तौर पर मैंने नुसखा आपको बतला दिया है। गोपनीय प्रयत्नतः।"[5]

चतुर्वेदी जी अपने पर हँसने की कला में बहुत कुशल हैं। डा. बारान्निकोव, लैनिनग्राद को एक पत्र में उन्होंने लिखा है— "आगरा विश्वविद्यालय ने मुझे अयाचित डी. लिट्. की ऑनरेरी-सम्माननीय उपाधि प्रदान की है—८ दिसम्बर को।

---

1. "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ४४।
2. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. २११।
3. वही—, पृ. २०७।
4. "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ५२९-३०।
5. "शांतिनिकेतन से शिवालिक" (१९६७), संपा. शिवप्रसादसिंह, पृ. ४८४।

मैंने इस पर एक तुकबन्दी की है—

"बड़े बड़ेन की अकल अब चरन लगी है घास।
फोकट में डी. लिट्. बने श्री बनारसीदास॥"[1]

इस प्रकार का एक विनोद-भरा पत्र उन्होंने श्री कन्हैयालाल मिश्र "प्रभाकर" की नवम्बर १९५६ के "नया जीवन" में प्रकाशित टिप्पणी के उत्तर में लिख भेजा था। श्री "प्रभाकर" जी ने उस पत्र को "मज़ाक का मनीफैस्टो—" कहा है।[2] इस प्रकार चतुर्वेदी जी का विनोदी स्वभाव उनके पत्रों में पूर्णतः प्रकट हुआ है।

(v) छुटभइयों को प्रोत्साहन :

"श्रद्धेय पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" शीर्षक अपने लेख में बाबू वृन्दावनदास ने कहा है कि "चतुर्वेदी जी इस देश के महान व्यक्तियों में से एक हैं जो पत्र-व्यवहार द्वारा अपने मित्रों, परिचितों और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को सतत प्रेरणा प्रदान करते रहते हैं, तथा क्या करणीय है, इस दिशा की ओर सदैव इंगित करते रहते हैं।"[3] अपने पत्रों में कहीं श्री गोविन्दप्रसाद केजड़ीवाल को पत्रांक का परिशिष्टांक निकालने का परामर्श देते हैं[4] तो कहीं माखनलाल सिसोदिया को ब्रज साहित्य-मण्डल के लिए क्रियाशील बनने की प्रेरणा देते हैं।"[5] ब्रज को वे अपनी पितृभूमि समझते हैं। अतः उनके पत्रों में स्थान-स्थान पर ब्रज के पुर्निमाण-सम्बन्धी महत्वपूर्ण सुझाव दिखाई पड़ते हैं।

(ग) दृष्टिकोण :

चतुर्वेदी जी के जीवन और साहित्य में "बहुजनहिताय" का सिद्धांत सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है। बाबू वृन्दावनदास के नाम लिखे एक पत्र में उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का उद्देश्य इन शब्दों में स्पष्ट किया है :

"मेरे साहित्यिक जीवन का एक दार्शनिक दृष्टिकोण रहा है। मैंने कभी भी आत्म-केन्द्रित होने का प्रयत्न नहीं किया। साहित्योपवनों की स्थापना ही मेरा उद्देश्य रहा है।"[6]

इसी प्रकार अयोध्याप्रसाद गोयलीय जी के नाम पत्र में वे लिखते हैं— "सर्व साधारण को सात्विक-मानसिक भोजन देना एक महान् यज्ञ है जिसका महत्व उत्तरोत्तर बढ़ता ही जायगा और इस यज्ञ की आंशिक पूर्ति के लिए ही हम

1. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. २६४।
2. "प्रेरक साधक", पृ. ५४-५५।
3. "ब्रज भारती", मार्गशीर्ष सं. २०२४ वि. पृ. ९।
4. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र", पृ. २१०।
5. वही, पृ, २३१,।
6. वही, पृ. १८८।

लोगों का यह सम्बन्ध हुआ है, ऐसा मैं मानता हूँ।''[1]

इससे स्पष्ट है कि चतुर्वेदी जी का दृष्टिकोण पूर्णतः मानवतावादी है।

चतुर्वेदी जी की पत्र-लेखन की पद्धति अपने ढंग की अनूठी है। चाहे वे पोस्टकार्ड लिखें या अन्तर्देशीय पत्र-सबमें नीली स्याही से लिखने के साथ-साथ लाल स्याही से भी कुछ शब्द या वाक्य अवश्य लिखते हैं। इसी प्रकार पत्र पूरा कर चुकने पर वे उसके नीचे अथवा ऊपर या हाशिये में भी कुछ महत्वपूर्ण सूचना लिख देते हैं। अपने पत्रों में अंग्रेजी के शब्दों और वाक्यों का भी वे प्रचुरतः प्रयोग करते हैं। अंत में हम श्री श्यामसुन्दर खत्री के शब्दों में यही कहेंगे :—

''श्री बनारसीदास ने लिखे अनगिनत पत्र।
हुआ पत्र-लेखक कहां ऐसा है अन्यत्र ?''[2]

६. सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" (१८९७-१९६२) :

सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला" यथा नाम तथा गुणः" की उक्ति को चरितार्थ करने वाले साहित्यकार थे। वे आधुनिक हिन्दी साहित्य में सूर्य के समान तेजस्वी और निराले थे। उनके व्यक्तित्व की प्रखरता एवं असाधारणता केवल उनके साहित्य में ही नहीं, उनके जीवन-व्यवहार और पत्राचार में भी स्पष्टतः झलकती है।

(अ) "निराला" जी का पत्र-साहित्य :

फक्कड़ और मनमौजी होते हुए भी "निराला" जी अपने पत्र-व्यवहार के प्रति असावधान न थे। उनके सावधान संग्रहकर्ता वाले रूप की ओर संकेत करते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है—

"निराला सामग्री-संकलन के प्रति अत्यन्त सजग थे। उनके फक्कड़पन की कहानियों के कारण जैसे उनका गृहस्थ-रूप आँखों से ओझल हो गया है, वैसे ही और इसी कारण उनका सावधान संग्रहकर्त्ता वाला रूप भी लोगों की आंखों से ओझल है। किन्तु निराला ने गढ़कोला में रहते समय साहित्यिक मित्रों से प्राप्त पत्र सावधानी से रखे। इसके अतिरिक्त जहां से बन पड़ा, वे अपने भेजे हुए पत्र भी वहां से उठा लाए।''[3]

"निराला" जी के पत्र उनके साहित्य का ही एक अंग हैं। यद्यपि उन्होंने इन पत्रों को साहित्य समझकर नहीं लिखा है, तथापि इनमें उनके कलाकार की सहज वृत्तियां निर्बाध रूप में प्रकट हैं। उनके पत्रों के दो स्वतंत्र संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं:—एक आचार्य जानकीवल्लभ शास्त्री द्वारा सम्पादित "निराला के

1. "प्रेरक साधक," पृ. ४७२।
2. "लोकशिक्षक," २५ दिसम्बर १९७६, पृ. ४।
3. "निराला की साहित्य-साधना" (१९७६), भूमिका: पृ. ६४।

पत्र'' और दूसरा डा. रामविलास शर्मा द्वारा सम्पादित ''निराला'' की साहित्य-साधना भाग-३''। दोनों ही पत्र-संग्रहों के सम्पादक ''निराला'' जी के निकट के सहयोगी और विशेष कृपा-पात्र रहे हैं।

शास्त्री जी ने इस विश्वास से कि ''एक-न-एक दिन निराला के ये पत्र अन्ध-अन्तर्भूमि से निकलकर प्रकाश के आकाश में छवि, मधु, सुरभि भरेंगे,'' पत्रों को संजोये रखा था। ''निराला के पत्र'' शीर्षक संग्रह की दो महत्वपूर्ण विशेषताएं हैं:—एक लम्बी भूमिका और दूसरी विस्तृत पाद-टिप्पणियां। डा. पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' प्रस्तुत संग्रह की भूमिका को हिन्दी आलोचना साहित्य की अक्षय निधि मानते हैं।''[1] पाद-टिप्पणियों के सम्बन्ध में उनका मत है कि ''निराला ने जहां कहीं अपने पत्रों में काव्य-सृजन की प्रक्रिया अथवा रचना-विशेष के सम्बन्ध में कुछ लिखा है, वहां पाद-टिप्पणी के रूप में सम्पादक ने अपनी रचनाओं और जीवन-संघर्षों की सूचक घटनाओं का भी उल्लेख किया है। इस प्रकार यह पत्र-संकलन एक साथ दो साहित्यकारों के प्रेरक तत्वों से परिपूर्ण है।[2] प्रस्तुत संग्रह में १०९ पत्रों का संकलन है जो सन् १९३५ से १९५७ के बीच की अवधि में लिखे गये हैं। यह अवधि छायावादी काव्यधारा की क्षीणता और स्वयं छायावादी कवियों द्वारा नयी प्रगतिवादी धारा अपनाये जाने की अवधि है। ''निराला'' जी के जीवन-चरित्र का अध्ययन करनेवाले के लिए ये पत्र असाधारण महत्व रखते हैं।

''निराला की साहित्य-साधना-३'' में निराला जी के लिखे हुए पत्रों के साथ पृष्ठभूमि के रूप में उनको लिखे हुए पत्र भी संकलित हैं। सम्पादक डा. रामविलास शर्मा ने बहुत उपयुक्त लिखा है कि ''पत्र चाहे निराला के लिखे हों, चाहे दूसरों के, सभी का सम्बन्ध एक ही मुख्य पात्र, निराला से है।''[3] इस प्रकार यहां पत्र-साहित्य के दोनों पक्षों का उद्घाटन होने से रसास्वाद की प्रक्रिया अधिक सरल बन गयी है। इस पत्र-संग्रह के तीन खण्ड हैं। प्रथम खण्ड में ''निराला'' जी के नाम लिखे हुए पत्र, द्वितीय खण्ड में ''निराला जी के लिखे हुए पत्र और तृतीय खण्ड में ''निराला'' जी के जीवन से सम्बन्धित काग़ज-पत्र संकलित हैं। इस संग्रह की अन्य उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इससे ''निराला'' जी के समकालीनों के अतिरिक्त पूर्वयुगीन पंडितों (आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, नाथूराम शंकर शर्मा आदि) तथा उत्तरकालीन साहित्यकारों (केदारनाथ अग्रवाल, अमृतलाल नागर आदि) के साथ हुआ निराला जी का पत्र व्यवहार भी प्रकाशित है। अतः ''निराला'' जी के जीवन-वृत्त एवं व्यक्तित्व के अध्ययन के साथ उनके युग-परिवेश की जानकारी के लिए भी इसका महत्व निर्विवाद है। हिन्दी-पत्र-साहित्य में यह अपने ढंग का अकेला पत्र-संग्रह है।

---

1. ''हिन्दी साहित्याब्द कोश'', १९७१, पृ. २८२।
2. वही।
3. ''निराला की साहित्य-साधना-३'' (१९७६), भूमिका, पृ. २।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित "निराला" जी का व्यक्तित्व :

"निराला" जी का व्यक्तित्व एक ओजस्वी पुरुष का व्यक्तित्व था। वे गुणों के विरोधाभास थे, अतः उनके अति निकट रहने वाले लोग भी उनके व्यवहार के सम्बन्ध में अनिश्चित रहते थे। हिन्दी साहित्य में "निराला" जी के वास्तविक व्यक्तित्व को परखने का बहुत कम प्रयास किया गया है। इस सम्बन्ध में आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी का यह मत उल्लेखनीय है कि—"हिन्दी भाषी जनता के साहित्यिक ज्योतिषियों ने, कहानीवाले सात अंधे भाइयों की भांति, भांति-भांति से हाथी की हास्य-विस्मय-भरी रूपरेखाएं बखान कीं, जिनसे "निराला" जी की अपेक्षा समीक्षकों की निराली सामुद्रिक बुद्धि का ही परिचय मिला।"[1] "निराला" जी के बहुमुखी व्यक्तित्व का अध्ययन उनके पत्रों के आलोक में करने की आवश्यकता है। यहां इस दिशा में लघु प्रयास किया गया है।

(क) जीवनी-सूत्र :

निराला जी के पत्रों में उनके व्यक्तित्व का शारीरिक पक्ष भी एकाध स्थल पर उद्घाटित हुआ है। हिन्दी के पत्र-लेखकों में सम्भवतः "निराला" जी ही एक ऐसे लेखक हैं जिन्होंने पत्र में अपने शारीरिक गठन की झांकी प्रस्तुत की है।

(i) जाति, बाह्य आकृति और पारिवारिक स्थिति :

"निराला" जी ने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम प्रेषित ११-१-१९२१ के पत्र में अपनी जाति, बाह्य आकृति और पारिवारिक स्थिति का संक्षेप में किन्तु बड़े संयत और सुन्दर ढंग से रेखांकन किया है। उन्होंने लिखा है :

"मैं कान्यकुब्ज ब्राह्मण हूँ। आपका पड़ोसी हूँ। उन्नाव ज़िला में पूर्व्वा (पुरवा) के पास का रहनेवाला हूं। उम्र २२, शरीर ५ फुट ११½ इंच लम्बा, छाती ३९ इंच चौड़ी। हृष्ट-पुष्टांग न तु स्थूलकाय। अक्षर हूँ, न साक्षर और न निरक्षर। सगा यानी माता, पिता, भाई. बहन, चाचा, चाची, स्त्री संसार कोई नही (नहीं)। सब थे किन्तु १९१८ के इन्फ्लुएन्ज़ा में (में) सब गुज़र गए।........

मेरा (मेरे) पिता-पितृव्य इस स्टेट के फौजी अफसर थे। गण्यमान्य थे। मेरा जन्म यहीं हुआ। शिक्षा यहीं मिली।....... "[2]

इससे स्पष्ट है कि निराला जी ने इस पत्र में अपना जीवन-वृत्त और व्यक्तित्व बड़े सुरेख एवं सुन्दर शब्दों में अंकित कर दिया है। इसमें जहां उनके परिवार की करुणाजनक स्थिति का अंकन है, वहां उनके आभिजात्य और देहात्मबोध का चित्रण भी है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जैसे युग-प्रवर्तक साहित्यकार को पत्र लिख रहे हैं, फिर भी इसमें "निराला" जी का आत्मचैतन्य पूर्णतः

---

1. "हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी" (१९७०), पृ. १७१।
2. "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), पृ. २१६

प्रकट होता है। यही उनके व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता है। डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित ने भी इसी विशेषता की ओर इंगित करते हुए लिखा है :

"निराला" का व्यक्तित्व असाधारण अहमन्यता से परिपूरित है। उनके इस आत्मचैतन्य का कारण है—उनका आभिजात्य और देहात्मबोध।"[1]

(ii) गृहस्थ जीवन : कौटुम्बिक दायित्व :

"निराला" जी ने अपने सृजन-काल में साहित्यिक पत्रों के अतिरिक्त कुछ पारिवारिक पत्र भी लिखे हैं। इन पत्रों में बड़ा घरेलूपन है, साथ ही कौटुम्बिक दायित्व भी। जैसे, २७ फरवरी १९२८ को अपने साले रामधनी को सूचित करते हैं : "हमारी गाई बियानी है। दूध का अभाव अब नहीं रहा। और सब कुशल है।"[2]

इसी प्रकार अपने पुत्र रामकृष्ण त्रिपाठी को खर्च के रुपये भेजते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा है : "तुम्हारे दोनों पत्र मिले। समाचार मालूम हुए। कल ३०) तीस रुपये तुम्हारे खर्च के लिए भेजे, आज १५) पन्द्रह रुपये और भेजते हैं। टुइशनें कर लीं, अच्छा है ... "[3]

ये पत्र "निराला" जी के कौटुम्बिक दायित्व बोध के साक्षी हैं। इन पत्रों की ओर संकेत करते हुए डा. रामविलास शर्मा ने बहुत उपयुक्त लिखा है कि— "जो लोग इस अफवाह के शिकार हैं या खुद उसे फैलाने के जिम्मेदार हैं कि निराला तो मस्त, फक्कड़ जीव थे, जिन्हें घर-गृहस्थी की चिन्ता न थी, निराला के गृहस्थ जीवन, उनके दायित्व बोध, कर्तव्यनिष्ठा का चित्र यहां देखें। काफी पत्र रामकृष्ण त्रिपाठी के नाम हैं। जीवन के जिस दौर में निराला बहुत विक्षिप्त जान पड़ते थे, उस दौर में भी वे रामकृष्ण की पढ़ाई-लिखाई से लेकर उनकी गृहस्थी जमाने तक की ओर सतर्क थे।"[4]

(iii) अस्वस्थता और आर्थिक चिन्ता :

सन् १९२६ से १९२८ ई. तक का समय "निराला" जी की घोर अस्वस्थता और आर्थिक चिन्ता का समय था। इन वर्षों में प्रसाद जी, शांतिप्रिय द्विवेदी, विनोदशंकर व्यास, आचार्य शिवपूजन सहाय आदि को लिखे गये पत्रों में इसकी बराबर चर्चा मिलती है। इस दुःसह्य परिस्थिति में उक्त साहित्यिक मित्रों ने "निराला" जी की ओर पर्याप्त सहानुभूति प्रकट की थी। दिनांक १०-७-१९२७ को उन्होंने विनोदशंकर व्यास को लिखा था :

"यहां रोगग्रस्त जीवन दुःसह हो रहा है। आप लोगों के पत्रों से ही

1. "अलक्षित निराला" (१९७३), पृ. ६०।
2. "निराला की साहित्य-साधना-३", पृ. २४४।
3. "निराला की साहित्य-साधना" (१९७६), पृ. ३३२।
4. -वही-, भूमिका, पृ. ९।

बचा हूँ।"[1]

पिछले अध्याय में प्रसाद जी के पत्र-साहित्य की चर्चा में हम देख चुके हैं कि "निराला" जी जब अकेले पड़ गये थे, तब प्रसादजी ने औषधि उपचार से उनकी पर्याप्त सहायता की थी। "निराला" जी ने अपनी घोर निराशा के क्षणों में प्रसाद जी को लिखा था—

"............शरीर बिलकुल क्षीण हो गया है। जीवन रहा तो दूसरा पत्र लिखूंगा। यह निराला का अंतिम प्रमाण-पत्र है। सब अपराध, सब त्रुटियों के लिए क्षमा।"[2]

सन् १९३६ से निराला जी की मानसिक स्फूर्ति उत्तरोत्तर घटने लगी थी। ११-३-१९३६ के पत्र में उन्होंने जानकीवल्लभ शास्त्री को सूचित किया था—मैं मानसिक स्फूर्ति उत्तरोत्तर खोता जा रहा हूं। केवल विश्वास रह गया है।"[3] सन् १९४३ ई. के आस-पास उनकी मानसिक स्थिति बहुत बिगड़ गयी थी। डा. रामविलास शर्मा के नाम लिखे २-२-१९४३ के पत्र में उन्होंने लिखा है—"अपने-आप दिन-रात जलन होती है।........कभी रात-रात भर नींद नहीं आती।........तम्बाकू छूटती नहीं। खोपड़ी भन्नाई रहती है।"[4]

इन पत्रों में एक सर्वहारा लेखक की विक्षोभ-वेदना का मर्मस्पर्शी स्वर मुखरित है।

जैसा कि डा. रामविलास शर्मा ने संकेत किया है, रोग और आर्थिक कष्टों से "निराला" जी की लड़ाई अधिकतर गढ़कोला के उसी कच्चे मकान में हुई है।[5] गढ़कोला से ही दि. ९-१२-१९२७ को उन्होंने प्रसादजी के नाम एक पत्र में लिखा था :

"**आप मुझे लिफाफे** में पत्र लिखने पर अपना एक सादा Letter paper साथ ही रख दिया कीजिएगा। यहां कागज का बड़ा अभाव है।"[6]

यह पत्र महाकवि की आर्थिक स्थिति का अतर्क्य प्रमाण है।

(iv) "पल्लव" की आलोचना :

"पल्लव" कविवर सुमित्रानन्दन पन्त का कविता-संग्रह है जो सन् १९२६ में प्रकाशित हुआ था। पन्त जी निराला जी के घनिष्ठ मित्र थे। निरालाजी के

---

1. "निराला की साहित्य साधना-३" पृ. २२४।
2. -वही-, पृ. २४०।
3. "निराला के पत्र" (१९७१), पृ. ८४।
4. "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ. ३१२।
5. "निराला" (१९७१), पृ. ८।
6. "निराला की साहित्य साधना-३," पृ. २३२।

स्नेह भरे पत्रों से उन्हें अपूर्व आनन्द मिलता था।[1] निरालाजी ने पन्त जी की कविताओं में कुछ अशुद्धियां बताई थीं। पन्त जी ने 'पल्लव" में उन अशुद्धियों को ठीक कर लिया, पर "पल्लव" के प्रवेश में इसका जिक्र न किया। मुक्तछन्द की आलोचना लिखने से पहले निराला जी से सलाह-मशविरा कुछ न किया।[2] अतः निराला जी के मित्र श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने जब उन्हें पत्र द्वारा सूचित किया कि—"पल्लव" की भूमिका में पन्त ने आपकी शैली पर जो आलोचना की है – विचारणीय है",[3] तो निरालाजी को दुःख हुआ। तत्पश्चात् शांतिप्रिय जी अपने पत्रों द्वारा "निराला" जी को "पल्लव" की आलोचना के लिए बराबर उकसाते रहे। अतः निरालाजी ने आषाढ़ सन् १९२७ ई में प्रकाशित "माधुरी" में "पल्लव" की कठोर आलोचना की।

"पल्लव" की कठोर आलोचना से अनेक मित्रों तथा छायावाद के समर्थकों को दुःख हुआ। श्री शिवपूजन सहाय ने 'निराला" जी को पत्र द्वारा मित्रवत् सलाह देते हुए लिखा, "माधुरी" देखी। समालोचना में कुछ कटुता आ गई है। मैत्री का पुट देकर दोष दर्शन कराते तो रंग जम जाता।[4] श्री रामनाथ सुमन ने अपना दुःख प्रकट करते हुए कहा –"मुझे तुम्हारी पंत की आलोचनाओं से बड़ा दुःख पहुँचा है।"[5] स्वयं पन्त जी को इससे बड़ा आघात लगा, परन्तु उन्होंने सहनशीलता से यह प्रहार झेलकर स्नेह-सम्बन्ध बनाये रखने का आह्वान करते हुए निराला जी को लिखा :

"आपकी 'पन्त जी और पल्लव' शीर्षक आलोचना माधुरी में पढ़ने को मिली।.... ... अच्छा ही हुआ, बहुत दिनों से आप हज़रत नाराज़ थे, अब शायद जी की जलन निकल जाने पर आप कुछ शान्त हो जाए (जायँ) गे।" "जलन" मैंने कुछ आपको चिढ़ाने के लिए भी लिख दिया।.........वाह भई! अच्छा, अब अगर गुस्सा मिट गया हो, पन्त को उसके १ से १०० तक और शायद इससे भी अधिक अपराधों का दण्ड बहुत कुछ आप दे चुके हों तो एक बार प्रयाग आकर दर्शन दीजिए—आपसे किसी प्रकार लड़ाई झगड़ा तो मुझे करना नहीं है, केवल मनोविनोद रहेगा।[6]

---

1. निराला की साहित्य साधना-३" पृ. ७४।

 "आप वैसे ही स्नेहपूर्ण, कृपा पूर्ण पत्र मुझे लिखा कीजिए, मुझे उनकी बड़ी ज़रूरत है, मैं सदैव आपका कृतज्ञ रहूंगा।"

2. "निराला की साहित्य-साधना भाग-१" (१९६९), डा. रामविलास शर्मा पृ. १४०।
3. "निराला की साहित्य-साधना,-३" पृ. ७५।
4. -वही-, पृ. १०४।
5. -वही-, पृ. १४५।
6. -वही-, पृ. १०२-१०३।

हिन्दी पत्र-साहित्य में इस पत्र का ऐतिहासिक महत्व है।

पंत जी ने "पल्लव" की कठोर आलोचना का कोई उत्तर नहीं दिया और ३ जनवरी, १९३१ को अलमोड़ा से "निराला" जी को ब्रज भाषा में—

"छमहु बन्धु अपराध।
रूसन की कछु बान तुम्हें, पै"

से शुरू होने वाला पद्यमय पत्र लिखा जिसका उत्तर निराला ने लखनऊ से ६ जनवरी १९३१ को बंगला में दिया था। इस पत्र की प्रारम्भिक पंक्तियां इस प्रकार हैं :—

"बन्धु हे—
भालो बासी, भालो बासियाछो,
नूतन किछुइ करो नाइ;
आमि मने-मने जपियाछि,
द्वारे तुमि आसियाछो ताई।"[1]

"पल्लव" की आलोचना के सम्बन्ध में श्री विश्वम्भर "मानव" ने लिखा है कि—"मेरा अनुमान है कि भीतर का सम्बन्ध इसी घटना के उपरांत सदैव को समाप्त हो गया था।"[2] परन्तु "निराला" जी के पत्र-साहित्य में ऐसा कोई संकेत नहीं मिलता। इसके विपरीत "निराला" जी ने प्रसाद जी के नाम २४-४-१९३३ को लिखे पत्र में यह सूचित किया है कि पन्त जी के साथ "ऊषा अनिरुद्ध" वाला ड्रामा खेलना चाहते हैं जिसमें पन्त जी ऊषा का पार्ट खेलेंगे और वे अनिरुद्ध बनेंगे।[3]

इससे स्पष्ट है कि "पल्लव" की आलोचना केवल "निराला" जी के जीवन की ही नहीं, समस्त हिन्दी साहित्य की महत्वपूर्ण घटना है और पत्रों के द्वारा ही इस घटना का सही अध्ययन किया जा सकता है।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

महाकवि "निराला" एक लोकोत्तर पुरुष थे। लोकोत्तर व्यक्तियों के चरित्र को जानना नितांत कठिन है, तथापि पत्रों से इन विभूतियों के चरित्र पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

(i) स्पष्टवादिता और निर्भीकता :

"निराला" जी स्पष्टवादी और निर्भीक व्यक्ति थे। वे आत्म-विश्वासी और आत्म-निर्भर थे। सच्ची बात कहने में वे किसी से नहीं डरते थे। उन्होंने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को भी लिख दिया था—"आपकी लिखावट से मालूम हो रहा है कि मेरे पूर्व प्रेरित पत्र की व्याख्या विज्ञ-दृष्टि से नही (नहीं)

1. "निराला के पत्र" (१९७१), पृ. ९५।
2. "काव्य का देवता : निराला" (१९७४), पृ. २३।
3. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ. १९४।

की गई।"[1]

डा. रामविलास शर्मा के अनुसार "सूर्यकान्त पहले हिन्दी-लेखक थे जो महावीर प्रसाद द्विवेदी से कह रहे थे कि मेरे पूर्व प्रेरित पत्र की व्याख्या विज्ञ-दृष्टि से नहीं की गई।"[2]

"निराला" जी की इसी स्पष्टवादी प्रकृति के कारण उनका काफी विरोध हुआ, परन्तु हर तरह के विरोध सहते हुए भी वे अपने ओजस्वी व्यक्तित्व के कारण आगे बढ़ते रहे।

(ii) स्वाभिमान :

श्री राजेन्द्रसिंह गौड़ के शब्दों में निराला के मिजाज़ में बादशाहत थी और बादशाहत के साथ ज़िन्दादिली।"[3] छत्रपुर से लौटकर श्री शिवपूजन सहाय के नाम पत्र में उन्होंने लिखा था—

"......... गोली मार दीजिए—हम लोग भी साहित्य के बादशाह हैं—अन्धे क्या जाने—"[4]

वाचस्पति पाठक को लिखे पत्र में महात्मा गांधी से हुई अपनी बातचीत का सन्दर्भ याद दिलाते हुए उन्होंने लिखा है—"बनिया-कुल-मुकुटमणि महात्मा गांधी ने जब मुझसे कहा था—"मैं तो उथला आदमी हूँ, आपको याद होगा, मैंने जवाब दिया था, हम लोग उथले को गहरा और गहरे को उथला कर सकते हैं।"[5]

इस प्रकार "निराला" जी किसी के सामने झुकना नहीं जानते थे। डा. देवकीनन्दन श्रीवास्तव ने उनकी स्वाभिमानी प्रकृति के सम्बन्ध में बहुत उपयुक्त लिखा है—"एक उग्र स्वाभिमान का स्वर था, तीव्र आत्मविश्वास का सन्देश था. "विप्लव के बादल" की भाँति निरन्तर सिर ऊंचा करके चलने वाले ने कभी प्रभंजन के सामने सिर झुकाना सीखा ही नहीं।[6] डा. भगीरथ मिश्र के अनुसार अपनी उग्र स्वच्छन्दता और फक्कड़पन में निराला कबीर से तुलनीय हैं।[7]

(iii) संगीत-प्रेम :

"निराला" जी को गाने-बजाने का शौक़ था। मित्र-मण्डली के सामने

---

1. "निराला की साहित्य-साधना भाग-३, पृ. ११५-१६।
2. वही-, भाग-१, पृ. ४३।
3. "महाप्राण निराला की प्रतिभा और व्यक्तित्व" (लेख) "सम्मेलन पत्रिका" भाग-४८, सं. २, ३, ४, पृ. ३८५।
4. "निराला की साहित्य-साधना-३ पृ. २३९।
5, -वही-, पृ. २९१।
6, "युगकवि निराला" (१९७०), संपा. गिरिराज शरण अग्रवाल, पृ. ९।
7. "स्वाभिमानी और ओजस्वी कवि निराला" (लेख), "सम्मेलन पत्रिका", भाग-४८, पृ. ३३१।

वे गाकर अपनी कविता सुनाते थे । श्री विनोदशंकर व्यास को अपने संगीत-प्रेम के विषय में उन्होंने लिखा है, "निठल्ले दिन काटने से, मेरे विचार में गाना-बजाना बहुत अच्छा है । हाँ, इतना न गाया जाय कि फिर गला ही बैठ जाय ।"[1] उनके मुक्त-छन्द में भी मधुर संगीत भरा है ।

(iv) गम्भीरता और तन्मयता :

"निराला" जी एक धीर-गम्भीर साधक थे । साहित्य की साधना उन्होंने बड़ी तन्मयता से की है । अपनी रस-समाधि का परिचय देते हुए उन्होंने बाबू गुलाबराय के नाम पत्र में लिखा है, "मैं जब रस-ग्रहण करता हूँ उस समय गुंजार नहीं करता ।"[2] इस प्रकार वे रसलीन साधक थे ।

(ग) दृष्टिकोण :

"निराला" जी अक्खड़ और फक्कड़ होते हुए भी शास्त्रीय सिद्धांतों के विरोधी नहीं थे । जानकीवल्लभ शास्त्री को लिखे पत्रों में उनकी विचारधारा का स्पष्ट परिचय मिलता है । संस्कृत के सिद्धांत की चर्चा करते हुए उन्होंने ११-२-१९३६ को शास्त्री जी को लिखा था —" ... ... मैं आपको जिस संस्कृत रूप में देखना चाहता हूं, वह अशास्त्रीय नहीं । अशास्त्रीयता से ही मुझे घृणा रही है ।"[3]

निराला जी एक स्वतंत्र विचारशील साहित्यकार थे । रवीन्द्रनाथ टैगोर और महाकवि कालिदास के चाहक होते हुए भी वे हिन्दी के अनन्य आराधक थे । श्री जानकीवल्लभ शास्त्री के नाम अपने ३०-८-१९३८ के पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा है :

"मैं तो कालिदास और रवीन्द्रनाथ से अपनी मां का मुख ही अधिक पहचानता हूँ ।"[4]

"निराला" जी के इस भीष्म तर्क के आगे शास्त्री जी ने अस्त्र डाल दिये थे । इस प्रकार "निराला" जी का अपना निजी चिन्तन, मनन और दर्शन था ।

"निराला" जी के पत्रों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि वे उच्चकोटि के काव्यकार होने के साथ ही एक समर्थ गद्यकार भी थे । सन् १९२१ ई. में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को लिखे हुए पत्रों में उनके समर्थ गद्यकार का रूप स्पष्टतः प्रकट होता है । सन् १९२१ से ही उन्होंने गद्य पर असाधारण प्रभुत्व पा लिया था । दो-एक पत्र उन्होंने द्विवेदी जी को अवधी में भी लिखे हैं ।[5] पन्त जी के नाम उन्होंने बंगला में जो पद्यमय पत्र लिख भेजा है, वह उनके बंगला-भाषा पर प्रभुत्व का परिचायक है । वे संस्कृत के भी ज्ञाता थे । श्री जानकी-

---

1. "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ. २४७ ।
2. वही-, पृ. २४५ ।
3. "निराला के पत्र" (१९७१), पृ ९० ।
4. "निराला के पत्र" (१९७१), पृ. १५४ ।
5. "निराला की साहित्य-साधना भाग-३ (१९७६), पृ. २१९-२० ।

वल्लभ शास्त्री के नाम उन्होंने संस्कृत में भी एक पत्र लिख भेजा था जिसका प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है :

"प्रिय आचार्य जानकीवल्लभ ।

प्राप्तं प्रियपत्रं तव। समधिगताश्च सन्देशाः। प्रयागादद्यैवागतोऽहं प्राप्त पत्रः। सत्यं यल्लिखितं त्वया, परन्तु गतेऽपि प्रतिकूलतां कार्य्ये कारणे वा कस्मिंश्चित्, न विरोधोऽद्युना कथ्यते।"[1]

"निराला" जी का प्रायः प्रत्येक पत्र कुशल संरचना का नमूना है। उन्होंने अपने पत्रों में प्राचीन और आधुनिक दोनों पत्र-शैलियों का प्रयोग किया है। जैसे, नारायणदीन अवस्थी को २५-७-१९३० के पत्र में वे लिखते हैं—"प्रिय नारायण दीन को सूर्यकान्त त्रिपाठी का नमस्कार। आगे हाल यह है कि हम उन्नाव में सभापति त्रिपाठी से मिलकर लखनऊ आए और आते ही बीमार पड़ गए।"[2] इस प्रकार "निराला" जी के पत्र हिन्दी साहित्य की बहुमूल्य निधि हैं। उनके निराले व्यक्तित्व का वास्तविक परिचय हमें उनके पत्रों में ही प्राप्त होता है।

७. सुमित्रानन्दन पन्त (१९००-१९७७) :

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख आलोक-स्तम्भ थे। कलाकार की दृष्टि से उनका स्थान हिन्दी में सर्वोच्च है। उनका कोमल, भावुक, मधुर, मोहक और चिन्तनशील व्यक्तित्व उनके पत्रों में पूर्णतया प्रतिबिम्बित हुआ है।

(अ) पन्त जी का पत्र-साहित्य :

छायावादी कवियों में प्रसाद जी थे जो कम से कम पत्र लिखते थे। पन्त जी में भी एक खास तरह का आभिजात्य अवश्य था, परन्तु अपने निकट के मित्रों को वे मुक्त मन से पत्र लिखते थे। "बच्चन" जी के नाम लिखे उनके पत्र इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं। "बच्चन के नाम पन्त के सौ पत्र" तथा "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र"—ये दोनों पत्र-संग्रह, हिन्दी पत्र-साहित्य में अपना पृथक स्थान रखते हैं। इन पत्रों में पन्त जी का त्रिविध-व्यक्तित्व—निजी व्यक्तित्व, कवि-व्यक्तित्व और भावक-व्यक्तित्व—साकार हो उठा है। प्रथम संग्रह के पत्र सन् १९६० से १९६२ के बीच की अवधि में लिखे गये हैं। ये पत्र प्रकाशन के उद्देश्य से नहीं लिखे गये हैं। तथापि हिन्दी के दो वरिष्ठ कवियों की पारस्परिक घनिष्ठता, दीर्घ मैत्री और निर्मल सौहार्द्र के प्रतीक-रूप में इनका प्रकाशन, निश्चय ही एक सार्थक साहित्यिक दस्तावेज़ का प्रकाशन समझा जाना चाहिए। प्रस्तुत पत्र-संग्रह की समीक्षा करते हुए डा. रामस्वरूप आर्य ने उचित ही कहा है कि "पन्त के सौ पत्र" पढ़ते हुए पन्त जी के जीवन के कुछ ऐसे सूत्र प्राप्त होते हैं जिनका मिलना अन्य

---

1. "निराला के पत्र", पृ. ११३।
2. "निराला की साहित्य-साधना-३", पृ. २६०।

साधनों से कठिन था।"[1] यही तथ्य पन्त के दो सौ पत्र" पर भी चरितार्थ होत है। ये पत्र पन्त जी के कलात्मक गद्य, उनके चिन्तन-मनन के गाम्भीर्य के उत्तम नमूने हैं। इन पत्रों का लेखनकाल १९६२-१९६७ ई. है।

इन दो पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त "बच्चन" जी के नाम लिखे पन्त जी के १२४ पत्र "कवियों में सौम्य संत" शीर्षक पुस्तक में संकलित हैं। ये पत्र, मैत्री के प्रारम्भिक वर्षों में लिखे गये हैं। ये बिलकुल निजी पत्र होते हुए भी पन्त जी के सृजन, जीवन और व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" में निराला के नाम लिखे पन्तजी के १२ पत्र संकलित हैं। इन पत्रों का ऐतिहासिक ही नहीं, अपना स्वतंत्र साहित्यिक मूल्य है। "निराला" जी के प्रति पन्त जी का निश्छल मैत्रीभाव इन पत्रों में स्पष्टतः झलकता है। "प्रसाद के नाम पत्र" में संकलित पन्त जी के चार पत्र, प्रसाद जी के प्रति उनके आदरभाव के परिचायक हैं। डा. शांति जोशी लिखित "सुमित्रानन्दन पन्त : जीवन और साहित्य खण्ड-२" में भी पन्त जी के कुछ महत्वपूर्ण पत्र प्रसंगोपात उद्धृत किये गये हैं। इन पत्रों से भी उनके जीवन तथा साहित्य को समझने में पर्याप्त सहायता मिलती है। इस प्रकार पन्त जी का पत्र-साहित्य पूर्व चर्चित-लेखकों की तुलना में सीमित होते हुए भी उनके सृजन, जीवन और व्यक्तित्व के विविध पहलुओं को यथेष्टरूप से प्रकाशित करता है।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित पन्त जी का व्यक्तित्व :

"पंत के दो सौ पत्र" की भूमिका में बच्चन जी ने कहा है कि—"किसी भी बड़े व्यक्तित्व के बहुत से पहलू होते हैं—शमा हर रंग में जलती है सहर होने तक"[2] पंत जी के व्यक्तित्व के बहुत-से पहलू उनके पत्रों के माध्यम से उद्घाटित होते हैं। सर्वप्रथम पत्रों के द्वारा निजी और साहित्यिक जीवन के कुछ पक्षों पर हम प्रकाश डालेंगे।

(क) जीवनी-सूत्र :

पंत जी के पत्रों में उनकी जीवनी से सम्बन्धित तथ्यों का सिलसिलेवार ब्यौरा नहीं मिलता। हां, उनके साहित्यिक विकास के सूत्र अवश्य प्राप्त होते हैं।

(i) अस्वस्थता और अस्थिरता :

सन् १९२१ से १९३० ई. तक पंत जी के जीवन में अव्यवस्था-सी बनी रही। सन् १९२८ ई. में पिता की मृत्यु हो जाने से उनका हृदय शोक-संतप्त हो गया।[3] इसके बाद उनका चित्त बड़ा उद्विग्न रहने लगा।

1. "समीक्षा", जनवरी १९७१, पृ. ६६।
2. "पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), "पाठकों से"।
3. (निराला जी को, दिसम्बर १९२८) "निराला की साहित्य-साधना-३, पृ. १५६।

"कल प्रातः ८ बजे हमारे पूज्य प्रिय पितृ-चरण हमें सदैव के लिए छोड़कर परमधाम चले गए हैं।..............हम सब लोग शोक-संतप्त हैं।

१६-१२-१९२८ को उन्होंने "निराला" जी के नाम प्रेषित पत्र में लिखा था—"..... .... मेरा चित्त अच्छी तरह स्वस्थ हो जाय तो आप मुझे बनारस बुलाइएगा, —जब आप ठीक समझें, तथा आपको सुभीता हो।.... ....[1] इसी प्रकार २८-१-१९२९ को लिखे पत्र में भी उनकी मानसिक अवस्थता की चर्चा है—"........... मेरी मानसिक ऊहापोह कभी किसी ठीक स्थान पर पहुँच जाय, पर अभी तक ऐसा नहीं हो पाया, यद्यपि मैं सदैव ही आशान्वित रहता हूँ।"[2]

इस प्रकार अस्वस्थता ने पन्त जी को जीवन की कठोर भूमि पर ला बैठाया। परन्तु सन् १९३१ के बाद उनके जीवन-क्षितिज पर सौभाग्य का प्रकाश फैलने लगा। वे सन् १९३१ से १९४० तक कुंवर सुरेश सिंह के पास कलाकांकर में रहे।

(ii) "लोकायतन" पीठ की योजना :

सन् १९४२ में पन्त जी ने "लोकायतन" के नाम से एक व्यापक सांस्कृतिक पीठ की योजना बनाई जिसमें रंगमंच को सांस्कृतिक प्रेरणा का माध्यम बनाने का विचार प्रस्तुत किया गया था। परन्तु यह योजना मूर्तरूप ग्रहण न कर सकी। सन् .९४७ में उन्होंने फिर से इस योजना को साकार करने का प्रयास किया। ५ दिसम्बर १९४७ को उन्होंने बच्चन जी को पत्र द्वारा सूचित किया था कि लोकायतन का रजिस्ट्रेशन हो गया है।[3] इसके साथ इस पीठ के विकास के लिए उन्होने अपने अप्रेल १९४८ के पत्र में बच्चन जी को अनेक सूचनाएं भी लिख भेजी हैं। परन्तु अनेक कारणों से यह योजना आगे चलकर स्थगित हो गयी।

(iii) पुरस्कार-सम्मान :

पन्त जी को उनकी काव्य-कृति "कला और बूढ़ा चांद" पर सन् १९६१ में साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ।[4] और उनको "पद्मभूषण" से विभूषित किया गया। पर सन् १९६७ में अंग्रेजी विरोधी हिन्दी-आन्दोलन में उन्होंने "पद्मभूषण" की उपाधि छोड़ दी।[5] सन् १९६९ में उनको "चिदम्बरा" शीर्षक कृति पर भारतीय ज्ञानपीठ पुरस्कार प्रदान किया गया था। इस प्रकार पन्त जी हिन्दी साहित्य के जाज्वल्यमान कीर्ति-स्तम्भ थे।

(iv) बच्चन जी पर मुकदमा :

पन्त जी द्वारा बच्चन जी पर अदालत में मुक़दमा दायर करने की घटना

---

1. "निराला की साहित्य-साधना" (१९७६), पृ. १५८-५९।
2. -वही-, पृ. १६४।
3. "कवियों में सौम्य सन्त" (१९६०), पृ. ५६।
4. "पन्त के सौ पत्र" (१९७०), पृ. ७३।
5. "पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ २६५।

न केवल पन्त जी के जीवन की, वरन् हिन्दी पत्र-साहित्य के इतिहास की एक दुःखद घटना है। पन्त जी से बच्चन जी का परिचय—सन् १९२२ में हुआ था। दोनों में पर्याप्त घनिष्ठता रही है। पन्त जी प्रयाग में प्राय: बच्चन जी के यहां ही ठहरते थे। बच्चन जी ने जब उन पर "कवियों में सौम्य संत" शीर्षक पुस्तक प्रकाशित की, तब पन्त जी ने अपने एक पत्र में लिखा था—"तुम मेरी वाली पुस्तक का नाम "कवियों में सौम्य-संत" रख रहे हो ठीक ही है, जब मैं तुम पर लिखूंगा तब "संतों में सुमधुर कवि" रखूंगा।"[1] वे बच्चन जी के स्थायी गेस्ट बनकर रहना चाहते थे। परन्तु सन् १९६६ ई. से इन दोनों के सम्बन्धों में कुछ अन्तर आ गया। इन दोनों के सम्बन्धों में पहले जैसी मधुरता न रहने का एक कारण यह है कि "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" के १८ दिसम्बर १९६६ के अंक में "आर्थिक निश्चिन्तता और कला साधना" शीर्षक एक परिचर्चा प्रकाशित हुई थी जिसमें बच्चन जी ने पन्त जी पर अकारण ही आक्षेप किये थे। इस सम्बन्ध में पंत जी ने एक पत्र में लिखा है :—

"अपने वक्तव्य में तुमने अकारण ही मुझ पर आक्षेप किया है। ऐसी ही भ्रामक बातें "कवियों में सौम्य संत" में भी तुम लिख चुके हो। मैंने भी उसी निर्ममता के साथ उसका उत्तर लिखा है, अभी यह नहीं तय किया है कि उसे छपाने भेजूं या नहीं। शांता मना करती है, बहरहाल उत्तर मेरे पास लिखा रखा है।[2]

पंत जी और बच्चन जी के सम्बन्धों में अन्तर आ जाने का अन्य बड़ा कारण "पंत के दो सौ पत्र बच्चन के नाम" पुस्तक का प्रकाशित होना है। इस इस सम्बन्ध में डा. शांति जोशी ने अपनी पुस्तक "सुमित्रानन्दन पन्त : जीवन और साहित्य" में विस्तार से चर्चा की है। इसमें कहा गया है कि मई सन् १९७० में जब "पंत के सौ पत्र बच्चन के नाम" प्रकाशित हुए तो पंत थोड़ा परेशान हुए। उन्होंने बच्चन जी से कहा पर बच्चन जी की हठधर्मिता। लाचार होकर उन्होंने राजपाल प्रकाशन से कहा कि उनके पत्र बिना उन्हें दिखाए प्रकाशित न किये जायें। एक पत्र बच्चन जी को भी इस आशय का डाला।[3] इस बीच बच्चन जी ने "पंत के दो सौ पत्र" सन्मार्ग से छपवाकर पंत जी को दस प्रतियां भेंट स्वरूप भेज दीं। इससे पंत जी दुविधा में पड़ गये। वकीलों की राय ली गयी। नोटिस देने का फैसला हुआ। पंत जी ने सन् १९६० में जो अनुमति बच्चन जी को पत्रों के छपवाने की दी थी, वह २६-३-१९७१ के पत्र द्वारा वापस ले ली और लोकभारती से "दो सौ पत्र" की संशोधित कापी भेजी। जब पुस्तक

1. "कवियों में सौम्य सन्त" (१९६०), पृ. ११५।
2. "पंत के दो सौ पत्र," पृ. २४३-४४।
3. "सुमित्रानन्दन पन्त : जीवन और साहित्य" (भाग-२) (१९७७), पृ. ६२१।

संशोधित होती नहीं देखी, तब अदालत में मुकद्दमे की नौबत आ गयी।[1] आखिर २-८-१९७१ को पंत जी ने सन्मार्ग के प्रोप्राइटर प्रेमनाथ जी के नाम एक समझौता नामा लिखकर विवाद को समाप्त किया।

प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक ने बच्चन जी के पास पत्र भेज कर इस घटना पर प्रकाश डालने की प्रार्थना की। इस पर उन्होंने सूचित किया है कि—

"पंत के दो सौ पत्र मैंने प्रकाशित किये जिस रूप में वे लिखे गए थे। वे चाहते थे कि काट-छांटकर प्रकाशित किया जाय। मैं तैयार नहीं हुआ, इसलिए उन्होंने मुकद्दमा दायर कर दिया। पर अपना पक्ष कमज़ोर पाकर मुकद्दमा वापस ले लिया। पुस्तक उसी रूप में है जिसमें मैंने छपाई थी।"[2]

"आजकल" में प्रकाशित "दो कविता-पीढ़ियों का साक्षात्कार" में भी उन्होंने इसी प्रकार के विचार प्रकट करते हुए कहा है कि—"मैं तो एक वी. आई. पी. के पत्रों को हूबहू छपवाना चाहता था। क्योंकि मैं पत्र-साहित्य के महत्व को समझता था।"[3] इस प्रकार इस घटना से दोनों के स्नेहिल सम्बन्ध में दरार पड़ गयी।

(ख) चारित्रिक-विशेषताएं :

डा. निर्मल बख्शी ने पंत जी के व्यक्तित्व का रेखांकन करते हुए लिखा है—"सुमित्रानन्दन पंत का नाम लेते ही हृदय में ऐसी संश्लिष्ट भावना का चित्र अंकित हो जाता है जो कल्पना-सी-कोमल, भावुकता-सी मधुर, सुन्दरता-सी आकर्षक और चिन्तन-सी शांत एवं गम्भीर हो।"[4] पंत जी के पत्रों को पढ़ने पर हमारे मन पर ऐसा ही चित्र अंकित हो जाता है।

(i) सहृदयता :

पंत जी एक सुकुमार कवि और सहृदय व्यक्ति थे। साहित्यकारों और उनके परिजनों के प्रति उनके मन में विशेष सहानुभूति थी। बच्चन जी के नाम सन् १९६०-१९६२ के बीच लिखे पत्रों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि कांता भारती के प्रति उनके मन में अपार सहानुभूति थी।[5] इस प्रकार "शानी" की सहायता करने के लिए उन्होंने बच्चन जी को लिखा था:—

"शानी" एक ग़रीब किन्तु बड़ा प्रतिभा-सम्पन्न हिन्दी का कहानी-उपन्यास लेखक है—है तो मुसलमान पर लिखता हिन्दी में है।................ एक पुस्तक "शांत वनों का द्वीप" बस्तर के आदिवासियों के बारे में लिखी है जिसे वह राजपाल से छपवाना चाहता है। क्या तुम विश्वनाथ जी से पूछ

---

1. "सुमित्रानन्दन पन्त : जीवन और साहित्य" (भाग-२) (१९७७), पृ. ६२४।
2. बच्चन जी से प्राप्त एक व्यक्तिगत पत्र से।
3. "आजकल", नवम्बर १९७७, पृ. १७।
4. "पंत-साहित्य : आत्मकथात्मक परिदृश्य" (१९७७), पृ. ३६।
5. "पंत के सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७०), पृ. ३८,४८ तथा ५९।

सकते हो इस बारे में ?"[1]

इससे प्रकट होता है कि पन्त जी सुयोग्य व्यक्ति की सहायता करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे।

(ii) शालीनता :

पन्त जी प्रकृति से सरल और शालीन थे। "खादी के फूल" शीर्षक पुस्तक के सम्बन्ध में उन्होंने बच्चन जी को लिखा था:—"खादी के फूल" को यथावत् छपने दो। मैं भी चाहता हूँ कि यह सम्मिलित नामों में ही छपे और सम्पूर्ण पुस्तक की रायल्टी यथावत् तुम्हीं को मिले—वह तो केवल मेरे स्नेह का प्रतीक है।"[2]

एक अन्य पत्र में "रूपाम्वरा" पुस्तक के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है—

"श्री अज्ञेय जी के दो पत्र आ चुके हैं। वे राष्ट्रपति के हाथ से मुझे अपनी "रूपांबरा" भेंट कराना चाहते हैं—मुझे तो यह सब अनुचित लगता है।"[3]

(iii) विनोद-वृत्ति :

पंत जी का स्वभाव बड़ा विनोदी था। उनके विनोद में चातुर्य (wit) की मात्रा अधिक मिलती है। हिन्दी पत्र-साहित्य में बौद्धिक विनोद की दृष्टि से पन्त जी के पत्रों को सर्वोच्च स्थान दिया जा सकता है। वे नाना प्रकार से विनोद करने की कला में निपुण थे। जैसे—

बच्चन जी की "नागरगीता" पर अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए वे लिखते हैं—"तुम्हारी गीता का दुग्धामृत पान कर पूर्ण स्वस्थ हो जाऊंगा—जय हो व्यास महाराज की—पाय लागन।"[4]

मलूकदास के दोहे पर रचित मोहनलाल गुप्त की पैरोडी के सन्दर्भ में अपनी पैरोडी प्रस्तुत करते हुए दिनांक १९-५-६३ को बच्चन जी के नाम प्रेषित पत्र में उन्होंने अपनी विनोद-वृत्ति का सुन्दर परिचय दिया है। देखिए—

"............मोहनलाल गुप्त की पैरोडी पसंद आई—"नेता करैं न चाकरी, मंत्री करैं न काम"—पर मलूकदास के मूल दोहे का जो अर्थ तुमने लगाया है, वह मुझे ठीक नहीं जंचा। मुझे भी एक दोहा लिखने की प्रेरणा हुई है :

बच्चन करता चाकरी, तेजी करती काम
सहृदपंत कहते तभी सबके दाता राम।"[5]

---

1. "पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७१), पृ. ४१।
2. "पंत के सौ पत्र", पृ. ८८।
3. "पंत के सौ पत्र-बच्चन के नाम" (१९७०), पृ. २१।
4. "पंत के दो सौ पत्र-बच्चन के नाम' (१९७१), पृ.२३४।
5. "वही पृ. ७३,७४

इससे स्पष्ट है कि पन्त जी के पत्रों में व्यक्तिगत स्तर की किन्तु चातुर्य युक्त हँसी-ठिठोली पर्याप्त मात्रा में मिलती है ।

(ग) दृष्टिकोण :

पन्त जी की विचार-धारा पर युग और युग-विधायक विभूतियों का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है। परन्तु उनकी विचारधारा की चरम परिणति हमें उनके "लोकायतन" में मिलती है। पन्त जी ने बच्चन जी के नाम लिखे पत्रों में इस महाकाव्य की विस्तृत और विशद व्याख्या की है। इस महान् कृति के सम्बन्ध में उनका मत है कि—

"..........सारा लोकायतन ही मेरी अन्य रचनाओं से बहुत सरल है। मध्यबिन्दु (ज्ञान) लोकायतन की गीता है जिनमें मैंने उपनिषदों–वेदों के मंत्रों के मुख से मध्ययुगीन राख या सांप्रदायिक मतवादों की राख हटाकर आलोक के पावक को अपने मौलिक जाज्वल्यमान रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की है ।"[1]

इस प्रकार "लोकायतन का मुख्य आदर्श विश्व जीवन को अधिक परिपूर्ण और संस्कृत बनाना है । इस कृति पर अरविन्द-दर्शन का प्रभाव देखा जा सकता है । पन्त जी ने अपने पत्रों में इस महाकाव्य के महत्वपूर्ण अंशों की जिस ढंग से व्याख्या की है, उससे उनके भावक-व्यक्तित्व का स्पष्ट रूप से परिचय मिलता है । डा. सुरेशचन्द्र गुप्त के शब्दों में "कवि के आलोचना-सिद्धांतों का अपना पृथक् महत्व होता है। उनके अध्ययन से उसके व्यक्तित्व का आत्मीयतापूर्ण अध्ययन करने में अधिक सुविधा रहती है।"[2] इस दृष्टि से इन पत्रों का पृथक् महत्व है ।

पन्त जी के पत्र उनके कलात्मक व्यक्तित्व के दर्पण हैं। उनके पत्रों के अक्षर आर्टिस्टिक होते थे जिन्हें बिना अभ्यास किये समझा नहीं जा सकता। "निराला" जी ने उनके पत्रों की लिखावट के सम्बन्ध में उनके नाम एक पत्र में लिखा था—"आप मुक्ताओं से अक्षर लिखते थे, अब पत्र लिखने के समय ही आपको इतनी जल्दी रहती है । कहीं-कहीं मैं पढ़ भी नहीं सका ।"[3]

पन्त जी पत्रों में प्राय: सन् का संकेत नहीं करते थे। अपने पत्रों में अंग्रेजी के शब्दों और वाक्यों का भी वे प्रचुर प्रयोग करते थे। पत्रों की भाषा भावानुकूल और परिष्कृत है । वाक्य रचना में कहीं सादगी तो कहीं अलंकृति का स्पर्श भी मिलता है । उनके पत्रों की सबसे बड़ी विशेषता है—माधुर्यसिक्त व्यंग्य-विनोद । उनके सृजन, जीवन और व्यक्तित्व के जो महत्वपूर्ण सूत्र इन पत्रों में प्राप्त होते हैं; वे अन्यत्र दुर्लभ हैं ।

---

1. "पंत के दो सौ पत्र–बच्चन के नाम" (१९७१), पृ. १३२ ।
2. "आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धांत" (१९६०), विषय-प्रवेश, पृ. २३ ।
3. "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ. २५४ ।

८. यशपाल (१९०३-१९७६) :

यशपाल जी समाजवादी चेतना के साहित्यकार थे। वे हिन्दी कथा-साहित्य के ऐसे मोड़ पर उपस्थित हैं, जहां वे जीवन-यथार्थ को उसके सामाजिक सन्दर्भों में पेश करने के काम को आगे बढ़ाते हैं, जिसकी शुरुआत प्रेमचन्द जी ने अपनी मानवीय संलग्नता के साथ की थी।

(अ) यशपाल जी का पत्र-साहित्य :

यशपाल जी हिन्दी के उन पत्र-लेखकों में से थे जो आवश्यक पत्रों का यथाशीघ्र उत्तर देते थे। जब वे आँखों की बीमारी से बुरी तरह पीड़ित थे, तब भी उन्होंने पत्रों के उत्तर लिखने और पढ़कर सुनाने के लिए एक आदमी रख रख लिया था।[1] किसी कारणवश पत्रों के उत्तर में विलम्ब हो जाता तो वे पत्र में उसका स्पष्टीकरण देकर मित्रों को अन्यथा न लेने का अनुरोध करते थे।[2] देश-विदेश के अनेक साहित्यकारों से उनका पत्र-व्यवहार हुआ करता था। उनके पत्रो का एक स्वतंत्र संकलन मधुरेश के सम्पादकत्व में प्रकाशित हो चुका है। उनके अनेक महत्वपूर्ण पत्र शोध-प्रबन्धों के परिशिष्टों तथा पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध होते हैं।

"यशपाल के पत्र" शीर्षक पुस्तक में मधुरेश के नाम लिखे यशपाल के ७१ पत्र संकलित हैं। ये पत्र फरवरी १९५५ से शुरू होकर मई १९७६ को समाप्त होते हैं। इनमें से कुछ पत्र यशपाल जी के जीवनकाल में "माध्यम" में प्रकाशित हो चुके थे। इन पत्रों से गुज़रने के पूर्व हमें सम्पादक मधुरेश की लम्बी भूमिका से गुज़रना पड़ता है। जैसा कि डा. प्रेमशंकर ने कहा है, मधुरेश यशपाल को एक सहज मनुष्य के रूप में देखते पाते हैं—एक अकृत्रिम, खुला हुआ दरियाव-दिल व्यक्तित्व; मेहमानेबाजी में उनका जवाब नहीं, हर एक का खुले दिल से स्वागत-सत्कार; बेतकल्लुफ और खुशमिजाज।"[3] मधुरेश ने संग्रह की भूमिका में अपने नाम आये यशपाल जी के पत्रों की तुलना अन्य पत्र-संग्रहों में प्रकाशित पत्रों से करके इन पत्रों का वैशिष्ट्य भी प्रकट किया है। उनका मंतव्य है कि इन पत्रों को पढ़कर यशपाल के साहित्य को समझने में बेहिसाब मदद मिलती है। उन्होंने स्वीकार किया है कि इन पत्रों का स्तर गहरी आत्मीयता के संस्पर्श से प्रायः अछूता है। सम्बन्धों और भावनाओं का वैसा अपनापन भी इन पत्रों में नहीं है जैसा प्रेमचन्द के जैनेन्द्रकुमार को लिखे गये बहुत से पत्रों में है। लेकिन इन पत्रों

1. "यशपाल के पत्र" (१९७७), भूमिका, पृ २९।
2. "विश्वम्भर" "मानव" के नाम यशपाल जी का १४-३-१९७५ का पत्र :
"जिस समय आपका कार्ड आया, मैं सुदूर हरियाणा अम्बाला के पास बीमार पड़ा था। ....विश्वास है, पत्र के उत्तर में विलम्ब से अन्यथा न मानेंगे" ('लेखकों के पत्र", हिन्दुस्तानी, जुलाई-सितम्बर १९७६, पृ. ४२)
3. "समीक्षा" जनवरी-फरवरी, १९७९, पृ. २९।

में सहज और आत्मीय प्रसंगों का नितांत अभाव भी नहीं है।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित यशपाल जी का व्यक्तित्व :

यशपाल जी के साहित्यिक व्यक्तित्व के अतिरिक्त उनका निजी व्यक्तित्व और उनका क्रांतिकारी व्यक्तित्व भी उनके पत्रों में प्रतिबिम्बित हुआ है। उनके साहित्यिक व्यक्तित्व को समझने के लिए उनके निजी व्यक्तित्व और क्रांतिकारी व्यक्तित्व को समझना आवश्यक है।

(क) जीवनी-सूत्र :

यशपाल जी के निजी व्यक्तित्व तथा क्रांतिकारी व्यक्तित्व का रोचक वर्णन उनकी पुस्तक "सिंहावलोकन" में मिलता है। "सिंहावलोकन" उनके तथा उनके साथियों के क्रांतिकारी जीवन का रोचक इतिहास है। "सिंहावलोकन" के साथ इन पत्रों को जोड़कर हम निरन्तर सर्जनरत-कथाकार के वृत्त को पूरा कर सकते हैं। यशपाल जी ने दिनांक २२-२-१९५५ को मधुरेश के नाम पत्र में अपने क्रांतिकारी व्यक्तित्व का परिचय देते हुए लिखा है :—

"मैं स्वयं" हिन्दुस्तानी समाजवादी प्रजातंत्र सेना "अर्थात् भगतसिंह, आज़ाद आदि के सहयोगी के रूप में फ़रारी गुप्त जीवन बिताकर पुलिस से गोली भी चला चुका हूँ। वायसराय की ट्रेन के नीचे बम विस्फोट करने मुझे ही भेजा गया था।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि यशपाल जी ने अपनी पुस्तक "सिंहावलोकन" में जिन प्रसंगों की विस्तार से चर्चा की है, उनकी झलक यशपाल जी के पत्रों में भी यत्र-तत्र मिल जाती है।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

"यशपाल के पत्र" की भूमिका में मधुरेश यशपाल जी के व्यक्तित्व के मानवीय पक्ष को उजागर कर सकने में काफी सफल हुए हैं, जिससे यह बात साफ हो जाती है कि यदि व्यक्ति की निजी दुनिया और उसके लेखन में संवेदन का फासला बहुत ज़्यादा होगा तो रचना भारी छद्म का शिकार हो सकती है। लेखक को इन्सान भी तो बनना ही होगा।

(i) विनम्रता :

यशपाल जी के व्यक्तित्व की सबसे बड़ी विशेषता उनकी विनम्रता है। इस सम्बन्ध में मधुरेश ने लिखा है कि "यशपाल अपने स्वभाव के कारण प्रायः घर के नौकर को भी यह नहीं लगने देते कि वह नौकर है।"[2]

एक प्रसिद्ध और प्रतिष्ठित साहित्यकार होते हुए भी यशपाल जी अपने पाठकों और आलोचकों के सुयोग्य सुझावों तथा मंतव्यों का सदैव स्वागत करते

1. "यशपाल के पत्र" (१९७७), पृ. ४३।
2. "यशपाल के पत्र" (१९७७), पृ. २१।

थे। श्री मधुरेश ने उनकी "शकुन्तला" पुस्तक का नाम बदलने का सुझाव दिया था, जिसके उत्तर में उन्होंने लिखा है—

"आपने जिस पत्र में शकुन्तला के सम्बन्ध में विस्तार से लिखा है वह अभी तक ढूंढ़ नहीं सका हूँ। नाम के सम्बन्ध में "अप्सरा का श्राप" आपका सुझाव बहुत अच्छा लगा। "माया" में किश्त प्रकाशन से पूर्व मिलता तो नाम बदल देता। अब पुस्तक रूप में ही हो सकेगा।[1]

इस प्रकार यशपाल जी विनम्रता की प्रतिमूर्ति थे।

(ii) समयज्ञता :

यशपाल जी एक कर्मशील व्यक्ति थे। समय का मूल्य वे बराबर समझते थे। अतः वे बहसों में उलझकर अपना वक़्त ज़ाया करने के विरुद्ध थे। वे विवादों से प्रायः दूर रहते थे। मधुरेश को एक पत्र में वे लिखते हैं:—

"मैं स्वास्थ्य, विशेषकर आंखों के कष्ट के कारण बहुत कम लिखवा पाता हूँ, इसलिए विवाद से दूर ही रहना चाहता हूँ।"[2]

(iii) साहित्यिकों तथा उनकी कृतियों के प्रति समादर :

यशपाल जी के मन में साहित्यिकों और शोधार्थियों के प्रति समादर और सहानुभूति की भावना रहती थी। श्री महावीरमल लोढा ने अपने शोध-विषय "हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन" पर उनसे विचार-विमर्श करने की इच्छा प्रकट की थी जिसके उत्तर में उन्होंने लिखा था:—"आपने मुझसे जिस सहयोग की इच्छा प्रकट की है, आपके यहां आने पर सामर्थ्य और अवसर के अनुकूल उसके लिए अवश्य यत्न करूंगा।"[3]

यशपाल जी उनको प्राप्त भेंट पुस्तकें बड़े आदर के साथ अपने पास रखते थे। यदि कोई विशेष कार्य के लिए पुस्तक ले जाता तो काम पूरा होने पर पुस्तक लौटा देने का आग्रह करना वे न भूलते थे। इस सम्बन्ध में मधुरेश को लिखित एक पत्र का निम्नांकित अंश दृष्टव्य है:—

"..........अश्क जी की "सत्तर कहानियां" की प्रति, आपका काम पूरा हो जाए तो मुझे लौटा दें। चाहता हूँ, भेंट में प्राप्त पुस्तक मेरे पास रहे।"[4]

(ग) दृष्टिकोण :

यशपाल जी को सामान्यतया प्रेमचन्द जी की परम्परा का कथाकार समझा जाता है। इस सम्बन्ध में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए उन्होंने मधुरेश को लिखा है:—

---

1. "यशपाल के पत्र" (१९७७), पृ. ७१।
2. यशपाल के पत्र पृ. ४५।
3. "हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन" (१९७२), परिशिष्ट-ग, पृ. २९३
4. "यशपाल के पत्र" (१९७७), पृ. ४९।

"मैंने सचेत रूप में कभी प्रेमचन्द की परम्परा निभाने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर नहीं लिया। प्रेमचन्द की सप्रयोजन लिखने की प्रवृत्ति और कथा—कौशल का मेरे मन में बहुत आदर है। इसका प्रभाव मेरे ऊपर हो सकता है।…… ….उनके और मेरे आदर्शों में भेद स्पष्ट है। मेरे विचार में वह पाठक की सहृदयता को छूना चाहते हैं और मैं न्याय बुद्धि को।"[1]

एक अन्य पत्र में अपने दृष्टिकोण के विषय में उन्होंने लिखा है कि— "यह कहना बहुत कठिन है कि कौन एक उपन्यास मेरे दृष्किोण को पूर्णतः प्रस्तुत करता है। कहना ही है तो सिद्धांत रूप में "दिव्या" और "अमिता" को समझ लीजिए। आधुनिक जीवन के सन्दर्भ में "झूठा-सच" को कहा जा सकता है।"[2]

इस प्रकार ये पत्र यशपाल जी के व्यक्तित्व के कई सूत्र खोलते हैं।

९. डा. वासुदेवशरण अग्रवाल (१९०४–१९६६):

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय संस्कृति के अन्यतम व्याख्याता और अपने समय के धुरंधर विद्वान् थे। श्री कृष्णानन्द गुप्त ने उनकी गणना कपिल और कणाद की कोटि के विद्वानों में की है।[3] वेद, पुराण, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, व्याकरण, आदि साहित्य पर उन्होंने अपने मूल्यवान विचार और निष्कर्ष प्रस्तुत किये हैं। उनके पत्रों में भी हमें उनके प्रतिभासम्पन्न व्यक्तित्व का दर्शन होता है।

(अ) डा. अग्रवाल का पत्र-साहित्य:

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल एक उच्च कोटि के पत्र-लेखक थे। पत्र-लेखन उनका प्रिय विषय था। मित्रों को पत्रों के उत्तर देने के लिए वे दो से तीन दिन का उपवास भी कर लेते थे।[4] पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम प्रेषित एक पत्र में उन्होंने लिखा है:—

"……… मुझे तो डाक का रोग है। पत्रों से रस चूसता हूँ।"[5]

डा. अग्रवाल के कुछ महत्वपूर्ण पत्र उनके जीवनकाल में ही पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने प्रकाशित किये थे। उनके देहावसान के बाद चतुर्वेदी जी बाबू वृन्दावनदास को डा. अग्रवाल द्वारा विभिन्न विद्वानों को लिखे गये पत्र एकत्र करने की प्रेरणा देते रहे। बाबू वृन्दावनदास ने बड़े परिश्रम से डा. अग्रवाल के पत्र

---

1. यशपाल के पत्र पृ. ४८।
2. —वही—, पृ. ६४।
3. "ज्ञानमूर्ति आचार्य वासुदेवशरण अग्रवाल" (१९७४), संपा. कृष्णवल्लभ द्विवेदी, पृ. १०१।
4. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), भूमिका, पृ. १५।
5. —वही—, पृ. १९०।

एकत्रित किये और सन् १९७४ ई. में "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" शीर्षक से उन्हें प्रकाशित किया।

"डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" शीर्षक संग्रह में डा. अग्रवाल द्वारा श्री कृष्णानन्द गुप्त, अगरचन्द नाहटा, बनारसीदास चतुर्वेदी, डा. सत्येन्द्र, प्रभुदयाल मीतल आदि विद्वानों को लिखे गये ३०२ पत्र संकलित हैं। इन पत्रों में जनपदीय जीवन के सूक्ष्म अध्ययन पर सर्वाधिक बल दिया गया है। पुस्तक के अंत में ६ निबन्धों द्वारा डा. अग्रवाल की विचारधारा और शैली सम्बन्धी विशेषताओं का परिचय कराया गया है। डा. अग्रवाल एक सच्चे पृथ्वी-पुत्र थे। उनका ऋषिकल्प व्यक्तित्व इन पत्रों में स्पष्ट रूप से अंकित है।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित डा. अग्रवाल का व्यक्तित्व :

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र हिन्दी साहित्य की अनमोल निधि हैं। डा. अग्रवाल के अध्ययन की सुवास और उनके व्यक्तित्व की ऋजुता इन पत्रों में खूब झलकती है।

(क) जीवनी-सूत्र :

डा. अग्रवाल जीवन भर प्रसिद्धि और आत्म-विज्ञापन से दूर रहे, किन्तु अपनी मृत्यु के कुछ मास पूर्व उन्होंने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को ऐसे दो पत्र लिखे जिनमें उन्होंने दिल खोलकर अपने व्यक्तिगत जीवन की चर्चा की है। ये पत्र एक तरह से उनकी संक्षिप्त आत्मकथा ही हैं। दिनांक ९-६-१९६६ को लिखे पत्र में अपने जन्मकाल, जन्मस्थान, पितामह के व्यक्तित्व आदि के सम्बन्ध में उन्होंने लिखा है :—

"मेरा जन्म १९०४ में मेरठ जिले के खेड़ा नामक गांव में हुआ। मेरे पितामह ठेठ गाँव के व्यक्ति थे। उनकी शिक्षा लगभग नहीं के बराबर थी। थोड़ी हिन्दी पढ़ लेते थे और अपना हिसाब-किताब मुड़िया में लिखा करते थे। पर वे अत्यन्त प्रखर बुद्धि के पुरुष थे। सत्य और न्याय में उनकी बड़ी निष्ठा थी। सन् ४० तक लगभग दो मास प्रति वर्ष मैं उनके पास रहा करता था।"[1]

अपनी शिक्षा आदि के बारे में डा. अग्रवाल ने इसी पत्र में लिखा है :—

"मेरी शिक्षा का आरम्भ देहाती मदर्से में हुआ। अपने पितामह की कुशाग्र बुद्धि और उत्तम स्मृति मुझे विरासत में मिली। मेरे पिता जी ५ भाई थे। घर भर में कुछ अंग्रेजी पढ़ने का संयोग उन्हें ही मिला। जब वे सन् १९१२ में लखनऊ में नौकरी और व्यापार के सिलसिले में गये तो मेरी शिक्षा का क्रम ठीक से चल निकला। हमारे देश में जितनी शिक्षा कोई पा सकता है, वह सब पिताजी ने मेरे लिये सुलभ कर दी। हाई स्कूल, इण्टर, बी. ए., एम. ए., पी.-एच. डी., डी. लिट्. तक की सीढ़ियां मैंने पार कर लीं।"[2]

1. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ. २८९।
2. -वही-

इस प्रकार डा. अग्रवाल के पत्रों में उनकी जीवनी-विषयक तथ्य सहज रूप से उपलब्ध हो जाते हैं।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

डा.वासुदेवशरण अग्रवाल भारतीय संस्कृति के ज्योतिर्धर थे । ज्ञान की आराधना उनके जीवन का व्रत थी। उनके पत्रों में उनका महिमामंडित व्यक्तित्व पूर्णतः प्रकट होता है ।

(i) अध्ययनशील :

अध्ययन और मनन डा. अग्रवाल के श्वास-प्रश्वास थे। पुरातत्व, इतिहास, पुराण, साहित्य, लोकभाषा आदि अनेक विषयों में वे केवल रुचि ही नहीं रखते थे, वरन् उनको सदा नवीन शोधों से अग्रसर करते रहते थे। श्री कृष्णानन्द गुप्त के नाम लिखे उनके पत्रों में हमें लोकवार्ता के सम्बन्ध में उनके गहन अध्ययन का परिचय मिलता है। २३-३-१९४४ के पत्र में उन्होंने कहा है—"लोक वार्त्ता एक जीवित शास्त्र है। सहानुभूति के साथ उसका अध्ययन अपनी संस्कृति के भूले हुए पथों का उद्घाटन कर सकता है।"[1] अगरचन्द नाहटा के नाम लिखे पत्रों से पता चलता है कि डा. अग्रवाल को जैन-साहित्य में बड़ी रुचि थी। उन्होंने श्री नाहटा की सहायता से जैन-साहित्य की विभिन्न शाखाओं का अध्ययन किया और श्री नाहटा से जैन साहित्य पर अनेक लेख लिखवाकर यू. पी. हिस्टॉरिकल सोसाइटी के जर्नल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, लोकवार्त्ता आदि में प्रकाशित करा दिये। इस प्रकार डा. अग्रवाल के पत्रों में उनके अध्ययन, मनन और चिन्तन की स्पष्ट छाप मिलती है।

(ii) शब्दों से अपूर्व अनुराग :

डा. अग्रवाल को शब्दों से अपूर्व अनुराग था। लोकभाषा के नये शब्द पाकर उन्हें जैसे निधि मिल जाती थी। श्री रामचन्द्र वर्मा जी के नाम उन्होंने शब्द-कोश-रचना के सम्बन्ध में एक लम्बा पत्र भेजा था। उसमें उन्होंने लिखा है कि—"प्रत्येक पेशे के सैंकड़ों शब्द भाषा में भरे हैं जो कोशकार से बचे रहते हैं।.... ....शब्दों की व्युत्पत्ति, उनके विकास और बनने के निश्चित नियम हैं।"[2] पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखित एक पत्र में उन्होंने सुझाव दिया है कि—

"स्थूल भौतिक जगत् मानो हमारे साहित्य-सेवियों से भरा हुआ है। उसे शब्दों के द्वारा कस कर पकड़ने की आवश्यकता है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति को दो-दो हजार नये नाम और शब्द जनपद-साहित्य से सीखने के लिए तैयार हो जाना चाहिए।"[3]

---

1. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ. ३५।
2. -वही-, पृ. १८४-८५।
3. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ. १६०।

इससे स्पष्ट होता है कि डा. अग्रवाल शब्दों के इतिहास के धनी थे।

(iii) संयम और तपस्या :

डा. अग्रवाल संयम और तपस्या की मूर्ति थे। भारतीय संस्कृति तथा साहित्य के नवनिर्माण के महायज्ञ के लिए उन्होंने अपने शरीर, मन और प्राण से हवन किया। उनके संयम-सम्बन्धी विचारों को पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम २०-४-१९४४ को लिखे पत्र के निम्नांकित अंश में देखिए —

"मैं भी मनुष्य हूँ, मन वाला हूँ। जहां मन है वहां मनसिज है। मानस जन्मा काम को वश में करना बुद्धि और मन के धरातल को ऊंचा उठाने की पहली सीढ़ी है, ऐसा मेरे आप्त पुरुषों ने मुझे बताया है।"[1] इस प्रकार डा. अग्रवाल संयम और तप के बल पर ही भारतीय संस्कृति और साहित्य की सेवा-साधना में सफल हुए थे।

(iv) प्रकृति-प्रेम :

प्रकृति का दर्शन और खेतों की सैर डा. अग्रवाल के लिए जीवित साहित्य या सशरीर अष्टाध्यायी की सैर थी। उनके पत्रों में अनेक स्थानों पर उनका प्रकृति-प्रेम मूर्तिमंत हो उठा है। जैसे, यमुना की वेगवती धारा का यह चित्र देखिए—

"प्रिय चतुर्वेदी जी,

रात के १० बजे हैं। यमुना की वेगवती धारा सामने बह रही है। उसकी कल-कल ध्वनि बरबस अपनी ओर ध्यान खींचती है। प्रकृति का कैसा सुन्दर क्रीड़ास्थल इस उपत्यका की गोद में है।"[2] निःसन्देह ही डा. अग्रवाल प्रकृति के प्रेमी थे, प्राकृतिक जीवन के पक्षपाती थे।

(ग) दृष्टिकोण :

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ज्ञान के एकनिष्ठ साधक थे। अहर्निश अध्ययन और लेखन ही उनकी दिन-चर्या थी। साहित्य के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण प्रकट करते हुए उन्होंने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा है:—

"यों तो साहित्य का क्षेत्र बहुत विशाल है पर किसी भी भाषा के निखिल वाङ्मय के तीन भाग किये जा सकते हैं। प्रत्येक लेखक इन्हें ध्यान में रखकर अपने-अपने विषयों का और कार्यक्षेत्र का वर्गीकरण कर सकता है। ये तीन विभाग मौलिक हैं। और प्रत्येक जाति की सभ्यता में पाये जाते हैं। संक्षेप में उनका सूत्र यह है—पृथिवी, जन, ज्ञान, अर्थात् —

1 पृथिवी और उसका भौतिक रूप,

2 पृथिवी पर बसने वाला जन समुदाय,

3 उस जन का मानसिक चिंतन अथवा ज्ञान-दृष्टि।

1. डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र, पृ. १५२।
2. —वही—, पृ. १०४-१०५।

प्राचीन परिभाषा में कहें तो पृथिवी के भौतिकरूप के अध्ययन को देवऋण, पृथिवी के भौतिक तल पर बसने वाले जन के अध्ययन को पितृऋण और जन की ज्ञान-साधना के अध्ययन को ऋषि-ऋण कह सकते हैं। इन तीन ऋणों का उद्धार ही साहित्यिक का उद्देश्य होना चाहिए।[1]

इस प्रकार डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों में एक सच्चे साधक और साहित्य-सेवी का व्यक्तित्व सर्वत्र अपनी प्रभा बिखेरता है। अपनी सशक्त लेखनी तथा मौलिक चिन्तन-धारा के कारण डा. अग्रवाल का हिन्दी पत्र-साहित्य में विशिष्ट स्थान है। वे हिन्दी के एक महान् पत्र-लेखक थे। जो विषय उनके सामने होता, उस पर वे पूर्ण तन्मयता से विचार करते और जो कुछ उनकी समझ में आता, उसे वे पूर्ण ईमानदारी के साथ लिख देते थे। यही कारण है कि उनके पत्र हृदय को छू जाते हैं। उनका एक-एक पत्र, साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है, उसमें अपूर्व शोध-सामग्री निहित है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे उनके पत्र वस्तुतः जनपदीय आंदोलन के विश्वकोश हैं।[2] अतः हिन्दी पत्र-साहित्य में इन पत्रों का पृथक् महत्व है।

१० बाबू वृन्दावनदास (१९०६ ई.) :

बाबू वृन्दावनदास ब्रज की विभूति हैं। वे अच्छे लेखक ही नहीं हैं, साहित्यिक संगठनों के लिए भी जी-जान से कार्य करनेवाले कुशल संगठक भी हैं। विविध प्रकार की साहित्यिक सेवाओं के कारण उनका जन-सम्पर्क बहुत बढ़ गया है और पत्र-व्यवहार द्वारा वे उसको करते रहते हैं। वे एक अच्छे पत्र-लेखक भी हैं और उत्तम पत्र-संग्राहक भी।

(अ) बाबू वृन्दावनदास का पत्र-साहित्य :

ब्रज-साहित्य एवं संस्कृति के साथ-साथ हिन्दी के निष्ठावान उन्नायक बाबू वृन्दावनदास वस्तुतः "व्यक्ति में संस्था" हैं। आज सम्पूर्ण हिन्दी-जगत् उनकी हिन्दी सेवा के प्रति विनत हैं। उन्होंने महान् संस्कृति-सेवी डा. वासुदेवशरण अग्रवाल एवं लब्धप्रतिष्ठ साहित्य-सेवी पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्रों का सम्पादन करके हिन्दी पत्र-साहित्य के विकास में बहुमूल्य योगदान दिया है। श्री रमण शांडिल्य ने "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" शीर्षक पुस्तक में बाबू जी के विशिष्ट पत्रों का सम्पादन करके स्तुत्य कार्य किया है।

बाबू वृन्दावनदास हिन्दी के उन साहित्य-सेवियों में हैं जो प्रायः सभी पत्रों का अविलम्ब उत्तर देते हैं। उक्त पत्र-संग्रह में हिन्दी के ७२ लेखकों के नाम बाबूजी के ४९१ पत्र संकलित हैं। इनमें कई लेखक बहुत ही प्रसिद्ध हैं। जैसे—श्री अगरचन्द नाहटा, कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर, पं. बनारसीदास

---

1. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ. १३४-३५।
2. —वही—, पृ. २२।

चतुर्वेदी, डा. कन्हैयालाल सहल, कुबेरनाथ राय, कृष्णानन्द गुप्त, पं. गणेश चौबे, रामनारायण उपाध्याय आदि। साथ ही प्रसिद्ध सोवियत विद्वान् डा. वी. एन. चैर्निशेव के नाम जो १६ पत्र हैं, वे अपने आप में एक महत्वपूर्ण दस्तावेज हैं। कारण यह है कि डा. चैर्निशेव ने समय-समय पर उनसे कुछ प्रश्न किये हैं जिनका बाबूजी ने बड़ा विस्तृत उत्तर दिया है। प्रस्तुत संग्रह के अनेक पत्रों में लोक-साहित्य, ब्रज-साहित्य, कला, संस्कृति एवं दर्शन, हिन्दी के विषय में विचार, प्रादेशिक भाषाओं के सम्बन्ध में हिन्दी एवं पत्रकारिता आदि विभिन्न दिशाओं में गम्भीर चिन्तन से परिपूर्ण पत्र भी हैं और ऐसे साहित्यकारों के अंतरंग का परिचय देनेवाले पत्र भी, जिन्हें "समकालीन इतिहास के दस्तावेज़" कहा जाना न्यायोचित ही है। लगभग एक दशक के अन्तराल में फैले बाबू जी के पत्रों से अनेक अछूत प्रसंगों का पता प्रथम बार हिन्दी जगत् को चला है।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित बाबू वृन्दावनदास का व्यक्तित्व :

हिन्दी के अनन्य उपासक, सफल सम्पादक, कुशल संगठक और साहित्य के प्रेरक साधक बाबू वृन्दावनदास के व्यक्तित्व की गणना उन साहित्य-सेवियों में की जा सकती है जिनका समग्र जीवन, साहित्य और संस्कृति की पुनीत सेवा के लिए समर्पित हो चुका है।

(क) जीवनी-सूत्र :

साहित्य वारिधि बाबू वृन्दावनदास के जीवन की झांकी वस्तुतः कर्मण्य साहित्य-सेवारत व्यक्तित्व का विवरण है। यों तो उनके कर्मण्य जीवन के विविध आयाम हैं, किन्तु मौन साधक रूप में उनका साहित्यिक व्यक्तित्व ही उनके पत्रों में मुखर होता है। उन्होंने अपने पत्रों में कहीं-कहीं अपने बाल्यकाल पर प्रकाश डाला है। डा. अम्बाप्रसाद "सुमन" ने अपने एक पत्र में उनसे प्रश्न किया था कि उनको लिखने की प्रेरणा कहां और कैसे प्राप्त हुई। इसके उत्तर में उन्होंने लिखा है—

"हमारे पितामह स्वर्गीय लाला श्यामलाल जी मथुरास्थ श्यामकाशी प्रेस के संस्थापक थे। इस प्रेस से लगभग ४०० प्रकाशन निकाले थे।…………मैं और मुझ से दो वर्ष छोटे भाई कुंजलाल अपने पितामह के पास प्रेस में रहते और सोते थे।…… ……पितामह के नियंत्रण के कारण हम लोग गली, मुहल्ले अथवा बाजार में घूमने के बजाय प्रेस में ही अधिक रहते, वहां खुली जगह थी, पेड़ और गमले भी थे, वहीं खेलते और खेलते-खेलते थक जाते तो पुस्तकों के अथाह महासागर में गोते लगाते रहते। अनेक प्रकार की पुस्तकें पढ़ने का शौक बचपन से ही लग गया था। घण्टों तक पुस्तकें पढ़ते रहते। मुझे इतिहास सम्बन्धी पुस्तकें पढ़ने का शौक था। यही कारण है कि इतिहास मेरा बी.ए. तक खास विषय रहा। यदि एम.ए. करता तो भी शायद इतिहास में ही करता। बचपन से पुस्तक पढ़ते-पढ़ते मेरे मन में भावना आती कि मैं भी पुस्तक लिखूं या कम से कम लेख तो लिखूं ही।…… ……आपको आश्चर्य होगा की दस वर्ष की

अवस्था में मैंने बाल-सुलभ प्रयास के रूप में कहानी या संगीत लिख डाला था। कालेज पहुँचकर तो मैंने पत्रिका के लिए लेख लिखे और जब छप गये तो उत्साह का ठिकाना न रहा।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि बाबूजी को बचपन से ही ऐसा वातावरण प्राप्त हुआ था जिससे उनकी अध्ययन और लेखन की प्रवृत्ति को प्रोत्साहन मिला।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

बाबू वृन्दावनदास कथनी की अपेक्षा करनी के पक्षपोषक हैं। उनके पत्रों में उनके चरित्र के विविध पक्षों का उद्‌घाटन हुआ है। यहां कुछ प्रमुख पक्षों की झांकी प्रस्तुत की जाती है।

(i) स्वाध्याय और लेखन :

जैसा कि ऊपर कहा गया है, बाबू वृन्दावनदास को बचपन से ही पुस्तकें पढ़ने और लेख लिखने का शौक था। डा. सत्येन्द्र उनको मूलतः लेखक मानते हैं—अध्ययनशील लेखक।[2] डा. रामशंकर द्विवेदी को अपनी अल्पाक्षर विशिष्ट शैली का रहस्य बतलाते हुए उन्होंने १६-११-१९७० को प्रेषित पत्र में लिखा है—

"बाल्यकाल से ही मैं चिन्तनशील रहा हूँ। मेरा मस्तिष्क समस्याओं में उलझा रहता है। चिन्तन-जन्य तड़पन मुझे कुछ कहने को बाध्य करती है। दस वर्ष पहले अनेक दशकों तक मैं अंग्रेजी के दैनिक समाचार पत्रों में Letters to the Editor स्तम्भ के अन्तर्गत अपने पत्र मुद्रणार्थ भेजता रहा। यह अविकल पत्र-धारा अनेक वर्षों तक प्रवाहित रही। सहस्रों पत्रों की कतरनें मेरे पास सुरक्षित हैं।"[3]

इस प्रकार स्वाध्याय और लेखन बाबूजी के जीवन की मुख्य प्रवृत्ति रही हैं।

(ii) उदारता और गुणग्राहकता :

बाबू वृन्दावनदास के पत्रों में उनकी उदारता और गुणग्राहकता स्पष्ट रूप से झलकती है। वे जिन लोगों से प्रभावित होते हैं, उनकी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते हैं। श्री अनिलकुमार राय आंजनेय के नाम पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिखा है :

"एक बात मैं आपसे कह दूं, प्रशंसा करने में मुझे किसी प्रकार का भय भी नहीं है। पात्रता की सराहना गुण ग्राहकता का प्रथम सोपान है। उसकी उपेक्षा एक

1. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ. ४६-४७।
2. "भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य" (१९७०), वृन्दावनदास, भूमिका।
3. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र," पृ. १७७-७८।

प्रकार की अवहेलना है जो कदापि वांछनीय नहीं।"[1]

इस प्रकार बाबू जी उदारमना एवं गुणग्राही साहित्यिक हैं।

(iii) अन्तर्जनपदीय आन्दोलन की प्रवृत्ति :

बाबू वृन्दावनदास अन्तर्जनपदीय आन्दोलन के प्रकाश-स्तम्भ हैं।[2] उनका विचार है कि प्रत्येक जन पद की एक आत्मा होती है। अतः लोक-साहित्य, भारतीय संस्कृति एवं देशोन्नति के उन्नयन का मार्ग प्रशस्त करने के हेतु जन पद की आत्मा को जगाना अनिवार्य है। इस सम्बन्ध में उनके दो पत्रों के अंश यहां हम उद्धृत करते हैं :

"मैं चाहता हूं कि अन्तर्जनपदीय परिषद को पुनर्जीवित कर उसे सक्रिय बनाया जाय।"[3]

"लोक साहित्य पर अधिकाधिक काम किस प्रकार हो, जनपदीय आंदोलन को किस प्रकार आगे बढ़ाया जाय, इन सब पर आप जैसे मर्मज्ञों से ही विचार विमर्श कर चला जा सकता है।"[4]

(iv) हिन्दी की सेवा :

बाबू वृन्दावनदास हिन्दी के अनन्य उपासक हैं। हिन्दी के प्रति उनके हृदय में अगाध अनुराग है। वे हिन्दी को यथोचित प्रतिष्ठा दिलाने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं। डा. रामशंकर द्विवेदी को वे लिखते हैं—आजकल मेरा अधिकांश समय ब्रजभाषा और हिन्दी (जिन्हें मैं एक समझता हूं) की सेवा के लिए ही अर्पित है।"[5] इसी प्रकार श्री हरिश्चन्द्र सिंघल के नाम लिखे पत्र में वे कहते हैं—"हिन्दी सेवा को मैं सर्वाधिक पुण्य कार्य मानता हूं।................ आपने हमलोगों को हिन्दी सेवा के मिशन में जो उल्लेखनीय सहयोग किया है, वह तो सदैव स्मरणीय रहेगा।"[6] इससे प्रकट होता है कि बाबूजी का हिन्दी प्रेम अद्वितीय एवं अनुकरणीय है।

(ग) दृष्टिकोण :

बाबू वृन्दावनदास बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न सत्पुरुष हैं। साहित्य-साधना उनके जीवन का लक्ष्य है। साहित्य के सम्बन्ध में उनका विचार है—

"साहित्य का साहित्यकार से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। साहित्यकार के मनोभावों की अभिव्यक्ति का नाम ही साहित्य है, स्थिति के इस सन्दर्भ में स्वयं

1. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ. २६५।
2. "बाबू वृन्दावनदास : एक समर्पित व्यक्तित्व", वृत्तांत, ४ अक्टूबर १९७५।
3. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र", पृ. ९५।
4. —वही—, पृ. १५९।
5. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ. १७७।
6. —वही—, पृ. २२२।

साहित्यकार साहित्य से भी अधिक महत्वपूर्ण है।[1]

पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में उनकी मान्यता है कि :

"पत्र-लेखन एक स्वान्त: सुखाय प्रक्रिया है। जब तक लेखक का मन न होगा, वह कभी पत्र न लिखेगा। किसी काम को पूरा कर लेने के बाद जो प्रसन्नता होती है, वह पत्र लिखने के बाद सुलभ हो जाती है। लेख या निबन्ध लिखने में भेद है। लेख या निबन्ध लिखना समय एवं श्रम साध्य है अतः उसकी समाप्ति पर जो सुख होता है, वह बड़ी देर में प्राप्त होता है जबकि पत्र लिखकर तत्काल ही वह प्राप्त हो जाता है। यही कारण है कि अनेक चिन्तनशील विद्वान् अपने भावों की अभिव्यक्ति की छटपटाहट को पत्र लेखन द्वारा शान्त करते रहते हैं।"[2]

इस प्रकार बाबू वृन्दावनदास एक सफल पत्र-लेखक हैं। उन्होंने अपने पत्रों के द्वारा हिन्दी की अनेक योजनाओं को प्राणान्वित किया है। पत्र-विधा की समृद्धि में उनका योग चिर स्मरणीय रहेगा।

११. डा. हरिवंशराय बच्चन (१९०७ ई.) :

डा. हरिवंशराय बच्चन आधुनिक हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि और सशक्त गद्यकार हैं। वे हिन्दी के उन थोड़े-से कवियों में हैं जिनका जीवन और साहित्य बहुत दूर तक समानान्तर चलता रहा है। वे एक उच्चकोटि के पत्र-लेखक और पत्र-साहित्य मर्मज्ञ मनीषी हैं।

(अ) बच्चन जी का पत्र-साहित्य :

आधुनिक हिन्दी साहित्यकारों में आवश्यक पत्रों का तत्काल उत्तर देने में बच्चन जी का स्थान सर्वोच्च है। "साप्ताहिक हिन्दुस्तान" में "साहित्यकारों की डाक" शीर्षक से प्रकाशित परिचर्चा में उन्होंने बताया है कि—"मुझे प्रतिमास सौ पत्र मिलते हैं। मैं प्रायः सभी पत्रों का उत्तर देता हूँ।"[3]

बच्चन जी अपने एक-एक मित्र को, चाहे वह उनका हमउम्र हो या उनका प्रिय शिष्य या जिज्ञासु शोधार्थी, हर बात इतना सहेज सहेज कर विस्तारपूर्वक लिखते हैं कि आश्चर्य होता है। एक साक्षात्कार में उन्होंने अपने इस सिद्धांत पर प्रकाश डालते हुए कहा है—

"............चिट्ठियां तो ये हैं कि मैं समझता हूँ एक आदमी हमारे दरवाजे पर दस्तक जब दे रहा है, तो उसके लिए भाई, दरवाजा खोल देना चाहिए। बस इतना ही मैं समझता हूँ जब कहीं से कोई याद करता है। तो मैंने यह प्रिंसिपल हमेशा रखा चिट्ठियों के बारे में ......"[4]

1. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र," (१९७८) पृ. ११३.।
2. —वही—, पृ. ४४।
3. "साप्ताहिक हिन्दुस्तान", ८ फरवरी, १९७०, पृ. ३३।
4. "(क) गद्यकार बच्चन" (१९६७), डा. जीवन प्रकाश जोशी, पृ. २६३।
   (ख) टूटी-छूटी कड़ियाँ (१९७३), बच्चन, पत्र-परिचर्चा-एक पृ. १२५।

इससे स्पष्ट है कि बच्चन जी ने अपनी सुदीर्घ साहित्य-यात्रा में सहस्रों पत्र लिखे हैं। उनके पत्रों को सर्वप्रथम पुस्तकाकार प्रकाशित करने का श्रेय डा. जीवनप्रकाश जोशी को है। डा. जोशी के संपादकत्व में सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली से "बच्चन : पत्रों में" शीर्षक से प्रकाशित पत्र-संग्रह में बच्चन जी द्वारा डा. जोशी के नाम लिखित १०५ पत्र संकलित हैं। प्रस्तुत संग्रह में "प्रश्न पत्रोत्तर" के अन्तर्गत बच्चन जी के १५ ऐसे पत्र भी प्रकाशित हैं, जिनमें उनके जीवन, सृजन और व्यक्तित्व के प्रामाणिक सूत्र प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्रस्तुत संग्रह अपने आकार प्रकार में हिन्दी की ऐसी पहली पुस्तक है जिसमें बच्चन जी के क्रमवार, एक ही व्यक्ति के नाम, लिखे गये इतने पत्र संचित हैं और जिन्हें सोचकर कभी नहीं लिखा और भेजा गया था कि वे पुस्तक रूप में भी कभी छपेंगे। अतः इन पत्रों का महत्व साहित्य, पुस्तक और प्रकाशन की दृष्टि से होने के अतिरिक्त इस दृष्टि से भी विशेष है कि ये ऐसे पत्र हैं जिनमें कवि बच्चन गौण हैं, घरेलू सामाजिक सहृदय व्यक्ति—बच्चन प्रधान हैं।

बच्चन जी के पत्रों का दूसरा स्वतंत्र संग्रह श्री निरंकारदेव सेवक की सम्पादकता में राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली से प्रकाशित हुआ है जिसमें श्री सेवक के नाम लिखे बच्चन जी के ७० पत्र संकलित हैं। इन पत्रों में बच्चन जी के तीस से अधिक वर्षों के जीवन की अंतरंग झांकी मिलती है। ये पत्र बच्चन जी की साधनावस्था में लिखे गये हैं, अतः उनके जीवन-संघर्ष एवं अन्तर्द्वन्द्व का इनमें अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट चित्र अंकित हुआ है।

उक्त दो पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त बच्चन जी की षष्टि-पूर्ति पर प्रकाशित "बच्चन : निकट से" शीर्षक पुस्तक में डा. श्यामसुन्दर घोष के नाम लिखे बच्चन जी के कुछ पत्र प्रकाशित हुए हैं। श्री विश्वम्भर "मानव" ने अपने नाम आये बच्चन जी के कुछ पत्र "हिन्दुस्तानी" में प्रकाशित किये हैं। इसी प्रकार चन्द्रदेव सिंह के नाम लिखे बच्चन जी के कुछ पत्र "बच्चन : कुछ चिट्ठियां" शीर्षक से माध्यम में प्रकाशित हुए हैं। इसके अतिरिक्त "छूटी-छूटी कड़ियाँ" में पत्र-परिचर्चा-एक से दस में विभिन्न लेखकों के प्रश्नों के उत्तर पत्र द्वारा दिये गए हैं। इस प्रकार बच्चन जी का प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाश में आ चुका है।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित बच्चन जी का व्यक्तित्व :

बच्चन जी के बहुमुखी व्यक्तित्व के सम्बन्ध में "बच्चन : व्यक्तित्व और कृतित्व", "बच्चन निकट से" जैसी किताबों में खूब चर्चा हो चुकी है, तथापि उनको सही-सही और साफ-साफ समझने-जानने की ज़रूरत बनी रही है। इस आवश्यकता की पूर्ति उनके पत्रों से हो सकती है।

(क) जीवनी-सूत्र :

बच्चन जी की जीवनी के महत्वपूर्ण सूत्र डा. जीवनप्रकाश जोशी द्वारा सम्पादित "बच्चन : पत्रों में" शीर्षक संग्रह में क्रमबद्ध रूप में प्राप्त होते हैं। इस

संग्रह के "प्रश्न : पत्रोत्तर" में बच्चन जी की जाति, कुल परम्परा, जन्मस्थान, परिवार, स्व. श्यामा जी से विवाह, पहली कविता, "मधुशाला" के प्रतीक, आदि के विषय में विस्तार से जानकारी प्राप्त होती है। इस संग्रह के सम्पादक डा. जोशी ने प्रस्तुत प्रबन्ध के लेखक को पत्र द्वारा सूचित किया है कि—"प्रश्न : पत्रोत्तर" में जो कुछ बच्चन जी ने लिखा है, वह एक दम नया है। पहले कहीं नहीं छपा। उसी का कुछ आधार लेकर उन्होंने अपना जीवन-चरित लिखा है।[1] इस दृष्टि से इन पत्रों को बच्चन जी के आत्म-चरित की स्रोत-सामग्री कहा जा सकता है।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

बच्चन जी के पत्रों में उनका कवि-व्यक्ति अपने सहज-प्रकृत रूप में प्रकट हो गया है। अतः उनके काव्य और व्यक्तित्व को सही समझने का सबसे सच्चा और अच्छा स्वस्थ साधन उनके पत्र ही हैं।

(i) संवेदनशीलता और सहृदयता :

बच्चन जी के व्यक्तित्व के खजाने की कुंजी उनकी संवेदनशीलता है। अपनी प्रारम्भिक रचनाओं के सम्बन्ध में उन्होंने डा. जीवनप्रकाश जोशी को लिखा है :—

"………कवि होने के पूर्व मैं जीवन में कवि बन गया था। मेरा जीवन कुछ ऐसी अनुभूतियों से टकरा चुका था, कुछ ऐसी भावनाओं से मंथित हो चुका था कि किसी प्रकार की अभिव्यक्ति उसके लिए अनिवार्य हो गई थी। ….मैं स्वभाव से भाव प्रवण था—टू सेंसिटिव"।[2]

बच्चन जी की धारणा है कि कविता का आनन्द लेने के लिए अपनी संवेदनशीलता की सबसे बड़ी आवश्यकता है। वह न हुई तो अच्छी कविता बेकार है। वह हुई तो साधारण कविता में भी कुछ रस मिल जाता है।[3]

बच्चन जी जिसको जी से चाहते हैं, उसके बारे में जहां से जो कुछ पता चले, उसे जानने को उत्सुक रहते हैं और संकट के समय उसकी हर सम्भव सहायता करने के लिए तत्पर रहते हैं। श्री जीवनप्रकाश जोशी की आर्थिक चिन्ता से वे चिन्तित हो उठते हैं—

"मैं परेशान हूं और सोच नहीं पाता कि तुम्हारे लिए क्या करूं ?"[4]

"क्या किसी प्रकार की आर्थिक सहायता से तुम्हें छुटकारा मिल सकता

1. "डा. जीवन प्रकाश जोशी से ११-२-१९७७ को प्राप्त एक व्यक्तिगत पत्र से।
2. "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ. ९२।
3. वही- पृ. २०।
4. "बच्चन : पत्रों में (१९७०), पृ. ५२।

है ? निःसंकोच लिखो ।"[1]

इससे स्पष्ट है कि बच्चन जी एक संवेदनशील और सहृदय व्यक्ति हैं।

(ii) आत्म-सम्मान और निर्भयता :

बच्चन जी के चारित्रिक विकास का प्रधान आधार यह है कि वे निर्भय आचरण करते हैं और आत्म-गौरव उनके भीतर कूट-कूट कर भरा है। १३ फरवरी, १९४१ को निरंकार देव सेवक के नाम पत्र में उन्होंने लिखा है—

"…………दुनिया मेरी प्रशंसा करे तो और मेरी निन्दा करे तो उसे मैं अपने ठेंगे पर समझता हूँ, क्योंकि अपने ठेंगे की मज़बूती का मुझे विश्वास है।"[2]

बच्चन जी अपनी आलोचना से कभी नहीं डरते। आलोचक उनकी रचनाओं के सम्बन्ध में क्या कहते हैं, इसकी उन्होंने बहुत कम परवाह की है। डा. श्यामसुन्दर घोष के नाम एक पत्र में उन्होंने स्पष्ट सूचित किया है—

"मुझे इस बात की कम परवाह है कि समालोचक मेरी कविता के बारे में क्या कहते हैं।"[3]

इसी प्रकार चन्द्रदेवसिंह को प्रेषित एक पत्र में उन्होंने यही मत प्रकट किया है—

"……मैंने समालोचक नामक जंतु का कभी अस्तित्व ही स्वीकार नहीं किया चाहे वह नया हो, चाहे पुराना। कवियों ने बहुत से समालोचक बनाये हैं, पर आज तक कभी किसी समालोचक ने कोई कवि नहीं बनाया।"[4]

इन उद्धरणों से प्रकट होता है कि बच्चन जी ने दो टूक बात कह देने की जो नीति अपना रखी है, उसके कारण लोग उनसे अप्रसन्न भी हो जाया करते हैं।

(iii) पाठकों के प्रति प्रेम :

बच्चन जी समालोचकों की परवाह नहीं करते, पर अपने पाठकों के प्रति उनके मन में अपार प्रेम है। पाठकों को वे अपने हमदम और दोस्त मानते हैं।"[5] डा. जीवनप्रकाश को लिखे २५-८-१९६१ के पत्र में वे लिखते हैं:

"मुझे अपने ऊपर समालोचना या लेख देखकर इतनी प्रसन्नता नहीं होती जितनी कभी किसी ग्रामीण पाठक का पत्र पाकर, जिसमें वह मेरी कविता से मिली किसी प्रकार की प्रेरणा स्वीकार करता है।"[6]

---

1. बच्चन : पत्रों में" (१९७०) पृ. ३४।
2. "बच्चन के पत्र", पृ. १२।
3. "बच्चन : निकट से" (१९६८), पृ. २४१।
4. "माध्यम", सितम्बर १९६५, पृ. ४।
5. "साप्ताहिक हिन्दुस्तान", ८ फरवरी, १९७०, पृ. ३३।
6. "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ. १०२।

इसी प्रकार एक अन्य पत्र में भिलाई में सब्जी की दुकान पर काम करने वाले एक लड़के के पत्र की उन्होंने चर्चा की है। इस लड़के ने उनका "मधुकलश" पढ़ा है पर "निशा निमंत्रण" खरीदने के लिए उसके पास पैसे न होने के कारण किसी से मांगकर खाली समय में "निशा निमंत्रण" की नकल करता है। इस प्रसंग में वे कहते हैं :

"मैं अपने ऐसे ही पाठकों से अपने यत्किंचित सृजन की सार्थकता मानता हूं। मेरी कविता पर डाक्टरेट करने वालों से नहीं।"[1]

(iv) व्यावहारिक सूझ-बूझ :

बच्चन जी एक भावुक और संवेदनशील कलाकार हैं, फिर भी उनमें व्यावहारिकता का अभाव नहीं है। वे बड़े समझदार व्यक्ति हैं। दुनियादारी का उन्होंने पर्याप्त अनुभव प्राप्त किया है। इसी लिए डा. जीवनप्रकाश जोशी को यह सुझाव देते हैं :

"सब अच्छे कामों का अच्छा फल देने की दुनिया के पास शक्ति-सामर्थ्य नहीं है। हमीं दुनिया के प्रति उदार बनें।[2]

इसी प्रकार निरंकारदेव सेवक को समझाते हैं:—

"भाई, दुनिया में पैसा भी बड़ी चीज है। पैसे का अभाव कुछ भी करा सकता है। वैसे पैसे का अभिमान भी।"[3]

इससे स्पष्ट होता है कि बच्चन जी जीवन के प्रति पहुँचे हुए व्यक्ति हैं। कारण यह है कि जीवन के प्रति वे कल्पनाजीवी नहीं हैं। डा. जीवन प्रकाश जोशी के शब्दों में "जीवन का "सत्य" और रूप का राग उन्हें सदा सम्मोहक रहा है।"[4]

(v) आस्तिकता :

आस्तिकता बच्चन जी के चरित्र की महत्वपूर्ण विशेषता है। जीवन की विषम परिस्थितियों में वे कभी निराश नहीं हुए हैं। अपने पत्रों से वे मित्रों को आशा और आस्था का संदेश देते रहे हैं। निरंकारदेव सेवक के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए उन्होंने दिनांक १२-१-१९५० को प्रेषित पत्र में लिखा है :

"विश्वास रखो, अंधेरा मिटेगा और उजाला हँसेगा। संकट की घड़ियों की सबसे बड़ी संगिनी आस्था है।"[5]

---

1. "बच्चन : पत्रों में" पृ. ७७।
2. बच्चन : पत्रों में पृ. ७२।
3. "बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ. ५२।
4. "गद्यकार बच्चन" (१९७६), पृ. ५३।
5. "बच्चन के पत्र" पृ. २०।

डा. जीवन प्रकाश जोशी को आस्तिकता का महत्व समझाते हुए उन्होंने लिखा है "जीवन में सब कुछ अपने मन का ही नहीं होता। जो अपने मन का नहीं होता, उसमें भी अपना कोई कल्याण समझना आस्तिकता है—आस्तिकता का कोई मूल्य न भी हो तो बहादुरी तो है ही।"[1]

(ग) दृष्टिकोण :

बच्चन जी के पत्रों में प्रतिबिम्बित उनके चरित्र की उपर्युक्त विशेषताओं से उनके दृष्टिकोण का स्पष्ट परिचय मिल जाता है। वे संघर्ष में विश्वास रखते हैं। निरंकारदेव सेवक के नाम एक पत्र में उन्होंने स्पष्ट कहा है :

"सब तरह व्यवस्थित होकर जो लिखना चाहेगा, वह ज़िन्दगी भर इन्तज़ार ही करेगा। संघर्ष के बीच सृजन हो सकता है—"हैं लिखे मधु गीत मैंने हो खड़े जीवन समर में।"[2]

साहित्य के सम्बन्ध में उनकी मान्यता है—

"कलाकार की दुनिया अपनी अकेली नहीं हो सकती, उसकी दुनिया अपने से दूसरों के सम्बन्ध से शुरू होती और बनती है—साहित्य सहित से—दार्शनिक का "राहित्य" हो सकता है, साहित्य नहीं।"[3]

इस प्रकार बच्चन जी जीवन-यथार्थ के आराधक हैं। उनके पत्र उनके काव्य से कम मूल्यवान् नहीं हैं। उनके पत्रों में उनके व्यक्ति-कवि का जीवन, व्यक्तित्व, रहस्य तथा चिन्तन-दर्शन धुनी हुई रूई की तरह बिखरा पड़ा है। पत्र-लेखन कला की दृष्टि से भी उनके पत्रों का विशिष्ट महत्व है। बात को संक्षेप में, स्पष्ट रूप से तथा प्रभावपूर्ण ढंग से कहने की कला में वे अत्यन्त कुशल हैं। उनके पत्र, उनकी कविताओं की तरह पाठकों का मन मोह लेते हैं।

साहित्यिक क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखक, उनके पत्र-साहित्य तथा पत्रों में प्रतिबिम्बित उनके व्यक्तित्व के अनुशीलन से हम कह सकते हैं कि साहित्यिक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति के पत्रों में उसकी सहजात प्रतिभा के स्पष्ट दर्शन होते हैं। उसकी विशिष्ट शैली, सम्प्रेषण क्षमता, अनुभूति की सत्यता और गहनता, उसकी भाषा, सभी से उसके व्यक्तित्व की पृथक विशेषताओं का आभास मिलता है। साहित्यिकों के पत्रों की इन विशेषताओं को लक्षित करते हुए डा. वासुदेवशरण ने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम एक पत्र में लिखा था :

"मेरी समझ में किसी व्यक्ति की भारी भरकम साहित्यिक कृति आंधी के समान है, उसके साहित्यिक पत्र उन झौंकों के समान हैं जो धीरे-धीरे आते जाते रहते हैं और थोड़ी मात्रा साथ लाने पर भी साँस बनकर जीवन देते हैं। अन्न की उत्पत्ति और मेघों की वृष्टि के लिए अन्धड़ भी चाहिए, पर

1. "बच्चन : पत्रों में", पृ. ७१।
2. बच्चन के पत्र (१९७२), पृ. ८४।
3. -वही—, पृ. १०४।

मन्दवायु में जो फरहरी है उसका भी कुछ अनूठा आनन्द है।"[1]

इससे स्पष्ट है कि साहित्यिक क्षेत्र के मनीषियों के पत्र प्राणवायु बनकर समाज को जीवन देते हैं।

(आ) साहित्येतर क्षेत्र के प्रमुख पत्र-लेखक

साहित्येतर क्षेत्रों के मनीषियों के पत्र-साहित्य को भुलाकर हम हिन्दी-पत्र-साहित्य का पूर्ण एवं यथार्थ मूल्यांकन नहीं कर सकते। विशेषकर साहित्येतर क्षेत्रों की उन विभूतियों के पत्र-साहित्य को भुलाया नहीं जा सकता, जिन्होंने युगों का नेतृत्व किया था। पिछले अध्याय में हिन्दी पत्र-साहित्य के विकास की चर्चा में हम देख चुके हैं कि हिन्दी में पत्र-साहित्य की विधिवत् परम्परा का सूत्रपात स्व. महात्मा मुंशीराम द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार, भाग-१" से हुआ है। इसके अतिरिक्त महात्मा गांधी, सेठ जमनालाल बजाज और आचार्य विनोबा भावे के पत्र भी पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं। इन पत्रों का ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत बड़ा महत्व है। अतः यहां हम इन विभूतियों के पत्र-साहित्य और पत्रों में प्रतिबिम्बित उनके व्यक्तित्व का परिचय प्राप्त करेंगे।

1. महर्षि दयानन्द सरस्वती (१८२५-१८८३) :

महर्षि दयानन्द सरस्वती आधुनिक युग की महान् विभूति थे। जगत्गुरू शंकराचार्य के पश्चात् भारत ने ऐसे प्रखर तेजपुंज को प्राप्त कर वैदिक धर्म और आर्य संस्कृति की रक्षा की। स्वामी ने समाज में घुस आई कुरीतियों और अंध परम्पराओं पर कठोर प्रहार किया तथा वैदिक संस्कृति पर आधारित जीवन की स्थापना की।

(अ) महर्षि दयानन्द का पत्र-साहित्य :

भारतीय पुनर्जागरण के आंदोलन में धार्मिक-सामाजिक क्षेत्रों का नेतृत्व धारण करने के कारण महर्षि दयानन्द सरस्वती को देश के विशाल जन-समुदाय के सम्पर्क में आना पड़ा। विभिन्न शहरों में आर्य-समाज की स्थापना के बाद उनका लोक-सम्पर्क और अधिक बढ़ गया। परिणामस्वरूप आर्य-समाज के मंत्रियों, पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों, देशी राजाओं तथा प्रजा के विभिन्न वर्गों से उनका पत्र-व्यवहार भी उत्तरोत्तर बढ़ता गया। इसी विस्तृत पत्र-व्यवहार का एक अंश उनके देहावसान के पश्चात् महात्मा मुंशीराम के संपादकत्व में "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार, भाग-१" शीर्षक से प्रकाशित हुआ।

"ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१" के प्रकाशन के बाद "ऋषि के लिखे एक-एक शब्द का सुरक्षित करना आवश्यक है" इस शुभ संकल्प के साथ पं. भगवद्दत्त जी ने अथक परिश्रम से खोज-खोजकर स्वामी जी के पत्रों का एक

---

1. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ. १९०।

स्वतंत्र संकलन "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन भाग-१" शीर्षक से प्रकाशित कराया।

पं. भगवद्दत्त द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" के चारों भागों के प्रकाशन के पश्चात् गुरूकुल विश्वविद्यालय, कांगड़ी से पं. चमूपति की सम्पादकता में "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-२" शीर्षक पत्र-संग्रह प्रकाशित हुआ।

रामलाल कपूर ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित इस बृहत् ग्रंथ में स्वामी जी के सन् १९५५ तक प्रकाशित प्राय: सभी पत्र संकलित हैं। इसमें स्व. महात्मा मुंशीराम तथा पं. चमूपति द्वारा सम्पादित क्रमश: "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१ और २" के पत्र भी समाविष्ट हैं। इसमें पत्रों के साथ पाद-टिप्पणियों में सन्दर्भ भी दिये गये हैं। इस ग्रंथ की भूमिका तथा प्रकाशकीय वक्तव्य में स्वामी जी के पत्र-व्यवहार पर विस्तार से प्रकाश डाला गया है। साथ ही जिनके नाम पत्र भेजे गये हैं, उनकी सूची भी दी गई है। इसमें स्वामी जी के जीवन चरित्रों में दी गई तिथियों तथा घटनाओं को पत्रों में निर्दिष्ट तिथियों और घटनाओं के प्रकाश में देखने-परखने का प्रयास भी किया गया है। इसके अतिरिक्त स्वामी जी की के ग्रंथों के लेखकों—पं. भीमसेन, पं. ज्वालादत्त आदि के विषय में स्वामी जी की सम्मतियां भी इसमें प्रकाशित हैं। इस प्रकार प्रस्तुत ग्रंथ स्वामी जी के विषद व्यक्तित्व का प्रकाश-स्तम्भ है।

(अ) पत्रों में प्रतिबिम्बित महर्षि दयानन्द का व्यक्तित्व :

पुनर्जागरण काल में, महर्षि दयानन्द सरस्वती की अतुलनीय प्रतिभा, प्रचण्ड पांडित्य और निर्भीक महाप्राण अद्वितीय व्यक्तित्व के कारण, प्राय: सम्पूर्ण उत्तर भारत में वैदिक धर्म की लहर दौड़ आई थी। उनके अद्वितीय व्यक्तित्व की झांकी उनके पत्रों में हमें बराबर मिलती है।

(क) जीवनी-सूत्र :

स्वामी जी के पत्रों में उनकी जीवनी के क्रमबद्ध सूत्र नहीं मिलते। उनके जीवन-कार्य के कुछ संकेत ही प्राप्त होते हैं। जैसे, आर्य-समाज की स्थापना के सम्बन्ध में उन्होंने अहमदाबाद के गोपालराव हरि देशमुख को लिखा है—

"......... .. आगे मुम्बई में चैत्र शुद्ध ५ शनिवार के दिन संध्या के साढ़े पांच बजते आर्य-समाज का आनन्दपूर्वक आरम्भ हुआ : ...."[1]

यह स्वामी जी के जीवन की महत्वपूर्ण घटना है। इस पत्र का ऐतिहासिक महत्व है।

---

1. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. २५।

इसी प्रकार पं. कालूराम को लिखित एक पत्र में हमें आर्य-समाज की प्रगति का विवरण प्राप्त होता है। यथा—"…………रावलपिण्डी में आर्यसमाज हो गया। इस स्थान (जेहलम) में भी होने की आशा है। पंजाब में बहुत ठिकाने समाज बन गये हैं। वेद धर्म की बड़ी उन्नति है।"[1]

इस प्रकार पत्रों में स्वामी जी की विभिन्न स्थलों की यात्रा, पंडितों से शास्त्रार्थ, आर्य-समाज की प्रगति आदि का विस्तार से विवरण मिलता है।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

स्वामी जी के ग्रंथों को पढ़कर उनकी विद्वत्ता, बुद्धिमत्ता, वेदनिष्ठा, त्याग, तपस्या आदि का विशद परिचय मिल जाता है, किन्तु उनके चरित्र के कुछ ऐसे पहलू भी हैं जिन्हें हम उनके पत्रों के द्वारा ही जान सकते हैं। यहां कुछ ऐसे पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता है :

(i) निर्भीकता और स्पष्टवादिता :

निर्भीकता और स्पष्टवादिता स्वामी जी के स्वभाव की महत्वपूर्ण विशेषताएं थीं। सच्ची बात कहने में वे किसी से नहीं डरते थे। लाला कालीचरण दास द्वारा आर्य समाज के एक अखबार में नाटक का विषय छापने की बात को अनुचित ठहराते हुए उन्होंने स्पष्ट शब्दों में लिखा था—

"लाला कालीचरणदास जी, आनन्दित रहो।

विदित हो कि तुम आर्य समाज के पत्र में नाटक का विषय मत छापो। यह अनुचित बात है। यह आर्य्य समाज है। भड़ुआ समाज नहीं।…."[2]

इसी प्रकार जोधपुर नरेश महाराजा जसवन्तसिंह के नाम ८ सितम्बर १८८३ को भेजे पत्र में उन्होंने महाराजा के गुणों की प्रशंसा के साथ उनके दोषों की बड़ी निर्भयता से निन्दा भी की थी। उन्होंने लिखा था :

"एक वेश्या जो कि नन्नी कहलाती है, उससे प्रेम, उसका अधिक संग और अनेक पत्नियों से न्यून प्रेम रखना आप जैसे महाराजों को सर्वथा अयोग्य है।"[3]

स्वामी जी को अपनी इस स्पष्टवादिता के कारण प्राण गंवाने पड़े।

(ii) व्यवहार-कुशलता :

स्वामी के ग्रंथों को पढ़ने से यही जाना जाता है कि वे वेद-शास्त्रों के उद्भट विद्वान्, त्यागी, तपस्वी और निरीह संन्यासी थे, परंतु जब हम उनके पत्र पढ़ते हैं, तो यह भी ज्ञात होता है कि वे एक कुशल व्यवस्थापक और प्रबन्धक भी थे। पाई-पाई पर उनका ध्यान रहता था। हिसाब-किताब सम्बन्धी रसीदें लेने, प्राप्तिकर्त्ता से नियमानुसार हस्ताक्षर कराने, अच्छे-बुरे कर्मचारी को परखने आदि

1. "ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. ७९।
2. वही-, पृ. ३६६-६७।
3. "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-२" (१९९२ वि.), पृ. ९५।

की भी उन्हें खूब जानकारी रहती थी। जैसे, स्वामी ईश्वरानन्द को कुछ महत्वपूर्ण सूचनाएं देते हुए उन्होंने लिखा है—

"स्वामी ईश्वरानन्द जी, आनन्दित रहो।

(१) सब यंत्रालय के पदार्थ और नौकरों पर दृष्टि रखना कि नियमानुसार सब काम होते हैं या नहीं, (२) जब कभी जिस किसी का व्यक्तिक्रम देखें तो जो शिक्षा करने से सुधर सकता हो तो वहीं सुधार देना, न मानें तो हम को लिखना।...."[2]

इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी में व्यावहारिक बुद्धि भी अच्छी थी।

(iii) स्वदेश-भक्ति :

स्वामी जी सच्चे देशभक्त थे। देश के गौरव और उत्थान की उनको सतत चिन्ता रहा करती थी। उन्होंने अपने शिष्य प्रसिद्ध क्रांतिकारी विद्वान् श्याम जी कृष्ण वर्मा को विदेश भेजते समय जो सूचनाएं दी थीं, उनमें उनकी स्वदेश-भक्ति स्पष्ट रूपेण झलकती है। देखिए—

"......अब आपको उचित है कि जब वहां जावें, जो आपने अध्ययन किया है, उसी में वार्तालाप करें और कह देवें कि मैं कुल वेद-शास्त्र नहीं पढ़ा, किन्तु मैं तो आर्य्यावर्त्त देश का छोटा विद्यार्थी हूँ और कोई बात का काम ऐसा न हो कि जिससे अपने देश का ह्रास होवें .... "[2]

यह पत्र स्वामी जी के स्वदेश-प्रेम का ज्वलन्त प्रमाण है।

(iv) हिन्दी के प्रति अनुराग और उसके प्रचार में योगदान :

स्वामी जी की मातृभाषा गुजराती थी। संस्कृत पर उनका असाधारण प्रभुत्व था। परन्तु हिन्दी के प्रति उनके मन में असीम अनुराग था। हिन्दी की सम्पर्क क्षमता देखकर उन्होंने उसे "आर्यभाषा" की गरिमायुक्त संज्ञा प्रदान की थी। लाहौर के आर्य समाज के मन्त्री भाई जवाहरसिंह ने उनको टूटी-फूटी हिन्दी में एक लम्बी चिट्ठी लिखी थी, जिसके उत्तर में स्वामी जी ने उनको प्रोत्साहित करते हुए लिखा था—

"...........जो तुमने इतनी बड़ी चिट्ठी आर्य भाषा में लिखी, यही हमने तुम्हारी शुद्धी जानी।"[3]

स्वामी जी अपना बहुत-सा पत्र-व्यवहार दूसरों को बोलकर लिखवाते अथवा लिखने को कह दिया करते थे। अतः उनके पत्रों में भाषाकीय अशुद्धियां प्रायः लेखक के प्रमाद का परिणाम ही हैं। यद्यपि गुजराती और संस्कृत पर उनकी जितनी पकड़ थी, उतनी हिन्दी पर शायद नहीं थी, तथापि हिन्दी के प्रति अनुरक्ति के कारण वे अपने विचार उसमें अच्छी तरह व्यक्त कर सकते थे।

1. "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-१" (१९१०), पृ. १७-१८।
२. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. ९२
3. "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१" (१९१०), पृ. १२५।

उन्होंने हिन्दी को राजभाषा का स्थान दिलाने के लिए सरकार द्वारा नियुक्त हंटर कमीशन के पास हिन्दी के पक्ष में स्थान-स्थान से स्मरण-पत्र भिजवाये थे। इस सम्बन्ध में लाला कालीचरण को प्रेषित १४ अगस्त १८८२ ई. के पत्र का निम्नांकित अंश स्पष्ट है—

"......आप लोग भी जहां तक हो सके, गोरक्षार्थ सही और आर्य भाषा के राज कार्य में प्रवृत्त होने के अर्थ शीघ्र प्रयत्न कीजिए।"[1]

इससे स्पष्ट है कि हिन्दी की उन्नति और प्रचार-प्रसार में स्वामी जी का योग महत्वपूर्ण है। इस सन्दर्भ में डा. विजयेन्द्र स्नातक के इस कथन का स्मरण हो आता है कि—"हिन्दी भाषा के प्रचार और प्रसार में आर्य समाज का योगदान सर्वविदित है। आर्य-समाज के संस्थापक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने आज से एक शताब्दी पूर्व अपना लेखन हिन्दी भाषा में प्रारम्भ किया था। स्वामी जी हिन्दी भाषा को आर्यभाषा कहकर पुकारते थे।"[2]

(ग) दृष्टिकोण :

स्वामी जी को वेदों के प्रति अपार आस्था थी। वे भारतीय समाज की समस्त विकृतियों को हटाकर उसे वैदिक धर्म के अनुसार ढालना चाहते थे। "वेदों की ओर लौट चलो" उनका मुख्य नारा था। "भारतमित्र" के सम्पादक के पास भेजे गये पत्र में उन्होंने वेद-विषयक अपनी सम्मति प्रकट करते हुए लिखा था :

"..... ......मैं ईश्वर नहीं, किन्तु ईश्वर का उपासक हूं। वेद मनुष्यों के हितार्थ परमात्मा ने प्रकाशित किये हैं। इस अभिप्राय से कि यहां तक मनुष्य की विद्या और बुद्धि पहुँच सकेगी और इतने तक कार्य मनुष्य कर सकेंगे। इसलिए यावत् मेरी बुद्धि और विद्या है तावत् निष्पक्षपात होकर वेदों का अर्थ प्रकाशित करता हूँ।"[3]

इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी की विचारधारा वैदिक धर्म के अनुकूल थी। वे वैदिक संस्कृति के अनुसार भारतीय समाज का निर्माण करना चाहते थे।

स्वामी जी के पत्र उनके सरल और निष्कपट व्यक्तित्व के ज्वलन्त उदाहरण हैं। उनकी पत्र-लेखन की शैली अपने ढंग की अनूठी है। उनके हिन्दी पत्रों में "स्वस्तिश्री" की परम्परागत शैली के दर्शन नहीं होते हैं। उनके अधिकतर पत्रों में सम्बोध्य व्यक्ति के नाम का उल्लेख हुआ है और अभिवादन के रूप में "आनन्दित रहो", "प्रसन्न रहो" आदि शब्द प्रयुक्त हैं। संस्कृत के प्रकांड पंडित होते हुए भी उन्होंने अपने पत्रों में संस्कृत की परम्परागत शैली का प्रयोग नहीं किया है। अनौपचारिकता, सरलता स्पष्टता, संक्षिप्तता आदि उनके पत्रों की

---

1. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. ३५४।
2. "द्विवेदी-युगीन काव्य पर आर्यसमाज का प्रभाव" (१९७३), भूमिका।
3. "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-१" (१९१०), पृ. ६८-६९।

प्रमुख विशेषताएं हैं। अपने पत्रों में उन्होंने अनेक व्यक्तियों को प्रेरित प्रोत्साहित किया और हिन्दी, हिन्दू-संस्कृति तथा हिदुस्तान के हितार्थ भरसक प्रयास किया।

इस प्रकार ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र उनके दिव्य व्यक्तित्व के दर्पण और भारतीय पुनर्जागरण के धार्मिक सामाजिक इतिहास के बहुमूल्य दस्तावेज़ हैं।

2. महात्मा गांधी (१८६९-१९४८) :

महात्मा गांधी एक युगपुरुष थे। नवीन भारत के निर्माताओं में उनका नाम सबसे पहले आता है। अपने मौलिक चिन्तन और अनुभव-सिद्ध प्रयोगों द्वारा उन्होंने लाखों व्यक्तियों का मार्ग-दर्शन किया। जीवन का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है जिसमें उन्होंने नई राह न दिखलाई हो। उनका धर्म, उनकी राजनीति से अलग नहीं था। उनके चिन्तन में सम्पूर्ण मानव-जीवन की उज्ज्वलता का प्रतिनिधित्व होता है। उनके पत्रों में उनका व्यक्तित्व एवं जीवन-दर्शन पूर्णतः प्रतिबिम्बित हुआ है।

(अ) महात्मा जी का पत्र-साहित्य :

महात्मा गांधी विश्व के महान् पत्र-लेखकों में अग्रणी हैं। श्री नरहरि परीख ने उनके पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में लिखा है—"पत्र-लेखकों में बापू जी की बराबरी करनेवाला शायद ही कोई मिलेगा। उन्होंने अपने पत्रों द्वारा कितनों ही को जीवन प्रेरणा दी है, कितनों ही की शंकाओं का समाधान किया है, दिल की गुत्थियां सुलझाई हैं और कितने ही परेशान और दुःखी लोगों को आश्वासन दिया है। उनसे प्रेरणा और मदद चाहने वालों की मंडली इतनी विस्तृत थी कि रोज़ तीन-चार घण्टे और कभी-कभी तो इससे भी अधिक समय तक पत्र लिखने में लगाने पर भी वे अपना सारा पत्र-व्यवहार नहीं निपटा पाते थे। इसलिए उन्हें काफी विवेक से काम लेना पड़ता था। कुछ पत्र खुद जवाब देने के लिए रखकर बाकी के "इन्हें यह लिख देना" आदि सूचनाएं देकर मंत्रियों को सौंप देते थे।"[1] इस प्रकार महातमाजी ने अपने जीवन में असंख्य लोगों के पत्र पाये और स्वयं सहस्रों पत्र लिखे।

महात्मा गांधी के पत्रों का पुस्तकाकार प्रकाशन सर्वप्रथम सम्भवतः संवत् १९७९ में हुआ था। पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी द्वारा सम्पादित "···· महात्मा गांधी के निजी पत्र" शीर्षक पुस्तक महात्मा जी के पत्रों का प्रथम संग्रह है। इसमें महात्माजी द्वारा आत्मीयजनों को लिखे गये ८१ पत्र संकलित हैं। ये पत्र उस समय लिखे गये हैं जब महात्माजी दक्षिण अफ्रिका में अहिंसक आंदोलन चला रहे थे। भारत के स्वाधीनता-संग्राम में उनकी सफलता का रहस्य इन पत्रों में मिलता है।

---

1. "बापू के पत्र : सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम" (१९५२) संपादिका-मणिबहन पटेल, भूमिका, पृ. ९।

सन् १९५० ई. में नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद की ओर से "बापू के पत्र" शीर्षक पुस्तक-माला का प्रकाशन आरम्भ हुआ और समय-समय पर अनेक पत्र-संग्रह प्रकाश में आये-जैसे, "बापू के पत्र : आश्रम की बहनों के नाम" (१९५०), "बापू के पत्र : मीरा के नाम" (१९५१), "बापू के पत्र : सरदार वल्लभभाई पटेल केनाम (१९५२), बापू के पत्र : कुसुम-बहन देसाई के नाम" (१९५९), "बापू के पत्र : मणिबहन पटेल के नाम" (१९६०), "बापू के पत्र : कुमारी प्रेमाबहन कंटक के नाम" (१९६१) आदि इन पत्र संग्रहों में संकलित अधिकतर पत्र गुजराती और अंग्रेजी में ही लिखे गये हैं।

बजाज परिवार के नाम हिन्दी में लिखे गये महात्माजी के पत्र "पाँचवे पुत्र को बापू के आशीर्वाद" तथा "बापू के पत्र-बजाज परिवार के नाम" शीर्षक पुस्तकों में संकलित हैं। इन दोनों पत्र-संग्रहों का सम्पादन आचार्य काका कालेलकर ने किया है।

इन पत्र-संग्रहों के अतिरिक्त पं. वियोगी हरि द्वारा संपादित "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" में महात्माजी के कुछ प्रेरक पत्रों का संकलन किया गया है। पं. जवाहरलाल नेहरू के नाम लिखे गये महात्माजी के ६ हिन्दी-पत्र "कुछ पुरानी चिट्ठियां" में देखे जा सकते हैं। हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर राजर्षि टंडन के साथ हुआ महात्माजी का ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार पं. गोपालप्रसाद व्यास द्वारा सम्पादित "गांधी हिन्दी दर्शन" में संकलित है। इस प्रकार महात्मा जी का प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाशित हो चुका है।

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित महात्मा जी का व्यक्तित्व :

महात्मा गांधी के व्यक्तित्व के अनेक पक्ष हैं। वे केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं थे, अपितु समाजसुधारक और कर्मयोगी भी थे उनके पत्रों में राजनीति, समाज-सेवा और आध्यात्मिक चिन्तन की त्रिवेणी प्रवाहित है।

(क) जीवनी-सूत्र :

महात्मा जी के पत्रों के आधार पर हम उनके जीवन के तीन अंगों का परिचय प्राप्त करते हैं—एक राजनैतिक जीवन, जिसमें प्रधानतया सत्याग्रह की आत्मशक्ति और बलिदान की दिव्यशक्ति प्रकट होती है, दूसरा रचनात्मक जीवन, जिसके जरिये वे सिंह-जैसे एक गिरे हुए, विश्रृंखलित, निराश और अंध राष्ट्र को नवजीवन की दीक्षा देते रहे और मानो धीरे-धीरे उसकी सब हड्डियां इकट्ठी करके उसमें प्राण फूंकते रहे और तीसरा व्यावहारिक जीवन जिसके द्वारा वे असंख्य व्यक्तियों के जीवन में, उनके व्यक्तिगत सवालों में, पारिवारिक सम्बन्धों में और व्यवहार की अनेक बातों में पिता और माता के हृदय से प्रवेश करते हैं।[1] पं. जवाहरलाल नहेरू, सरदार वल्लभभाई पटेल आदि राजनैतिक

1. "आचार्य काका कालेलकर : "बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम" (१८६६), सम्पादकीय, पृ. ८।

नेताओं के नाम लिखे पत्रों में उनके राजनैतिक जीवन का, सेठ जमनालाल बजाज, पं. वियोगी हरि आदि समाज-सेवियों के नाम लिखे पत्रों में उनके रचनात्मक जीवन का तथा बजाज परिवार के सदस्यों के नाम लिखे पत्रों में उनके व्यावहारिक जीवन का विशद परिचय प्राप्त होता है। इन पत्रों में उनके जीवन की अनेक घटनाओं के सन्दर्भ-सूत्र भी उपलब्ध होते हैं।

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

महात्मा गांधी एक लोकोत्तर पुरुष थे। उनका हृदय पुष्प से भी कोमल और वज्र से भी कठोर था। उनके पत्रों में उनके चरित्र के अनेक पक्ष उद्घाटित हुए हैं। यहां हम कुछ प्रमुख पक्षों पर ही दृष्टिपात करेंगे।

(i) सत्यवादिता :

महात्मा जी सत्य की साकार मूर्ति थे। सत्य की उपासना उनके जीवन का लक्ष्य था। सच्ची बात कहने में उन्होंने कभी हिचकिचाहट का अनुभव नहीं किया। उनकी सत्यवादिता का प्रमाण हमें पं. जवाहरलाल के नाम १५ अप्रैल, १९४२ को लिखे पत्र में मिलता है। इस पत्र का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है—

चि. जवाहरलाल,

प्रोफेसर यहां आये हैं। उनसे सब सुना। तुम्हारा प्रेस इन्टरव्यूह भी सुना। मैं देखता हूं कि हमारे विचारों में तो भेद था ही, लेकिन अब अमल में हो रहा है। इस हालत में वल्लभभाई वगैरा क्या करें? तुम्हारी नीति को स्वीकार किया जाए तो कमिटी जैसी आज है ऐसी नहीं रहनी चाहिए।

ज्यों ज्यों मैं सोचता हूँ, मुझे लगता है कि तुम गलती कर रहे हो। अमरीकी लश्कर, चीनी लश्कर हिन्दुस्तान में आवे और हम गुरिल्ला लड़ाई में पड़ें, इसमें मैं कुछ भी भला नहीं पाता हूँ।"[1]

(ii) संयम-नियम :

महात्मा जी की सफलता का रहस्य उनके संयमित-नियमित जीवन में है। स्वच्छन्दता को उनके जीवन में कोई स्थान नहीं था। अपने एक लेख के संदर्भ में उन्होंने मदालसा नारायण को लिखा था—

"....... मेरे लेख में स्वच्छन्दता को स्थान होता ही नहीं। मेरा जीवन संयम के लिए है। "[2]

इसी प्रकार कमलनयन बजाज को नियमित जीवन की प्रेरणा देते हुए वे लिखते हैं—

---

1. "कुछ पुरानी चिट्ठियाँ" (१९६७), पृ. ६४२।
2. "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ. २५५।

"……आलस्य छोड़ने के लिए सबसे अच्छी बात यह है कि नित्य के नियम बना लेना और उन पर कायम रहना।"[1]

(iii) अविचल दृढ़ता :

महात्मा जी के विचार और निर्णय अचल होते थे। उनकी संकल्प शक्ति प्रबल थी। एक बार विचार पूर्वक जो कार्य वे हाथ धरते, उससे पीछे हटना प्राय: असम्भव था। अपने विचारों की दृढ़ता के बारे में सेठ जमनालाल के नाम ११-६-१९३८ को प्रेषित पत्र में उन्होंने स्पष्ट लिख दिया था—

"विचार पूर्वक और धर्म समझ कर जो कदम मैं उठाऊं, उस पर दृढ़ रहने की शक्ति मैं खो बैठा हूँ, ऐसा मुझे नहीं लगता।"[2]

महात्मा जी की अविचल दृढ़ता का सबसे सुन्दर उदाहरण हमें उनके टंडन जी के साथ हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर हुए ऐतिहासिक पत्र-व्यवहार में मिलता है। वे हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा बनाने के आग्रही थे और टंडन जी हिन्दी को। महात्मा जी के हिन्दी-प्रेम से प्रभावित होकर ही टंडन जी उनको सम्मेलन में लाये थे, परन्तु वे अपने लम्बे पत्रों से महात्मा जी के विचारों में परिवर्तन नहीं ला सके। महात्मा जी अपने निर्णय पर अटल रहे और सम्मेलन की स्थायी समिति को त्याग-पत्र भेजते हुए उन्होंने टंडन जी को लिखा :

"…… ……मैं तो इतना ही कहूंगा कि जहाँ तक हो सका मैं आपके प्रेम के आधीन रहा हूं। अब समय आया है कि वही प्रेम मुझे आपसे वियोग कराएगा। मैं अपनी बात नहीं समझा सका हूँ। यही पत्र आप सम्मेलन की स्थायी समिति के पास रखें।"[3]

इससे स्पष्ट है महात्मा जी दृढ़ता की मूर्ति थे।

(iv) विनम्रता :

महात्माजी अपने सिद्धान्त-पालन में कठोर होते हुए भी हृदय से विनम्र थे। अपने दोष वे नम्रता पूर्वक स्वीकार कर लेते थे। एक बार उन्होंने सेठ जमनालाल के उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना कमिटी से आग्रह किया कि वर्धा में मीटिंग रखी जाय। इस सम्बन्ध में अपनी भूल स्वीकार करते हुए उन्होंने सेठ जी को लिखा है—

चि. जमनालाल,

मैं कैसा बेवकूफ और स्वार्थी हूँ। तुम्हारी तबीअत का कुछ खयाल नहीं किया। सिर्फ मेरा ही किया। तुम्हारी इजाजत मांगी और मैंने राह भी न देखी। और कमिटी से आग्रह किया कि मीटिंग वर्धा में रखी जाय। उसमें मैंने हिंसा की और वह मामूली नहीं। मित्रता का, तुम्हारी उदारता का दुरुपयोग किया।

---

1. "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६) पृ. २२१।
2. -वही-, पृ. १५५।
3. "गांधी-हिन्दी दर्शन," (प्र. सं.), पृ. २३१।

तुम्हारे पास माफी मांगने से प्रायश्चित नहीं होता है। सच्चा प्रायश्चित तो वही होगा, जिसे मैंने तुम्हारे प्रति जो निर्दयता बताई है, ऐसी कभी दुबारा तुम्हारे प्रति या अन्य कोई के प्रति न बताऊं।"[1]

यह पत्र महात्माजी की विनम्रता का उत्तम नमूना है।

(ग) दृष्टिकोण :

महात्मा जी "सादा जीवन और उच्च विचार" (Simple living and high thinking) वाले सिद्धांत के पक्षपाती थे। उनके अनेक पत्रों में हमें इस सिद्धांत के दर्शन होते हैं। उदाहरण के लिए रामकृष्ण बजाज के नाम लिखे उनके २३-३-१९४५ के पत्र का अग्रलिखित अंश देखा जा सकता है :

"............ हमारा तो धर्म है न कि हम इच्छा पूर्वक कम से कम खर्च करें और जीवन उच्चतम रखें।"[2]

इसी प्रकार वे मानते थे कि हमें हमेशा दूसरों के गुण देखने चाहिए, दोष नहीं। यदि दोष देखना है तो स्वयं के ही देखना चाहिए। मदालसा नारायण को एक पत्र द्वारा उन्होंने यही दृष्टिकोण प्रकट किया है :

" ....तुम अपने दोष और दूसरों के गुण ही देखोगी तो सपाटे से आगे बढ़ोगी, और सुख अनुभव करोगी।"[3] यही बात बहुत वर्ष पहले अपने पुत्र चि. मणिलाल को चैत्र कृष्ण संवत् १९६५ वि. को लिखे पत्र में कही थी—"दोष की अपेक्षा मनुष्य के गुणों की ओर देखना चाहिए।"[4]

इस प्रकार हम देखते हैं कि महात्मा जी के पत्रों में उनका व्यक्तित्व पूरी तरह झलकता है। उनके पत्र छोटे पर विचारोत्तेजक होते थे। बात को संक्षेप में किन्तु प्रभावक ढंग से कहने की कला में वे बहुत कुशल थे। उनके पत्र सहज सत्य की अभिव्यक्ति के उत्तम उदाहरण हैं। सरलता और निष्कपटता उनके पत्रों के प्रधान गुण हैं। उनका संत स्वभाव उनके पत्रों में पूर्णतः प्रकट हुआ है। पं. लक्ष्मीधर वाजपेयी ने उनके पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में बहुत उपयुक्त कहा है :

"हों संत जिस पथ के पथिक पावन परम वह पन्थ है।
आचरण ही उनका जगत् में पथ-प्रदर्शक ग्रंथ हैं।।"[5]

३. सेठ जमनालाल बजाज (१८८९-१९९२)

हमारे देश के स्वाधीनता-संग्राम के साथ जिन व्यक्तियों के नाम गहराई से जुड़े हुए हैं, उनमें सेठ जमनालाल बजाज का नाम उनकी सेवा-साधना और व्यापक जन-सम्पर्क की दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है। वैसे तो प्रारम्भ

1. "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ. २०१।
2. "बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम," पृ. २६८।
3. -वही, पृ. २५१।
4. "महात्मा गांधी के निजी पत्र" (सं. १९७९ वि.), पत्र क्रमांक-१८।
5. -वही, पृ. [illegible]१।

से ही उनके जीवन में सेवा-भाव विद्यमान था, किन्तु महात्मा गांधी के सम्पर्क में आने के बाद उनकी प्रवृत्तियों तथा सेवाओं का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया। महात्माजी ने उनको अपने पांचवे पुत्र के तौर पर स्वीकार किया। राष्ट्र के अभ्युदय से सम्बन्धित महात्मा जी की सभी प्रवृत्तियों में उन्होंने सक्रिय भाग लिया। उनकी एक ही इच्छा थी—हमारा देश स्वाधीन हो और ऊपर उठे।

(अ) सेठ जी का पत्र-साहित्य :

सेठ जमनालाल बजाज का जन-सम्पर्क बड़ा ही व्यापक था। उनका पत्र-व्यवहार देश के कोने-कोने से और हर तरह के व्यक्तियों से था। श्री जयप्रकाश नारायण के शब्दों में "उनके साथ का पत्र-व्यवहार कार्यकर्त्ताओं के लिए एक प्रकार का चिट्ठी-पत्री द्वारा शिक्षण (Correspondence Course) होता था। हर बात के ऊपर—वह छोटी ही क्यों न हो—वह बारीकी से विचार करके उत्तर देते थे।"[1]

हिन्दी में पुस्तकाकार प्रकाशित पत्र-साहित्य में सेठ जी से सम्बन्धित पत्र-संग्रहों की संख्या अधिक है। उनके सुपुत्र श्री रामकृष्ण बजाज के सम्पादकत्व में सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली की ओर से उनसे सम्बन्धित पत्रों के आठ भाग प्रकाशित हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त आचार्य काका कालेलकर की संपादकता में प्रकाशित "पांचवें पुत्र को बापू के आशीर्वाद" तथा "बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम" शीर्षक पत्र-संग्रहों में भी उनके पत्र संकलित हैं। इनमें द्वितीय पत्र-संग्रह प्रथम पत्र-संग्रह का संक्षिप्त संस्करण ही है। प्रथम संग्रह में लगभग पांच-छह सौ पत्र संकलित हैं। इन पत्रों के सम्बन्ध में सम्पादक महोदय ने लिखा है—"इन पांच-छह सौ पत्रों को पढ़ते और उनमें अवगाहन करते ऐसा अनुभव होता है, मानो हम पवित्र गंगा जी के प्रवाह में स्नान और पान कर रहे हैं।"[2]

(आ) पत्रों में प्रतिबिम्बित सेठ जी का व्यक्तित्व :

सेठ जमनालाल बजाज महात्मा गांधी के भक्तों-शिष्यों में अन्यतम थे। वे एक प्रकार से उनके परिवार के सदस्य ही थे। बापू ने उनको अपने पांचवें पुत्र के रूप में स्वीकार किया था। अतः उनका जीवन और व्यक्तित्व पूर्णतः गांधीवादी आदर्शों के अनुरूप था।

(क) जीवनी-सूत्र :

सेठजी से सम्बन्धित तथा उनके द्वारा लिखित पत्रों में उनके जीवनी-विषयक अनेक तथ्य प्राप्त होते हैं। जैसे, श्री किशोरलाल मशरूवाला ने उनके नाम २०-६-१९३९ को जो पत्र लिख भेजा था, उसमें बच्छराज सेठ द्वारा जमनालाल जी को गोद लिये जाने का उल्लेख हुआ है।[3] इसी प्रकार सेठजी ने अपने

1. "पत्र व्यवहार-भाग-३" (१९६०), भूमिका, पृ. ३।
2. "पांचवें पुत्र को बापू के आशीर्वाद" (१९५३), सम्पादक का वक्तव्य पृ. ११।
3. "पत्रव्यवहार-भाग-३" (१९६०), पृ. ५६।

पुत्र कमलनयन को अपने बचपन के बारे में सूचित करते हुए एक पत्र में लिखा है—

"मेरा बालकपन से लाड़-चाव के कारण शरीर स्थूल व आलसी था, परन्तु मैंने हमेशा पूरा उद्योग करके बालकपन से ही जबाबदारी का जीवन बिताने की कोशिश रखी। उसका मुझे अब प्रत्यक्ष लाभ व सुख मिल रहा है।"[1]

इस प्रकार पत्रों में कई स्थानों पर सेठ जी की जीवन-रेखाएं उभरकर सामने आती हैं।

(ख) चारित्रिक-विशेषताएं :

सेठ जी के चरित्र की प्रायः सभी बातें बापू के नाम ४-११-१९३८ को लिखे पत्र में प्रकट हो गयी हैं, तथा विभिन्न व्यक्तियों को लिखे पत्रों में उनके चरित्र के अनेक पक्ष उजागर होते हैं।

(i) व्यवहार-कुशलता :

सेठजी प्रखर बुद्धिशाली और अत्यन्त व्यवहार-कुशल व्यक्ति थे। उनकी व्यवहार-कुशलता का परिचय हमें पत्रों में स्थान-स्थान पर मिलता है। रचनात्मक और देशी रियासतों के कार्यकर्त्ताओं को जिस प्रकार वे सलाह-सूचना देते हैं, उसमें उनकी व्यवहार-कुशलता स्पष्ट रूप से प्रत्यक्ष होती है। इस सम्बन्ध में श्री हरिभाऊ उपाध्याय को "बिजौलिया-सत्याग्रह" के बारे में उनकी निम्नलिखित सम्मति द्रष्टव्य है—

"..........मेरी यह भी राय है कि सत्याग्रह शुरू करने में जल्दी से काम लिया गया है। आशा है प्रचार-कार्य का मुख्य खयाल बाहर के आंदोलन के साथ-साथ या उससे ज्यादा सत्याग्रहियों को मजबूत व उत्साहित करने और वे ज्यादा संख्या में तैयार हों, उस तरफ लगाने का रहेगा, तो ठीक होगा।"[2]

(ii) स्पष्टवादिता :

महात्मा जी के शिष्य-पुत्र होने के कारण सेठ जी सत्यभाषी और सत्यवादी थे। विभिन्न विषयों पर वे अपना मत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त कर देते थे। श्री घनश्यामदास को सीकर आंदोलन के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट लिखा था :

"सीकर के आंदोलन में सीकर की प्रजा के हिस्से में काफी दोष आता है। मैंने यह बात जाहिर तौर पर भी कही है। परन्तु जयपुर के अधिकारियों ने एक के बाद एक दीगर जो गलतियां की हैं, वे गम्भीर रूप की हैं।"[3]

इससे प्रकट होता है कि सेठ जी अपना मत स्पष्ट रूप से प्रदर्शित करने के पक्षपाती थे।

---

1. पत्र-व्यवहार भाग-५ (१९६४) पृ.-२६-२७।
2. 'पत्रव्यवहार भाग-२" (१९५८), पृ. २८।
3. पत्रव्यवहार भाग-१ (१९५८) पृ. ८३।

(iii) निश्छलता :

निश्छलता या निष्कपटता सेठ जी के चरित्र की सबसे बड़ी विशेषता थी। उन्होंने अपने दोषों को छिपाने की कभी कोशिश नहीं की। जानकीदेवी के नाम एक पत्र में अपने संकोचशील स्वभाव के विषय में उन्होंने लिखा है :

"..........तुम्हारे लिए मेरे हृदय में भक्ति व पूजा का भाव रहता है, परन्तु मेरी ओर से व्यवहार में वह पूरी तरह प्रकट नहीं हो पाता है। यह देखकर कई बार दुःख और लज्जा का अनुभव करता हूं।"[1]

सेठ जी की निश्छलता का सुन्दर परिचय हमें महात्मा जी को लिखे उनके ४-११-१९३८ के पत्र में मिलता है। इस पत्र के कुछ अंश इस प्रकार हैं :—

पूज्य बापूजी,

आज मिती व तारीख के हिसाब से मुझे ४९ वर्ष पूरे हुए हैं। पचासवां वर्ष चालू हुआ है। आपका आशीर्वाद तो सदैव ही रहता है, परन्तु मैं जब विचार करता हूँ तो मुझे इन दो-अढ़ाई वर्षों में से ऐसा साफ दिखाई देता है कि मैं आपके आशीर्वाद का पात्र नहीं हूं। मेरी कमजोरी मुझे इस प्रकार दिखाई दे रही है। अहिंसा व सत्य का आचरण कम होता दिखाई दे रहा है। डर है कि कहीं इस पर से श्रद्धा भी कम न हो जाय। इसी कारण असहनशीलता भी बढ़ रही है। क्रोध की मात्रा भी बढ़ती जा रही हैं। कामवासना बढ़ती हुई मालूम हो रही है। लोभ की मात्रा भी। इतने सब दुर्गुण या कमजोरी जो मनुष्य अपने में बढ़ती हुई देख रहा है फिर उसे जीने का मोह कैसे रह सकता है।"[2]

इस पत्र में सेठ जी का सम्पूर्ण चरित्र प्रतिबिम्बित है।

(ग) दृष्टिकोण :

जैसा कि हम कह चुके हैं, प्रारम्भ से ही सेठ जी के जीवन में सेवा-भाव विद्यमान था, लेकिन महात्मा जी के सम्पर्क में आने के बाद उनकी प्रवृत्तियों और सेवाओं का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया था। इसके साथ ही उनके दृष्टिकोण में भी व्यापकता आ गयी थी। बापू की सादगी, साधना, ज्ञानोपासना, तपस्या आदि से वे बहुत प्रभावित हुए थे। उन्होंने भी ज्ञान और तपस्या को अपना जीवनादर्श बना लिया था। अपने पुत्र कमलनयन को ज्ञान और तपस्या का महत्व समझाते हुए उन्होंने एक पत्र में लिखा है—

"शिक्षा चाहे कितनी ही गहन व व्यापक क्यों न हो, उसको ग्रहण करने का कोई अर्थ नहीं यदि वह सही मार्ग दर्शन न करे और जीवन के वास्तविक अर्थ को समझने में सहायक न हो। एक बात और याद रखने को कहूँगा—और वह

1. "पत्र-व्यवहार भाग-४ (१९६३). पृ. ६१-६२।
2. "बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम" (१९६६), पृ. १५८-५९।

यह कि ज्ञान-प्राप्ति का कोई निश्चित राज-मार्ग नहीं होता। ज्ञान-प्राप्ति के लिए तो व्यक्ति को "तपस्या" करनी पड़ती है :"[1]

इससे स्पष्ट है कि सेठ जी तपः पूत जीवन में विश्वास रखते थे। इस दृष्टि से वे महात्माजी के सच्चे पुत्र थे। उनके उच्च आदर्श को लक्षित कर महात्मा जी ने उनके नाम एक पत्र में कहा था कि — 'तुम पांचवें पुत्र बने ही हो। किन्तु मैं योग्य पिता बनने का प्रयत्न कर रहा हूं।"[2] निःसन्देह सेठ जी का पत्र-साहित्य हमारे सम्मुख तप और त्याग का महान् आदर्श प्रस्तुत करता है।

४. आचार्य विनोबा भावे (१८९५ ई. दीपावली १९८२) :

महात्मा गांधी के आदर्शों को व्यावहारिक जीवन में पूर्णतः कार्यान्वित करने का श्रेय आचार्य विनोबा भावे को ही है। पंडित जवाहरलाल नेहरू महात्मा गांधी के राजनैतिक उत्तराधिकारी थे, तो विनोबा जी उनके आध्यात्मिक उत्तराधिकारी।

(अ) विनोबा जी का पत्र-साहित्य :

विनोबा जी बहुभाषाविद् और बहुश्रुत रहे हैं। उनकी मातृभाषा मराठी होते हुए भी हिन्दी पर उनकी अच्छी पकड़ थी। महात्मा गांधी की तरह उनके दैनिक कार्यक्रम में भी पत्रोत्तर देने का समय नियत रहता था। उनके पत्र बड़े रोचक और उत्प्रेरक हैं। बजाज-परिवार के नाम लिखे उनके पत्रों का एक संग्रह भी प्रकाशित हो चुका है। इसके अतिरिक्त पं. वियोगी हरि द्वारा सम्पादित "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" शीर्षक पत्र-संग्रह में भी हरि के नाम उनके ६ प्रेरणादायक पत्र संकलित हैं।

बजाज-परिवार के साथ महात्मा गांधी के समान आचार्य भावे का भी घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। सेठ जमनालाल बजाज महात्मा गांधी को पिता और आचार्य भावे को गुरु मानते थे। श्री रामकृष्ण बजाज द्वारा सम्पादित "विनोबा के पत्र" शीर्षक संग्रह में बजाज-परिवार के नाम लिखे विनोबा जी के १७१ पत्र संकलित हैं।

(अ) पत्रों में प्रतिबिम्बित विनोबा जी का व्यक्तित्व :

विनोबा जी भारतीय संत-परम्परा की अविच्छिन्न कड़ी हैं। उनके पत्रों में उनके संत-स्वभाव की स्पष्ट झलक मिलती है।

(क) जीवनी-सूत्र :

विनोबा जी ने अपने पत्रों में प्रसंगत : अपने बचपन, अपनी दिनचर्या, अपने प्रवास आदि की चर्चा भी की है। ३-४-१९३८ को मदालसा अग्रवाल के नाम लिखित पत्र में अपने बचपन के बारे में उन्होंने लिखा है—

1. "पत्र-व्यवहार भाग-५" (१९६४), पृ. २८।
2. "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम", पृ. २७।

"………… बचपन में मैं कभी भी किसी की परवा नहीं करता था। आज भी करीब-करीब वैसा ही है। मेरी मां ईश्वरनिष्ठ थी, इसलिए सेवा करती थी, पर अति चिन्ता नहीं करती थी। मुझ पर उसका विश्वास भी असाधारण था।"[1]

इसी प्रकार जमनालाल बजाज को लिखे एक पत्र में अपने "तकली-प्रेम" का वर्णन उन्होंने इस प्रकार किया है—

"तकली कातने में मुझे ऐसी अनोखी स्फूर्ति और शांति मालूम होती है कि मेरे मानसिक शब्द कोष में माता, गीता और तकली ये तीन शब्द अक्षरश: समानार्थक बन गये हैं। "आई" (मां) इस शब्द में मेरे घर की सारी कमाई संचित हो जाती है। "गीता" शब्द में, वेदों से लेकर संत-परम्परा तक जितना अध्ययन किया, वह सब आ जाता है। और "तकली" में बापू जैसों की संगति का सार उतर आता है।[2] सेठ जी के नाम २८-२-१९३५ को लिखित पत्र में उन्होंने अपनी दिनचर्या का जो विवरण दिया है, वह अत्यन्त रोचक है।[3]

(ख) चारित्रिक विशेषताएं :

विनोबा जी की चारित्रिक विशेषताओं के विषय में महात्मा गांधी ने लिखा है—"श्री विनोबा भावे कौन है? मैंने उन्हें ही सत्याग्रह के लिए क्यों चुना? और किसी को क्यों नहीं? मेरे हिन्दुस्तान लौटने पर सन् १९१६ में उन्होंने कालिज छोड़ा था। वह संस्कृत के पंडित थे।…. …….उनकी स्मरण शक्ति आश्चर्यजनक है। वह स्वभाव से ही अध्ययनशील हैं। पर अपने समय का ज्यादा से ज्यादा हिस्सा वह कातने में ही लगाते हैं और उसमें ऐसे निष्णात हो गये हैं कि बहुत ही कम लोग उनकी तुलना में रखे जा सकते हैं। उनका विश्वास है कि व्यापक कताई को सारे कार्यक्रम का केन्द्र बनाने से ही गांवों की गरीबी दूर हो सकती है।[4]

विनोबा जी के चरित्र की ये सभी विशेषताएं उनके पत्रों में प्रतिबिम्बित हैं।

(i) अध्ययनशीलता :

अध्ययनशीलता विनोबा जी के व्यक्तित्व की महत्वपूर्ण विशेषता थी। सेठ जमनालाल जी के नाम लिखित पूर्वोक्त पत्र में उन्होंने अपनी दिनचर्या का जो संक्षिप्त सार लिख भेजा था, उसे देखने से पता चलता है कि वे रोज़ ड़ेढ़ घण्टे तक नियमित लेखन-वाचन करते थे। उनके पत्रों में तुकाराम, ज्ञानदेव, रवीन्द्रनाथ,

---

1. "विनोबा के पत्र," पृ. १००।
2. -वही-, पृ. ११।
3. -वही-, पृ. १४-१५।
4. "गांधी साहित्य-७ : मेरे समकालीन" (१९६८), पृ. ५१८।

भगवान बुद्ध आदि के जो उद्धरण मिलते हैं, उन से भी उनकी अध्ययनशीलता तथा अद्भुत शक्ति का परिचय मिलता है। मदालसा अग्रवाल को प्रेषित एक पत्र में स्वाध्याय का महत्व बतलाते हुए वे लिखते हैं :—

"व्याकरण थोड़ा-थोड़ा होने से भी चलेगा, पर वह रोज़ होना चाहिए। भगवान बुद्ध का एक श्लोक है :—

"असज्झाय भला मंता
अनुट्ठान भला घरा।"

जैसे घर रोज़ न झाड़ने से मलिन होता है, वैसे ही स्वाध्याय न करने से मंत्र मलिन होते हैं। अध्ययन को रोज़ ताज़ा करते रहना चाहिए।"[1]

(ii) सेवा-भावना :

विनोबा जी एक सच्चे समाज-सेवी थे। अपने भूदान-यज्ञ के कार्यक्रम से उन्होंने अनेक गरीबों की सेवा सहायता की है। दीन, दुखी, पीड़ित, रोगी आदि के प्रति उनके मन में कितनी सहानुभूति थी, इसका संकेत हमें उनके १६-९-३२ को लिखे निम्नांकित पत्रांश में मिलता है। यह पत्र उन्होंने मदालसा अग्रवाल को भेजा था। देखिए :

"............ अतिथि की भांति दीन, दुखी, पीड़ित, रोगी इत्यादि की सेवा करना भी समाज-पूजा का ही अंग है। दरिद्रनारायण भी महान देव ही है। उसका हम पर जो उपकार है, वह कभी भी अदा होने वाला नहीं है।"[2]

महात्मा गांधी की तरह विनोबा जी भी हरिजन-सेवा को समाज-पूजा का अंग मानते थे। हरिजनों की सहायता के लिए उन्होंने अथक परिश्रम किया था। इस सम्बन्ध में पं. वियोगी हरि के नाम ५ नवम्बर १९५१ को लिखे पत्र का अंश यहां हम उद्धृत करना चाहते हैं—

"मैं आजकल भूमिदान-यज्ञ में लग गया हूँ, लेकिन उसमें भी हरिजनों को नहीं भूला हूँ। भूल भी कैसे सकता हूँ, जब कि मैं खुद अपनी इच्छा से और कामों से हरिजन बन गया हूं।"[3]

इससे स्पष्ट है कि दीन-हीनों की सेवा विनोबा जी के जीवन का मूल मंत्र रही थी।

(iii) आस्तिकता :

विनोबा जी परम आस्तिक थे। ईश्वर में उनकी अपार आस्था थी। वे मानते थे कि उनका जीवन ईश्वर की इच्छा के अनुसार चलता है। मदालसा अग्रवाल को उन्होंने स्पष्ट लिखा था :

---

1. "विनोबा के पत्र" (१९६२), पृ. ९२।
2. "विनोबा के पत्र" (१९६२), पृ. ६९।
3. बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र (१९६०), पृ. ६०।

"............ईश्वर जैसे नचायेगा वैसे मैं नाचूंगा। काम मेरा नहीं, उसका है। वह मुझे घुमा रहा है। इसलिए घूम रहा हूं।"[1]

(iv) निर्भयता :

ईश्वर में अपार आस्था होने के कारण विनोबा जी सभी प्रकार के भय से मुक्त हो गये थे। वैसे वे बचपन से ही निर्भीक थे, किन्तु स्वाध्याय और चिन्तन-मनन के कारण बाद में वे निर्लिप्त होकर सर्वथा, निर्भय बन गये। मदालसा अग्रवाल को निर्भयता का सबक सिखाने के लिए १४-९-१९४४ के पत्र में एक तमिल कविता का सन्दर्भ देते हुए उन्होंने लिखा :—

"हाल ही में तमिल की एक सुन्दर कविता मेरे पढ़ने में आई, उसमें कहा है :

"सारी दुनिया विरोध में खड़ी हो जाय। चित्त की सारी आकांक्षाएं निष्फल हो जायं। चाहे माथे पर आसमान फट पड़े, भय नहीं है। भय नहीं है। भय नहीं है।"............ यही मेरा भी अनुभव है। और अनेकों का है।"[2]

(ग) दृष्टिकोण :

विनोबा जी महात्मा गांधी के आध्यात्मिक उत्तराधिकारी थे। वे आध्यात्मिक दृष्टि से जीवन व्यतीत करते थे और अपने अनुयायियों को यही दृष्टिकोण अपनाने की सलाह देते थे। उदाहरणार्थ अनसूया-बजाज को लिखे उनके १५-३-१९-६० के पत्र का यह अंश देखिए—

"............आत्मा अखंड है। अनेक देह आते-जाते हैं। देह में बचपन, जवानी, बुढ़ापा और उसमें अनेक सुख और अनेक दुःख, यह चक्कर चलता ही रहता है। उसमें जो ईश्वर पर श्रद्धा रखकर चित्त को शांत रखता है, वह भक्त ईश्वर का प्यारा होता है।"[3]

इस प्रकार विनोबा जी के पत्रों में उनका संत स्वभाव सर्वत्र प्रतिबिम्बित है। आध्यात्मिक और साहित्यिक दोनों ही दृष्टियों से उनके पत्र अत्यन्त महत्व-पूर्ण हैं।

निष्कर्ष :

इस प्रकार साहित्यिक और साहित्येतर क्षेत्रों के प्रमुख पत्र लेखकों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि युग-विधायक साहित्यकारों तथा महापुरुषों के पत्र उनके विचारों एवं मनोभावों के निर्मल दर्पण हैं। इन पत्रों में हमें उन आदर्शों और आकांक्षाओं की झांकी मिलती है जो कि लेखक के आधार-स्तम्भ हैं।

1. विनोबा के पत्र, पृ. १२०।
2. "विनोबा के पत्र" (१९६२), पृ. १०२।
3. -वही—, पृ. ४६।

ग्रौर जिनके ग्रध्ययन ग्रौर ग्रनुशीलन से हम जीवन का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं। यहां जिन पत्र-लेखकों का ग्रध्ययन प्रस्तुत किया है, वे सभी ग्रपने क्षेत्र के लब्ध-प्रतिष्ठ व्यक्ति हैं, पत्र-लेखन में उनकी गहरी रुचि है ग्रौर ग्रपने पत्रों से उन्होंने ग्रनेक व्यक्तियों को प्रेरित-प्रोत्साहित किया है। इन पत्र-लेखकों के कलात्मक एवं गरिमामय व्यक्तित्व के कारण ही उनके व्यक्तिगत पत्र प्रकाश में ग्राये हैं ग्रौर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन गये हैं।

अध्याय ४

हिन्दी पत्र-साहित्य में समसामयिक सन्दर्भ

पत्र-साहित्य और समकालीन इतिहास :

जीवन के विविध क्षेत्रों में अपने त्याग और बलिदान से सफलता प्राप्त करने वाले मनीषियों के पत्र न केवल उनके व्यक्तित्व के निर्मल दर्पण ही होते हैं, वरन् समकालीन इतिहास के मूल्यवान् दस्तावेज़ भी होते हैं। विश्वविख्यात पत्र-लेखक नेपोलियन बोनापार्ट के पत्र के सम्पादक श्री थॉम्प्सन महोदय ने बहुत उपयुक्त लिखा है :

"पत्र, कुल मिलाकर सर्वाधिक सच्चे, साथ ही दिलचस्प दस्तावेज़ हैं। जीवन के दर्शन और इतिहास के विद्यार्थी दोनों के लिए ये साधारण स्वीकृतियां, जो कि प्रसिद्ध व्यक्ति आग की तरह ज्वलन्त विश्वास के साथ व्यक्त करते हैं, अपरिमित मूल्य रखती हैं।"[1]

उत्तर मध्यकाल से लेकर अब तक का जो प्रमाण-भूत पत्र-साहित्य प्रकाश में आया है, उसमें समकालीन इतिहास के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ-सूत्र प्राप्त होते हैं। इन सन्दर्भों से मुख्यतः तीन कार्य सिद्ध होते हैं :—(१) तत्कालीन इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं की पुष्टि होती है, (२) नये तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है और (३) प्रसिद्ध व्यक्तियों तथा घटनाओं के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रांतियों का निराकरण होता है। इस प्रकार समकालीन इतिहास के अध्ययन और लेखन में पत्र-साहित्य से अपूर्व सहायता मिलती हैं।

---

1. "Letters are, upon the whole, the most truthful as well as the most interestion of historical documents. Both to the spectator of life and to the student of history there is infinite value in the uuconsidered confessions, the fireside confidences of puplicmen."

—"Napoleon's Letters" (1965), Translated and Edited by J.M. Thompson, Introduction, P. 5.

हिन्दी पत्र-साहित्य में प्राप्त समसामयिक सन्दर्भों का विभाजन :

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, पत्रों में लेखक किसी विशिष्ट समय की स्वयं के सम्बन्ध में अथवा अन्य किन्हीं व्यक्तियों और घटनाओं के सम्बन्ध में प्रतिक्रियाएं व्यक्त करता है। ये प्रतिक्रियाएं लेखक द्वारा ऐसे क्षणों में व्यक्त की जाती हैं जब कि वह अपने स्वभाव और अकृत्रिम रूप में होता है। अतः समसामयिक परिस्थितियों के जो यथार्थ सन्दर्भ हमें पत्र-साहित्य में प्राप्त होते हैं, वे साहित्य की अन्य विधाओं में नहीं मिलते। उत्तर मध्यकाल से लेकर अब तक का जो प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाशित हुआ है, उसमें प्राप्त समसामायिक सन्दर्भों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से निम्नलिखित विभागों में बांटा जा सकता है :

(१) राजनैतिक सन्दर्भ,
(२) सामाजिक सन्दर्भ,
(३) धार्मिक सन्दर्भ और
(४) साहित्यिक सन्दर्भ।

अब हम यहां प्रत्येक विभाग के सन्दर्भों की विस्तार से चर्चा करेंगे।

१. राजनैतिक सन्दर्भ :

जिस समय से मानव-समाज सभ्य बनकर किसी-न-किसी शासन को स्वीकार करने लगा, उस समय से उसके समग्र जीवन पर राजनैतिक परिस्थितियों का प्रभाव पड़ने लगा। भारत के राजनैतिक इतिहास में नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम की गतिविधियों का बहुत बड़ा महत्व है। अतएव उन्हीं को केन्द्र में रखकर हिन्दी पत्र-साहित्य में प्राप्त राजनैतिक सन्दर्भों को अधोलिखित तीन वर्गों में उप-विभाजित किया जा सकता है :—

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ,
(ख) नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम काल की राजनैतिक-गतिविधियों के संदर्भ और
(ग) वर्तमान युगीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ।

सबसे पहले हम पूर्व-नवजागरण कालीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भों की चर्चा करेंगे।

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ :

पूर्व-नवजागरणकालीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ हमें डा. जघुनाथ सरकार तथा डा. रघुवीरसिंह द्वारा सम्पादित शिवाजी की औरंगज़ेब के दरबार में आगरा की यात्रा-सम्बन्धी पत्र-संग्रह Shivaji's visit to Aurangzeb at Agra, डा. नारायणसिंह भाटी द्वारा सम्पादित "परम्परा" भाग-२४, डा. महेन्द्रप्रतापसिंह द्वारा सम्पादित "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल", डा. काशिनाथ शंकर केलकर द्वारा लिखित "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र," डा.

धीरेन्द्र वर्मा तथा डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा सम्पादित प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" आदि में प्राप्त होते हैं।

आगरे में छत्रपति शिवाजी की बादशाह औरंगज़ेब के साथ मुलाक़ात और वहां शाही क़ैद से शिवाजी के निकल भागने का सबसे अधिक सच्चा और पूरा-पूरा वृत्तांत सन् १९३९ ई. में जयपुर राज्य के पुराने दफ़्तरों से मिलता है।

ऐसी समकालीन और विश्वसनीय ऐतिहासिक सामग्री फारसी अथवा अन्य किसी भाषा में लिखित ग्रन्थ में नहीं मिलती। इन पत्रों से बहुत-सी प्रचलित गप्पें और दन्तकथाएं बिलकुल झूठ साबित हो गयी हैं।

यह तो सर्वविदित है कि औरंगज़ेब ने शाहजहां को आगरे के किले में बन्द कर दिया था। जब तक शाहजहां आगरे के किले में क़ैद रहे, तब तक औरंगजेब दिल्ली में ही रहा। शाहजहां की मृत्यु के बाद ही उसने आगरे में में प्रवेश किया। औरगज़ेब के आगरे में प्रवेश का उल्लेख आम्बेर के वकील पारकलदास द्वारा दीवान कल्याणदास के नाम २३ फरवरी १६६६ को लिखित पत्र में मिलता है। इस पत्र का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है:—

"सिद्ध श्री सर्वोपमा विराजमान दीवान जी श्री कल्याणदास जी जोग लिखतं आग्याकारी परकालदास केन सेवा अवधारिज्यो जी। बैठा समाचार श्रा दीवान की महरबानी थे भला छै जी। दीवानजी का घड़ी-घड़ी का सदा भला चाहिज्ये जी। अप्रंचि ता. २० मा. सावन सन् १०७६ (१५ फरवरी १६६६) पातशाह जी आगरे आणि पहोचा छै जी। दाराशाह की हवेली में रहे छै जी।।"[1] चांद-तिथि के अनुसार बादशाह औरंगजेब का ४९ वां जन्मदिन १२ मई १६६६ ई. को पड़ता था। बादशाह ने उसी दिन शिवाजी के राज-दर्शन के लिए हुक्म दिया था। सामान्य शिष्टाचार ऐसा था कि जब कोई बड़ा व्यक्ति राज-दर्शन के लिए आता था तो उसके दरजे के मुताबिक एक या दो बड़े उमरा राजधानी से एक दिन की मंजिल आगे बढ़कर उससे मिलते थे, उसको साथ ले आते और फिर दरबार में राज-दर्शन के लिए ले जाते थे। इस आगे बढ़कर स्वागत करने की तत्कालीन राजनैतिक प्रणालिका को "इस्तिकबाल" अथवा "पेशवाई" कहते हैं। इस प्रणालिका का वर्णन दीवान कल्याणदास को परकालदास ने इन शब्दों में लिख भेजा है:—

"..........और सेवा के तांई श्री महाराज कवांर जी खत लिख चलायो छै, जू ता. १७ मा. ज़ीकाद सन् १०७६ ने इहां आह पहोंचियों, आणि मुलाजमत करियो। सो सेवा जी ता. १७ ज़ीकाद आवेलो जी। और जो समाचार होइला सू पाछ थे अरजू लिखां ला। और पातशाह जी हुक्म कियो छो जू सेवाजी को

1. "Shivaji's Visit to Aurangzeb at Agra" (1963), P. 13.
2. "Ibid, p. 18-19.

पेशवा श्री महाराज कवांर जी व फिदाई खां एक मंजिल जाइ ले अवो। सू ये पेशवा जाइ ले आवोला जी। ता. १७ ने मुलाजमात करेला जी।"

इस प्रकार ये पत्र मध्ययुगीन राजनैतिक इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं के प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत करते हैं।

डा. महेन्द्रप्रताप सिंह द्वारा सम्पादित "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल" शीर्षक पुस्तक में संकलित महाराजा छत्रसाल से सम्बन्धित ऐतिहासिक पत्रों और दस्तावेज़ से पता चलता है कि महाराज छत्रसाल ने सम्राट औरंगजेब के जीवनकाल में उनके साम्राज्य को तोड़कर बुन्देलखण्ड में एक स्वतंत्र सत्ता की स्थापना कर ली थी। अपने पुत्र जगतराज को प्रेषित एक पत्र में महाराजा छत्रसाल ने लिखा है कि उन्होंने स्वामी प्राणनाथ और ईश्वर की कृपा से लड़ाई में विजय प्राप्त की थी। उन्हीं के शब्दों में—

"......... हमारे पराक्रम को खयाल करौ तो हमें बरदान प्राननाथ जू कौ हो गयौ हतौ और ईसुर की मरजी सौ वन की मरजी से फते करी ऐसे पराक्रमी तुमकौ नहीं होने, हमारी राय जा है कि सब विदिया थोड़ी-थोड़ी सीखो चाहिए।........ "[1]

इससे स्पष्ट है कि छत्रसाल से सम्बन्धित ऐतिहासिक प्रमाणावली से अनेक नये तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है।

डा. नारायणसिंह भाटी के सम्पादकत्व में प्रकाशित "परम्परा" के भाग-२४ में अनेक ऐतिहासिक पत्र और दस्तावेज़ संकलित हैं। इसमें वीर दुर्गाप्रसाद राठौर का भी एक पत्र प्रकाशित है जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। इस पत्र में सम्वत् का उल्लेख नहीं है, किन्तु तिथि आषाढ़ सुदि १३ रविवार दी गयी है। डा. दशरथ शर्मा के मतानुसार इस पत्र को संवत् १९४८ में रखा जा सकता है।[2] यह पत्र दुर्गादास राठौड़ द्वारा बिलाड़े के दीवान रामसिंह के नाम लिखा गया है। यह पत्र उस समय लिखा गया था जब चारों ओर यह अफवाह फैल रही थी कि शाहजादा अकबर ईरान से सहायता प्राप्त कर भारत पर आक्रमण करनेवाला है और उसकी सेना कंधार पहुंच चुकी है। पत्र का उपयोगी अंश यहां उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जाता है:—

"श्री परमेश्वरजी सत्य छै,

स्वस्ति श्री गांव डायलाणा सुथाने चौधरी जी श्री रामसिंह जी ज्योग लश्कर था राज श्री दुरगादास जी लिखावंत जुहार अवधार जो जी।.......... अप्रंच श्री अकबर जो री हजूर था कासीद आगे आया था। आं साथे समाचार आया था सु म्हे राज नु पहला लिखीयो छै नै दीश्वण री खबर आयाँ यो आई

1. ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल (१९७५), पृ. ११४।
2. "कुछ ऐतिहासिक रुक्के और परवाने" (लेख), "परम्परा", १९६७, परिशिष्ट-२, पृ. ५।

छै मु. काबुल था अमीर खां पातसाह नुं बाका में लिखीयो छै जू अकबर जी री थांणो खंधार आयो छै नै असवारी हुई छै ।''[1]

इस पत्र के अतिरिक्त ''परम्परा भाग-२४'' में जोधपुर के महाराजा अजीतसिंह की ओर से सवाई जयसिंह को प्रेषित अनेक महत्वपूर्ण पत्र भी संकलित हैं जिनसे औरंगजेब की मृत्यु के बाद की अनेक राजनैतिक उथल-पुथलों के संदर्भ मिलते हैं।[2] इस प्रकार उत्तर मध्यकाल की राजनैतिक गतिविधियों के अध्ययन के लिए ये पत्र बहुत उपयोगी हैं।

डा. काशिनाथ शंकर केलकर ने अपने शोध प्रबन्ध ''१८ वीं शती के हिन्दी पत्र'' में मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित २०८ हिन्दी पत्रों का भाषा वैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन किया है। प्रस्तुत प्रबन्ध के आठवें अध्याय में मराठा शासकों और सेना-नायकों के पत्रों में प्राप्त ऐतिहासिक तथ्यों की विस्तार से चर्चा की गयी है। उदाहरणार्थ पत्र क्रमांक १५९ से ''निजाम-मराठा सम्बन्ध'' पर प्रकाश पड़ता है। इसमें पेशवा बालाजी बाजीराव द्वारा हैदराबाद के निजाम आसफजांह के पुत्र गाजीउद्दीन की सहायता करने का उल्लेख है।[3] इसी प्रकार पत्र-क्रमांक ११५ ''मराठा-राजपूत सम्बन्ध'' की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इसमें किला रणथंबोर को लेकर मराठों और राजपूतों के बीच हुई लड़ाई का वर्णन है।[4] संक्षेप में ये पत्र १८ वीं शती के अनेक महत्वर्ण ऐतिहासिक तथ्यों को प्रकट करते हैं।

डा. धीरेन्द्र वर्मा तथा डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय की सम्पादकता में इलाहाबाद विश्वविद्यालय की ओर से प्रकाशित ''प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह'' में हमें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक शासनकाल के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। ये पत्र सन् १७९३ से १८२० के बीच की अवधि में लिखे गये हैं। आधुनिक युग के राजनैतिक प्रदेशों की दृष्टि से प्रस्तुत पत्रों का सम्बन्ध दिल्ली, उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात, बिहार, उड़ीसा तथा नेपाल से है। लेखकों की दृष्टि से इन पत्रों का वर्गीकरण करते हुए कहा जा सकता है कि कम्पनी सरकार के शासकों, देशी नरेशों, नवाबों, ज़मीदारों, चौधरियों और कानूनगो आदि के बीच यह पत्र-व्यवहार हुआ है। दीवानी या फौजदारी के मुकदमे के सिलसिले में इन पत्रों में निम्न स्तर के सरकारी कर्मचारियों, हरकारों, चौकीदारों तथा चपरासियों के बयान भी कहीं-कहीं मिलते हैं। जैसे, कम्पनी के बड़े साहब के नाम एक प्रार्थना-पत्र में कहा गया है :

''श्री श्री बड़ा साहब गरीब प्रवर सलांमति सरकार का खैरसलाह मोंदाम

---

1. ''परम्परा'' भाग-२४, १९६७, पृ. ६।
2. -वही—, पृ. २८,२९, और ३३।
3. ''१८ वीं शती के हिन्दी पत्र'' (१९७०), पृ. ४२९।
4. -वही-, पृ. ४०७-४०८।

का बेहतर चाहिये जिस्ते हमारा भला होये ।"[1]

बिहार की अदालत में उम्मेदराय, शेख बंगू, मोहन, कन्हाई बढ़ई आदि ने जो बयान दिये हैं, उनमें कहा गया है कि उन बयानों को "होंदुई और होंदवी" में लिखा जाय । जैसे, बंगू ने अदालत में कहा था—"हमारा इजहार हींदवी में लीखा जाऐ हम हींदवी बोलते हैं ।"[2]

इन बयानों से स्पष्ट होता है प्रशासन के क्षेत्र में एक ओर मुगलों की राजभाषा फारसी का बोलबाला और दूसरी ओर अंग्रेज शासकों के अंग्रेजी लादने के प्रयत्नों के बावजूद भी भारतीय जनता में भारतीय लोक भाषाओं की जड़ें गहराई से जम गयी थीं । इस प्रकार इन पत्रों में परोक्ष या अपरोक्ष रूप से भारतीय राजाओं या नवाबों की राजनैतिक सत्ता के विघटन तथा अंग्रेजी राजसत्ता के विस्तार से सम्बन्धित घटनाएं संकलित हैं ।

सारांशत : औरंगज़ेब के शासनकाल से लेकर ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भिक शासनकाल तक के प्राप्त पत्रों में हमें पूर्व-नवजागरणकालीन राजनैतिक गतिविधियों के अनेक सन्दर्भ देखने को मिलते हैं । इन सन्दर्भ-सूत्रों से तत्कालीन राजनैतिक परस्पराओं, घटनाओं और समस्याओं की प्रामाणिक और रोचक जानकारी मिलती है ।

(ख) नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम-काल की राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ

भारत के राजनैतिक इतिहास में नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम का सूत्रपात सन् १८५७ के विप्लव से ही हो गया था, किन्तु भारतीय शासकों की राजनैतिक अदूरदर्शिता, पारस्परिक वैमनस्य, विलासिता आदि के कारण वह क्रान्ति सफल न हुई ।

पं. गौरीशंकर द्विवेदी "शंकर" ने सन् १८५७ के विप्लववादियों के कुछ महत्व पूर्ण पत्र "सन् सत्तावन की ऐतिहासिक पत्रावली" शीर्षक से प्रकाशित किये हैं । इस पत्रावली को पढ़ने से ज्ञात होता है कि महारानी झांसी वीरांगना लक्ष्मीबाई इस विप्लव की संचालिका थीं और नानाराव, तांत्या टोपे, राजा मर्दनसिंह, राजा बखतवली और कितने ही राजा-महाराजा, नवाब आदि उनके सहायक थे। अन्तिम मुग़ल सम्राट तक इसमें सम्मिलित हो गये थे । उन्होंने समूचे देश में राजा-महाराजाओं को फरमान भेजकर इस क्रांति में सम्मिलित होने का आग्रह किया था । राजा मर्दनसिंह को तत्कालीन ओरछे की महारानी लड़ाई सरकार ने जो पत्र भेजा था, उसमें अंतिम मुग़ल सम्राट् के फरमान का स्पष्ट उल्लेख है । देखिए—

1. "प्राचीन हिन्दी-पत्र संग्रह" (१९५९), पृ. १८ ।
2. "प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह पृ. ११ ।

"महाराजाधिराजू श्री महाराज श्री राजामर्दनसिंह बहादूर जू देव एते श्री रानी महारानी श्री रानी लड़ाई सरकार बाजू देव्य के बांचने ..... अपने खुशी रहा इस के खबर पायो जादा खुशी हासिल भई जुबानी हकीकत लाला किशोरसिंह ने जाहिरकरी हुई है ई हाल बादशाही फरमान अपुन कौ व रजवारिन कौ इश्तहार उहाँ आयौ सो वाजिबलै कैं पं. श्री चौधरी खतसिह पठवाइये .. " ।[1]

इस पत्र के किनारे पर तिथि-निर्देश इस प्रकार दिया गया है—आसुन बदी ३ सं. १९१४ टीकमगढ़। पत्र के नीचे लड़ाई सरकार की मुहर लगी है।

कुछ पाश्चात्य इतिहासकारों ने भ्रमवश या जानबूझ कर अपने इतिहासों में यह लिखा है कि महारानी झांसी केवल झांसी के लिए ही लड़ी थीं, परन्तु इन पत्रों से उस मत का खंडन हो जाता है और सिद्ध होता है कि यह क्रान्ति समूचे देश को स्वतंत्र बनाने के लिए थी।

यद्यपि देशी राजाओं की उपर्युक्त कमजोरियों के कारण यह क्रांति सफल न हुई, तथापि राजनैतिक क्षेत्र में उसका प्रभाव अविस्मरणीय है। इस विग्रह के बाद राजनैतिक ढांचा नये सिरे से निर्मित हुआ।

सन् १८५७ के विप्लव ने सभी देशभक्तों को राष्ट्र के लिए बलिदान होने की अपूर्व प्रेरणा दी। अतः इसे नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम का प्रथम चरण माना जाता है।

भारतीय नवजागरण तथा स्वराज्य-आन्दोलन को क्रियाशील बनाने में स्वामी दयानन्द सरस्वती का योग कम महत्वपूर्ण नहीं है। भारत की गहरी निद्रा के पश्चात् ऋषि दयानन्द सरस्वती ही पहले पुरुष थे जिन्हें भारत में देशोन्नति और स्वराज्य का यथार्थ ध्यान आया। उनके तीसरे-चौथे पत्र में देशोन्नति का शब्द दिखाई पड़ता है। "स्वराज्य" शब्द भी पहले पहल उन्होंने ही प्रयुक्त किया।[2]

जैसा कि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, भारत के आद्य क्रांतिकारक श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा स्वामी दयानन्द सरस्वती के शिष्य थे। स्वाधीनता-संग्राम के महान् सेनानी लाला लाजपतराय आर्य समाज को अपनी "माता" समझते थे।[3] उन्होंने सन् १९०६ में "पगड़ी संभाल ओ जट्टा" नामक पहला किसान आंदोलन संचालित किया था। लाला जी को अंग्रेजों ने जब छल से पकड़कर सन् १९०७ में काले पानी की सजा दी। तो अनेक आर्य-समाजी नेताओं के चित उद्विग्नता से भर गये थे। पं. पद्मसिंह शर्मा ने इस सन्दर्भ में

---

1. "सन् सत्तावन की ऐतिहासिक पत्रावली," "नयासंसार," २६ जनवरी, १९६६, पृ. ११।
2. "ऋषि दयानन्द के पत्र और विज्ञापन," पृ. ३६।
3. "नये भारत के निर्माता" (१९४९), क्षेमचन्द्र सुमन, पृ. ५६।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम १४-५-१९०७ को प्रेषित पत्र में लिखा था :

"आज एक आत्मीय के प्राइवेट पत्र से यह मालूम करके चित्त बड़ा उद्विग्न और क्षुब्ध हो रहा है कि पंजाब के नेता ला. लाजपतराय को अंग्रेजों ने धोखे से पकड़कर ता. ९ की रात्रि में स्पेशल ट्रेन से चुपचाप काले पानी भेज दिया ।"[1]

भारत के स्वाधीनता-संग्राम को नयी चेतना प्रदान करनेवाले राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को आर्य-समाज और उसके नेताओं के प्रति गहरी श्रद्धा-भक्ति थी। उनके लड़के गुरुकुल में पढ़ते थे। उन्होंने दक्षिण अफ्रीका से लौटकर सन् १९१५ में अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना करने के उपरांत १४ जून १९१५ को महात्मा मुंशीराम को लिखा था :

"अहमदाबाद में हाल तो आश्रम खोल दीया है। उसकी नियमावली हिन्दी में बन रही है। तैयार होने से आपको अभिप्राय के लिए भेज दी जायगी।"[2]

पंजाब की घटनाओं की जाँच के लिए सरकार ने जिस हंटर कमीशन की नियुक्ति की थी, उसकी रिपोर्ट २८ मई १९२० में प्रकाशित हुई। गाँधी जी ने हंटर कमीशन की पक्षपातपूर्ण रिपोर्ट तथा खिलाफत को लेकर असहयोग आंदोलन का निश्चय किया। कलकत्ता कांग्रेस के विशेष अधिवेशन (सितम्बर १९२०) में दीनबन्धु चितरंजनदास के विरोध के बाद भी गांधी जी का असहयोग का प्रस्ताव स्वीकृत हो गया।

भारत के स्वाधीनता-संग्राम में असहयोग-आन्दोलन का विशेष महत्व है। अनेक देशभक्तों ने इस आंदोलन में सक्रिय होने के लिए सरकारी नौकरियों और उपाधियों को तिलांजलि दे दी। इसी आंदोलत से प्रभावित होकर फरवरी १९२१ में प्रेमचन्द जी ने २० वर्ष की सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र दे दिया।[3] सरकारी नौकरी से त्याग-पत्र देने के बाद उन्होंने सक्रिय रूप से राजनीति में भाग तो नहीं लिया, परन्तु पत्र-पत्रिकाओं में निरंतर लेख और सम्पादकीय टिप्पणियां लिखकर जनमत के जागरण में उन्होंने पूर्ण सहयोग प्रदान किया। इसी समय जबकि आंदोलन अपनी चरम सीमा पर पहुँच चुका था, चौरी-चौरा के हिंसात्मक काण्ड के कारण गांधी जी ने आंदोलन स्थगित कर दिया। १३ मार्च को गांधीजी गिरफ्तार कर लिए गये और उन्हें छह वर्ष का कारावास दण्ड दिया गया। दिनांक १९-३-१९२२ को अंडर ट्रायल कैदी की हालत में गांधी जी ने साबरमती जेल से सेठ जमनालाल बजाज के नाम पत्र में स्वराज्य के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए लिखा था :

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १३७।
2. "गांधी हिन्दी दर्शन" (प्र.सं.), पृ. ४१८।
3. "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), पृ. १११।

"चि. जमनालाल,

जैसे-जैसे मैं सत्य की शोध करता जाता हूँ, मुझे प्रतीत होता है कि उसमें सब कुछ आ जाता है। प्रायः यह प्रतीत होता है कि अहिंसा में वह नहीं है, परन्तु उसमें अहिंसा है।……… इस धर्म का पालन अपेक्षाकृत सहज हो जाय, इस हेतु मैं इस प्रवृत्ति में पड़ा हूँ। और तुम्हारे समान लोगों को होमने में भी नहीं झिझकता। इसका बाह्य स्वरूप हिन्दी स्वराज्य है। उसका सच्चा स्वरूप तो उस-उस व्यक्ति का स्वराज्य है। अभी एक भी शुद्ध सत्याग्रही उत्पन्न नहीं हुआ है। इसी कारण यह देर हो रही है। किन्तु इसमें घबराने की तो कोई बात ही नहीं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि हमें और भी अधिक प्रयत्न करना चाहिए।"[1]

असहयोग आन्दोलन में देश ने जिस सम्मिलित शक्ति का परिचय दिया था, आंदोलन के स्थगन के बाद वह खण्ड-खण्ड हो गयी। कांग्रेस में दो दल हो गये-एक अपरिवर्तनवादी (Nochanger) और दूसरा परिवर्तनवादी (Prochanger)। प्रथम दल के लोग गांधी जी की असहयोग और बहिष्कार की नीति पर दृढ़ रहने के पक्ष में थे। और द्वितीय दल के लोग कौंसिलों में प्रवेश करके सरकार की दमन नीति का विरोध करना चाहते थे।

उस समय के प्रसिद्ध समाचारपत्र "जमाना" के सम्पादक मुंशी दयानारायण निगम ने प्रेमचन्द जी को एक पत्र भेजकर इन दोनों पार्टियों में से वे किस पार्टी में हैं, ऐसा प्रश्न किया था, जिसका उत्तर देते हुए १७ फरवरी १९२३ के पत्र में प्रेमचन्द जी ने लिखा था :

"आपने मुझसे पूछा मैं किस पार्टी में हूं। मैं किसी पार्टी में भी नहीं हूँ। इस लिए कि दोनों में से कोई पार्टी कुछ असली काम नहीं कर रही है। मैं तो उस आनेवाली पार्टी का मेम्बर हूँ जो कोतहुन्नास की सियासी तालीम को अपना दस्तूर-उल-अमल बनाये। स्वराज्य-खिलाफ़त पार्टी की जानिब से कान्स्टीच्यूशन निकला है, उससे अलबत्ता मुझे कुल्ली इत्तफ़ाक़ है।"[2]

स्वराज्य दल के उत्तर प्रदेश में बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन ने सेठ जमनालाल बजाज के नाम जुलाई १९२५ को एक पत्र लिख भेजा था। इस पत्र में टंडन जी ने स्वराज्य दल के सम्बन्ध में महात्मा गांधी के मंतव्य को जानने की उत्सुकता प्रकट की है। पत्र का प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है: –

प्रियवर वन्दे।

स्वराज्य पार्टी का पूरा बल कांग्रेस पर कब्जा करने की ओर लग रहा है। महात्मा जी का इस विषय में क्या हार्दिक मंतव्य है और आप लोग अर्थात् आप, वल्लभभाई, राजगोपालाचार्य जी और राजेन्द्रबाबू क्या करना चाहते हैं, यह मैं जानना चाहता हूँ। मेरे सामने यह प्रश्न तुरन्त ही जोर से उपस्थित होने वाला

---

1. "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ. २६-२७।
2. "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), पृ. १२९-३०।

है, क्योंकि स्वराज्य दल संयुक्तप्रांत पर कब्जा करना चाहेगा। इस प्रांत पर कब्जा कर लेने से उनका वजन कांग्रेस में बहुत बढ़ जायगा। मैं महात्मा जी की नीति पूरी तरह न जानने के कारण असमंजस में हूँ। यदि महात्मा जी कांग्रेस को स्वराज्य दल के हवाले करने पर तैयार हों, क्योंकि मैंने ऐसा सुना है कि उन्होंने पंडित मोतीलाल को कुछ इसी प्रकार का पत्र लिखा है—तो हम लोग चुनाव इत्यादि के झगड़े में फिर क्यों पड़ें ?"[1]

टंडन जी की धारणा सही निकली और सितम्बर १९२५ की पटना कांग्रेस की महासमिति की बैठक में राजनैतिक कार्य का भार स्वराज्य-पार्टी के कंधों पर डाल दिया गया। फलतः कांग्रेस के दोनों दलों के भेद भाव दूर हो गये। कौंसिलों में प्रवेश करने के बाद स्वराज्य पार्टी का जन-साधारण से कोई सम्बन्ध न रहा। इस सम्बन्ध में श्री पारसनाथ सिंह के नाम अपने ४-८-१९२६ के पत्र में पं. पद्मसिंह शर्मा ने लिखा है :—

"कौंसिलें तो निठल्ले और लीडरत्व-लोलुप लोगों के लिए हैं। संसार भर के दुर्व्यसनों में, मैं कौंसिलों को प्रधान समझता हूँ। भारत की सामाजिकता के लिए यह क्षयरोग है। कौंसिलों के बायकाट पर लिखने को तो जी चाहता है, बहुत-सी बातें सूझती हैं।"[2]

असहयोग आंदोलन स्थगित किये जाने के बाद हिन्दू-मुस्लिम एकता का विशाल भवन धराशायी हो गया था। सन् १९२२ से १९२७ तक देश में साम्प्रदायिक दंगों की बाढ़-सी आ गयी। स्थान-स्थान पर भयंकर हिन्दू-मुस्लिम दंगे हुए। सन् १९२४ में नागपुर के हिन्दू-मुस्लिम दंगे को रोकने के लिए प्रसिद्ध गांधीवादी कार्यकर्त्ता सेठ जमनलाल बजाज के बायें हाथ पर चोट लगी और उनको अस्पताल ले जाना पड़ा। इस चोट के समाचार जब महात्माजी को मिले, तब उन्होंने सेठ जी को लिखा :—

"तुमको चोट लगी, इससे मुझे बिलकुल दुःख नहीं हुआ। मैं तो मानता हूँ कि हम जैसे बहुतों को कदाचित् बलिदान होना पड़े। जहर इतना ज़्यादा व्याप्त हो गया है और अप्रामाणिकता इतनी ज्यादा फैल गई है कि कुछ शुद्ध व्यक्तियों के बलिदान हुए बिना इस आपत्ति से हमारा छुटकारा नहीं हो सकता। हो सके तो झगड़े की जड़ का पता लगाना।"[3]

प्रयाग से सेठ जी को इस कार्य के लिए बधाई देते हुए तथा उनके प्रति संवेदना प्रकट करते हुए राजर्षि टंडन जी ने लिखा :

1. "पत्र-व्यवहार भाग-१" (१९५८), पृ. ९-१०।
2. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. ४।
3. "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ. ३४।

प्रियवर,

वंदे। नागपुर में जिस वीरता से आपने हिन्दू-मुसलमान झगड़े को रोका उस पर बधाई। आपकी चोट का अब क्या हाल है? विश्वास करता हूँ कि अब आप अच्छे होंगे।"[1]

भारत के शासन-विधान की जांच के लिए सरकार ने नवम्बर १९२७ में "साइमन-कमीशन" की नियुक्ति की। फरवरी १९२८ में कमीशन भारत आया। इस कमीशन में कोई भी भारतीय नहीं था, इसलिए सभी दलों ने उसका विरोध किया। देश में सर्वत्र इस कमीशन का बहिष्कार किया गया और "साइमन वापस जाओ" के नारे लगाये गये। इस विरोध को सरकार ने लाठी और गोली से रोकने का प्रयास किया। लाहौर में लाला लाजपतराय पुलिस की लाठी के शिकार हुए। लखनऊ में जवाहरलाल नेहरू पर पुलिस की मार पड़ी। पुलिस के इस अत्याचार की निन्दा करते हुए सेठ जमनालाल बजाज ने नेहरू जी के नाम अपने ७-१२-१९२८ के पत्र में लिखा :—

प्रिय भाई श्री जवाहरलाल जी,

लाहोर और लखनऊ में पुलिस ने जो अत्याचार किये हैं, उनकी खबर पढ़कर और सुनकर दुःख होता है। एक तरफ लाहोर में पुलिस का कार्य और दूसरी तरफ लोगों की उदासीनता देखकर दुःख हुए बिना नहीं रह सकता। लखनऊ में आपके ऊपर पुलिस की मार पड़ी, लेकिन चोट ज्यादा न आई, यह आपके पूज्य महात्माजी को दिये हुए पत्र से जानकर कुछ संतोष हुआ। लेकिन पुलिस और सरकार इस तरह अपनी मनमानी कर सके, यह देश के लिए कम लज्जा की बात नहीं है।"[2]

८ अप्रेल १९२९ को असेम्बली भवन में पब्लिक सेफ्टी बिल पर विचार हो रहा था, उसी समय भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने असेम्बली भवन में बम फेंका। सन् १९२९ में ही राजनैतिक कैदियों के साथ सरकार के दुर्व्यवहार के विरुद्ध भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त ने जेल में अनशन किया। इस सम्बन्ध में सेण्ट्रल जेल, लाहोर से २४ जुलाई, १९२९ को भगतसिंह और बटुकेश्वर दत्त द्वारा होम मेम्बर, भारत सरकार के नाम लिखे गये पत्र का निम्नांकित अंश दृष्टव्य है :

श्रीमान जी,

होम मेंबर, भारत सरकार,

हमें (भगतसिंह और बी. के. दत्त) १२ जून, १९२९ को दिल्ली के असेम्बली बम केस में आजीवन कारावास का दण्ड सुनाया गया। जब तक हम दिल्ली जेल में हवालाती कैदी (अंडर ट्रायल) रहे, हमारे साथ बड़ा अच्छा सलूक किया गया, पर जब

1. "पत्र-व्यवहार भाग-१" (१९५८), पृ. १०।
2. "पत्र-व्यवहार—भाग-१" (१९५८) पृ. १६।

से उस जेल से हमारी तब्दीली मियांवाली और लाहोर सेण्ट्रल जेल में हुई, तब से हमारे साथ इखलाकी कैदियों जैसा सलूक किया जा रहा है। पहले ही दिन हमने उच्च अधिकारियों से अच्छी खुराक तथा कुछ और सुविधाओं की मांग की और जेल की रोटी खाने से इन्कार कर दिया .... ।"[1]

जनवरी १९३० में कांग्रेस की कार्य समिति की बैठक में कौंसिलों के पूर्ण बहिष्कार का निश्चय किया गया। फरवरी १९३० में कांग्रेस की कार्य-समिति ने गाँधीजी और उनके विश्वस्त साथियों को "सविनय-अवज्ञा-आन्दोलन" करने का अधिकार दे दिया। १२ मार्च, १९३० को गांधीजी दाण्डी-यात्रा के लिए चल पड़े। ५ अप्रैल को उन्होंने दाण्डी पहुँचकर नमक कानून तोड़ा। महात्माजी की दाण्डी-यात्रा में हिन्दी के अनेक साहित्यकारों ने भाग लिया था। महाकवि "निराला" के नाम लिखे श्री शांतिप्रिय द्विवेदी के १६-४-१९३० के पत्र से संकेत मिलता है कि निराला जी नमक कानून तोड़ने को इच्छुक थे। श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने उनको इस सन्दर्भ में बधाई देते हुए लिखा था :

"आप नमक कानून तोड़ना चाहते हैं—बधाई।

जेलयात्रा का विचार तो मेरा और उग्रजी का भी है, आगे हरि की इच्छा।"[2]

हिन्दी साहित्यकारों में मुंशी प्रेमचन्द भी नमक सत्याग्रह के प्रबल समर्थक थे। इस आंदोलन की लोकप्रियता तो वे स्वयं अपनी आँखों से देख चुके थे। उन दिनों वे अपनी पूरी शक्ति से इस आंदोलन का समर्थन कर रहे थे। ७ अप्रैल १९३० को मुंशी दयानारायण निगम को लिखे पत्र के अंत में उन्होंने इस आंदोलन पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए बताया था :

" .... और क्या अर्ज़ करूं ? इस "नमक" ने ख़लजान में डाल रखा है। इत्मीनाने-क़ल्ब रुखसत हो रहा है।"[3]

निःसन्देह ही इस आंदोलन की व्यापकता और जनसाधारण की इसके प्रति सहानुभूति का पूर्ण परिचय गांधी जी की गिरफ्तारी के बाद मिला। इस आंदोलन की सबसे बड़ी विशेषता थी—इसमें स्त्रियों का भाग लेना। इस आंदोलन में घर की चहारदीवारी से बाहर निकल कर विदेशी वस्त्रों तथा शराब की दुकानों पर धरना देने का कार्य स्त्रियों ने अच्छी तरह सम्पन्न किया। लखनऊ की महिला स्वयंसेविकाओं में प्रेमचन्द जी की पत्नी शिवरानी देवी भी सम्मिलित हो गयी थीं और विदेशी वस्त्रों की दुकान पर धरना देने के अपराध में उन्हें दो महीने का कारावास दण्ड दिया गया था। इस घटना का उल्लेख प्रेमचन्द जी ने जैनेन्द्रकुमार के नाम २५ नवम्बर, १९३० को लिखे पत्र में इन शब्दों में किया है :

1. "सरदार भगतसिंह : पत्र और दस्तावेज" (१९७७), पृ. ४४।
2. "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), पृ. २०३।
3. "चिट्ठी-पत्री भाग-१" (१९६२), पृ. १७७।

"मेरी पत्नी भी पिकेटिंग के जुर्म में दो महीने की सज़ा पा गई। कल फैसला हुआ है।"[1]

इस समय स्वयं जैनेन्द्रकुमार भी स्पेशल जेल, गुजरात (पंजाब) में कैद थे। शिवरानीदेवी की जेल-यात्रा के समाचार पाकर उन्होंने प्रेमचन्द जी को लिखा :

क्या आपकी पत्नी के जेल जाने पर धन्यवाद दूं ? यह इसलिए भी धन्यवाद का विषय हो सकता है कि आपकी इस तरह जेल जाने की राह और आवश्यकता रुक गयी। कितने पतियों ने पत्नियों को रोक रखा है लेकिन वे पति धन्य हैं जिनकी पत्नियां आगे बढ़कर जेल में पहुँच गयीं और उनको रुकने को लाचार कर गयीं।'[2]

इस प्रकार यह आंदोलन अपने आप में अद्वितीय था। इस आंदोलन के अंत में सरकार को झुकना पड़ा। परिणामस्वरूव ५ मार्च, १९३१ को गांधी-इर्विन समझौता हो गया। महात्मा गांधी की इर्विन के साथ बातचीत, उनकी शौक़तअली और आगाखां से मुलाकात, राउंड-टेबिल कान्फरेंस आदि की विस्तार से चर्चा श्री महादेवभाई देसाई के सेठ जमनालाल जी को लिखे पत्रों में हुई है।"[3]

सन् १९३१ के अंतिम सप्ताह में महात्मा जी इंग्लैण्ड से निराश होकर लौट आये। उन दिनों सरकार बंगाल में आंतकवादियों के दमन के बहाने राजनैतिक कार्यकर्त्ताओं को कठोर दण्ड दे रही थी। कांग्रेस के अनेक कार्यकर्त्ता महात्मा जी के भारत पहुँचने से पहले ही जेलों में भरे जा चुके थे। इन परिस्थितियों में कांग्रेस ने पुन: सविनय-अवज्ञा-आंदोलन की घोषणा कर दी। ४ जनवरी, १९३२ को गांधी जी और सरदार पटेल गिरफ्तार कर लिये गए।[4] अनेक कड़े आर्डिनेंस लागू किये गये। यह आंदोलन देशव्यापी था। इसमें देशी रियासतों के कार्यकर्त्ताओं ने भी भाग लिया। स्वाधीनता-संग्राम में देशी रियासतों के कार्यकर्त्ताओं की महत्वपूर्ण भूमिका के अनेक संदर्भ-सूत्र हमें सेठ जमनालाल बजाज के साथ हुए देशी रियासतों के कार्यकर्त्ताओं के पत्र-व्यवहार में मिलते हैं।"[5]

इन दिनों प्रेमचन्द जी की समस्त आकांक्षाएं इस आन्दोलन से बंधी हुई थीं। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम ३ जून, १९३२ को प्रेषित पत्र में उन्होंने लिखा था :

"मेरी आकांक्षाएं कुछ नहीं हैं। इस समय तो सबसे बड़ी आकांक्षा यही है कि हम स्वराज्य-संग्राम में विजयी हों। खाने भर को मिल ही जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हविश नहीं। हां, यह ज़रूर चाहता हूँ कि दो चार

1. "चिट्ठी-पत्री भाग-२" (१९६२), पृ. १०।
2. "चिट्ठी-पत्री भाग-२" (१९६२), पृ. ११।
3. "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ. ६८-७२।
4. "बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम", पृ. ७४।
5. देखिए : "पत्र-व्यवहार भाग-२" (१९५८), पृ. ३२-४४।

ऊंची कोटि की पुस्तकें लिखूं, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज्य-विजय ही है।.... .. .."[1]

अगस्त, १९३२ को प्रधानमंत्री मैकडोनल ने पृथक निर्वाचन की घोषणा कर दी। अछूतों के पृथक निर्वाचन के विरोध में गांधीजी ने जेल में ही आमरण-अनशन आरम्भ कर दिया। इस सम्बन्ध में उन्होंने यरवदा-जेल से १९-९-१९३२ को जानकीदेवी बजाज को लिखा था—".... ... अनशन करते-करते जीने की कला कैसी है। एक शर्त जरूर है। तमाम मैयाओं को जोगन बनकर बाहर निकलना पड़ेगा और अस्पृश्यों को स्पृश बनकर खुद भी ईश्वरी शक्ति होने का दावा साबित करना पड़ेगा।"[2]

गांधी जी का हरिजन-दौरा ७-११-१९३३ को वर्धा से शुरू हुआ और २९-७-१९३४ को बनारस में पूरा हुआ।[3] सन् १९३४ में अजमेर में अस्पृश्यता-निवारण के सिलसिले में हुई सभा में कुछ उपद्रवी लोगों द्वारा सनातनी स्वामी लालनाथ पर हमले किये गये। इससे दुःखी होकर गांधी जी ने वर्धा में उपवास किये।[4]

सन् १९४२ में साम्राज्यवाद के विसर्जन हेतु महान् क्रांति हुई। बंबई के कांग्रेस अधिवेशन में ब्रिटेन से अपील की गयी कि वह साम्राज्यवाद का विसर्जन करने का महत्वपूर्ण संचय करें। इस अधिवेशन का वर्णन करते हुए पं. कमलापति त्रिपाठी ने अपने आत्मज लोकपति त्रिपाठी को लिखा है :

"..........८ अगस्त १९४२ के सायंकाल ८ बजे थे जब शताब्दियों के अपमान और निर्दलन तथा पतन का बोझ लिये भारत की क्षुब्ध आत्मा ने समस्त दानवी शक्ति सम्पन्न ब्रिटिश सिंह का प्रतिरोध करने का दृढ़ निश्चय किया।"[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि युग विधायक महापुरुषों और साहित्यकारों के पत्रों में नवजागरण और स्वाधीनता-संग्राम-काल की राजनैतिक गतिविधियों के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ-सूत्र उपलब्ध होते हैं। यद्यपि इस काल की राजनैतिक गतिविधियों के सम्बन्ध में अनेक पुस्तकें लिखी गयी हैं, किन्तु उन पुस्तकों में इतनी स्वाभाविकता, सजीवता और सरसता नहीं मिलती जितनी कि इन पत्रों में।

---

1. "चिट्ठी-पत्री भाग-२" (१९६२), पृ. ७७।
2. "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ. ८२।
3. "बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम," पृ. १०५।
4. -वही-, पृ. ११२।
5. "बंदी की चेतना" (सं. २०३० वि.), पृ. ३१।

(ग) वर्तमान युगीन राजनैतिक गतिविधियों के सन्दर्भ :

वर्तमान युगीन राजनैतिक गतिविधियों के बहुत-से सन्दर्भ हमें भारत के प्रथम राष्ट्रपति डा. राजेन्द्रप्रसाद की "स्वतंत्र भारत की झलक" शीर्षक पुस्तक में मिल जाते हैं। इस पुस्तक में सन् १९५५ से १९६२ के बीच की अवधि में डा. राजेन्द्रप्रसाद द्वारा अपनी पुत्री तुल्य डा. ज्ञानवती दरबार के नाम लिखे गये पत्र संकलित हैं। इन पत्रों में अन्तरिम सरकार की स्थापना, संविधान का निर्माण, गणतंत्र-दिवस-समारोह, भारत-विभाजन की समस्याएं काश्मीर की गुत्थी आदि कई राजनैतिक गतिविधियों की झलक मिलती है। इन गतिविधियों पर राजेन्द्र-बाबू ने न केवल प्रकाश ही डाला है, अपितु अपनी प्रतिक्रिया भी प्रकट की है। जैसे काश्मीर की गुत्थी के सम्बन्ध में अपने विचार प्रकट करते हुए उन्होंने लिखा है :

"काश्मीर के प्रश्न को लेकर बहुत-से भ्रम पैदा हो गए हैं। यह बहुत उपयोगी होगा, यदि हम कुछ ऐसे सूत्रों की चर्चा कर सकें जिनके विषय में पूरी सूचना का अभाव होने के कारण हिन्दुस्तान के रुख के बारे में गलतफहमी फैली है। हम इसकी चर्चा कानूनी अथवा नैतिक दृष्टिकोण से कर सकते हैं। जरूरी नहीं की कि ये दोनों दृष्टिकोण हमेशा एक समान हों।"[1] इस प्रकार इन पत्रों में स्वतंत्र भारत की अनेक राजनैतिक गतिविधियों की बड़ी सुन्दर और स्पष्ट झलक मिलती है।

वर्तमान युग की अन्य प्रमुख राजनैतिक घटनाओं में एक घटना है—भारत पर चीन का आक्रमण। हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में इस घटना के संदर्भ भी प्राप्त होते हैं। जैसे, बच्चन जी के नाम ७-१२-१९६२ को लिखे अपने पत्र में पन्त जी युद्ध से उत्पन्न स्थितियों का संकेत करते हुए लिखते हैं :

"युद्ध के कारण तो देश का वातावरण ही बदल गया है। खैर सशक्त और सुसंगठित तो राष्ट्र को रहना ही चाहिए। चीनियों की दी हुई चेतावनी को आगे हमें भूलना नहीं चाहिए।"[2]

चीन के आक्रमण के कारण भारत में एकता की जो लहर दौड़ आई, उसकी ओर इंगित करते हुए बच्चन जी ने श्री निरंकार देव सेवक को लिखा है :

"एकता हर बहाने से अच्छी है—चीन विरोध के बहाने भी.......... चीन-विरोध करना आज भारत को जीने के लिए आवश्यक है।"[3]

वर्तमान युग की एक अन्य उल्लेखनीय राजनैतिक घटना है—पं. जवाहर-लाल नेहरू का निधन। पंडित जी के देहावसान से भारत ने एक महान् राजनैतिक नेता खो दिया। उनकी मृत्यु से भारत की राजनीति में "नेहरू-युग" का अन्त हो

1, "स्वतंत्र भारत की झलक" (१९७३), पृ. ९१-९२।
2. "पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७१), पृ. ४५।
3. "बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ. ६५।

गया। राष्ट्र भर में शोक के बादल छा गये। पंत जी ने ३-६-१९६४ के पत्र में बच्चन जी को लिखा :

"पंडित जी के निधन से पत्र लिखने को जी नहीं किया। एक तरह से सभी प्रकार का उत्साह मन्द पड़ गया। संसार ने जिस प्रकार मरने पर उनको सम्मान दिया, उससे उनका प्रच्छन्न व्यक्तित्व उभर आया और देश उनसे गौरवान्वित हुआ।"[1]

बच्चन को पं. जवाहरलान नेहरू के निकट रहने का अधिक सौभाग्य प्राप्त हुआ है, अतः वे पंडित जी के महिमा मंडित व्यक्तित्व से विशेष परिचित हैं। इस संदर्भ में डा. जीवनप्रकाश जोशी के नाम अपने २९-५-१९६५ के पत्र में उन्होंने लिखा है :

पंडित जी (जवाहरलाल नेहरू) के देहावसान के बाद "मैकबेथ" की ये पंक्तियां मेरे कानों में बराबर गूंज रही हैं :

"क्योंकि आज इस दुनिया में बड़ी चीज़ कुछ नहीं रह गई : सिर्फ रह गए गुड़िया-गुड्डे, गौरव और गुमान उठ गया : जीवन मदिरा खींच ली गई और अब जग की मधुशाला में डींग मारने की सौठी भर बची हुई है।"[2]

बच्चन जी ने निरंकारदेव सेवक के नाम २२-१०-१९६५ को लिखे पत्र में भविष्य में पाकिस्तान और चीन से भीषण युद्ध की सम्भावना इन शब्दों में व्यक्त की है :

"भविष्य में पाकिस्तान से और शायद चीन से भी भीषण युद्ध होने की सम्भावना है। सबको अपना कर्तव्य करना होगा। पराजय से हमारा सत्यानाश हो जाएगा। वह हम नहीं होने देंगे।"[3]

हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में चुनाव के सन्दर्भ भी मिलते हैं। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी चुनावों को व्यर्थ मानते हैं।[4]

पं. रामनरेश त्रिपाठी ने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम अपने २-२-१९५२ के पत्र में मतदान के इतिहास पर एक मधुर एवं मार्मिक कविता लिख भेजी थी। पं. त्रिपाठी के ये पत्र "सम्मेलन पत्रिका" में छपे हैं।

इस प्रकार हिन्दी पत्र-साहित्य में उत्तर मध्यकाल से लेकर वर्तमान-युग तक की राजनैतिक गतिविधियों के जो सन्दर्भ-सूत्र प्राप्त होते हैं, उनसे भारत के राजनैतिक इतिहास के अध्ययन में पर्याप्त सहायता मिलती है।

२. सामाजिक सन्दर्भ :

एक समाज की सभ्यता और संस्कृति के प्रामाणिक मूल्यांकन के लिए

---

1. "पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" पृ. १५७।
2. "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ. ६५।
3. "बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ. ९१ :
4. "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ५११।

प्रयोग की जाने वाली कसौटियों में से एक कसौटी वे पत्र हैं जो उस समाज के सदस्यों के द्वारा लिखे गये हैं। भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन नवजागरण-काल में ही हुआ। अतः इस काल को मध्य विन्दु मानकर हिन्दी पत्र-साहित्य में उपलब्ध सामाजिक सन्दर्भों का अध्ययन निम्नांकित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है :

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ,
(ख) नवजागरणकालीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ और
(ग) वर्तमान युगीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ।

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में :

पूर्व-नवजागरण कालीन सामाजिक परिस्थितियों की झलक हमें डा. काशिनाथ शंकर केलकर कृत "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" शीर्षक शोध-प्रबन्ध के परिशिष्ट-३ में संकलित पत्रों में अधिक स्पष्ट रूप में मिलती है। इन पत्रों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि तत्कालीन समाज में चातुर्वर्ण्य व्यवस्था थी जिसमें ब्राह्मणों का स्थान वहुत ऊंचा था। महाराजा पृथ्वीसिंह द्वारा मार्ग वदी ८ सं. १८०३ को रामचन्द्र के नाम लिखे गये पत्र में स्पष्ट उल्लेख है कि—"ब्राह्मण हमारे इष्टदेव हैं तिनिही के चरन साछी है।"[1] छात्रों को शिक्षा-दीक्षा विद्वान् ब्राह्मणों के द्वारा ही दी जाती थी। शिक्षा देने वाले गुरु को धन तथा गांवों की सनद प्रदान की जाती थी जिससे उनका तथा उनके विद्यार्थियों का निर्वाह चलता रहे।[2]

इस युग के पत्रों में स्त्री-शिक्षा का स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता, किन्तु कहीं-कहीं स्त्रियों की सामाजिक तथा पारिवारिक कठिनाइयों के संकेत अवश्य मिलते हैं। उदाहरण के लिए रामाबाई नामक स्त्री की ओर से लिखे गये पत्र का निम्नांकित अंश देखा जा सकता है :

"राजश्री राजमान राजश्री असमान पुना श्री अंता जी पंथ येतान का मढलेसर से रामाबाई केन आसीरबाद बंचणा······ ······ अप्रंच हकीगत जो सासत्रबाबा के बरतमान अैयसे है की कलाल के ईहांसे दारू मंगाकर पीते हैं सो दो चार बर ······ ······(इस) बात का बोबाठ हुआ आवर ईहा हमारा भी नीभाव होता न्ही आब तुमारे तई लीषते है तुमारे चीतमु आवै सौ सही ····"[3]

स्पष्ट है कि इस पत्र में रामाबाई ने अपने पति की मद्य-प्राशन की बात बताकर उसके कारण निर्मित कठिनाइयों का उल्लेख किया है।

सामाजिक या अर्थ-विषयक व्यवहारों के कारण कभी-कभी समाज में

1. "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ. ३८७।
2. -वही-, पृ. ३७९।
3. "१८ वीं. शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ. ३५७।

झगड़े भी उठ खड़े होते थे। जब इनका निराकरण आपस में सम्भव न होता तो शासकीय व्यवस्था का आश्रय लेना पड़ता था। इस सम्बन्ध में माधवराव बलाल द्वारा महाराजा पृथ्वीसिंह के नाम कार्तिक सुदी ४ संवत् १८२७ को लिखा पत्र द्रष्टव्य है।[1]

इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि मध्ययुगीन समाज व्यवस्था वर्णाश्रम पर अवलम्बित थी और प्रजा के क्षेमकुशल का रक्षण राज्य-शासकों का कर्तव्य था।

(ख) नवजागरणकालीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में :

उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की सामाजिक स्थिति हीनावस्था की पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। समय की प्रगति के अनुसार समाज में आवश्यक सुधार और परिवर्तन करने के स्थान पर अन्ध-विश्वास और अन्धानुकरण का बोलबाला था। नवजागरण के अग्रदूत स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने व्याख्यानों, लेखों और पत्रों से समाज में फैले जात-पांत के भेदों, अन्धविश्वासों, रूढ़ियों तथा कुप्रथाओं पर कुठराघात किया। नवजागरणकालीन सामाजिक परिवर्तनों के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्रों में मिलते हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने नारी-समाज की स्थिति सुधारने का भरपूर प्रयास किया। स्त्री-दुर्दशा की अनेक समस्याओं का मूल विवाह-सम्बन्धी कुरीतियों में था। स्वामी जी ने बाल-विवाह, अनमेल-विवाह, विधवा-विवाह आदि अनेक समस्याओं पर अपने क्रांतिकारी विचार उपस्थित किये। इतना ही नहीं, विधवाओं को सम्पत्ति का अधिकार दिलाने का प्रयास भी उन्होंने किया। इस इस सम्बन्ध में बाबू मूलराज के नाम २७ जुलाई १८८० को लिखे पत्र यह का अंश उद्धरणीय है :

"......सरकार को एक ऐसा नियम पास करने के लिए कहना चाहिए जिससे कि विधवाओं की संतानें अपने पिताओं की स्थावर और जंगम सम्पत्ति के अधिकार को प्राप्त करें और उसे ले सकें। और जो कोई विधवा को किसी प्रकार भी कष्ट दे, वह सरकार का दण्ड भागी बने'[2]

छूआछूत के विचार के कारण पौराणिक कर्मकांडियों ने समुद्रयात्रा को निषिद्ध बना दिया था। किन्तु जैसाकि हम पिछले अध्याय में देख चुके हैं, स्वामी दयानन्द सरस्वती ने श्री श्याम जी कृष्ण वर्मा को इंग्लैण्ड जाने के लिए प्रेरणा एवं सहायता दी।[3]

स्वामी दयानन्द सरस्वती वैदिक संस्कृति एवं शिक्षा के समर्थक होते

1. "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ. ४१५।
2. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. २१३
3. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. ९२-९३।

हुए भी अंग्रेजी-शिक्षा के विरोधी नहीं थे। जोधपुर नरेश महाराजा जसवंतसिंह के पुत्र की शिक्षा-दीक्षा के विषय में एक पत्र में उन्होंने लिखा था :

"महाराज कुमार के संस्कार सब वेदोक्त कराइयेगा। २५ वर्ष तक ब्रह्मचारी रख के प्रथम देवनागरी भाषा और पुनः संस्कृत विद्या जो कि सनातन आर्य ग्रंथ हैं जिनके पढ़ने में परिश्रम और समय कम होवे और महालाभ प्राप्त हो, इन दोनों को पढ़े। पश्चात् यदि समय हो तो अंग्रेजी भी जो कि ग्रामर और फिलासफी के ग्रंथ हैं, पढ़ने चाहिए।"[1]

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारतीय विद्यार्थियों को आधुनिक शिल्पकलाएं सिखाने के लिए जर्मनी भेजने का प्रयत्न भी किया था। उन्होंने १० अगस्त, १८८० को बाबू मूलराज के नाम अपने पत्र में लिखा था :

"मेरा विचार है कि कुछ पुरुष कला-कौशल सीखने के लिए जर्मनी भेज दिये जायें। परन्तु यदि यहीं आर्य्यवर्त्त में ऐसा सिखानेवाले पुरुष मिल जायें तो बाहर जर्मनी को आदमी भेजने की कोई आवश्यकता नहीं।"[2]

इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती के विचार अत्यन्त प्रगतिशील थे।

नवजागरणकाल में ऋषि दयानन्द सरस्वती के अतिरिक्त चूरू (राजस्थान) में स्वामी गोपालदास ने भी समाज-सुधार के अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये। उनकी समाज-सेवा का विस्तृत परिचय हमें श्री गोविन्द अग्रवाल लिखित "पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व" शीर्षक पुस्तक में मिलता है। नारी-शिक्षा के लिए स्वामी जी ने आज से लगभग ७० वर्ष पूर्व चूरू में "सर्वहितकारिणी पुत्री-पाठशाला" की स्थापना की थी। इस सम्बन्ध में श्री जुगलकिशोर जी बिड़ला के १०-७-१९२२ के पत्र का प्रारम्भिक अंश द्रष्टव्य है :

"प्रिय महाशय,

कलकत्ता समाचार पत्र में श्री कृष्णादेवी प्रेषित पत्र पढ़कर ज्ञात हुआ कि आपके अधीनस्थ चूरू पुत्री पाठशाला में अनाथ विधवाएं भी छात्रवृत्ति देकर पढ़ाई जाती हैं और वे इस योग्य बनाई जाती हैं कि अध्यापिकाओं का कार्य कर सकें...... यदि योग्य अनाथ विधवाएं इस उद्देश्य से आपके यहाँ पढ़ती हैं तो मेरी तरफ से भी दो विधवाओं को छात्रवृत्ति देकर भर्ती करा दिया जाय।"[3]

---

1. "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-२" (सं. १९९२ वि.), पृ. ९६।
2. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. २१६।
3. "पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदास जी का व्यक्तित्व और कृतित्व" (सं.-२०२५ वि.), पृ. १२२-२३।

समाज में व्याप्त बुराइयों को रोकने के लिए स्वामी गोपालदास जी निरंतर उद्योग करते रहते थे। श्री नन्दलाला भूंवाल द्वारा मंत्री सर्वहितकारणी सभा, चूरू के नाम दिनांक ९-११-१९२१ को लिखित पत्र से ज्ञात होता है कि स्वामी जी ने बाल-विवाह की प्रथा को निरुत्साहित करने के लिए अनेक लोगों से प्रतिज्ञाएं करवाई थीं और इसके लिए अभियान चलाया था।[1] इस प्रकार नवजागरणकाल में सामाजिक क्रांति की दिशा में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाये गये थे।

(ग) वर्तमानयुगीन सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ में :

वर्तमान-युग में महात्मा गांधी, विनोबा भावे, स्वामी सत्यभक्त आदि अनेक समाज–सुधारकों द्वारा सामाजिक क्षेत्र में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया गया है। महात्मा गाँधी के सत्याग्रह-संग्राम में पहली बार भारतीय नारी ने घर की चहारदीवारी से बाहर निकल कर राष्ट्रसेविका के रूप में महत्व-पूर्ण भूमिका निभायी। जब जानकी देवी बजाज अखिल भारतवर्षीय मारवाड़ा महिला सम्मेलन की अध्यक्षा बनकर कलकत्ता जा रही थीं, तब महात्माजी ने अपने २५-१०-१९३३ के पत्र में यह सन्देश लिख भेजा था :

"प्रिय भगिनि,

आप बहनों से परदा तुड़वाने के लिए कलकत्ता जा रही हैं, इसलिए धन्यवाद। परदा वहम ही नहीं है, उसमें मुझे पाप की बू आती है। परदा किससे रखें? क्या पुरुषमात्र विषयासक्त करते हैं? क्या स्त्री अपनी पवित्रता बगैर परदा नहीं रख सकती है?............यदि इस बुद्धि-प्रधान-युग में स्त्री धर्म की रक्षा करना चाहती है तो उसे दरिद्रनारायण की सेवा करनी होगी, शिक्षण लेना होगा।.... ....परदा रखकर सीता रामजी के साथ जंगलों में भटकी होंगी? सीता से बड़ी पवित्र स्त्री जगत में कभी हुई है? बहनों से कहो परदा तोड़ो, धर्म रखो।"[2]

महात्मा गांधी ने जीवन भर दीन-दुखियों दलितों, पीड़ितों, पतितों और समाज के पिछड़े हुए लोगों को ऊपर उठाने के लिए अथक परिश्रम किया। हरिजनों की स्थिति सुधारने के लिए उन्होंने ७-११-१९३३ से २९-७-१९३४ तक ऐतिहासिक हरिजन-दौरा किया।[3] उनका अपूर्ण सेवा-कार्य आचार्य विनोबा जी ने आगे बढ़ाया। पं. वियोगी हरि को विनोबा जी द्वारा ५-११-१९५१ को लिखे पत्र में कहा गया है :

"बावजूद इसके कि हमारे संविधान ने हरिजन-परिजन-भेद मिटा दिया है,

1. "पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व" पृ. १५७।
2. "बापू के पत्र-बजाज परिवार के नाम" (१९६६), पृ. १०३
3. "बापू के पत्र : बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ. १०५।

हरिजन-सेवा करने की आवश्यकता अब भी बहुत कुछ बाकी है, यह दुःख के साथ क़बूल करना पड़ता है।"[1]

समाज-सुधार और समाज-सेवा के उद्देश्य से ही स्वामी सत्यभक्त ने वर्धा में सत्याश्रम की स्थापना की है। श्री बापूलाल सोनी के नाम २८-१२-१९४७ के पत्र में उन्होंने अपने उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि:—

"अगर मैं दुनिया को नहीं सुधार सकता तो सत्यसमाज में आये हुए इने गिने व्यक्तियों को तो इतना सुधरा हुआ देखूं कि उनका जीवन सुख शांतिमय ईमानदार हो। कम से कम सत्यसमाज एक विशाल कुटुम्ब हो। ....बड़े बड़े नेता नहीं सुधर पाते फिर साधारण आदमी क्या सुधरेगा, यह विचार ठीक नहीं। मेरा खयाल इससे उल्टा है। नेता कभी न सुधरेंगे, साधारण आदमी ही सुधरेंगे, नेता तो बड़प्पन में चूर रहते हैं। उनका इलाज नहीं हो सकता।"[2]

वर्तमान-युग की शिक्षा छात्रों को पंगु बनाती जा रही है। शिक्षित बेकारी वर्तमान समाज की जटिल समस्या है। इस समस्या का संकेत बच्चन जी के एक पत्र में इन शब्दों में मिलता है।

"मुसीबत यह है कि पढ़े-लिखे लोगों को कोई काम सूझता ही नहीं। बेपढ़ा हज़ार काम सोचता है और करता है। पंगु बनानेवाली शिक्षा को मेरे शाप।"[3]

वर्तमान समाज की विषमता, स्वार्थपरता और अर्थ-लोलुपता का विश्लेषण करते हुए श्री "निरंकुश" के नाम अपने ७-४-१९७५ के पत्र में बाबू वृन्दावनदास लिखते हैं :

"वर्तमान काल में अर्थपिशाचता का साम्राज्य है। वैश्य समुदाय इसका सबसे बड़ा दोषी है। आज का व्यक्ति आबाल-युवा-वृद्ध अर्थ-लोलुप हो गया है और स्वार्थपरता की भावना चरम सीमा पर है। अर्थ-पिशाचता ने हमारे पारिवारिक सम्बन्धों की जड़ें भी हिला दी हैं।"[4]

इस प्रकार हिन्दी-पत्र-साहित्य में मध्ययुगीन समाज से लेकर वर्तमान युग तक के समाज के उत्थान-पतन की सुन्दर झलक मिलती है।

3. धार्मिक संदर्भ :

भारतीय जन-जीवन में धर्म एक महान् प्रेरणा है, एक महान् शक्ति है। श्री तारकनाथ बाली ने "धर्म" का स्वरूप स्पष्ट करते हुए लिखा है :

---

1. "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" (१९६०), पृ. ५९।
2. "अनमोलपत्र" (१९५०), पृ. ६–७।
3. "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ. ५८।
4. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र (१९७८), पृ. २२६।

"धर्म है क्या ? इस विषय में कोई एक स्पष्ट उत्तर नहीं दिया जा सकता। लेकिन उसे समझने के लिए हम कह सकते हैं कि इसके दो रूप हैं या इसके दो अर्थ हैं। एक तो उसका व्यापक अर्थ और एक संकुचित अर्थ है। और यह जानना भी आवश्यक है कि बहुत पहले समाज ने धर्म के व्यापक रूप को अपनाया था, लेकिन जैसे-जैसे समय व्यतीत होता गया वैसे ही वैसे धर्म को संकुचित अर्थों में ग्रहण करने का प्रयास किया जाने लगा। धर्म के व्यापक अर्थ में वह धारण करने वाला है। जो नियम या रीति रिवाज, समाज को धारण करता है, वह धर्म है।"[1]

इससे स्पष्ट है कि वैदिककाल में "धर्म" को व्यापक रूप में ग्रहण किया गया था, परंतु कालान्तर में उसका रूप संकुचित होता गया। भारतीय नव-जागरणकाल में अनेक धार्मिक आंदोलन हुए। इस काल में धर्म के व्यापक स्वरूप को ग्रहण करने का प्रयास किया गया। अतः इसे केन्द्र बिन्दु समझकर हिन्दी-पत्र-साहित्य में प्राप्त धार्मिक सन्दर्भों का अध्ययन अधोलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है :

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ,
(ख) नवजागरणकालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ और
(ग) वर्तमानयुगीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ।

(क) पूर्व-नवजागरणकालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ :

पूर्व-नवजागरणकालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में स्वामी प्राणनाथ और उनके प्रणामी धर्म की चर्चा विशेष महत्वपूर्ण है। स्वामी प्राणनाथ महाराजा छत्रसाल के गुरू थे। उन्हीं के वरदान से छत्रसाल ने औरंगजेब के जीवनकाल में उसके साम्राज्य को तोड़कर बुन्देलखण्ड में एक स्वतंत्र सत्ता की स्थापना कर ली थी।[2]

जिस प्रकार प्राचीनकाल में सम्राट् अशोक ने बौद्ध-धर्म के प्रचार के लिए अनेक धार्मिक विद्वानों को देश-विदेश में भेजा था, उसी प्रकार मध्यकाल में सम्राट् छत्रसाल ने उदार धर्मावलम्बी स्वामी प्राणनाथ के विचारों के प्रचारार्थ देश-विदेश में अनेक वैरागी-साधुओं को भेजा था। इस तथ्य की पुष्टि उनके मार्गशीर्ष वदि ८ संवत् १७७९ के पत्र से होती है। यह पत्र उन्होंने जयपुर के महाराजा सवाई जयसिंह के नाम लिख भेजा था। इस पत्र का एक अंश उदाहरणार्थ यहां प्रस्तुत किया जाता है :

"............आगे वैरागी साथी चरचा के सुनिबे को बुलाए हते सु इहां ते विदा कर हैं।"[3]

1. "सांस्कृतिक परम्परा और साहित्य" (१९५९), पृ. ११२।
2. देखिए : पूर्वोद्धृत जगतराय के नाम महाराजा छत्रसाल के पत्र का अंश।
3. "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल" (१९७५), पृ. १०३।

यहां वैरागी साथी से स्वामी प्राणनाथ के अनुयायी की ओर संकेत है। इससे स्पष्ट है कि स्वामी प्राणनाथ के धार्मिक विचारों के प्रसार-प्रचार में महाराजा छत्रसाल का बहुमूल्य योग रहा है।

भारतीय हिन्दू-समाज के व्यक्तियों के मन में पवित्र तीर्थों की यात्रा करने की स्वाभाविक रूप से इच्छा रहती आई है। पूर्व-नवजागरण काल में यातायात की असुविधाएं होने के कारण तीर्थ यात्रा आज के समान सुलभ और सरल नहीं थी, तथापि धार्मिक रुचि के धनिक लोग सपरिवार तीर्थ यात्रा के लिए निकलते थे। इस सम्बन्ध में माधवराव बलाल द्वारा महाराजा पृथ्वीसिंह के नाम श्रावण वदि ४ संवत् १८२७ को लिखा पत्र यहां हम उद्धृत करते हैं :

॥ श्री ॥

श्री महाराजाधीराज श्री महाराजा श्री राज राजेन्द्र सवाई पृथ्वीसींग जी योग्य श्री पंडीत मुष्य प्रधान माधवराव वल्लाल के आसीर्वाद वंचने अठा का स्माचार भला छे आपका सदा भला चाहिए जे आप्रच राजश्री नारायण कृष्ण मुनसी याकी बाहान श्री बदरीकाश्रम की जात्रा के लसकर में आई अठासु श्री पुष्कर का जात्रा कु जाय छे सो आप जयपुर से ईनी के लार प्यादे दै कैं पुष्कर कों पोहचाय देवोला ओ हर तरह उठें ईनी का गोर करवोला हेमेशा कागल स्माचार लिषत रहोला।"[1]

भारतीय प्रजा के जीवन में दान-धर्म का अपना पृथक् महत्व रहा है। पर्वकाल में तीर्थक्षेत्र पर जाकर स्नान करके पुण्य-प्राप्ति के उपलक्ष्य में क्षेत्रवासी ब्राह्मणों को दान-धर्म किया जाता था। नासिक और त्यंबकेश्वर के अनेक पुरोहितों के पास इस प्रकार के दान-पत्र हैं। राजाओं द्वारा ऐसे अवसरों पर गांव दान दिये जाते थे।[2] यह दान हमेशा के लिए जारी रहे इसलिए उसे ताम्र-पत्र पर लिखा जाता था।

इस प्रकार पूर्व-नवजागरण काल से सम्बन्धित पत्रों में धर्म प्रचार, तीर्थ-यात्रा, दान-धर्म आदि अनेक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।

(ख) नवजागरणकालीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ :

भारतीय नवजागरण काल में अनेक धार्मिक आंदोलन हुए जिनमें ब्रह्म-समाज, आर्य समाज, थियोसोफिकल सोसायटी, रामकृष्ण मिशन आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। नवजागरण काल के धार्मिक आन्दोलनों में आर्य समाज का स्थान सर्वोच्च है क्योंकि इस काल के धार्मिक आन्दोलनों का मूल-तत्व ज्ञान निष्ठा है और आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द सरस्वती की ज्ञान-निष्ठा सर्वविदित है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में "जगत् गुरु शंकराचार्य के पश्चात् भारत ने ऐसे प्रखर तेजपुंज को प्राप्त कर वैदिक धर्म तथा आर्य-संस्कृति की

1. "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०) पृ. ४१४-१५।
2. -वही-, पृ. ३५५।

रक्षा की।"[1]

स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्रों में नवजागरण-काल की धार्मिक प्रवृत्तियों के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। इन पत्रों से विदित होता है कि भारत में में गो-रक्षणार्थ सर्वप्रथम आन्दोलन करने वाले स्वामी दयानन्द सरस्वती ही थे।[2] इन पत्रों में शास्त्रार्थ एवं धार्मिक खण्डन-मण्डन के विस्तृत सन्दर्भ भी मिलते हैं जैसे "भारतमित्र" के सम्पादक के पास प्रेषित एक पत्र में स्वामी जी ने उक्त पत्रिका के ९ अगस्त १८८३ में छपे इस तथ्य का कि—"मुसलमानों के मज़हब का मूल अथर्ववेद है—" अनेक तर्कों से खण्डन किया है।[3]

जैसा कि "आर्य समाज का इतिहास भाग-१" में श्री इन्द्र-विद्यावाचस्पति ने लिखा है, थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापक कर्नल अल्काट स्वामी दयानन्द सरस्वती को अपना पथ-प्रदर्शक मानते थे।[4] "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" शीर्षक पत्र-संग्रह में संकलित स्वामी के पत्रों से ज्ञात होता है कि कर्नल अल्काट ने बाद में चमत्कारों का प्रदर्शन शुरू कर दिया था।[5] महात्मा मुंशीराम द्वारा सम्पादित "ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार भाग-१" में स्वामी जी द्वारा "भारतमित्र" के सम्पादक के नाम लिखित पत्रों में थियोसोफिकल सोसाइटी की लीला पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।[6] इस प्रकार स्वामी जी के पत्रों में तत्कालीन धार्मिक अंध-विश्वासों पर तीव्र प्रहार किया गया है।

स्वामी दयानन्द सरस्वती मूर्ति पूजा के विरोधी थे। कानपुर के रईस गुरुप्रसाद और प्रतापनारायण द्वारा मंदिर बनवाए जाने पर स्वामी जी ने उनको लिखा था :

"कोई कला-कौशल का कारखाना खोलते जिससे देश और जाति का भला होता।"[7]

इससे स्पष्ट होता है कि दयानन्द सरस्वती आधुनिकता के अग्रदूत थे। राष्ट्र का अभ्युत्थान उनका मुख्य उद्देश्य था। वैदिक संस्कृति का अवलम्बन लेकर उन्होंने भारतीय जागरण का नेतृत्व किया और देश की सांस्कृतिक चेतना को एक नया मोड़ दिया।

चूरू (राजस्थान) के धार्मिक-सामाजिक नेता स्वामी गोपालदास जी से सम्बन्धित पत्रों से ज्ञात होता है कि उन्होंने स्व. सेठ जुगलकिशोर बिड़ला की

1. "हिन्दी साहित्य का इतिहास" परिवर्धित संस्करण, पृ. ४४५।
2. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), ३५४।
3. -वही-, पृ. ४४८।
4. "आर्य समाज का इतिहास भाग-१" (१९५७), ११९।
5. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन", पृ. २५६।
6. "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार भाग-१", पृ. ६८-७१।
7. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन, पृ. २१४।

सहायता से चूरू में एक सुन्दर धर्मस्तूप का निर्माण करवाया था।[1] स्तूप बनाने का उद्देश्य यही था कि स्तूप के ऊपर खुदे हुए धार्मिक श्लोकों से लोग शिक्षा ग्रहण करें और सन्मार्ग पर चलें।

इस प्रकार स्वामी दयानन्द सरस्वती और स्वामी गोपालदास से सम्बन्धित पत्र-साहित्य में नवजागरणकाल की धार्मिक प्रवृत्तियों के अनेक सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं।

(ग) वर्तमानयुगीन धार्मिक प्रवृत्तियों के सन्दर्भ :

वर्तमान युग की धार्मिक प्रवृत्तियों के कई महत्वपूर्ण सन्दर्भ-सूत्र हमें स्वामी सत्यभक्त, आचार्य विनोबा भावे आदि के पत्रों में मिलते हैं। श्री रघुवीरशरण दिवाकर के नाम १५-१२-१९३८ को लिखे पत्र में मूर्तिपूजा के सम्बन्ध में स्वामी सत्यभक्त ने लिखा है :

"..... ....निस्संदेह मूर्तिपूजा के नाम पर सब से अधिक नहीं तो अधिक गड़बड़ हुई है, परन्तु इसका कारण उसकी व्यापकता और महत्ता है। विशाल के दोष भी विशाल होते हैं।............बर्फीले देश में तो जूते भी मन्दिर में पहुँच सकेंगे। शिष्टाचार के नियम देशकाल के अनुसार होने चाहिए।[2]

मदालसा अग्रवाल को लिखित एक पत्र में आचार्य विनोबाजी ने मूर्तिपूजा की व्याख्या इन शब्दों में की थी :

"हिन्दू-धर्म मूर्त्तिपूजक है। मूर्त्तिपूजा के मानी है कि प्रत्येक वस्तु के पीछे कोई अमूर्त तत्व छिपा हुआ है, अथवा दूसरे शब्दों में मूर्त याने अमूर्त का प्रकाश है, यह ध्यान में लेते हुए आस-पास की हर वस्तु में से, या घटना में से, या व्यक्ति में से बोध ग्रहण करना ; ऐसी जिसकी दृष्टि हो जाय, उसका समय कहीं भी और कभी भी और किसी भी तरह बरबाद नहीं हो सकता।"[3]

इसी प्रकार हिन्दू-धर्म की कुछ पवित्र चीज़ों पर प्रकाश डालते हुए आचार्य विनोबा जी ने लिखा :

"विष्णु-सहस्रनाम, तुलसी, गंगाजल इत्यादि सब वस्तुएं हम हिन्दुओं के लिए मन का मैल धोने के लिए उपयोगी हैं। मुझ पर उनका विलक्षण परिणाम होता है। क्यों होता है, यह नहीं कहा जा सकता। होता है सही। इसलिए हम "हिन्दू" कहलाते हैं।"[4]

प्रेमचन्दजी प्रत्येक टकेपंथी पुजारी को ब्राह्मण मानने के लिए तैयार नहीं थे। उन्होंने सर्वत्र इसी धन-लोलुप पंडा-पुरोहित वर्ग की स्वार्थपरता और धूर्त्तता

1. "पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व" (सं.-२०२५ वि.), पृ. १२७-२८।
2. "अनमोल पत्र" (१९५०), पृ. २६-२७।
3. "विनोबा के पत्र" (१९६२), पृ. ८१
4. -वही-, पृ. ९९।

का विरोध किया है । उन्होंने इस सम्बन्ध में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को अपने एक पत्र में लिखा था :

"पाखंड और कट्टरता और सीधे-सादे हिन्दू समाज के अन्धविश्वास का फ़ायदा उठाना इन पुजारियों और पंडों का धन्धा है और इसीलिए मैं उन्हें समाज का एक अभिशाप समझता हूँ और उन्हें अधःपतन के लिए उत्तरदायी समझता हूँ ।"[1]

इस पत्र से स्पष्ट होता है कि प्रेमचन्द जी धूर्त्त और स्वार्थी पंडा-पुरोहित-वर्ग के विरोधी थे । वे ब्राह्मणद्रोही नहीं थे । उन्होंने इस पत्र में पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि "ब्राह्मण का मेरा आदर्श सेवा और त्याग है, वह कोई भी हो ।"

सन् १९६६ में भारत के साधुओं ने गोहत्या प्रतिबन्ध के सम्बन्ध में एक आंदोलन चलाया था । इस आन्दोलन के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया प्रकट करते हुए पन्त जी ने बच्चन जी के नाम अपने एक पत्र में लिखा था :

"..............यह सब चुनाव का नाटक है—ये मध्ययुगों के पथराए प्रतीक साधुलोग कभी देश के काम नहीं आए । आज विरोधी दलों के हाथ के खिलौने बने हैं ।"[2]

इन उद्धरणों में एक ओर जहां वर्तमान युग की धार्मिक प्रवृत्तियों, मान्यताओं और परम्पराओं की झांकी मिलती है, वहां दूसरी ओर पत्र-लेखकों के धार्मिक दृष्टिकोण का परिचय भी मिलता है ।

इस प्रकार पूर्व-नवजागरणकाल से लेकर वर्तमान युग तक के पत्र-साहित्य में प्राप्त धार्मिक सन्दर्भों से यह स्पष्ट होता है कि धर्म का व्यक्ति और समाज के व्यावहारिक जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है । धर्म द्वारा निर्देशित समाज के विकास में गत्यवरोध आ जाना निश्चित है । अतएव धर्म के सांस्कृतिक पक्ष के पुनर्मूल्यांकन की सदैव आवश्यकता बनी रहती है ।

४. साहित्यिक सन्दर्भ :

साहित्यकार के व्यक्तित्व-कृतित्व के साथ उसके युग-परिवेश को समझने में जितनी सहायता उसके पत्रों से मिलती है, उतनी उसके भारी-भरकम ग्रंथों से नहीं । इस दृष्टि से पं. रामशंकर द्विवेदी का यह कथन सर्वथा उचित जान पड़ता है कि........"...... साहित्यकारों के पत्रों के प्रकाशित न होने का अर्थ है, हिन्दी साहित्य की प्रामाणिक सामग्री का समाप्त हो जाना....... पत्रों के साहाय्य बिना साहित्य का प्रामाणिक विवरण तैयार ही नहीं किया जा सकता ।"[3]

---

1. "चिट्ठी-पत्री" भाग-२ (१९६२), पृ. ८८ ।
2. "पन्त के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७१), पृ. २४३ ।
3. "परिषद पत्रिका", जनवरी १९७२, पृ. ९१-९२ ।

भारतेन्दु-युग से लेकर वर्तमानयुग के अनेक साहित्यकारों के पत्र फुटकर रूप में और पुस्तक के रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। इन पत्रों में समकालीन गति-विधियों के अनेक बहुमूल्य सन्दर्भ प्राप्त होते हैं। विवेचन की सुविधा की दृष्टि से इन सन्दर्भों का अध्ययन इन शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है :

(क) साहित्यिक वाद-विवादों और आन्दोलनों के सन्दर्भ,

(ख) साहित्यिक चोरी के सन्दर्भ,

(ग) साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति और सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष के सन्दर्भ और

(घ) साहित्यिक समारम्भों, गोष्ठियों आदि के सन्दर्भ।

अब हम इनमें से प्रत्येक वर्ग के सन्दर्भों पर क्रमशः विस्तार से विचार करेंगे।

(क) साहित्यिक वाद-विवादों और आन्दोलनों के सन्दर्भ :

महान् साहित्यिकों के जीवन में अनेक वाद-विवाद उत्पन्न हुआ करते हैं। कुछ विवाद व्यक्तिगत स्तर से उत्पन्न होकर समष्टिगत बन जाते हैं। इन विवादों का सामयिक परिस्थितियों से कम सम्बन्ध नहीं होता। चूंकि वैयक्तिक पत्रों में सामयिक परिस्थितियों का स्पष्ट अंकन रहता है, इसलिए साहित्यिकों के वैयक्तिक पत्रों में साहित्यिक वाद-विवादों और आन्दोलनों के अनेक प्रामाणिक एवं रोचक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं।

"वादे-वादे जायते तत्वबोधः" सिद्धान्त के अनुसार महान् साहित्यिकों के बीच उत्पन्न वाद-विवादों से तथा उनके द्वारा चलाये गये आन्दोलनों से कुछ ऐसे निष्कर्ष निकलते हैं जो युग और साहित्य की प्रगतिशीलता के लिए सहायक हो सकते हैं। परन्तु जैसा कि डा. सुरेश सिन्हा ने कहा है, आन्दोलन का उद्देश्य व्यापक होना चाहिए।[1]

हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में प्राप्त साहित्यिक वाद-विवादों सन्दर्भों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से हम दो श्रेणियों में उपविभाजित कर सकते हैं :

(अ) भाषा-सम्बन्धी वाद-विवादों के सन्दर्भ और

(आ) प्रवृत्ति और नीति-विषयक आन्दोलनों के सन्दर्भ।

सबसे पहले हम भाषा-सम्बन्धी वाद-विवादों के सन्दर्भों पर विचार करेंगे।

(अ) भाषा-सम्बन्धी वाद-विवादों के सन्दर्भ :

भाषा मनुष्य के विचारों की वाहक है और किसी देश या राष्ट्र के संगठन के लिए अत्यन्त आवश्यक साधनों में से एक है। हिन्दी आज हमारे देश की

1. हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास (१९६५), पृ. ५।

राष्ट्रभाषा है। संसार की विकसित भाषाओं में उसकी गिनती होती है। परन्तु इस रूप को प्राप्त करने के लिए उसे विकास की अनेक अवस्थाओं से गुज़रना पड़ा है। उसके लिए समय-समय पर अनेक वाद-विवाद और आन्दोलन हुए हैं। यहां उन्हीं वाद-विवादों में से कुछ महत्वपूर्ण विवादों पर साहित्यिकों के पत्रों के माध्यम से प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है।

(१) हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी विवाद :

हिन्दी-भाषा के इतिहास में यह एक बहुर्चाचित विवाद है। यद्यपि १४ सितम्बर, १९४९ को भारतीय संविधान द्वारा 'नागरी लिपि में लिखी हिन्दी'' को राष्ट्रभाषा घोषित किये जाने से इस विवाद का अन्त हो गया है, किन्तु भाषा-सम्बन्धी विवादों की चर्चा में इसका अपना अलग महत्व है। इसी विवाद के कारण आधुनिक हिन्दी के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और राजा शिवप्रसाद सिंह के बीच मतभेद हो गया था, और इसी विवाद के कारण राजर्षि पुरुषोत्तमदास टंडन तथा महात्मा गांधी के बीच विरोध उत्पन्न हो गया था। इस विवाद पर बहुत-सी पुस्तकें भी लिखी गयी हैं। यहां हम साहित्यकारों एवं महापुरुषों के पत्रों के आधार पर इस विवाद के स्वरूप को स्पष्ट करने का प्रयास करेंगे।

हिन्दी-पत्र-साहित्य में इस विवाद के सन्दर्भ खोजने से पहले यह बता देना आवश्यक है कि व्याकरण के स्तर पर हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी प्रायः एक ही हैं। इन तीनों भाषा-रूपों का मूलाधार दिल्ली-मेरठ की खड़ी बोली है।[1] हिन्दी और उर्दू में केवल शब्द-समूह की दृष्टि से ही अंतर है। हिन्दी में संस्कृत के तत्सम तथा तद्भव शब्दों का बाहुल्य है और उर्दू में अरबी-फारसी शब्दों का बाहुल्य है। "हिन्दुस्तानी शब्द का प्रयोग कभी "हिन्दी" के अर्थ में, कभी "उर्दू" के अर्थ में तथा कभी हिन्दी उर्दू दोनों के मिल-जुले रूप में हुआ है। "हिन्दुस्तानी" शब्द मूलतः विशेषण है। इस दृष्टि से इस शब्द का प्रयोग भारत की किसी वस्तु, व्यक्ति अथवा भाषा के लिए किया जा सकता है। सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग भाषा के सन्दर्भ में सरल हिन्दी और सरल उर्दू अर्थात् बोलचाल वाले रूप के प्रयोग में ही होता है। यद्यपि आज "हिन्दी" शब्द भाषा के अर्थ में रूढ़ हो गया है तथापि बीसवीं शती के मध्य तक "हिन्दुस्तानी" शब्द का प्रयोग भी होता रहा है।[2]

इस प्रकार हिन्दी, उर्दू और हिन्दुस्तानी वस्तुतः खड़ी बोली या सामान्य हिन्दी शैलियां ही हैं। यहां यह भी स्मरणीय होगा कि अठारहवीं शती के अन्त

1. "हिन्दी भाषा : उद्भव, विकास और स्वरूप" (विवेचन), "हिन्दी-साहित्य का इतिहास" (१९७३), संपा डा. नगेन्द्र, ।
2. "हिन्दी का राष्ट्र भाषा के रूप में विकास" (१९७०), डा. शिवराम वर्मा, पृ. ३८:३९ ।

तक "उर्दू" का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था। इस आधार पर हिन्दी और उर्दू को कम से कम १८ वीं शती तक दो पृथक् भाषाएं मानने का प्रश्न ही नहीं था।[1]

हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी को लेकर देश में पीछे जो विवाद बढ़ा, उसके मूल में अंग्रेज साम्राज्यवादियों की दूरदर्शी कूटनैतिक चाल थी जिसकी रचना फोर्ट विलियम कालेज में की गयी थी। इस कालेज की स्थापना सन् १८०० ई. में कलकत्ते में की गयी थी। इसकी स्थापना होने के बाद जान गिलक्राइस्ट "हिन्दुस्तानी" विभाग के अध्यक्ष बनाये गये। यह हिन्दुस्तानी "हिन्दवी", "हिंदुई" या पुरानी खड़ीबोली का ही एक रूप था. किन्तु गिलक्राइस्ट और उन जैसे अन्य अंग्रेज विद्वानों ने इसके अर्थ में परिवर्तन कर उसे उर्दू का पर्याय बना दिया। इस प्रकार हिन्दी उर्दू-हिन्दुस्तानी के झगड़े में गिलक्राइस्ट तथा उन जैसे अंग्रेज विद्वानों का बहुत बड़ा हाथ है।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी को शान्तिनिकेतन के विद्याभवन से वररुचिकृत "पत्रकौमुदी" की जो हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है, उसमें अन्य भारतीय भाषाओं के साथ हिन्दी पत्र-लेखन के भी पांच उदाहरण दिये गये हैं। इस हस्तलिखित प्रति में हिन्दी के लिए "हिन्दुस्थानीय–भाषा" शब्द का प्रयोग किया गया है। "हिन्दुस्थानीय भाषा" के पांच पत्र अन्य भाषा-पत्रों के साथ बंगला लिपि में दिये गये हैं और उन पर बंगला संवत् १२०४ का उल्लेख है। इस हस्तलिखित प्रति में दिये गये "हिन्दुस्थानीय भाषा" के पत्रों के नमूनों के पर्यवेक्षण से आचार्य हजारी-प्रसाद द्विवेदी ने निम्नलिखित निष्कर्ष निकाले हैं :

(१) हिन्दी उन दिनों राजकीय और अन्तरप्रान्तीय व्यवहार की भाषा थी। उसमें पत्र लिखने का ढंग सिखाया जाता था।

(२) "हिन्दुस्थानीय" नाम अंग्रेजों का दिया हुआ नहीं है और न उससे उर्दू अर्थात् अरबी फ़ारसी से प्रभावित भाषा का ही बोध होता था।

(३) उन दिनों विशुद्ध संस्कृत-शैली में लिखे हुए पत्रों में अरबी-फ़ारसी के व्यावहारिक शब्द निःसंकोच ग्रहण किये जाते थे।

(४) यह कहना कि खड़ी बोली में गद्य लिखने का आरम्भ लल्लू लाल जी आदि ने अंग्रेजों की प्रेरणा से किया था, एकदम निराधार और ग़लत है। बहुत पहले से खड़ी बोली में आज की हिन्दी के समान गद्य लिखा जाता था। वह व्यवहार की भाषा थी और विशुद्ध संस्कृत-शैली में उसमें पत्र लिखे जाते थे।[2]

डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के मत का समर्थन करते हुए लिखा है कि "उल्लिखित स्थान पर "हिन्दुस्थानी" का अर्थ मूल हिन्दुस्तानी या हिन्दी है और वह ईस्ट इंडिया कम्पनी की हिन्दुस्तानी से अनेक

---

1. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास : डॉ. शिवराम शर्मा, पृ. ३८।
2 "२०० वर्ष पुरानी खड़ीबोली के पत्रों के नमूने" (लेख), "विशाल भारत", अप्रैल १९४०, पृ. ३६७-६८।

अंशों में भिन्न है।"[1]

डा. वार्ष्णेय ने स्वसम्पादित "प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" में संकलित भारतीय राजाओं एवं नवाबों और कम्पनी द्वारा एक दूसरे को लिखे गये पत्रों की उक्त हस्तलिखित प्रति में दिये गये पत्रों से तुलना कर आगे लिखा है कि—"इसमें तथा उन पत्रों में केवल जनसाधारण में प्रचलित अरबी फ़ारसी शब्दों का प्रयोग हुआ है।"[2]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, "प्राचीन हिन्दुई-पत्रसंग्रह" में अनेक स्थानों पर जनसाधारण में प्रचलित भाषा के लिए "हिन्दवी" और "हिन्दुई" शब्द का प्रयोग किया है।[3]

"हिंदवी" शब्द का प्रयोग काशीराज चेतसिंह द्वारा संवत् १८५० में जयपुर के राजा प्रतापसिंह के नाम लिखित पत्र में भी मिलता है। जैसे :

"......... आपका कृपापत्र आया करै सो हिंदवी लिखा आवै जौ हम आप पढ़ लेवें .... "[4]

इन पत्रों से स्पष्ट होता है कि पहले हिन्दी भाषा "हिंदवी" "हिंदुई" और "हिन्दुस्थानी" नामों से प्रचलित थी जिसमें अरबी-फ़ारसी के व्यावहारिक शब्द निःसंकोच ग्रहण किये जाते थे। परन्तु गिलक्राइस्ट और उन जैसे अंग्रेज विद्वानों ने "हिन्दुस्तानी" को उर्दू का पर्याय बना दिया। श्री गिलक्राइस्ट की भ्रमपूर्ण नीति का विरोध उनके बाद हिन्दुस्तानी विभाग के अध्यक्ष के स्थान पर आनेवाले विलियम प्राइस ने ११ अक्टूबर १८२४ को कौंसिल के मंत्री श्री रडैल महोदय के नाम पत्र भेजकर किया।[5] किन्तु गिलक्राइस्ट ने हिन्दुस्तानी की जड़ें बहुत मज़बूत बना दी थीं। सन् १८३७ के एक्ट के बावजूद भी अदालतों में हिन्दी के बदले उर्दू को ही स्थान दिया गया।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र राजा शिवप्रसाद सिंह "सितारे हिन्द" को गुरू मानते थे, किन्तु हिन्दी उर्दू के प्रश्न पर दोनों में मतभेद था।

भारतेन्दु जी को "बालालोधिनी" पत्रिका बहुत प्यारी थी, किन्तु सरकार ने जब उसे भी खरीदना बन्द कर दिया, तब उन्हें बहुत दुःख हुआ। इस सन्दर्भ में उन्होंने पं. चिन्तामणि के नाम एक पत्र लिखा है। हिन्दी-उर्दू-विवाद की दृष्टि से यह पत्र महत्वपूर्ण है। अतः यहां हम उसके कुछ अंश प्रस्तुत करते हैं :—

---

1. "आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका" (१९७१), पृ. ३००।
2. "आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका" (१९७१), पृ. ३०१।
3. "प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" (१९५९), पृ. ११ तथा पृ. १५।
4. "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ. ४४९।
5. "फ़ोर्ट विलियम कालेज" (प्र.सं.), डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, पृ. ११७।

"श्री युक्त प्राणोपम पं. चिन्तामणि शर्मणे भगवत स्मरण पूर्वक निवेदन मिदं हमारे वात्सल्यमय का परमपात्र क. व. सु. जो अब आपके हस्तगत है..........हाय । पश्चिमोत्तर देश के हेतु मैं सिर पटक दूं क्या करूं कुछ सूझता ही नहीं । ....यह तो हुआ । अब नई बात सुनिये । बालाबोधिनी का नाम हिन्दी समाज के सामाजिक मात्र जानते हैं । ....सरकार ने इस नये वर्ष से इसका लेना बन्द किया । इसका कारण हमारी हिन्दी है जो सर्वदा विरोधियों के हृदय में खटकती है । यह सच है कि बड़ों को नेत्र नहीं होते केवल कान होते हैं । अन्यथा हिन्दी की यह दुर्दशा नहीं होती....... "[1]

इससे स्पष्ट है कि हिन्दी-उर्दू का विवाद अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' नीति का परिणाम है ।

हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा के रूप में मान्यता देने का प्रश्न पहले-पहल भारत के अहिन्दी-भाषी नेताओं ने ही उठाया है । नवजागरण-काल में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने उसे "आर्यभाषा" घोषित किया और उसे राजभाषा बनाने के लिए सरकार के पास स्थान-स्थान से स्मरण-पत्र भिजवाये ।[2] महर्षि दयानन्द सरस्वती के बाद हिन्दी को राष्ट्रभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने का श्रेय स्वतंत्रता-संग्राम के कर्णधार महात्मा गांधी को है । उन्होंने अफ्रिका में रहते हुए ही हिन्दी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने की योजना सोच रखी थी । स्थायी रूप से अफ्रिका के प्रवास से भारत आने के पूर्व भी उन्होंने १९०९ ई. में, "हिन्द-स्वराज्य" में राष्ट्रभाषा हिन्दी के औचित्य का प्रतिपादन किया था । अफ्रिका प्रवास से लौटकर जब उन्होंने सन् १९१५ में, अहमदाबाद में आश्रम की स्थापना की, तब महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) को १४ जून, १९१५ के पत्र से सूचित किया था कि आश्रम की नियमावली हिन्दी में बन रही है ।[3] हिन्दी के सम्बन्ध में अपनी मान्यता को स्पष्ट करते हुए उन्होंने सन् १९१७ में, भड़ौच में द्वितीय गुजरात शिक्षा सम्मेलन में अध्यक्ष पद से भाषण देते समय कहा था :

"हिन्दी भाषा मैं उसे कहता हूँ, जिसे उत्तर में हिन्दू और मुसलमान बोलते हैं और देवनागरी या फारसी (उर्दू की) लिपि में लिखते हैं ।"[4]

उन्होंने अपने भाषण में यह भी स्पष्ट किया था कि हिन्दी तथा उर्दू दो अलग-अलग भाषाएं नहीं हैं । लिपि के बारे में उन्होंने सुझाव दिया था कि धीरे-धीरे जब हिन्दू-मूसलमानों में सन्देह-भावना नहीं रह जायेगी, तो जिस लिपि

---

1. "भारतेन्दु हरिश्चन्द्र" (१९७६), मदन गोपाल, पृ. ९० ।
2. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. ३५४ ।
3. "गांधी हिन्दी दर्शन (प्र. सं.) संपा. गोपालप्रसाद व्यास, पृ. ४१८ ।
4. वही, पृ. ४६ ।

में अधिक शक्ति होगी, रह जायेगी और वही राष्ट्रीय लिपि होगी।[1]

इस प्रकार गांधी जी हिन्दी-उर्दू को एक ही मानते थे। २० सितम्बर, १९१८ को सरोजिनी नायडू को हिन्दी में भाषण करने की प्रेरणा देते हुए उन्होंने लिखा था :

प्रिय बहन,

आपके साथ पूर्णिया जाने की मुझे बहुत ही इच्छा होती है, क्योंकि वहां के लोग मेरी उपस्थिति चाहते हैं, परन्तु यह मेरे लिए असंभव है। फिर भी मैं आशा करता हूं कि आप ठीक ढंग से काम करेंगी और अपना भाषण हिन्दी या उर्दू—जिसे भी आप राष्ट्रभाषा कहें—में देंगी।[2]

इससे स्पष्ट है कि महात्मा जी हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा मानते थे। उनके सन् १९१९ तक के पत्रों में "हिन्दुस्तानी" शब्द का प्रयोग नहीं मिलता। फरवरी ६, १९१९ को सत्यदेव परिव्राजक के नाम लिखे पत्र में भी "हिन्दी" शब्द का ही प्रयोग हुआ है।[3] इसके बाद जब मुसलमानों ने इस नाम के प्रति विरोध प्रकट किया तो उसको हिन्दी-उर्दू का मिला-जुला नाम "हिन्दुस्तानी" शब्द मिल गया और वे हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर तथा नागरी और फारसी दोनों लिपियों को अपनाकर अपने स्वराज्य-आंदोलन में अग्रसर हुए। ऐसा उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता की दृष्टि से ही किया था। किन्तु उनका उद्देश्य पूरा न हुआ। उनकी "हिन्दुस्तानी-नीति" से जहां उनके कुछ मुसलमान दोस्त नाखुश थे, वहां उनके हिन्दी मित्र भी कम असंतुष्ट नहीं थे। सन् १९३९ ई. में पंजाब के अबोहर नामक शहर में हुए साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के बाद हिन्दी-हिन्दुस्तानी का संघर्ष और भी विकराल हो गया। हिन्दुस्तानी के समर्थन में काका कालेलकर, विनोबा जी, राजेन्द्रबाबू आदि नेता खुलकर गांधीजी के साथ थे। किन्तु टंडन जी हिन्दुस्तानी के विरोध में डट गये। दिनांक २८-५-१९४५ से २-८-१९४५ के बीच हिन्दुस्तानी के प्रश्न पर ऐतिहासिक गांधी टंडन पत्र-व्यवहार हुआ। जिस प्रकार गांधी जी हिन्दुस्तानी भाषा, नागरी और फारसी लिपि पर अटल थे, उसी प्रकार टंडन जी हिन्दी भाषा तथा नागरी लिपि पर दृढ़ बने हुए थे। इन दोनों नेताओं का पत्र-व्यवहार "गांधी हिन्दी दर्शन" में प्रकाशित है। गांधी जी ने जब देखा कि सम्मेलन हिन्दी-सम्बन्धी उनकी मान्यता को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं है, तब उन्होंने सम्मेलन से त्याग-पत्र देने का निश्चय किया और टंडन जी को लिखा :

"..........राष्ट्रभाषा की मेरी व्याख्या में हिन्दी और उर्दू लिपि और दोनों शैली का ज्ञान आता है। ऐसा होने से दोनों का समन्वय होने का है तो हो

1. गांधी हिन्दी दर्शन (प्र. सं.) संपा. गोपालप्रसाद व्यास पृ. ४६।
2. "गांधी हिन्दी दर्शन", पृ. २२०।
3. वही-, पृ. २२१-२२।

जाएगा। मुझे डर है कि मेरी यह बात सम्मेलन को चुभेगी। इसलिए मेरा इस्तीफा कबूल किया जाए। हिन्दुस्तानी-प्रचार का कठिन काम करते हुए मैं हिन्दी की सेवा करूंगा और उर्दू की भी।"[1]

सम्मेलन से अलग हो जाने के पूर्व गांधी जी की प्रेरणा से काका कालेलकर के नेतृत्व में वर्धा में ही सन् १९४२ ई. को हिन्दुस्तानी प्रचार सभा की स्थापना की गयी थी। सन् १९४६ में गांधी जी की सिफारिश से दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा ने अपने नाम को बदलकर "हिन्दुस्तानी प्रचार सभा" कर दिया।[2] सन् १९४६ और ४७ के वर्ष भारत में साम्प्रदायिक द्वेष और घृणा के भयानक विस्फोट के वर्ष थे। किन्तु महात्मा जी की राष्ट्रभाषा की टेर तब भी बन्द न हुई। १३-८-१९४७ को श्रीमन्नारायण के नाम लिखित पत्र में उन्होंने अपनी दृढ़ मान्यता दोहराते हुए कहा था :

"..........उर्दू कभी राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती न हिन्दी। भले हिन्दी पर यूनियन की मुहर भी लगे। राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो दोनों कौम लिख सकें और बोल सकें।"[3]

इस प्रकार भारत-विभाजन के अंत तक और उसके बाद भी गांधी जी "हिन्दुस्तानी" का समर्थन करते रहे। आखिर १४ सितम्बर १९४९ को भारतीय संविधान ने "नागरी लिपि में हिन्दी" को राष्ट्रभाषा घोषित कर दिया। इसके साथ ही हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी विवाद भी सदा के लिए समाप्त हो गया। केवल पत्रों में उसकी स्मृति शेष रह गई है।

(ii) ब्रज भाषा और खड़ी बोली विवाद :

हिन्दी-उर्दू विवाद के समान ब्रजभाषा और खड़ी बोली का विवाद भी यथेष्ट पुराना है। इस विवाद के दो पक्ष हैं—एक भाषा-विज्ञान से संबन्धित पक्ष और दूसरा काव्य-भाषा से सम्बन्धित पक्ष। भाषा-विज्ञान से सम्बन्धित पक्ष में खड़ी बोली की उत्पत्ति, "खड़ी" शब्द के विभिन्न अर्थ आदि के विषय में विभिन्न मत-मतान्तरों की चर्चा की जाती है और काव्य-भाषा से सम्बन्धित पक्ष में ब्रजभाषा के स्थान पर काव्य में खड़ी बोली को प्रतिष्ठित करने के आंदोलन का विवेचन होता है।

खड़ी बोली की उत्पत्ति और नामकरण के सम्बन्ध में पूर्ववर्ती पृष्ठों में उल्लिखित आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के निष्कर्ष विचारणीय हैं। इन निष्कर्षों से सिद्ध होता है कि बहुत पहले से ही खड़ी बोली में आज की हिन्दी के समान गद्य लिखा जाता था। वह व्यवहार की भाषा थी। इस विवाद के भाषा-विज्ञान

---

1. "गांधी हिन्दी दर्शन", पृ. २३१।
2. "हिन्दी-हिन्दुस्तानी विवाद" (लेख), "दिनकर", "सम्मेलन पत्रिका", गांधी-टंडन-स्मृति-अंक, पृ. ३८।
3. "बापू के पत्र-बजाज-परिवार के नाम" पृ. २३७।

से सम्बन्धित पक्ष पर पत्रों में इससे अधिक सन्दर्भ देखने में नहीं आये। किन्तु साहित्यिकों के पत्रों में इस विवाद के काव्य-भाषा से सम्बन्धित पक्ष पर अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ प्राप्त हुए हैं।

लोकभाषा खड़ी बोली का गद्य में प्रयोग तो १९ वीं शताब्दी के आरम्भ में लोगों ने स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया था, किन्तु पद्य में ब्रजभाषा को ही स्थान प्राप्त था। अतः काव्य-भाषा के प्रश्न को लेकर खड़ी बोली के पक्ष और विपक्ष में वाद-विवाद या आन्दोलन हुआ। इस सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा डा. शितिकण्ठ मिश्र के "खड़ी बोली का आंदोलन" शीर्षक शोध-प्रबन्ध में की गयी है। यहां हम साहित्यिकों के पत्रों में इस विवाद के जो सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, उन्हीं के आधार पर इस की चर्चा करेंगे।

खड़ी बोली के पक्ष और विपक्ष में काव्य-भाषा के प्रश्न को लेकर सर्वप्रथम विवाद भारतेन्दु-युग में खड़ा हुआ था। यह विवाद मुख्यतः राधाचरण गोस्वामी, पं. प्रतापनारायण मिश्र और पं. श्रीधर पाठक के बीच हुआ था। इस विवाद के सूत्रधार अयोध्याप्रसाद खत्री थे। यहां यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि जो साहित्यकार ब्रजभाषा का विरोध कर रहे थे, वे स्वयं ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे। किन्तु वे खड़ी बोली के प्रति प्रेम के कारण उसका विरोध सहन नहीं कर पाये।

हिन्दी काव्य के माध्यम रूप में खड़ी बोली के प्रयोग की बात सबसे पहले श्री अयोध्याप्रसाद खत्री ने सन् १८८७ ई. में उठाई। श्री खत्री के विचारों का ब्रज के प्रमुख साहित्यिक राधाचरण गोस्वामी ने प्रबल विरोध किया। उन्होंने "हिन्दोस्थान" के सम्पादक के नाम ११ नवम्बर १८८७ को एक पत्र भेजकर लिखा कि मैं खड़ी बोली पद्य का विरोधी हूं।[1] श्री राधाचरण गोस्वामी के पत्र का उत्तर पं. श्रीधर पाठक ने दिया। उन्होंने २० दिसम्बर १८८७ को "हिन्दोस्थान" के सम्पादक के पास पत्र भेजकर गोस्वामी जी के पत्र की आलोचना की और खड़ी बोली का समर्थन करते हुए लिखा :

" ..... इस विविध भाषाओं के देश भारतवर्ष की कोई एक भाषा कही या मानी जा सकती है तो हिन्दी ही मानी जा सकती है और वह हिन्दी खड़ी

---

1. "खड़ी बोली का आन्दोलन" (सं. २०२३ वि.) परिशिष्ट-क, पृ. ३५४।

श्री राधाचरण गोस्वामी ने अपने पत्र में खड़ी बोली पद्य का विरोध करते हुए एक तर्क यह दिया था कि कवित्त, सवैया आदि छन्दों में खड़ी भाषा का निर्वाह नहीं हो सकता। उनकी दूसरी दलील यह थी कि चन्द के समय से हरिश्चन्द्र तक सब कविता ब्रजभाषा ही में हुई है और उसका साहित्य इतना उन्नत और एक ऐसा अमूल्य रत्नभण्डार है कि उसे छोड़कर नये कंकर पत्थर चुनना हिन्दी के लिए कुछ सौभाग्य की बात नहीं।

हिन्दी है ब्रजभाषा की हिन्दी नहीं।"[1]

इन्हीं दो पत्रों से खड़ी बोली और ब्रजभाषा के विस्तृत विवाद का सूत्रपात हुआ।

पाठक जी के दिसम्बर वाले पत्र का प्रतिवाद करते हुए श्री गोस्वामी जी ने १५ जनवरी १८८८ को "हिन्दोस्थान" में पुनः पत्र भेजा और पाठक जी ने फरवरी १८८८ को एक लम्बा पत्र "हिन्दोस्थान" के सम्पादक को लिखकर गोस्वामी जी के तर्कों का खण्डन किया। इस प्रकार पत्रों द्वारा आलोचना-प्रत्या-लोचना होती रही।

"हिन्दोस्थान" में प्रकाशित पं. राधाचरण गोस्वामी और पं. श्रीधर पाठक के प्रथम दो पत्रों से जिस विस्तृत विवाद का सूत्रपात हुआ, वह विवाद भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा १ सितम्बर १८८१ को—"भारतमित्र" के सम्पादक को लिखे गये पत्र से ही उठ खड़ा हुआ था। इस सम्बन्ध में डा. बलबीरसिंह ने लिखा है :

वस्तुतः कविता में खड़ी बोली का कुछ न कुछ प्रयोग भारतेन्दु युग में ही होने लगा था। स्वयं भारतेन्दु ने १ सितम्बर १८८१ में "भारतमित्र" में अपनी खड़ी बोली की कविता के कुछ छन्द प्रकाशित कराये थे तथा अपने इस प्रयोग की सफलता-असफलता के विषय में सर्वसाधारण की सम्मति इन शब्दों में मांगी थी : "प्रचलित भाषा में कुछ कविता भेजी है। देखिएगा कि इसमें क्या कसर है और किस उपाय के अवलम्बन करने से इस भाषा में काव्य सुन्दर बन सकता है। लोग विशेष इच्छा करेंगे और स्पष्ट अनुमति प्रकाश करेंगे तो मैं और भी लिखने का यत्न करूंगा।"…… परन्तु तथ्य निश्चित है कि भारतेन्दु का झुकाव ब्रजभाषा की ओर ही था, उनकी काव्यगत खड़ी बोली प्रयोगात्मक अवस्था की है। खड़ी बोली में काव्य रचना उनके लिए एक विशेष कष्टसाध्य व्यापार था। उन्होंने स्वयं लिखा है,"………मेरा चित्त इसमें संतुष्ट न हुआ, न जाने क्यों ब्रजभाषा से मुझे इसके लिखने में दूना परिश्रम हुआ"। भारतेन्दु के इन विचारों की प्रतिक्रिया के रूप में आगे चलकर वह विवाद खड़ा हो गया जिसकी ओर हमने अभी संकेत किया है।"[2]

इससे स्पष्ट है कि साहित्यकारों के पत्रों के सन्दर्भों के बिना इस महत्वपूर्ण विवाद का सम्यक् अध्ययन हो ही नहीं सकता।

इस विवाद की व्यापकता द्विवेदी-युग के प्रारम्भिक वर्षों में और भी बढ़ गयी। जिस प्रकार भारतेन्दु-युग में राधाचरण गोस्वामी तथा श्रीधर पाठक के बीच "हिन्दोस्थान" में साहित्यिक नोंक-झोंक हो गयी थी, उसी प्रकार द्विवेदी-युग में पं. कामताप्रसाद गुरु तथा पं. श्रीधर पाठक के बीच "प्रयाग समाचार"

1. खड़ी बोली का आन्दोलन (सं. २०२३ वि.) परिष्टि-क पृ. ३५८।
2. "हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान" (१९६४), पृ. १३१-१३२।

(१९०२ ई.) में विवाद छिड़ गया। डा. रामचन्द्र मिश्र ने "स्व. पं. श्रीधर पाठक से सम्बन्धित पत्र" शीर्षक लेख में इस विवाद को इस प्रकार प्रस्तुत किया है :

"खड़ी बोली में तुकबन्दी करने वाले नौसिखियों को लक्ष्य कर "प्रयाग समाचार" में श्री गुरूजी की "उद्गार" शीर्षक रचना प्रकाशित हुई :

हाय। हुई कविता तुकबन्दी,
सड़ी हवा में सुगन्ध गन्दी।
करो लेखनी अपनी बन्द,
श्रीधर को सौंपो सब छन्द ॥"

कविता के नीचे गुरूजी का नाम नहीं था। पाठक जी ने उसका उत्तर "उद्गार चिकित्सा" शीर्षक के नाम से दिया था :

कविता नई निराला छन्द
दालभात में मूसरचन्द।
लिखो, न करो लेखनि बन्द,
श्रीधर सम कवि स्वच्छन्द ॥

गुरूजी ने इसका उत्तार "चिकित्सा की फीस" शीर्षक और इसका उत्तर पाठक जी ने "फीस की रसीद" शीर्षक रचना द्वारा दिया। आचार्य द्विवेदी के संकेतानुसार आगे चलकर यह विवाद समाप्त हो गया।"[1]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि "प्रयाग समाचार" में प्रकाशित यह उत्तर-प्रत्युत्तरों का सिलसिला काव्यमय होने के कारण "हिन्दोस्थान" में प्रकाशित आलोचना-प्रत्यालोचना की अपेक्षा अधिक रोचक है। द्विवेदी युग में इस प्रकार की साहित्यिक नोंक-झोंक के अनेक उदाहरण तात्कालीन पत्रिकाओं में मिलते हैं, परन्तु विस्तारमय से उनकी चर्चा यहां हम नहीं कर सकते। खड़ी बोली के प्रसिद्ध कवि मैथिलीशरण गुप्त के एक पत्र का सन्दर्भ देकर हम इस विवाद के अगले उत्थान पर प्रकाश डालेंगे।

जैसा कि हम प्रारम्भ में ही बता चुके हैं, खड़ी बोली के समर्थक साहित्यकार ब्रजभाषा के भी अच्छे कवि रहे हैं। प्रायः सभी ने ब्रजभाषा में कविता लिखी है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने भी सन् १९०४ ई. में सर्वप्रथम ब्रजभाषा में ही कविता लिखकर "सरस्वती" में प्रकाशनार्थ भेजी था। जब आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने वह कविता लौटा दी, तब गुप्त जी ने कार्त्तिक शुक्ल ३ संवत् १९६१ को आचार्य द्विवेदी के नाम एक पत्र लिख भेजा था। इस पत्र के कुछ अंश यहां उदाहरण-स्वरूप प्रस्तुत करते हैं :

1. "स्वर्गीय पंडित श्रीधर पाठक से सम्बन्धित पत्र" (लेख), "सम्मेलन पत्रिका" पौष-ज्येष्ठ १८९१, पृ. ७०।

"श्रीमान् पंडितजी महाराज,

चरणारविन्दों में बहुशः प्रणाम ।

भवदीय चरण खत पत्र प्रसादात्रं कुशलं तत्राध्यस्तु, अग्रे वृत्तमिदं ज्ञेयम् । कृपासिंधु, करकंजांकित शिक्षापत्र २८-१०-१९०४ का प्राप्त हुआ । .... भगवान, इतना खेद मुझे अपनी कविता "सरस्वती" में न प्रकाशित होने का नहीं हुआ, जितना कि 'सरस्वती" के पाठकों की ब्रजभाषा पर तुच्छा का । जो हो अपनी-अपनी रुचि होती है ...."सरस्वती" से पूर्ण प्रेम है और खड़ी बोली में यथाशक्य कविता भी रच सकता हूं । परन्तु क्या किया जाय ? खेद का विषय है कि इस दास को स्वभाव से ही खड़ी बोली से कुछ अरुचि है ।..................[1]

परन्तु यह सर्वविदित है कि खड़ी बोली के प्रति अरुचि प्रकाशित करनेवाले मैथिलिशरण गुप्त आगे चलकर खड़ी बोली गद्य के कट्टर समर्थक और ब्रजभाषा काव्य के प्रबल विरोधी बन गये थे ।

छायावाद-युग में भी ब्रजभाषा-खड़ी बोली का विवाद जारी रहा । छाया-वाद के प्रसिद्ध कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने अपने "पल्लव" शीर्षक काव्य-संग्रह की भूमिका में ब्रजभाषा के अनेक दोष प्रदर्शित किये । ऐसा उन्होंने क्यों किया, इसकी जानकारी हमें पं. पद्मसिंह शर्मा के ८-४-१९३० के पत्र में मिलती है । यह पत्र उन्होंने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिख भेजा था । इस पत्र में पन्तजी से बिजनौर में हुई मुलाकात के सम्बन्ध में पं. शर्माजी ने लिखा है :

"इस बार पहली बार पं. सुमित्रानन्दन पन्त से बिजनौर में मुलाकात हुई । आदमी तबीयत के साफ़ और "जैन्टिलमैन" मालूम हुए । "पल्लव" की भूमिका में जो पहले कवियों के विषय में अन्ट-शन्ट, अनाप-शनाप, ऊल-जलूल, लिख गये हैं, उसे वापस लेने को कहते थे । यह भी कहते थे कि ब्रजभाषा का विरोध करने के लिए मुझे खास तौर पर कहा गया था, इसी से वैसा लिखना पड़ा इत्यादि ।"[2]

प्रस्तुत विवाद के तृतीय उत्थान पर यह पत्र पर्याप्त प्रकाश डालता है । इस काल में ब्रजभाषा के समर्थन में पं. जगन्नाथ चतुर्वेदी ने "सिंहावलोकन" शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की थी । इस पुस्तक की सराहना करते हुए पं. पद्मसिंह शर्मा ने ७-४-१९२८ को चतुर्वेदी जी के नाम प्रेषित पत्र में लिखा था :

"आपका सिंहावलोकन ब्रजभाषा के विरोधियों के लिए सचमुच सिंहाव-लोकन है, और कविता-प्रेमी रसिकों के लिए कामिनी का कमनीय कटाक्ष है । ...."[3]

---

1. "खड़ी बोली का आंदोलन" (सं. २०१३ वि.), पृ. २०५-२०६ ।
2. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. ८० ।
3. वही —, पृ. १७७ ।

सन् १९३४ ई. में "प्रिय प्रवास" के रचयिता "हरिऔध" जी ने ब्रजभाषा के प्रेमियों को मार्ग दिखाने के लिए "रस-कलस" नामक एक ग्रंथ की रचना की थी जिसका "सरस्वती" में "हरिऔध का बुढ़भस" शीर्षक लेखमाला से बहुत मज़ाक उड़ाया गया था। चूंकि पं. किशोरीदास वाजपेयी ब्रजभाषा के समर्थन में "भारत" में अच्छे लेख लिख चुके थे, इसलिए कविवर "हरिऔध" जी ने १४-६-१९३४ को वाजपेयी जी के नाम पत्र भेजकर "सरस्वती" में प्रकाशित लेखमाला का प्रतिवाद करने का आग्रह किया।[1]

सन् १९३४ ई. में ही पं. रामनरेश त्रिपाठी ने "विशाल भारत" के सम्पादक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को इस विवाद के सम्बन्ध में परामर्श देते हुए लिखा था :

"ब्रजभाषा का मरसिया आप अपने सिर क्यों लेते हैं? न वह कभी जीवित थी, न अब मरेगी। तुलसीदास की अवधी के लिए तो कोई कुछ हल्ला नहीं मचा रहा है। उसी तरह ब्रजभाषा भी जैसी चलती आई है वैसी चलती रहेगी।"[2]

इसके बाद साहित्यिकों ने ब्रजभाषा के विकास के साथ अन्य उपभाषाओं तथा राष्ट्रभाषा हिन्दी के विकास की ओर भी ध्यान केन्द्रित किया। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने ब्रजभाषा के सुप्रसिद्ध-साहित्य-सेवी बाबू वृन्दावनदास के नाम लिखे अपने १२-५-१९६९ के पत्र में यही विचार प्रकट किया है। देखिये :

प्रिय भाई वृन्दावनदास जी,

ब्रजभाषा के विषय में जो कुछ आपने लिखा है उससे मैं पूर्णतया सहमत हूं।.... .. ..उर्दू, अवधी, भोजपुरी तथा बुन्देलखण्डी के लिये भी हमारा मंडल भरपूर प्रयत्न करे क्योंकि ब्रजभाषा सबकी बड़ी बहन है, उर्दू की तो माता भी।

दुई बिटिया ब्रजभाषा की है हिन्दी उर्दू सुंदर नार।
जेठी महलन में है बैठी लुहरी बैठी जाइ बजार।।"[3]

इस प्रकार भारतेन्दु-युग से लेकर वर्तमान युग तक के साहित्यिकों के जो पत्र प्रकाश में आये हैं, उनमें ब्रजभाषा और खड़ी-बोली विवाद के अनेक रोचक एवं मूल्यवान सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं। इन सन्दर्भों के बिना इस विवाद का सम्यक् अध्ययन सम्भव नहीं है।

(iii) भाषा की अनस्थिरता-सम्बन्धी विवाद :

परिनिष्ठित हिन्दी के इतिहास में अनस्थिरता सम्बन्धी विवाद का महत्व

1. "आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी" (१९६५), किशोरीदास वाजपेयी, पृ. ९२।
2. "पं. रामनरेश त्रिपाठी : एक युग : एक व्यक्ति" (१९७४), पृ. ९४।
3. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. ९६।

अन्यतम है। इस विवाद का सम्बन्ध नवम्बर १९०५ की "सरस्वती" में प्रकाशित आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के "भाषा और व्याकरण" शीर्षक लेख से था। इस लेख में एक स्थान पर आचार्य द्विवेदी ने "अनस्थिरता" शब्द का प्रयोग कर दिया था। इसी शब्द को लेकर बाबू बालमुकुन्द गुप्त से उनका संघर्ष हो गया था। दोनों ओर से अनेक साहित्य-महारथी क्षेत्र में उतर आये थे। दोनों समान शक्ति वाले थे। भाषा-सम्बन्धी यह विवाद हिन्दी भाषा के इतिहास की एक घटना हो गयी। इस विवाद से सम्बन्धित साहित्यकारों के पत्रों से अनेक नये तथ्यों की जानकारी मिलती है। पत्रों के सन्दर्भों का आधार लिये बिना इस विवाद को समझना कठिन है। सर्वप्रथम हम इसकी पृष्ठभूमि पर प्रकाश डालेंगे।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी जब "सरस्वती" की सेवा में आये तो उन्होंने भाषा के रूप पर भी ध्यान दिया। हिन्दी में अच्छे व्याकरण का अभाव उन्हें बहुत दिनों से खटक रहा था। पं. श्रीधर पाठक के नाम २४-८-१९०५ के पत्र में उन्होंने लिखा था:

"हिन्दी में कोई अच्छा व्याकरण नहीं जिसे सब लोग मानें। इससे जिसके जी में जो आता है, उसे ही वह लिखता है। यह भाषा का दुर्भाग्य है।"[1]

इस प्रकार एक सर्वमान्य व्याकरण बनाने की आवश्यकता की दृष्टि से उन्होंने बड़े परिश्रम से "सरस्वती" में छापने के लिए "भाषा और व्याकरण" शीर्षक लेख तैयार किया और प्रकाशित करने से पहले अपने विद्वान मित्र पं. पद्मसिंह शर्मा की सम्मति के लिए भेजा। साथ ही १९-९-१९०५ के पत्र में पं. शर्मा जी को उक्त लेख ध्यानपूर्वक पढ़ जाने का अनुरोध करते हुए लिखा:

"………… जहां कहीं विशेष करके व्याकरण की बातों में कुछ अनुचित हो गया हो, वहाँ दुरुस्त कर दीजिएगा। संकोच जरा भी न कीजिए। अपने दोष अपने को नहीं देख पड़ते, जितना जल्द हो सके वापस कर दीजिएगा। नवम्बर की सरस्वती में हम इसे छापना चाहते हैं। देखिएगा—पीछे से हमारी हँसी न हो।"[2]

इस पत्र का अंतिम वाक्य अत्यन्त महत्वपूर्ण है। आचार्य जी की यह दहशत भविष्य में सत्य सिद्ध हुई।

संस्कृत के प्रकांड पंडित पद्मसिंह शर्मा ने आचार्य द्विवेदी के अनुरोध से लेख को ध्यान से पढ़ा, कई बार पढ़ा और आवश्यक संशोधन करके लौटा दिया।

---

1. "द्विवेदी पत्रावली" (१९५४), पृ. ५९।
2. "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र संग्रह", भारतीय साहित्य, जनवरी १९६२, पृ. ९५।

पं. पद्मसिंह शर्मा ने १-१०-१९०५ के पत्र में इस पर अपनी सम्मति इन शब्दों में प्रकट की थी :

"भाषा और व्याकरण को मैंने कई बार पढ़ा, ध्यान से पढ़ा। आपकी आज्ञा पालन के अर्थ मैंने प्रयत्न किया कि उसमें विशेष स्थल पर कुछ अपनी सम्मति दूं। परन्तु मैंने उसकी प्रत्येक बात अपने मत के अनुकूल पाई। यही नहीं किन्तु आपके लेख का प्रत्यक्ष मुझे कुछ ऐसा मोहित कर लेता है कि उसके प्रतिकूल कुछ सूझता ही नहीं। उसमें कही गई बात मुझे अपनी ही बात मालूम देने लगती है। सचमुच आपकी लेखनी में एक अपूर्व और अद्भुत शक्ति है। ग़ालिब का यह शेर आपके ही लेखों पर चरितार्थ होता है—

"देखना तकदीर की लज्जत कि जो उसने कहा,
मैंने यह जाना कि गोया यह भी मेरे दिल में है।"[1]

अपने विद्वान् मित्र की अनुकूल सम्मति पाकर आचार्य द्विवेदी ने ११ नवम्बर सन् १९०५ की "सरस्वती" में उक्त लेख प्रकाशित किया। इस लेख में एक सर्वमान्य व्याकरण बनाने की आवश्यकता दिखाते हुए दूषित भाषा के उदाहरणों में आचार्य जी ने बाबू भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, राजा शिवप्रसाद, पं. राधाचरण गोस्वामी, बाबू काशीनाथ खत्री आदि हिन्दी के सम्मान्य प्रवर्तकों एवं उन्नायकों के वाक्य उद्धृत कर उनमें व्याकरण-सम्बन्धी दोष प्रदर्शित किये थे। बाबू बालमुकुन्द गुप्त को इस लेख में अभिमान की ध्वनि का आभास मिला और इसे उन्होंने हिन्दी के पूर्वाचार्यों की प्रतिष्ठा एवं स्वरूप के विपरीत माना।[2] द्विवेदी जी अपने इस लेख में "भाषा को अनस्थिरता प्राप्त हो गई," ………… "उसकी अनस्थिरता उसे बरबाद कर रही है" आदि वाक्य भी लिख गये थे। अतएव बाबू बालमुकंद गुप्त ने "अनस्थिरता" शब्द को पकड़कर "भारतमित्र" में आत्माराम के नाम से "भाषा की अनस्थिरता" शीर्षक लेखमाला आरम्भ की और आचार्य द्विवेदी के लेख की परिहास पूर्वक आलोचना करते हुए उनसे "अनस्थिरता" शब्द सिद्ध करने को कहा गया। इस सिलसिले में काफ़ी वाद-विवाद चला और अनेक लेखकों ने इसमें भाग लिया। हिन्दी साहित्यिकों के प्रकाशित पत्रों में इसके विस्तृत सन्दर्भ मिलते हैं। कुछ प्रमुख सन्दर्भों का यहां हम अवलोकन करेंगे।

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को जब "भाषा की अनस्थिरता" शीर्षक आलोचनात्मक लेख प्राप्त हुआ तो उसे पढ़कर उन्होंने पं. पद्मसिंह शर्मा को ८-१२-१९०५ के पत्र में लिखा :

"…………२ ता. (दिसम्बर) के भारतमित्र में आत्माराम की आड़ में सम्पादक ने "भाषा और व्याकरण" पर जल्पना बहुल और कटूक्तिपूर्ण आक्रमण किया है, उस पर क्या, हम पर आक्रमण है। लेख मसखरेपन से भरा हुआ है।

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ८८।
2. "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" (१९५०), पृ. १२९।

अभी शायद एक आध आक्रमण और हों, व्याकरणच्युत वाक्यों के उदाहरणों में भारतमित्र के भी दो एक वाक्य थे-इससे और अन्य कारणों से भी ये हमला हुआ है ।..........[1]

आचार्य द्विवेदी ने स्वयं "कल्लू अल्हइत" के नाम से गुप्त जी की लेख-माला के जवाब में, उन्हीं की शैली में "सरगौ नरक ठेकाना नाहिं" नामक आल्हा लिखा जो जनवरी सन् १९०६ की "सरस्वती" में प्रकाशित हुआ था। इस आल्हा की शैली से प्रभावित होकर पं. पद्मसिंह शर्मा ने अपने ३०-१-१९०६ के पत्र में द्विवेदी जी को लिखा था:—

"....   ....सरगौ नरक ठेकाना नाहीं" में कल्लू के रूप में शायद गुप्ता साहब अपना कच्चा चिट्ठा सुना रहे हैं। क्योंकि "झंझराखेरा बनियइ" "दीनदयाल" आदि शब्द उनकी तरफ ही इशारा कर रहे हैं।"[2]

पं. पद्मसिंह शर्मा और काशी के अन्य कुछ पंडितों ने "अनस्थिरता" को संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से शुद्ध साबित करने का प्रयास किया था। परन्तु द्विवेदी जी मानते थे कि हिन्दी की सजीवता का आधार संस्कृत और प्राकृत नहीं है। इसलिए उन्होंने १७-१२-१९०५ के पत्र में पं. पद्मसिंह शर्मा को लिखा :

"अनस्थिरता को आप संस्कृत क्यों करते हैं। जैसे अनपढ़, अनगिनत आदि शब्द हैं, वैसे ही उसे भी रखने में क्या हानि है।"[3]

"भारतीय साहित्य" में प्रकाशित आचार्य द्विवेदी के पत्रों से ज्ञात होता है कि इस विवाद में व्याकरणाचार्य पं. गिरधर शर्मा तथा पं. जगन्नाथ चतुर्वेदी ने गुप्त जी का समर्थन किया था।[4]

इस प्रकार "भाषा की अनस्थिरता" विवाद को लेकर हिन्दी-क्षेत्र में एक तुमुल संग्राम-सा दृश्य उपस्थित हो गया था। जब ब्राह्मण द्विवेदी जी वैश्य गुप्त से दबने लगते तो पं. गोविन्दनारायण मिश्र ने अपनी क़लम उठायी और "पं. शिवदत्त कविरत्न" के नाम से "हिन्दी बंगवासी" में "आतमाराम की टें टें" शीर्षक से लेखमाला का आरम्भ किया। द्विवेदी जी के मत की पुष्टि के लिए उन्होंने "अनहोनी", अनरीति आदि की भांति "अनस्थिरता" शब्द के प्रयोग को उचित ठहराने का प्रयास किया। पं. गोविन्दनारायण मिश्र की प्रत्यालोचना से गुप्त जी

---

1. "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र संग्रह," भारतीय साहित्य, जुलाई-अक्टू. १९६२, पृ. १५९।
2. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १०१।
3. "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह" भारतीय साहित्य, जुलाई १९६१, पृ. १८२।
4. वही-, पृ. १९८।

को चुप रहना पड़ा। आचार्य द्विवेदी ने पं. गोविन्दनारायण मिश्र के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए अपने १३-३-१९०६ के पत्र में लिखा :

"..........आत्माराम के प्रलापों से हम खिन्न नहीं। हमारी खिन्नता का कारण समझदार लेखकों का मौनावलम्बन है।......... आपके लेख ने बड़ा काम किया। देहात तक में उसकी धूम है। यहां कई जगह "बंगवासी" आता है। लोग उसे बड़े चाव से पढ़ते हैं और आपके लेख की प्रशंसा करते हैं। जब नीरस और मूर्खप्राय ग्रामीणों की यह दशा है तब औरों का तो क्या कहना? आपके लेख ने आपका उद्देश्य पूर्ण कर दिया। और हम क्या विनय करें—कृपा बनाये रखिए। अपने आशिर्वाद का पात्र हमें समझते रहिए, यही प्रार्थना है।"[1]

इस प्रकार हिन्दी के विकास की दृष्टि से यह एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विवाद था। डा. रामविलास शर्मा ने इस विवाद की उपयोगिता पर प्रकाश डालते हुए लिखा है : "वाद-विवाद के दौरान थोड़ा-बहुत कीचड़ भी उछाला गया, साड़ी और लहंगे की बातें हुई, पर कुल मिलाकर यह बहस लाभदायक थी। हिन्दी को परिनिष्ठित रूप देना एक ऐतिहासिक आवश्यकता को पूरा करना था। वह आवश्यकता इस रूप में पूरी हुई कि हिन्दी लेखक अपनी भाषा के प्रति अधिक सतर्क रहने लगे।"[2] इस दृष्टि से यह विवाद हिन्दी-साहित्य के इतिहास की एक अविस्मरणीय घटना है।

(iv) विभक्ति-विवाद :

"भाषा की अनस्थिरता" सम्बन्धी विवाद के कई वर्ष पश्चात् पराड़कर जी के गुरू तथा मामा पंडित सखाराम गणेश देउस्कर ने विभक्ति का विवाद छेड़ा। इस विवाद की विस्तार से चर्चा पं. लक्ष्मीशंकर व्यास ने "पराड़कर जी और पत्रकारिता" शीर्षक पुस्तक में की है। उनके मतानुसार पं. सखाराम गणेश देउस्कर ने आचार्य पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी से पूछा था कि बंगला, मराठी आदि भाषाओं में तो शब्द के साथ विभक्ति मिलाकर लिखी जाती है, पर हिन्दी में क्यों अलग लिखी जाती है। इस पर द्विवेदी जी मौन रहे।[3] बाद में समाचार-पत्रों में इस पर बड़ा आन्दोलन खड़ा हुआ।

हिन्दी के कुछ साहित्यकारों ने अपने मित्रों के नाम लिखे पत्रों में भी इस विवाद के पक्ष-विपक्ष में अपना मत व्यक्त किया था। उदाहरण के लिए पं. पद्मसिंह शर्मा द्वारा २-७-१९२९ को लिखा गया श्री पारसनाथ सिंह के नाम पत्र को देखा जा सकता है। इस पत्र में पं. शर्मा जी ने इस विषय में अपना मंतव्य प्रकट करते हुए लिखा था :

---

1. "आचार्य के ऐतिहासिक पत्र" (लेख), लक्ष्मीशंकर व्यास, "भाषा", द्विवेदी-स्मृति-अंक, १९६४, पृ. १६२।
2. "महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण" (१९७७), पृ. २६९।
3. "पराड़कर जी और पत्रकारिता" (१९६०), पृ. १६२।

"मैं सटाऊ—सिद्धांत का मानने वाला हूं, पर एकान्त भक्त नहीं। पर यही ठीक है कि विभक्ति मिलाकर छपाया जाय। इसी में लाभ है। यही नियम रहना चाहिए।"[1]

इस विवाद के सम्बन्ध में भी पं. गोविन्द नारायण मिश्र के लेखों ने महत्व-पूर्ण भूमिका निभायी थी। "हितवार्त्ता" में प्रकाशित उनकी लेखमालाओं से हिन्दी भाषा के शास्त्रीय रूप को नया मानदण्ड प्राप्त हुआ।

इस प्रकार हिन्दी पत्र-साहित्य में भाषा-सवन्धी वाद-विवादों के अनेक उपयोगी सन्दर्भ-सूत्र उपलब्ध होते हैं। इन सन्दर्भ-सूत्रों की सहायता से इन विवादों का अध्ययन सरल, स्वाभाविक और रोचक बन जाता है।

(आ) प्रवृत्ति और नीति-विषयक आन्दोलन :

आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास विविध विवादों एवं आंदोलनों का इतिहास कहा जा सकता है। आधुनिक युग के आरम्भ से ही भाषा और साहित्य के क्षेत्र में अनेक विवाद और आंदोलन होते रहे हैं। भाषा-सम्बन्धी प्रमुख विवादों की चर्चा के बाद अब यहां हम पत्रों में प्राप्त सन्दर्भों के आधार पर प्रवृत्ति और नीति-विषयक मुख्य आंदोलनों का अध्ययन करेंगे।

(i) छायावादी आंदोलन :

हिन्दी साहित्य के इतिहास में बीसवीं शताब्दी के द्वितीय दशक से एक नये काव्य-आंदोलन का प्रवर्तन हुआ जिसके अग्रणी जयशंकर प्रसाद, सूर्यकांत त्रिपाठी "निराला", सुमित्रानन्दन पन्त और महादेवी वर्मा—ये चारों कवि थे। इस आंदोलन को "छायावादी-काव्य" की संज्ञा से अभिहित किया गया। यह आंदोलन मूलभूत प्रवृत्तियों एवं बाह्य रूप-रंगों की दृष्टि से परम्परागत काव्य-धाराओं से इतना भिन्न था कि एकाएक इसे स्वीकार न किया जा सका। पूर्व प्रतिष्ठित आलोचकों तथा साहित्यकारों ने इसे उपेक्षा की दृष्टि से देखकर इसका खूब विरोध किया।

"छायावाद" शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग प्रकाश्यरूप से "श्रीशारदा (जबलपुर) में सन् १९२० ई. में कविवर मुकुटधर पाण्डेय ने किया था। इस आंदोलन के कई वर्ष बाद इसका पुनर्मूल्यांकन करने के लिए छायावाद के प्रसिद्ध आलोचक श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने पाण्डेय जी के पास एक पत्र भेजकर "यह शब्द कहां से आया ? इसका उद्भावक कौन है ?" आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया था। द्विवेदी जी के पत्र के उत्तर में पं. मुकुटधर पाण्डेय ने ३१-१-१९६६ को प्रयाग से जो पत्र लिख भेजा था, वह इस आंदोलन के स्वरूप पर यथेष्ट प्रकाश डालता है। अतः इस पत्र के कुछ अंश यहां हम उद्धृत करते हैं :

1. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. १६ :

"..........आपके प्रश्नों का उत्तर देने के लिए मुझे लगभग पचास वर्ष पूर्व की विस्मृत-सी बात का स्मरण करने का प्रयास करना पड़ेगा। मैंने "छायावाद" का प्रयोग मिस्टिसिज़्म के लिए किया था। मिस्टिसिज़्म के पर्यायवाची शब्द के सम्बन्ध में मैंने पूज्य द्विवेदी तथा बख्शी जी से पूछा था। उन्होंने क्रम से "अध्यात्मवाद" और भक्तिवाद" शब्द सुझाये थे, पर वस्तुस्थिति के विचार से वे मुझे कुछ जंचे नहीं। मेरे सामने रवीन्द्रनाथ द्वारा प्रवर्तित नई शैली थी। मैंने इस शैली का बहुत कुछ अध्ययन किया था। उस पर कुछ आलोचना भी पढ़ी थी।..........मेरी समझ में नई शैली में भाव नहीं, भावों की छाया पाई जाती थी जिन्हें पकड़कर हृदयंगम करने में पाठकों को कठिनाई होती थी। छाया-वादिता से ही मैंने "छायावाद" शब्द बनाया था। पर यह ध्यान में रखना चाहिए कि मिस्टिसिज़्म के लिए छायावाद का प्रयोग बंगला में नहीं किया जाता था। कदाचित् अब भी नहीं किया जाता। "छायावाद" से मेरा अभिप्राय मिस्टिसिज्म के विषय-वस्तु से कहीं अधिक अभिव्यक्ति की प्रणाली या शैली से था।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि "छायावाद" हिन्दी के लिए एक नयी शैली थी। अतः प्रारम्भ में इसका उग्र विरोध किया गया। इसे निस्सार कल्पना, वाग्जाल, मिथ्यानुभूति, रहस्यवाद का पर्याय आदि समझकर इसका उपहास भी किया गया। "सुधा" के दिसम्बर १९२७ के अंक में "छायावाद" के साथ "मायावाद" का प्रास मिलाकर एक परिहासपूर्ण कविता प्रकाशित की गयी।[2] अन्य पत्रिकाओं में भी इसका मज़ाक उड़ाया गया।

पूर्व प्रतिष्ठित आलोचकों तथा साहित्यिकों ने भी छायावाद पर अस्पष्टता और दुरूहता का आरोप लगाया। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी "आजकल के छायावादी कवि और कविता" नामक निबन्ध में लिखा था कि "छाया-वादियों की रचना तो कभी-कभी समझ में भी नहीं आती।"[3]

आचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा ने श्री पारसनाथसिंह के नाम चैत्र सुदि ८-१९-८५ को लिखे पत्र में छायावादी आन्दोलन के सम्बन्ध में लिखा था :

"..........छायावाद और प्रकाशवाद पर जो लिखा-पढ़ी हो रही है, मैं उसे

1. "छायावाद : पुनर्मूल्यांकन" (लेख), शांतिप्रिय द्विवेदी, "सरस्वती", फरवरी १९६६, पृ. १६०।
2. "छायावाद चलाया किसने है किसकी यह माया।
हिन्दी भाषा में यह न्यारा शब्द कहां से आया।।
—उद्धृत "स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन (१९६५) डा. शिवकरणसिंह, पृ. ५२।
3. "आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व" (१९७७), डा. शैव्या झा, पृ. १९२।

यों ही कभी-कभी सरसरी तौर पर पढ़ लेता हूँ। दिलचस्पी से नहीं। मैं न छायावाद का विरोधी हूँ, न खड़ी बोली का। पर दुर्भाग्य से छायावाद के नाम से जो कुछ आजकल निकल रहा है, वह मेरी समझ से बाहर है। अज्ञेय मीमांसा है। इसलिए मजबूर हूँ। दाद नहीं दे सकता। समझूं तो दाद दूँ। छायावाद के रहस्य पर आप कुछ प्रकाश डालिए तो शायद कुछ तत्व समझ में आ जाए।"[1]

इससे स्पष्ट होता है कि पं. पद्मसिंह शर्मा छायावाद के विरोधी नहीं थे तो उसके प्रशंसक भी नहीं थे। सूडो-छायावादियों (नाम-मात्र के छाया-वादियों) से तो उनका यदा-कदा संघर्ष भी हुआ करता था। इस सन्दर्भ में उनके नाम लिखित पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के ४-७-१९२८ के पत्र का निम्नांकित अंश द्रष्टव्य है :

"सूडो-छायावादियों (नाम मात्र के छायावादियों) से आपने जो लड़ाई छेड़ दी है, उसमें मैं आपके साथ ही रहूँगा।"[2]

आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी द्वारा ६-१-१९२९ को निरालाजी के नाम लिखित पत्र से ज्ञात होता है कि उन दिनों छायावादी आन्दोलन को लेकर हिन्दी साहित्यिकों के दो दल हो गये थे—एक नया दल और दूसरा पुराना दल। आचार्य वाजपेयी ने अपने इस पत्र म काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से अगले महीने आयोजित होने वाले नये-पुराने दलों के वाद-विवाद-सम्बन्धी कार्यक्रम की सूचना भी दी है। यथा :

" प्रसाद जी कहते थे कि फरवरी में काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर से नये-पुराने दलों का वाद-विवाद कराने का निश्चय कराया गया है। उनको नये दल को संघटित करने और उसका स्पॉक्समैन बनने को कहा गया है। वे तो लिखित रीति से ही अपना वक्तव्य प्रकाशित करेंगे, पर वाद-विवाद के लिए आपकी उपस्थिति की बड़ी आवश्यकता है। प्रसाद जी ने सम्भवतः आपको इस सम्बन्ध में लिखा भी होगा, मुझसे कहते थे कि यदि नागरी प्रचारिणी सभा बुलाये तो बुलाये नहीं तो मैं तो उन्हें अवश्य बुलाऊँगा। वास्तव में यह एक Epoch-Marking घटना होगी-हिन्दी साहित्य के इतिहास में एक नई बात।"[3]

इस घटना के बाद भी छायावाद का बराबर विरोध होता रहा। सन् १९३३ के "सुकवि" में रीतिवादी दृष्टि से छायावादी काव्यशैली की भर्त्सना

---

1. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. ६।
2. "स्व. पद्मसिंह शर्मा का पत्र संग्रह", भारतीय साहित्य, वर्ष-१४, अंक १-२, पृ. २२६।
1. "नन्ददुलारे वाजपेयी के पत्र-निराला के नाम," भारतीय साहित्य, वर्ष-१४, अंक-३,४, पृ. १८२-१८३।

"हिन्दी कविता में छायावाद" शीर्षक लेख में की गयी थी। "सुकवि" के सम्पादक "सनेही" जी ने "निराला" जी के नाम एक पत्र लिखकर उक्त लेख पर टिप्पणी करने को कहा था। अतः "निराला" जी ने ३-११-१९३३ के पत्र में छायावाद के विरोधियों पर इन शब्दों में प्रहार किया :

"आदरणीय सनेही जी,

छायावाद पर एक लेख "सुकवि" में देखा। ऐसे अन्ट-सन्ट लेख से आपके सुकवियों को कुछ लाभ होगा, मेरे अनुमान के बाहर है। उत्तर के लिये मेरे पास समय कम है, पुनः, गधा घोड़ा नहीं बन सकता यह प्रसिद्धि आप भी जानते हैं। ऐसी हालत में लिखने से क्या फ़ायदा होगा ? मुक्त छन्द की मुक्ता का महत्व नराकार वानर महाशय क्या समझेंगे ? उन्हें तो समावर्त केले ही प्रसन्न कर सकते हैं। "हिन्दी कविता में छायावाद का उत्तर इससे अधिक नहीं लिख सकता। छापें न छापें, आपकी इच्छा।"[1]

"निराला" जी के उपर्युक्त पत्र को पढ़कर श्री रामकिशोर शर्मा का यह कथन सार्थक प्रतीत होता है कि—'छायावादी कवियों पर कल्पना-विहार एवं स्वप्निलता के आक्षेप का परिहार निराला जिस शक्तिमता से करते हैं, कदाचित युग का कोई कवि नहीं करता।"[2]

छायावादी आंदोलन में किस-किस ने विरोध और समर्थन किया, इसका ब्यौरेवार विवरण हमें निराला जी के निम्नलिखित पत्रांश में प्राप्त होता है :—

"पं. महावीरप्रसाद जी द्विवेदी का दल विरोध में था। लखनऊ के मुत्युंजय औषधालय के पं. शालिग्राम शास्त्री जी ने विरोध किया था। डा. अवध उपाध्याय, प्रो. गुलाबराय एम.ए., प्रो. कृष्णदेवप्रसाद गौड़ एम.ए. ने समर्थन किया। यह चढ़ाई और लड़ाई छायावाद के नाम से हुई।.......... हिन्दी के बीस साल के इतिहास में छायावाद और रहस्यवाद के विरोध और अनुकूल में हजारों सफे रंगे गए हैं और उस समय जितने बड़े आचार्य थे, मिश्र बन्धुओं को छोड़कर, प्रायः सभी तीव्र विरोधी थे। बनारसीदास चतुर्वेदी अपने पत्र की प्रसिद्धि के लिए यद्यपि एक-एक विरोधी चुने रहते थे, फिर भी उन्होंने मेरे सम्बन्ध में कुछ देर की और बड़ी समझ से काम लिया।"[3]

इस प्रकार हिन्दी साहित्यिकों के पत्रों में छायावादी आन्दोलन के बीस वर्ष का इतिहास प्रत्यक्ष हो जाता है।

(ii) घासलेटी-साहित्य विरोधी आन्दोलन :

हिन्दी साहित्य में छायावादी आन्दोलन के अतिरिक्त अन्य जो उल्लेखनीय

1. "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), पृ. २७१।
2. "युग कवि निराला' (१९६०), संपा. गिरिराज शरण अग्रवाल, पृ. ११९।
3. "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ. ३९६।

आन्दोलन हुए हैं, उनमें से अधिकतर आन्दोलनों के प्रवर्तक पं. बनारसीदास चतुर्वेदी रहे हैं : कदाचित् इसीलिए पं. सूर्यनारायण व्यास ने उनको "आन्दोलनों के आचार्य और प्रचार में प्राचार्य" कहा है ।[1] घासलेटी-साहित्य विरोधी आन्दोलन भी उन्होंने ही छेड़ा था ।

कुछ लोग मानते हैं कि पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने यह आंदोलन "उग्र" जी की "चाकलेट" शीर्षक पुस्तक को लेकर चलाया था । इसलिये इसे "चाकलेट-घासलेट विवाद" भी कहा गया है ।[2] परन्तु पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने मोहनसिंह सेंगर के नाम एक पत्र में लिखा है कि :

"..........आप अपने उस भ्रम को कृपा कर दूर कर दें कि घासलेट विरोधी आंदोलन मुख्यतया चाकलेट के ही विरुद्ध था ।"[3]

घासलेट-विरोधी आंदोलन भले ही "चाकलेट" के विरुद्ध न था, किन्तु इसमें "उग्र" जी प्रमुख निशाना थे । पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने "उग्र" जी की "चाकलेट" शीर्षक पुस्तक महात्मा गांधी को सम्मत्यार्थ भेजी थी । उसके साथ छोटा सा नोट भी था । महात्मा जी ने नोट छपने दे दिया । तत्पश्चात् पुस्तक को पढ़ा । उन्हें वह पुस्तक आपत्तिजनक नहीं जंची और इस आशय का एक पत्र भी उन्होंने चतुर्वेदी जी को भेजा । इससे चतुर्वेदी जी द्वारा उठाये गये घासलेट-विरोधी आंदोलन का उल्टा असर होने लगा । इस बात की ओर संकेत करते हुए पं. पद्मसिंह शर्मा ने अपने २१-१-१९२८ के पत्र में चतुर्वेदी जी को लिखा :

"आपके घासलेट-आंदोलन का परिणाम तो उलटा हो रहा है । बड़े-बड़े महात्मा घासलेटी का समर्थन कर रहे हैं । जैसा कि उग्रजी ने "चैलेन्ज" किया है, क्या सचमुच महात्मा जी के वैसे विचार हैं ? फिर आप क्यों व्यर्थ में वैर विसाह रहे हैं । यह तो घासलेटी साहित्य का अच्छा-खासा नोटिस हो रहा है लोक रुचि ही जब वैसी हो रही है, तो इसका उपाय क्या ? आप किस-किस से लड़ेंगे ?"[4]

इसके बावजूद भी चतुर्वेदी जी ने आंदोलन जारी रखा और "विशाल भारत" में इस पर बराबर लिखते-लिखवाते रहे । अपने ४-७-१९२८ के पत्र में उन्होंने पं. पद्मसिंह शर्मा से अनुरोध किया :

"........ ....आप जहां कहीं जावें इस घासलेटी साहित्य की जी खोलकर बुराई करें । चाहे कोई भला माने या बुरा । सब लोगों को प्रिय बने रहने का सिद्धांत गलत है । नियंत्रण या शासन करने वालों को दस भला कहते हैं तो दस बुरा भी । गन्दगी फैलाने वालों की गालियां इस बात का प्रमाण हैं कि गोली

1. "प्रेरक साधक (१९७०), पृ. ५६ ।
2. "हिन्दी साहित्य-सेवी और उनके पत्र" (लेख), ऋचादेवी, मनीषा, संवत् २०२५-२६, पृ. ६६ ।
3. प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ५१६ ।
4. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. ६५ ।

ठिकाने पर जा लगी है। मेरा तो अगले सम्मेलन तक प्रोग्राम ही घासलेटी साहित्य-वालों से संग्राम करना ही है।"[1]

चतुर्वेदीजी ने "उग्र" जी को भी पत्र लिखकर "विशाल भारत" में अपने विचार प्रकट करने का निमंत्रण दिया था। इस सम्बन्ध में "उग्र" जी के नाम लिखे उनके २८-८-१९२८ के पत्र का अंश द्रष्टव्य है :

"………यदि कोई अनुचित बात मेरी ओर से हो तो तुरन्त उसका विरोध कीजिए। "विशाल भारत" के कालम उसके लिए खुले रहेंगे। मेरा विचार है आप अपने पक्ष का समर्थन "विशाल भारत" में ही करें। फिर जैसी आपकी मर्जी।"[2]

जब यह आंदोलन तीव्र हो गया तो श्री विश्वम्भरनाथ जिज्जा ने "उग्र" जी को अपने २४-१०-१९२८ के पत्र में यह विवाद सुलह के साथ समाप्त करने की इच्छा प्रकट करते हुए लिखा :

"………आपके "चाकलेट" साहित्य पर इधर कुछ वाद-विवाद छेड़ा गया है—"विशाल भारत" तो देखते ही होंगे। शायद तुमने अभी तक कुछ उत्तर नहीं दिया है। जहां तक हो, यह Controversy सुलह के साथ समाप्त हो जानी चाहिए।"[3]

यह आंदोलन कैसे और कब समाप्त हुआ, इसका संकेत पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने मोहनसिंह सेंगर को लिखे पत्र में किया है।

"उग्र" जी की "चाकलेट" शीर्षक पुस्तक पढ़कर महात्मा गांधी ने पं. चतुर्वेदी जी को जो पत्र भेजा था, वह उन्होंने महात्मा जी के इस आदेश पर कि—"आपने बहुत अच्छा किया कि कलकत्ता से अहमदाबाद चले आये। यदि मैं अपनी सम्मति छाप देता तो बड़ा अहित हो जाता" उस समय प्रकाशित न कर लगभग २० वर्ष बाद "हिन्दुस्तान" (२ अक्टूबर, १९५१) में स्पष्टीकरण सहित प्रकाशित कराया।[4] इस पर मोहनसिंह सेंगर ने "नया समाज" (जुलाई १९५२) में "एक साहित्यिक अनर्थ" शीर्षक से एक टिप्पणी प्रकाशित की जिसके उत्तर में चतुर्वेदी जी ने सेंगर जी को लिखा :

"………मेरे कर्म में संदिग्ध कुछ भी नहीं था। मेरे दृष्टिकोण से जो विरुद्ध थे, उन्हें अपनी बात कहने का मौका मैंने बराबर दिया।……… आंदोलन दो से ज्यादा वर्षों तक चलता रहा और उसकी समाप्ति गोरखपुर साहित्य

1. स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र संग्रह", भारतीय साहित्य, वर्ष-१४, अंक १-२ पृ. २२७।
2. "फाइल और प्रोफाइल" (१९७०), पृ. २२२।
3. -वही-, पृ. ३३७-३३८।
4. "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ५१५।

सम्मेलन के उस प्रस्ताव से हुई, जो मेरे पक्ष और घासलेट-साहित्य के विपक्ष में था।........[1]

इस पत्र के अन्त में चतुर्वेदी जी की यह आत्म-स्वीकृति द्रष्टव्य है—"मुझ से सैंकड़ों भूलें—नहीं भयानक भूलें—बन पड़ी हैं, लेकिन मैं उन्हें छिपाऊंगा नहीं।"[2]

इस प्रकार पत्रों के द्वारा इस आंदोलन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है और अनेक भ्रांतियों का निराकरण हो जाता है।

(iii) वर्तमान-धर्म-विवाद :

वर्तमान-धर्म-विवाद भी हिन्दी साहित्य में अपना ऐतिहासिक महत्व रखता है। यह विवाद भी पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने उठाया था। इस विवाद के द्वारा "निराला" जी का ऐतिहासिक घेराव किया गया था।

"निराला" जी का एक लेख "भारत" में "वर्तमान धर्म" शीर्षक से प्रकाशित हुआ था। इस लेख को लेकर चतुर्वेदी जी ने "विशाल भारत" में "साहित्यिक सन्निपात" शीर्षक एक लेख प्रकाशित किया और उस पर हिन्दी के हितैषी विद्वानों की सम्मतियां मांगी। लेख प्रकाशित करने से पहले चतुर्वेदी जी ने उसका प्रूफ निराला जी को भेजा था जिसे पढ़कर निराला जी ने लिखा था :

प्रिय चतुर्वेदी जी,

आपका प्रूफ मिला। आपने अपने मनोभाव बहुत अच्छी तरह आकर्षक ढंग से प्रकट किये हैं। देखूं कैसी कैसी सम्मतियां हिन्दी के हितैषी विद्वानों से आपको मिलती हैं।..........आपने आक्रमण का प्रूफ भेजा, यदि चाहते तो प्रबन्ध की टीका करने का निमंत्रण भी दे सकते थे, तब इतना आकर्षक कुछ जरूर न रहता पर गुत्थी सुलझ जाती। मुमकिन है, अन्त तक आप ही बदनाम हों। सच बतलाइयेगा, बिना कोष देखे, पूछे, सन्निपात की व्युत्पत्ति जानते हैं आप? यह पत्र भी छापिये।"[3]

किन्तु यह पत्र "विशाल भारत" में नही छपा, "वर्तमान धर्म" की टीका वाले लेख के साथ "माधुरी" में छपा था।[4]

निराला जी द्वारा डा. रामविलास शर्मा को लिखे गये पत्र से ज्ञात होता है कि जिस "वर्तमान धर्म" शीर्षक "भारत" में छपे लेख को लेकर चतुर्वेदी जी ने आन्दोलन उठाया था, उस पर राय देने वालों में कि लेखक पागल है, पं. जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी और प्रो. रामदास गौड़ भी थे। पं. मोहनलाल महतो "वियोगी" भी पं. बनारसीदास जी के सहयोगियों में थे।..........पं. नन्ददुलारे

1. "प्रेरक साधक" (१९७०), पृ. ५१६।
2. वही-, पृ. ५१७।
3. "निराला की साहित्य-साधना, भाग-३" (१९७६), पृ. २६८।
4. वही, सम्पादक की टिप्पणी।

जी वाजपेयी ने जो उस समय अर्द्ध-साप्ताहिक "भारत" के सम्पादक थे, उस लेख की विरोधिता का अपने पत्र में सम्पादक की जिम्मेदारी के रूप में सुन्दर उत्तर लिखा था। जिन पत्रों ने "विशाल भारत" के इस आंदोलन का समर्थन किया था, उनमें एक "प्रताप" भी है।[1]

यद्यपि निराला जी ने इस विवाद में डटकर अपने पक्ष का समर्थन किया, किन्तु अपने पर चारों ओर से हो रहे प्रहारों से वे क्षुब्ध हो उठे। उनकी आर्थिक स्थिति भी अच्छी नहीं थी। जब मुंशी अजमेरी को निराला जी की दुःखद स्थिति का पता चला तो उन्होंने चतुर्वेदी के पास पत्र भेजकर "वर्तमान धर्म-विवाद" को समाप्त कर देने की प्रार्थना की। मुंशी अजमेरी के २६-११-१९३२ के पत्र का एक अंश यहां दिया जाता है :

"………… मुझे श्री दुलारेलाल जी से मालूम हुआ कि निरालाजी आजकल बहुत दुःखी हैं। हाथ तंग है और उनकी एकमात्र कन्या बहुत बीमार है। इत्यादि। यही बातें यहां शांतिप्रिय जी ने सुनाईं। ऐसे दुःखी मनुष्य पर इस समय चारों ओर से साहित्यिक वार भी हो रहे हैं। तब उसका मस्तिष्क कैसे ठीक रह सकता है।……… …उनकी दशा देखकर मेरा हृदय द्रवित हो गया और श्री शांतिप्रिय जी ने तथा श्रीमान राय साहब ने भी मुझ से कहा, इसलिए मैंने यह बड़ा पत्र आपको लिखा है जो इस पत्र के साथ है। अब कृपा करके इस झगड़े को समाप्त कर दीजिए। … …… बस, अब यह झगड़ा बन्द ही हो जाना चाहिए। बहुत हो गया और निराला जी तथा नन्ददुलारे जी की दोनों की खूब छीछालेदार हो गई। श्री राय साहब तो मज़ाक के टोन में कहते हैं कि एक ब्राह्मण की रोटी तो ले ली अब क्या किसी की जान लीजिएगा !"[2]

इस प्रकार उपर्युक्त पत्रांश में इस ऐतिहासिक आन्दोलन की समाप्ति का संकेत मिलता है। निःसन्देह ही यह विवाद हिन्दी साहित्य के इतिहास की एक दुःखद घटना थी।

(iv) "कस्मै देवाय" आन्दोलन :

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने मार्च १९३४ के "विशाल भारत" में एक लेख प्रकाशित किया था जिसका शीर्षक था—"कस्मै देवाय।" इस लेख ने उन दिनों एक छोटा-सा आन्दोलन खड़ा कर दिया था।

"कस्मै देवाय हविषा विधेम" अर्थात् हम किस देवता के लिए हवन-होम करें ? यह ऋग्वेद का एक मंत्र है। इसके प्रारम्भिक शब्दों को अपने लेख के शीर्षक के रूप में प्रयुक्त कर चतुर्वेदी जी ने प्रश्न उठाया था—"हम किसके लिए साहित्य उत्पन्न करें ?"

---

1. "निराला की साहित्य-साधना, भाग-३" पृ ३९७।
2. "स्वर्गीय मुंशी अजमेरी के पत्र" सम्मेलन पत्रिका, पौष-ज्येष्ठ, १८८७ शक, पृ. ४५।

इस लेख को पढ़कर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी बहुत प्रभावित हुए थे। अपने ९-४-१९३४ के पत्र में उक्त लेख पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने चतुर्वेदी जी को लिखा था :

"..... ..... लेख क्या है, बम का गोला है । उसके प्रथमांश से बहुत से लोग नाराज होंगे, पर बातें हैं सच्ची । मैं आपके विचारों से सर्वथा सहमत हूँ। परन्तु मुझे अपनी तारीफ सुनकर बहुत संकोच हुआ। अरे भाई, मैं उस तारीफ का मुस्तहक नहीं।"[1]

इस प्रकार इस आंदोलन का सम्बन्ध किसी व्यक्ति-विशेष से न होकर साहित्य के व्यापक उद्देश्य से था। इसमें उस समूचे वर्ग की कड़ी आलोचना की गयी थी, जो सस्ता मनोरंजन और विलासी साहित्य उत्पन्न कर समाज में विकृति पैदा करता है। अत: यह एक नीति-विषयक आंदोलन है।

(v) दुलारे-दोहावली दंगल :

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने "विशाल भारत" के सम्पादन-काल में जो आंदोलन चलाये, उनमें दुलारे-दोहावली दंगल एक अनूठा आन्दोलन था।

"दुलारे दोहावली" सुधा के तत्कालीन सम्पादक दुलारेलाल भार्गव की एक बहुचर्चित कृति है। भार्गव जी ने उसे देव-पुरस्कार के लिए भेजा था। जब देव-पुरस्कार के निर्णायक उक्त कृति पर विचार कर रहे थे, उसी समय विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में दोहावली को लेकर दंगल मच गया। इस आंदोलन का सूत्रपात "विशाल भारत" में प्रकाशित पं. शालिग्राम शास्त्री के "सन् १९३४ का बौड़मपन" शीर्षक लेख से हुआ। "दुलारे दोहावली" पर मुंशी अजमेरी ने जो व्यंग्यात्मक सम्मति दी थी, उसे उक्त लेख में विकृत रूप देकर दोहावली की कड़ी आलोचना की गयी थी। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में इसके पक्ष और विपक्ष में लेख टिप्पणियां प्रकाशित हुईं। विरोधियों ने उक्त पुस्तक को रद्दी बता कर घोषणा की कि उसे देव-पुरस्कार न दिया जाय। पुरस्कार की घोषणा होने तक विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में यह दंगल चलता रहा।

इस आंदोलन की पृष्ठभूमि बड़ी मनोरंजक है। इसका विस्तृत विवरण हमें मुंशी अजमेरी द्वारा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गये पत्रों में मिलता है। इन पत्रों के आधार पर इस आंदोलन की पूर्वपीठिका को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है :

झाँसी में तुलसी-जयन्ती के अवसर पर एक बृहत् कवि-सम्मेलन का आयोजन किया गया था। इस सम्मेलन के सभापति दुलारेलाल भार्गव थे। मुंशी अजमेरी भी उसमें शामिल हुए थे। सम्मेलन शाम को था और तीसरे पहर इकट्ठे हुए कवियों के सम्मुख भार्गव जी अपनी दोहावली के दोहे सुना रहे थे। वे उन दोहों की व्याख्या भी करते थे और बीच-बीच में यह भी कहते जाते थे कि

1. "साहित्य और जीवन" (१९५४), बनारसीदास चतुर्वेदी, पृ. ४ से उद्धृत।

अमुक कवि ने मुझ से कहा कि आपका यह दोहा बिहारी की टक्कर का है, यह मतिराम के उस दोहे से बढ़ गया है, इत्यादि। मुंशी अजमेरी बड़े विनोद-प्रिय व्यक्ति थे। उन्होंने उस कवि मण्डली में भार्गव जी की दोहावली की प्रशंसा में तीन दोहे सुनाये।[1] सब कवि दोहों को सुनकर हँसने लगे। भार्गव जी ने मुंशी अजमेरी से कहा कि ये दोहे आप हमें लिख दीजिए। मुंशी जी जानते थे कि भार्गव जी उन दोहों को छापेंगे नहीं, क्यों कि वे दोहे विनोद में बनाये गये थे। फिर भी उन्होंने तीनों दोहे लिख दिये। भार्गव जी ने तीसरे दोहे को छोड़कर शेष दो दोहे मुंशी जी की सम्मति के रूप में छाप दिये। मुंशी जी उनसे बहुत लड़े कि यदि छापना था तो तीनों दोहे छापते। या तो आप तीनों दोहे छापिए या वे दोहे निकाल दीजिए। भार्गव जी ने हँस कर कहा निकाल देंगे।

इसके बाद पं. बनारसीदास चतुर्वेदी टीकमगढ़ में मुंशी अजमेरी से मिले तो उन्होंने वे तीनों दोहे चतुर्वेदी जी को सुनाये और कहा कि भार्गव जी ने दो दोहे छापे डाले, तीसरे को छोड़ दिया, इत्यादि। चतुर्वेदी जी ने कहा हमें लिख दीजिएगा। मुंशी जी ने पत्र द्वारा तीनों दोहे लिख भेजे। चतुर्वेदी जी ने दिसम्वर १९३४ के "विशाल भारत" में उन दोहों को इस प्रकार प्रकाशित किया जैसे वे सम्मति से उद्धृत किये गये हों। वास्तव में सम्मति में तो दो ही दोहे छपे थे। भार्गव जी ने जान-बूझकर तीसरा दोहा छोड़ दिया था, क्योंकि उसमें व्यंग्य था उस दोहे को लेकर जनवरी १९३५ के "विशाल भारत" में बड़ा ऊहापोह किया गया। सन् १९३५ के "विशाल भारत" में छपे पं. शालिग्राम शास्त्री के सन् १९३४ का बौड़मपन" शीर्षक लेख में मुंशी अजमेरी के दोहे का अर्थ व्यंजना से न लेकर अभिधा से लिया गया। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनसे तीसरा दोहा प्राप्त कर समालोचक-शिरोमणि से उनकी जो छीछालेदर करा दी,उस पर उन्होंने कड़ा विरोध प्रकट किया। चतुर्वेदी जी ने अपनी भूल स्वीकार की और सज़ा देने की बात भी लिखी, किन्तु मुंशी जी ने इस साहित्यिक नोंक झोंक के बावजूद भी चतुर्वेदी जी से पूर्ववत् सम्बन्ध बनाये रखा।[2]

---

1. "बनक बिहारीलाल की अरु रहीम की उक्ति,
मादकता मतिराम की ज्यों जमाल की जुक्ति।
पद्माकर की पद अवली, रसनिधि की रसनीति,
विदित वृन्द की विग्यता, रतनाकर की रीति।
दोहनि में दरसायवौ आठ ठाठ कौ भोल,
सुकवि दुलारेलाल को बांए हाथ कौ खेल।"
—"स्वर्गीय मुंशीराम अजमेरी के पत्र",
सम्मेलन पत्रिका, पौष-ज्येष्ठ १८८७ पृ. ५८।

2. "स्वर्गीय मुंशी अजमेरी के पत्र", सम्मेलन पत्रिका, पौष-ज्येष्ठ, १८८७ शक, पृ. ५७।

इस विवाद की समाप्ति का संकेत हमें स्वर्गीय सैयद अमीरअली "मीर" के २१-२-१९३५ को पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे पत्र में मिलता है। इस पत्र को यहां हम उद्धृत करते हैं :

"आदरणीय पंडित जी,

सादर सलाम।

"दुलारे दोहावली" को लेकर इस समय हिन्दी-संसार में एक तूफान-सा आया दीखता है। "रतलाम टाइम्स" ता १४-२ का आपके पास पहुँचा ही होगा। आज फरवरी के "विशाल भारत" में मैं ने "चिट्ठी-पत्री" स्तम्भ में वाजपेयी की शानदार चिट्ठी पढ़ी।" रतलाम टाइम्स में प्रकाशित "दुलारे दोहावली दंगल" याद आया। उसकी कटिंग सेवा में भेज रहा हूँ। अगले (मार्च) के अंक में आप इस पत्री का उत्तर देने वाले हैं। उत्तर तो देना ही होगा। लेकिन आपने यह ठीक ही लिखा कि "उसे (उत्तर-को) अगले अंक में देखकर विवाद को समाप्त कर देंगे" सचमुच सम्पादक का कार्य अत्यन्त महत्व का होने पर भी अधिक उत्तरदायित्व पूर्ण है। वह सबको खुश नहीं कर सकता। मालूम नहीं, "सुधा" ने आप पर सुधा-वर्षा की या विष-वर्षा और भी उनके (दुलारे जी के) जो दुलारे पत्र हैं, वे क्या लिख रहे हैं? कुशल समाचार लिखते रहिये।"[1]

इस प्रकार मार्च १९३५ में इस विवाद को समाप्त कर दिया गया। यहां स्मरणीय है कि जिस पुस्तक को देव-पुरस्कार से वंचित रखने के लिए यह आन्दोलन छेड़ा गया था, उसी पुस्तक को निर्णायकों ने देव-पुरस्कार के लिए उचित ठहराया। इसलिए मुंशी अजमेरी ने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को अपने १५-२-१९३५ के पत्र में लिखा था :

"इस पुरस्कार को लेकर जैसा आंदोलन किया गया वह बहुत ही अनुचित था, इसलिए आगे ऐसा आन्दोलन न किया जाय तो बहुत अच्छा।"[2]

घासलेटी-साहित्य विरोधी आन्दोलन, वर्तमान धर्म-विवाद और दुलारे दोहावली-दंगल इन तीनों आन्दोलनों से अनेक व्यक्तियों को बहुत कष्ट पहुँचा। साथ ही "विशाल भारत" और पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की प्रतिष्ठा को धक्का भी लगा। "विशाल भारत" घाटा उठा रहा है," यह समाचार जानकर पं. पद्मसिंह शर्मा ने अपने २६-२-१९२८ के पत्र में चतुर्वेदी जी को लिखा था—"विशाल भारत" को लोग पसन्द तो करते हैं, पत्र निकल भी अच्छा रहा है। फिर क्या बात है? घासलेटी-विरोध ने हानि पहुँचाई इसमें सन्देह नहीं। मैंने पहले ही

---

1. "स्वर्गीय सैयद अमीरअली मीर के पत्र", सम्मेलन पत्रिका, आषाढ़-मार्ग १८८५ शक, पृ. १०६।
2. "स्वर्गीय मुंशी अजमेरी के पत्र," सम्मेलन पत्रिका, पौष-ज्येष्ठ १८८७, पृ. ६७।

आपको पत्र लिखा था कि यह बला सिर पर न लीजिए । कोरे सिद्धांतवाद से व्यापार में काम नहीं चलता ।"[1] परन्तु चतुर्वेदी जी अपने सिद्धान्तों के लिए लड़ते रहे और उस लड़ाई में उनसे जाने-अनजाने में कई साहित्यिक अनर्थ भी हो गये ।

(vi) जनपदीय-आन्दोलन :

जनपदीय आन्दोलन पूर्व चर्चित आन्दोलनों से भिन्न प्रकार का आन्दोलन था । इसका उद्देश्य जनपदीय भाषा और साहित्य की ओर हिन्दी-संसार का ध्यान आकृष्ट करना था। इस आन्दोलन का प्रवर्तन डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने किया और पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने उनको अपूर्व सहयोग दिया । बाबू वृन्दावनदास के अनुसार "यदि चतुर्वेदी जी का उनको इस दिशा में पूरा सहयोग न मिला होता तो जनपदीय आन्दोलन का भविष्य कभी मुखरित न होता :"[2]

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे गये पत्र वस्तुत: जनपदीय आन्दोलन के विश्वकोष हैं । कोई भी विद्वान् इन पत्रों से जनपदीय आन्दोलन का रूप, उसका महत्व, उसकी उपयोगिता का अनुमान लगा सकता है ।"[3]

जनपदीय आन्दोलन को डा. वासुदेवशरण अग्रवाल राष्ट्रीय महत्व का मानते थे । पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम भेजे गये एक पत्र में उन्होंने लिखा था :

"जनपदीय जीवन के साथ हमारे परिचय का विस्तार एक राष्ट्रीय महत्व की समस्या है । जनपदीय साहित्य का कार्य भी उसी का एक अंग है। मेरी समझ में हमारे भावी जीवन के पचास वर्षों का दिक् मंत्र जनपदीय कार्य में समवेत है ।"[4]

डा. अग्रवाल जनपदीय सामग्री को "जनपद कल्याणीय" और बाहर से प्राप्त सामग्री को "सेतुबंध" की उपमा देते थे ।[5] उनकी दृष्टि में जनपदों के प्राण-प्रद वायु में अपूर्व जीवन-रस भरा हुआ है । पुर और जनपद दोनों को एक-दूसरे की आवश्यकता है ।[6]

---

1. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ ७५-७६ ।
2. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), भूमिका, पृ. २२ ।
3. वही-, ।
4. -वही-, पृ. १०५
5. वही-, पृ. १०९-११० ।
6. वही-, पृ. १०९ ।

यहां उल्लेखनीय होगा कि डा. वासुदेवशरण अग्रवाल जनपदीय काय और प्रान्त-निर्माण आन्दोलन को बिलकुल पृथक् मानते थे। उन्होंने वैशाख पूर्णिमा संवत् २००० वि. को चतुर्वेदी जी के नाम लिखे गये पत्र में स्पष्ट निर्देश दिया था :

"...... इस आन्दोलन को शुद्ध सांस्कृतिक रखना आवश्यक है। पृथक् प्रान्त निर्माण रूपी राजनीतिक पहलू अभी बिलकुल न उठाया जाना चाहिए, अन्यथा आपका उद्देश्य खटाई में पड़ जायेगा।"[1]

किन्तु चतुर्वेदी जी डा. अग्रवाल के निर्देश को स्वीकार नहीं कर पाये। "मधुकर" के "जनपद-अंक" में श्री जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने उनकी स्थिति बिलकुल स्पष्ट कर दी। इस सम्वन्ध में चतुर्वेदी जी ने लिखा है :

"श्री अग्रवाल की यह इच्छा स्वाभाविक ही थी कि मैं उनके शुद्ध साहित्यिक जनपदीय आन्दोलन तक ही अपनी शक्ति सीमित रखूं, पर मेरे लिए यह सम्भव नहीं था। भाई जगदीश प्रसाद चतुर्वेदी ने "मधुकर" के "जनपद-अंक" में जो उन्हीं के द्वारा सम्पादित हुआ था, मेरी स्थिति को बिलकुल स्पष्ट कर दिया था। बावजूद इस मतभेद के अग्रवाल जी तथा मेरी साहित्यिक मैत्री में कोई बाधा नहीं पड़ी।"[2]

इस प्रकार श्री चतुर्वेदी जी ने जनपद आन्दोलन में प्रान्त-निर्माण आन्दोलन को भी सम्मिलित कर दिया। बाबू वृन्दावनदास के नाम लिखे पत्रों में ब्रज प्रान्त-निर्माण का अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है, यद्यपि उनका ब्रज प्रान्त-निर्माण-समर्थन साहित्यिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण है। यथा :

"......... हम लोग—मेरे जैसे आदमी आते हैं और चले जाते हैं, पर हमारा जनपद-ब्रजभूमि तो रहेगी ही।"[3]

"एक विचारोत्तेजक सरक्यूलर लैटर भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को भेजने की जरूरत है—ब्रज प्रान्त निर्माण के विषय में—जिससे प्रेरित होकर वे लोग अपनी सम्मति उस बारे में लिख भेजें। प्रान्त बने या न बने पर चलाने से कुछ जागृति तो आवेगी ही। वस्तुतः मेरी रुचि जितनी साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जागरण में है उतनी राजनैतिक पुनर्गठन में नहीं।[4]

पं. चतुर्वेदी से प्रेरित होकर बाबू वृन्दावनदास ने जनपदीय आन्दोलन की दिशा में लोगों का ध्यान आकृष्ट करने का भरसक प्रयास किया। "अमर उजाला"

---

1. "डा.वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र," पृ. १०३।
2. "स्वर्गीय डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र," श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, सम्मेलन पत्रिका, भाग-५२, सं. ३-४, पृ. २९-३०।
3. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. १०१
4. "ब्रज भारती," मार्गशीर्ष, सं. २०२४ वि. पृ. ११

में जनपदीय आन्दोलन पर प्रकाशित उनके लेख की अनेक विद्वानों ने मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की थी।[1] डा. राजेन्द्र रंजन को लिखे गये पत्र में उन्होंने जनपदीय आन्दोलन के पुनः श्रीगणेश करने की इच्छा प्रकट की है :

"जनपदीय आन्दोलन का श्रीगणेश करना ही है। टूटी हुई कड़ी को जोड़ने का अवसर आ गया है। मैंने चतुर्वेदी जी से भी उनका परामर्श मांगा है।"[2]

इस प्रकार सन् १९४३ में डा. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा प्रवर्तित किया गया जनपदीय आन्दोलन आज तक अनेक रूपों में चल रहा है। डा. अग्रवाल शुद्ध सांस्कृतिक जनपदीय आन्दोलन में आस्था रखते थे। परवर्ती काल में प्रान्त-निर्माण का आन्दोलन भी जनपदीय आन्दोलन का हिस्सा बन गया।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि हिन्दी साहित्यिकों के पत्रों में अनेक साहित्यिक वाद-विवादों तथा आन्दोलनों के बहुमूल्य सन्दर्भ-सूत्र प्राप्त होते हैं। इन सन्दर्भ सूत्रों से साहित्यिक विवादों एवं आन्दोलनों के यथार्थ अध्ययन में अपूर्व सहायता मिलती है।

(ख) साहित्यिक चोरी के सन्दर्भ :

संसार का साहित्य इस बात का साक्षी है कि प्रत्येक युग के साहित्यकार अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से प्रेरित और प्रभावित रहे हैं। अतः यदि दो साहित्यिकों की कृतियों में कहीं भाव-साम्य दीख पड़े तो उसे साहित्यिक चोरी कहना ठीक न होगा। किन्तु किसी से प्रेरणा ग्रहण करना या प्रभावित होना एक बात है और किसी की वस्तु ज्यों की त्यों उठा लेना दूसरी बात है। किसी लेखक से प्रेरित प्रभावित होना कोई अपराध नहीं है, किन्तु किसी लेखक की चीज़ ज्यों की त्यों उठा लेना साहित्यिक चोरी है। हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में इस प्रकार की साहित्यिक चोरी के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ मिलते हैं।

सन् १८९९ ई. में पटना निवासी श्री पत्तनलाल (सुशील कवि) ने अपनी बनाई "उझाड़ गांव", "साधु" और "यात्री"—नाम की तीन पुस्तकें "भारत मित्र" को समालोचनार्थ भेजी थीं। भारत मित्र के तत्कालीन सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त को इन पुस्तकों में दी गयी सामग्री पं. श्रीधर पाठक की "एकान्त--वासी योगी" "तथा" ऊजड़-ग्राम" से चुराई गयी प्रतीत हुई। अतः "भारत मित्र" में उन्होंने उक्त पुस्तकों की कड़ी आलोचना "कविता पर कविता" शीर्षक से प्रकाशित की और पं. श्रीधर पाठक को इस बात की सूचना देते हुए लिखा :

"पत्तनलाल की पुस्तक ईश्वर ने चाहा तो फिर न छपेगी। आपके अनुत्साह ही का कारण है कि आपकी कविता की चोरी हुई। अनुत्साह ने आपको गुमनाम

---

1. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ. १४९।
२. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ. १५२।

कर दिया। गुमनाम का माल हर कोई चुरा सकता है। ज़रा मैदान में आइये, देखें फिर कोई कैसे आपका माल चुराता है।"[1]

गुप्त जी की आलोचना से श्री पत्तनलाल (सुशील कवि) इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी ओर से उत्तर लिख भेजा और गुप्तजी की आलोचना का औचित्य स्वीकार किया। श्री सुशील कवि का लिखा पत्र "बालमुकुन्द गुप्त स्मारक-ग्रंथ"[2] में मुद्रित है। इससे स्पष्ट होता है कि गुप्त जी हिन्दी साहित्य-क्षेत्र की पूरी खोज-खबर रखते थे। उनकी यह धारणा उचित ही है कि साहित्यिक चोरी में कवि का अनुत्साह कम उत्तरदायी नहीं होता।

इसी प्रकार की साहित्यिक चोरी का रोचक सन्दर्भ हमें पं. पद्मसिंह शर्मा द्वारा आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को प्रेषित एक पत्र में प्राप्त होता है। आचार्य द्विवेदी ने एक बार शर्मा जी को "सरस्वती" के लेख चुराये जाने की बात लिखी थी। इसका उल्लेख करते हुए वे अपने २०-११-१९०६ के पत्र में लिखते हैं:

"मैं आजकल एक जैन सम्बन्धी महाकाव्य देख रहा हूं। इस पर कुछ लिखने का भी विचार है, उसके महाकवि ने कालिदासादि महाकवियों के सूक्ति रत्नों को इस प्रकार चुराया है कि उसके साहस पर आश्चर्य होता है। आपको जो "सरस्वती" के लेख चुराये जाने की प्रायः शिकायत रहा करती है, उसको देखकर आपको संतोष होगा कि यह कोई नई बात नहीं है, किन्तु "एष धर्मःसनातन" मैंने उस पर बहुत से नोट्स कर लिये हैं, शीघ्र लिखना प्रारम्भ करूंगा। इस प्रकार शायद आपकी आज्ञा पालन भी हो जाय और कालिदासादि के चुराये हुए माल का भी कुछ पता चल जाय।"[3]

साहित्यिक चोरी की चर्चा महाकवि निराला के पत्र में भी मिलती है। यह पत्र डा. रामविलास शर्मा के एक प्रश्न के उत्तर में लिखा गया था। डा. शर्मा ने श्री बनारसीदास चतुर्वेदी से पहली मुलाकात और निरालाजी के विरुद्ध उनके पहले लेख कब निकले, इस सम्बन्ध में प्रश्न किया था। निरालाजी ने अपने विरोधाचार की ब्यौरेबार चर्चा में "मतवाला" काल की एक घटना का उल्लेख करते हुए लिखा है कि:

"प्रभा" में, शायद १९२४ में ऐसी दो रचनाओं की चोरी प्रमाणित की गई। लिखने वाले ने उपनाम देकर लिखा। पं. बालकृष्ण शर्मा "नवीन" को उनका असली नाम मालूम होगा।"[4]

---

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. २०६।
2. देखिए: बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक ग्रंथ (१९५०), पृ. १०५-१०६।
3. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १२३।
4. "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ. ३९६।

इस पत्र में उल्लिखित चोरी का सम्बन्ध "प्रभा" में "प्रकाशित भावों की भिड़न्त" शीर्षक लेख से है। यह लेख "श्रीयुत भावुक" के नाम से छपा था। सेठ महादेव प्रसाद ने २४-९-१९२४ को शिवपूजन सहाय के नाम पत्र लिख कर लेखक के असली नाम का पता लगाने के लिए कहा था। किन्तु शिवजी सही जानकारी न भेज सके। इस लेख के असली लेखक के नाम के सन्दर्भ में डा. लक्ष्मीनारायण दुबे ने उन्हें प्राप्त राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के २-११-१९६१ के पत्र के आधार से लिखा है कि "भावों की भिड़न्त" नामक लेख के वास्तविक लेखक मुंशी अजमेरी थे।"[1]

इस प्रकार साहित्यकारों के पत्रों में समकालीन साहित्यिक चोरी के अनेक मनोरंजक और महत्वपूर्ण सन्दर्भ उपलब्ध होते हैं।

(ग) साहित्यिक पत्रिकाओं की स्थिति और सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष के सन्दर्भ :

हिन्दी साहित्यकारों के पत्रों में समकालीन पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति एवं सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष की स्पष्ट झलक मिलती है। भारतेन्दु तथा द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के पत्रों को पढ़ने से विदित होता है कि तत्कालीन अनेक पत्र-पत्रिकाएं घाटे में चल रही थीं और अन्त में इसी कारण बन्द हो गयीं। हिन्दी-उर्दू-हिन्दुस्तानी-विवाद की चर्चा में, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा पं. चिन्तामणि को लिखे गये पत्र के अंश में हम देख चुके हैं कि सरकार ने जब उनके द्वारा सम्पादित पत्रिकाओं को खरीदना बन्द कर दिया तो उनको कितना दुःख हुआ था। ऐसी आर्थिक तंगदिली में लेखकों को पारिश्रमिक देना कैसे सम्भव होता? पं. श्रीधर पाठक ने बाबू बालमुकुन्द गुप्त के नाम अपने एक पत्र में अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं की चर्चा करते हुए पारिश्रमकि की बात लिखी थी। इसके उत्तर में गुप्तजी ने लिखा था :

"रही दाम देकर लिखाने की बात सो हिन्दी के भाग्य में अभी यह बात नहीं है। अंग्रेजी अखबारों के भाग्य में और हिन्दी अखबारों के भाग्य में सोने और मिट्टी का फर्क है। २ रु. के भारत मित्र को भी खरीदार चाव से नहीं खरीद सकते हैं। आपकी कविता ही को सौ में दो भी समझने वाले नहीं। ऐसी हीन दशा वाली हिन्दी पर आपकी दया ही चाहिये।"[2]

"सरस्वती", "विशाल भारत", "हंस" आदि कुछ पत्र-पत्रिकाओं से लेखकों को "पत्रं-पुष्पं" मिल भी जाता था, किन्तु उन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों को ग्राहक-संख्या की सतत चिन्ता रहा करती थी। "सरस्वती"—सम्पादन के प्रारम्भ में आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने पं. जनार्दन झा के नाम एक पत्र में लिखा था :

1. "बालकृष्ण शर्मा" नवीन : "व्यक्तित्व एवं काव्य" (१९६४), पृ. ९६।
2. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. २१०।

"सरस्वती" के स्वामी उसे अगले वर्ष से बन्द करना चाहते हैं।"[1]

इसी प्रकार "जागरण" और "हंस" की स्थिति का चित्र प्रेमचन्द जी द्वारा जैनेन्द्रकुमार को लिखे गये १५ अगस्त, १९३२ के पत्र में देखने को मिलता है :

"जागरण" के बारह अंक निकले लेकिन ग्राहक संख्या दो सौ से आगे न बढ़ी। विज्ञापन तो व्यासजी ने बहुत किया, लेकिन किसी वजह से पत्र न चला। उन्हें उस पर पन्द्रह सौ का घाटा रहा।........"हंस" में कई हजार का घाटा उठा चुका हूं।"[2]

प्रेमचन्द जी 'हंस" के घाटे से चिन्तित थे, परन्तु जब कुछ समय बाद उन्हें पं. बनारसीदास चतुर्वेदी से यह सूचना मिली कि "विशाल भारत" भी घाटा में चल रहा है, तो उन्हें बहुत दुःख हुआ। चतुर्वेदी जी के नाम अपने १८ मार्च, १९३६ के पत्र में उन्होंने लिखा :

"दुःख हुआ "विशाल भारत" अब भी घाटा दे रहा है। कितने अफ़सोस की बात है कि पहला हिन्दी पत्र जिसे सब सर्वश्रेष्ठ हिन्दी मासिक के रूप में जानते-मानते हैं, इस हालत में हो। इससे हमारी सांस्कृतिक मनोवृत्ति का पता चलता है।"[3]

द्विवेदी-युग तथा छायावाद-युग के प्रमुख समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं का मनोरंजक विवरण यदि एक पत्र में देखना चाहें तो हमें आचार्य शिवपूजन सहाय द्वारा "उग्र" जी के नाम लिखे गये १९-८-१९२५ के पत्र के अग्रांकित अंश का अवलोकन करना चाहिए :

"प्रभा" बन्द हो गई। "प्राणवीर" भी बन्द हो गया। "कर्मवीर" खण्डवा से निकाला चतुर्वेदी जी ने। आगरा से "सैनिक" अच्छा निकला। बम्बई से "भगीरथ" भी अच्छा निकला। "प्रताप" खूब बढ़िया निकल रहा है। "गोलमाल मौ" बन्द। "भूत" जारी है। दिल्ली से मासिक "महारथी" निकलेगा। "अर्जुन" साप्ताहिक हो गया। "सत्यवादी" लाहौर चला गया। "माधुरी" का मूल्य १) बढ़ गया। कुछ मैटर बढ़ेगा। "चांद" का शिशु अंक, वेश्या अंक निकला। "प्रवासी" अंक निकलेगा। सती अंक भी। शिशु अंक के एक लेख पर टिप्पणी लिखने से रूठकर प्रताप पर "चांद" में ५००० रु. का नोटिस जारी किया था। मामला सम्मेलन ने लिया है। देखा चाहिए। अपना समाचार लिखना।"[4]

हिन्दी के विभिन्न समाचार-पत्रों तथा पत्रिकाओं के अनेक रोचक किस्से "उग्र" जी द्वारा सम्पादित "फाइल और प्रोफाइल" शीर्षक पत्र-संग्रह में भरे

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ६।
2. "चिट्ठी-पत्री भाग-२ (१९६२), पृ. २६।
3. वही-, पृ. ९४।
4. "फाइल और प्रोफाइल" (१९७०), पृ. ३६२।

पड़े हैं। "हिन्दी पंच" की विस्तृत जानकारी भी इसी पुस्तक में मिल सकती है।

भारतेन्दु-युग से लेकर वर्तमान-युग के समाचार पत्रों के सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष की झांकी भी साहित्यिकों के वैयक्तिक पत्रों में मिल जाती है। इस सम्बन्ध में "उचित वक्ता" के २४ सितम्बर १८८१ के अंक में "संवादपत्रों का पारस्परिक विरोध" शीर्षक से एक लम्बा ऐतिहासिक पत्र प्रकाशित हुआ था। "हिन्दी प्रदीप" और "प्रयाग-समाचार" का वाद-विवाद भी सैद्धान्तिक कम वैयक्तिक अधिक था।"[1] तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक एक-दूसरे को धमकी भी देते थे। "काव्य-सुधाधर" के सम्पादक दत्त द्विजेन्द्र ने एक धमकी-पत्र के उत्तर में लिखा है............"और धमकी से डरना दत्त द्विजेन्द्र नहीं जानता।"[2]

भाषा के मामले पर "भारतमित्र" के सम्पादक बाबू बालमुकुन्द गुप्त से संघर्ष हो जाने पर आचार्य द्विवेदी जी ने पं. पद्मसिंह शर्मा के नाम अपने ८-१२-१९०५ के पत्र में लिखा था—"यह अखबार हमेशा से हमारे खिलाफ लिखता आया है। पहले हम को देवता समझता था। अब कारण विशेष से दैत्याधम।"[3] एक अन्य पत्र में आचार्य जी ने पं. शर्मा जी को लिखा था : "वेंकटेश्वर इत्यादि सरस्वती का नाम शायद इसलिए नहीं देते क्योंकि हमने आज तक उनकी समालोचना नहीं की।"[4]

इस प्रकार साहित्यकारों के पत्रों में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष की सुन्दर झांकियां मिलती हैं।

(घ) साहित्यिक समारम्भों, गोष्ठियों आदि के सन्दर्भ :

साहित्यकारों के पत्रों में साहित्यिक गोष्ठियों, उत्सवों, कवि-सम्मेलनों आदि के सन्दर्भ भी यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाते हैं। साहित्य की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि के अध्ययन के लिए इन सन्दर्भों का बहुत बड़ा महत्व है। यहां हम कुछ महत्वपूर्ण साहित्यिक समारम्भों की झलक प्रस्तुत करते हैं।

पं. नन्ददुलारे वाजपेयी ने अपने एक पत्र में पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय की अध्यक्षता में स्थापित "साहित्य-सेवी समुदाय" की चर्चा की है जिसका उद्देश्य सामाजिक विषयों पर समय-समय पर लेख और यथाशक्ति समाज की बढ़ती हुई उच्छृंखलता का सुधार करना था।[5]

---

1. "बालमुकुन्द गुप्त : एक मूल्यांकन" (सं. २०२२), पृ. १९७।
2. "काव्य-सुधाधर" १९०२-१९०३, पंचम वर्ष, पृ. २२।
3. "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह", भारतीय साहित्य, जुलाई-अक्टूबर-१९६२ पृ. १५९ :
4. -वही-, जनवरी १९६२, पृ. ९४
5. "नन्ददुलारे वाजपेयी के पत्र-निराला के नाम", भारतीय साहित्य, वर्ष-१४ अंक-३,४। पृ. १७८-१७९।

महाकवि निराला ने प्रसाद जी के नाम प्रेषित एक पत्र में कानपुर के डी.-ए. वी. कालेज के कवि सम्मेलन के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए लिखा था : "कानपुर के डी.ए.वी. कालेज का कवि सम्मेलन देखा। निबाह किया गया किसी तरह। वहां के विद्यार्थी आपके "आंसू" के बड़े भक्त मिले। जान पड़ता है कि पताका छायावादियों के ही हाथ रहेगी।"[1]

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने १७-३-१९३१ को प्रसाद जी के नाम पत्र लिखकर हिन्दुस्तानी एकेडेमी की लिटररी कान्फरेन्स में पधारने का आग्रह भरा निमंत्रण भेजा था।[2] यह पत्र पन्तजी और प्रसाद जी के स्नेह का उत्तम नमूना है।

मुंशी अजमेरी ने अपने १५-२-१९३५ के पत्र में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को झांसी में तुलसी-जयन्ती पर समायोजित बृहत् कवि-सम्मेलन की पूर्व भूमिका का बड़ा रोचक वर्णन लिख भेजा है।[3] दुलारे दोहावली-दंगल के इतिहास में यह कवि-सम्मेलन अपना अलग महत्व रखता है।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने पत्र-व्यवहार को एक व्यसन के रूप में स्वीकार किया था और कुछ साहित्यकारों को लेकर एक "पत्र-व्यवहार गोष्ठी" का समायोजन किया था। आचार्य शिवपूजन सहाय,[4] डा. वासुदेवशरण अग्रवाल[5] आदि साहित्यकार इस गोष्ठी के सदस्य थे। हिन्दी-पत्र साहित्य के विकास में इस साहित्यिक गोष्ठी का विशेष महत्व है।

---

1. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ. १९१।
2. -वही-, पृ. १८५-८६ :
3. "स्वर्गीय मुंशी अजमेरी के कुछ पत्र", सम्मेलन पत्रिका, भाग-५२, सं. १,२ पृ. ५७।
4. "पत्र-व्यवहार गोष्ठी का सदस्य होने की इच्छा और श्रद्धा है। गोष्ठी में आस्था भी हैं। सम्भव है, कभी-कभी पत्रोत्तर में कुछ विलम्ब हो.... ...."
   ....(चतुर्वेदी जी के नाम शिवजी का भाद्रपूर्णिमा २००१ का पत्र)
   .... "नई धारा" "शिवपूजन स्मृति-अंक," वर्ष-१४, अंक-१,४, पृ. ४७४।
5. "पत्र व्यवहार परिषद की पद्धति अच्छी है। चलाइये। मैं उसमें रुचि रक्खूंगा।"
   ....(डा. वासुदेवशरण अग्रवाल का चतुर्वेदी जी के नाम १०-३-४४ का पत्र
   ... "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ. १४८।

"निराला की साहित्य-साधना भाग—३" में अनेक कवि-सम्मेलनों के सन्दर्भ मिलते हैं। इसमें इलाहाबाद में स्थापित "साहित्यकार संसद" का उल्लेख भी निराला जी के १५-५-१९४५ के पत्र में हुआ है। यह पत्र केदारनाथ अग्रवाल के नाम लिखा गया था। इसमें "साहित्यकार संसद" का संक्षिप्त परिचय देकर उसे सहयोग देने का अनुरोध किया गया है।[1]

कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने दिसम्बर १९४७ के पत्र द्वारा "लोकायतन-पीठ" के रजिस्ट्रेशन की बच्चन जी को सूचना दी है।[2] इस पीठ के सचिव के रूप में बच्चन जी को नियुक्त किया गया था और "लोकचेतना" नामक पत्रिका भी प्रकाशित की गयी थी।[3]

"बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" शीर्षक पुस्तक में कवि-सम्मेलनों, लेखक-सम्मेलनों, साहित्यिक उत्सवों आदि के अनेक सन्दर्भ बड़ी सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं। पन्त जी ने इन साहित्यिक समारम्भों का केवल उल्लेख ही नहीं किया है, अपितु उन पर अपनी प्रतिक्रिया भी व्यक्त की है। उदाहरणस्वरूप जयपुर के कवि-सम्मेलन,[4] इलाहाबाद के लेखक-सम्मेलन[5] तथा प्रेमचन्द स्मृति दिवस पर आयोजित समारोह[6] पर उनकी प्रतिक्रियाएं देखने योग्य हैं।

कवि-सम्मेलनों की उपयोगिता, वर्तमान युग में कवि-सम्मेलनों की स्थिति, उनके आदर्श स्वरूप आदि पर यथेष्ट रूप से प्रकाश कविवर बच्चन ने डा. जीवन-

---

1. "निराला की साहित्य-साधना"-३, १९७६), पृ. ३४१-३४२।
2. "कवियों में सौम्य संत" (१९६०), बच्चन, पृ. ५६।
3. -वही-, पृ. ५८-५९।
4. "जयपुर का कवि-सम्मेलन शत प्रतिशत बोरडम रहा—माचवे का फोन और सुमन जी का व्याख्यान सब मन मार के सुनने पड़े कि तुम क्या सुनानेवाले हो। पीड़ा को भगवान बनाने वाली श्रीमती कौल तो बस न पूछो। श्रीगणेश ही कुछ ऐसा हुआ कि फिर सम्मेलन संभल नहीं सका।"
—"बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ. २४।
5. "लेखक सम्मेलन में कोई विशेष बात नहीं। दिनकर जी, यशपाल जी आए थे। मैं तो उसमें जा नहीं सका.........कुछ लेखक सम्मेलनों में जनसंघीपन आ जाता है, यहां भी सुना अपवाद नहीं था। ...."
-वही-, पृ. ३०।
6. "यहां प्रेमचन्द-स्मृति दिवस मनाया गया। ८ तारीख को (अक्टू.-१९६२) प्रेमचन्द जी के ९ अनुपलब्ध ग्रंथ भी प्रकाशित होकर उस दिन प्रदर्शित किए गए। अमृतराय ने उनकी एक ८०० पृष्ठ की जीवनी लिखी है, वह भी निकल गई, बड़े परिश्रम से लिखी है।
-वही-, पृ. ३३।

प्रकाश जोशी को लिखे पत्रों में डाला है। उन्होंने अपने ६-८-१९६७ के पत्र में कवि-सम्मेलनों पर ऐतिहासिक, तात्विक एवं मौलिक दृष्टि से जो विचार प्रस्तुत किये हैं, वे सारगर्भित एवं सराहनीय हैं।[1]

इस प्रकार पत्रों के द्वारा साहित्यिक गोष्ठियों, समारोहों, कवि-सम्मेलनों आदि की बड़ी मनोरंजक तथा विचारोत्तेजक घटनाएं हमें पढ़ने को मिलती हैं। इन घटनाओं से हमारे मानस-पटल पर अनेक साहित्यिक व्यक्तियों के चित्र अंकित हो जाते हैं और हम कुछ क्षणों के लिए अलौकिक जगत् में खो जाते हैं।

निष्कर्ष :

उपर्युक्त अध्ययन के आधार पर सार-रूप में कहा जा सकता है कि हिन्दी पत्र-साहित्य में समकालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक इतिहास के जो बहुमूल्य सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, वे साहित्य की अन्य किसी विधा में नहीं मिलते। इन सन्दर्भ-सूत्रों से अनेक ऐतिहासिक घटनाओं की पुष्टि होता है, नये तथ्यों पर प्रकाश पड़ता है और प्रसिद्ध व्यक्तियों एवं घटनाओं के सम्बन्ध में फैली हुई भ्रांतियों का निराकरण होता है। शिवाजी की औरंगजेब के दरबार में आगरा की यात्रा-सम्बन्धी जो पत्र प्रकाश में आये हैं, उनसे समाज और इतिहास में प्रचलित बहुत-सी गप्पें गलत साबित हुई हैं। यही बात महाराजा छत्रसाल से सम्बन्धित ऐतिहासिक प्रमाणावली तथा सन् सत्तावन के विप्लवकारियों से सम्बन्धित ऐतिहासिक पत्रावली के विषय में कही जा सकती है। स्वतंत्रता-संग्राम के इतिहास का लगभग पूरा विवरण हमें स्वाधीनता-संग्राम के सेनानियों तथा युग-विधायक साहित्यकारों के पत्रों में मिल जाता है। यह विवरण इतिहास-ग्रंथों में प्राप्त विवरण से कहीं अधिक रोचक और प्रामाणिक है। पत्रों में प्राप्त समसामयिक सामाजिक परिस्थितियों के सन्दर्भ भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। उत्तर मध्यकाल से वर्तमान-युग तक के समाज का यथार्थ चित्र पत्रों में अंकित है। सामाजिक परम्पराओं, रीति-रिवाजों के अतिरिक्त विभिन्न युगों के व्यक्तियों के धार्मिक विश्वासों, मान्यताओं, बाह्याचारों, आडम्बरों, धार्मिक आंदोलनों आदि के अनेक महत्वपूर्ण सन्दर्भ पत्रों में उपलब्ध होते हैं। किन्तु सबसे महत्वपूर्ण एवं मनोरंजक संदर्भ साहित्यिक वाद-विवादों और आंदोलनों के हैं। कुछ साहित्यिक विवादों एवं आंदोलनों को पत्रों के सन्दर्भों के बिना समझा नहीं जा सकता। ब्रजभाषा और खड़ी बोली-विवाद, दुलारे दोहावली–दंगल आदि आंदोलनों का सूत्रपात साहित्यिकों के पत्र-व्यवहार के द्वारा ही हुआ है। पत्रों में प्राप्त साहित्यिक चोरी के संदर्भों से सुदूर अतीत की अनेक घटनाएं प्रत्यक्ष हो उठती हैं। समकालीन पत्र-पत्रिकाओं की स्थिति तथा सम्पादकों के पारस्परिक राग-द्वेष के सन्दर्भों में से हिन्दी पत्र-कारिता के अनेक अछूत पहलू उजागर होते हैं। पत्रों में प्राप्त साहित्यिक समारम्भों और गोष्ठियों आदि के संदर्भ साहित्य के प्रति लोगों की अभिरुचि प्रकट करते हैं। संक्षेप में ये पत्र समकालीन इतिहास के मूल्यवान दस्तावेज हैं।

1. "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ. १०८-१०९।

अध्याय ५

हिन्दी पत्र-साहित्य में शिल्प और शैली

शिल्प और शैली का पारस्परिक सम्बन्ध :

शिल्प या शिल्प-विधि अंग्रेजी के "टेकनीक" शब्द का हिन्दी-अनुवाद है। इसका तात्पर्य रचना-पद्धति से है। बृहत् हिन्दी कोश के अनुसार "शिल्प से अभिप्राय हाथ से कोई वस्तु तैयार करने अथवा दस्तकारी या कारीगरी से है।"[1] इस दृष्टि से शिल्प-विधि का अर्थ होगा, किसी चीज के बनाने या रचने का ढंग या तरीका। साहित्य अथवा कला के सन्दर्भ में इसका अर्थ होता है साहित्यिक कृति अथवा कलात्मक वस्तु रचने का ढंग या तरीका। कला की रचना में जिन रीतियों और विधियों का उपयोग किया जाता है, वे ही उस कला की शिल्प-विधि के नाम से पुकारी जाती हैं।

"शैली" शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत के "शील" शब्द से मानी जाती है। "संस्कृत शब्दार्थ—कौस्तुभ" में "शैली" शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं—जैसे, लिखने का ढंग, वाक्य रचना का प्रकार, चाल, ढब, ढंग, परिपाटी, तर्ज, तरीका, रीति, रस्म, प्रथा आदि।[2] हिन्दी में "शैली" शब्द का प्रयोग अंग्रेजी के "स्टाइल" शब्द के समानार्थक रूप में होता है। भारतीय वाङ्मय में "प्रणाली", "पद्धति" या "ढंग" के अर्थ में "रीति" शब्द का प्रयोग मिलता है, किन्तु हिन्दी के कतिपय विद्वान् "स्टाइल" शब्द के पर्याय के रूप में "रीति" शब्द का प्रयोग अनुचित समझते हैं। पं. करुणापति त्रिपाठी का मत है कि—"गुणों के आधार पर की गई विशिष्ट पद-रचना रूप रीति, शैली से भिन्न है।"[3] इसके विपरीत पं. बलदेव उपाध्याय मानते हैं कि "अंग्रेजी में रीति (मार्ग) के लिए "स्टाइल" शब्द प्रयुक्त

---

1. "बृहत हिन्दी कोश" (प्र.सं.), संपा. कालिकाप्रसाद, पृ. १३३४।
2. "संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ" (च. सं.), संपा. द्वारका प्रसाद शर्मा तथा तारिणीश झा, पृ. ११७०।
3. "शैली", (प्र.सं.), पृ. ११९-१२०।

होता है।[1] डा. गणपतिचन्द्र गुप्त ने "रीति" और "शैली" का अन्तर स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "किसी भी कार्य की सामान्य पद्धति "रीति" है जब कि व्यक्ति-विशेष से सम्बन्धित विशेष पद्धति "शैली" है।"[2]

शैली में लेखक के व्यक्तित्व की प्रधानता को स्वीकार करने के अतिरिक्त, इसे अभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग भी कहा कहा गया है।[3] इस अर्थ में शैली से अभिप्राय रचनाकृति के बाह्य परिधान से है जिसका निर्धारण भाषा और शब्दों के विशिष्ट प्रयोग द्वारा होता है। शैली में अभिव्यक्ति की विशिष्टता तथा भाषा के रूप-चमत्कार का संयोग होने के कारण ही भारतीय मनीषियों ने साहित्य-सृजन के अन्तर्गत शैली को चौथे तत्व के रूप में स्वीकार किया है।

शिल्प और शैली के उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि दोनों का सम्बन्ध रचना के अभिव्यक्ति-पक्ष से है। इनमें अंतर यही है कि शिल्प-विधि का सम्बन्ध केवल अभिव्यक्ति एवं रूप-रचना की समस्त प्रक्रियाओं से है, जब कि शैली का सम्बन्ध केवल अभिव्यक्ति के प्रकार विशेष से है। दूसरे शब्दों में जहां शिल्प-विधि का अध्ययन सामान्य धरातल पर किया जाता है। वहां शैली का अध्ययन विशिष्ट धरातल पर किया जाता है। श्री ब्रजभूषण पाण्डेय ने शिल्प और शैली का सम्बन्ध निम्नलिखित दो रूपों में स्पष्ट किया है :

१ —शिल्प के किसी अंग विशेष के रूप में शैली का कोई अंग भी विशेष प्रत्यक्ष होता है। इस शिल्प के अंश विशेष को शैली अंग विशेष प्राणवान और सार्थक बनाता है।

२ —शैली का अधिकांश भाग सूक्ष्मरूप से शिल्प की समष्टि में समाया रहता है। यहां शिल्प और शैली का व्याप्य और व्यापक सम्बन्ध रहता है। इस रूप में शैली का समष्टि शिल्प के समष्टि को प्राणवान और सार्थक बनाता है।

पहला सम्बन्ध शरीर और आंख तथा शरीर और कान के समान है और दूसरा सम्बन्ध शब्द और अर्थ की तरह है। जिस प्रकार शब्द में अर्थ समाया हुआ है, उसी प्रकार शिल्प में शैली समायी हुई रहती है। किन्तु जिस प्रकार शब्द और अर्थ की सत्ता अलग-अलग भी है, इसी प्रकार इन दोनों की सत्ता भी अलग-अलग है।"[4] इस प्रकार शिल्प और शैली के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध है।

हिन्दी पत्र-साहित्य में शिल्प और शैली :

पत्र-साहित्य के अध्ययन में शिल्प और शैली का प्रश्न कम महत्वपूर्ण नहीं

1. "भारतीय साहित्य शास्त्र", द्वितीय खण्ड (सं. २०१२ वि.), पृ. २१३।
2. "साहित्य शैली के सिद्धान्त" (१९७१), पृ. २७।
3. "Style is the technique of expression", Middleton Murray, "The Problem of Style", P.5.
4. "कला : शिल्प : शैली (लेख), सम्मेलन पत्रिका, कला—अंक, सन् १९७२ पृ. ३६९।

है। जैसा कि श्री मार्तण्ड उपाध्याय ने कहा है, "पत्र लिखना भी एक कला है। जो बात व्यक्ति अपने सामने बात-चीत में नहीं कह सकता या नहीं कहना चाहता, उसे पत्र द्वारा बड़ी कुशलता से कह देता है। कई बार कही बात का उतना प्रभाव नहीं पड़ता, जितना लिखी बात का पड़ता है :"[1]

इस दृष्टि से देखें तो पत्र-साहित्य में भी अन्य कला-रूपों की तरह शिल्प और शैली का समावेश होता है। यद्यपि पत्र-लेखक पत्र लिखते समय उसे कला या साहित्य समझकर नहीं लिखता, किन्तु लेखक का प्रयोजन, उसकी रुचि, योग्यता आदि तत्व ही किसी पत्र को कला की वस्तु बनाकर सुरक्षित रख सकते हैं। इस प्रकार शिल्प और शैली के कारण ही पत्रों में मधुरता और मोहकता आ जाती है। आचार्य किशोरीदास वाजपेयी के अनुसार :

"साधारण चीज़ों में मनुष्य जब कुछ अद्भुत मोहकता पैदा कर देता है, तो उसे "कला" का नाम मिल जाता है। कागज़ और रंग आदि साधारण चीज़ें हैं—सब लोग काम में लाते हैं, परन्तु "चित्र-कला" उन्हीं चीज़ों का विशिष्ट प्रयोग है।"[2] इसी प्रकार हम कह सकते हैं कि पत्र तो प्राय: सभी व्यक्ति लिखते हैं, किन्तु प्रभावपूर्ण पत्र लिखना एक कला है। इसके लिए अध्ययन और अभ्यास की आवश्यकता है। पं. कृष्णकान्त मालवीय ने "मनोहर पत्र" शीर्षक पत्र-संग्रह की भूमिका में इसी तथ्य की ओर इंगित किया है :

"पत्र-लेखन भी एक सुन्दर कला है। हम सब ही बोलते हैं, ज़बान सबके पास है, शब्दों का भण्डार भी सबके पास थोड़ा-बहुत है, किन्तु सब वाक्पटु नहीं होते। विद्वान् और पंडित होने से कोई अच्छी बातें करने वाला Conversationalist) नहीं हो जाता। ठीक इसी तरह कवि होने, लेखक होने या भाषा पर अधिकार रखने से ही कोई सुन्दर पत्रों का लिखने वाला नहीं हो सकता। पत्र-लेखन एक कला है और जिस तरह अन्य कलाओं पर संसार में अधिकार प्राप्त किया जाता है, उसी तरह से इस कला पर भी अधिकार प्राप्त किया जा सकता है।"[3]

इससे स्पष्ट होता है कि अन्य कलाओं के समान पत्र-लेखन कला में भी शिल्प-विधान की आवश्यकता रहती है—भले ही समान रूप से उसका प्रयोग न किया गया हो। बाबू गुलाबराय ने भी यही मत व्यक्त किया है :

"यद्यपि पत्र सभी लिखते हैं तथापि उनमें थोड़ा शिल्प-विधान रहता है, चाहे उनका सचेतन प्रयोग न हो। पत्र का सबसे बड़ा टेकनीक यही है कि अपने पाठक पर दूर बैठे हुए भी उसके द्वारा उतना ही प्रभाव पड़ सके जितना कि सामने

1. "स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी पत्र-साहित्य" (ले) स्वतन्त्रता रजत-जयन्ती अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ. ६००।
2. "कला और लेखन-कला" (लेख) सम्मेलन पत्रिका, कला-अंक, पृ. ३७२।
3. "मनोहर पत्र" (१९५६), भूमिका (झ)।

वार्तालाप करने पर पड़ता है। बात को थोड़े शब्दों में अधिक-से-अधिक स्पष्टता देना पत्र की सबसे बड़ी मांग है। पत्रों में कुछ लोग तो अपना सारा व्यक्तित्व उड़ेल देना चाहते हैं और कुछ उनको निर्वैयक्तिक तथा रंगीनी से खाली रखना चाहते हैं। इस सम्बन्ध में भी मध्यम मार्ग का अनुसरण श्रेयस्कर है।"[1]

इस प्रकार पत्रों में शिल्प-विधान तो रहता है, किन्तु उसका सचेतन प्रयोग नहीं होता। यही कारण है कि लेखक के सहज और मुक्तरूप की स्पष्ट झलक हमें उसके पत्रों में ही मिलती है। पत्र-साहित्य की इस विशेषता की ओर संकेत करते हुए डा. रामविलास शर्मा ने लिखा है :

"पत्र-संग्रह ऐसा नाटक है जो योजना बनाकर किसी कलाकार द्वारा नहीं रचा गया। शायद इसलिए वह अनेक नाटकों से अधिक महत्वपूर्ण, अधिक आकर्षक भी है।"[2]

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हिन्दी पत्र-साहित्य में शिल्प और शैली का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया जा सकता है :

(क) हिन्दी पत्र-साहित्य में लेखन-पद्धति का वैविध्य,
(ख) हिन्दी पत्र-साहित्य में भाषा-विधान,
(ग) हिन्दी पत्र-साहित्य में गद्य की विविध शैलियां और
(घ) हिन्दी पत्र-साहित्य में भावगत शैलियां।

अब हम यहां विस्तार से प्रत्येक का विवेचन करेंगे :

(क) हिन्दी पत्र-साहित्य में लेखन-पद्धति का वैविध्य :

पत्र-लेखन की अपनी अलग पद्धति है और उसमें लिखने वाले तथा पानेवाले की सामाजिक स्थिति के अनुरूप अनुनय-विनय तथा शालीनता भी होती है। जिस प्रकार प्रत्येक कला-रूप की कुछ रूढ़ियां होती हैं, उसी प्रकार पत्र-लेखन की भी कुछ रूढ़ियां हैं और इनमें युगानुसार कुछ परिवर्तन भी होते रहे हैं। प्रत्येक युग में पत्र लिखने का ढंग सिखाने के लिए पत्र-लेखन कला के पंडितों द्वारा कुछ पुस्तकें लिखी गई हैं।[3] पाठशालाओं में छात्रों को पत्र–लेखन कला की शिक्षा देने की परिपाटी भी प्राचीनकाल से चली आ रही है। तात्पर्य यह है कि पत्र लिखने के लिए कुछ सर्वसामान्य सिद्धान्तों की जानकारी आवश्यक है।

हिन्दी में प्राचीनकाल से वर्तमान-युग तक का जो पत्र-साहित्य प्रकाश में आया है, उसमें हमें पत्र-लेखन की दो पद्धतियां मिलती हैं—एक प्राचीन पद्धति और दूसरी नवीन पद्धति। पत्र-लेखन की प्राचीन पद्धति संस्कृत

---

1. "काव्य के रूप" (१९५४), पृ. २६१।
2. "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), भूमिका, पृ. २।
3. देखिए : (क) "अच्छी चिट्ठी की रीति (१९७०) : संतराम।
(ख) आदर्श पत्र-लेखन : यज्ञदत्त शर्मा।

की अनुवर्तिनी है और नवीन पद्धति पश्चिम से प्रभावित है। यद्यपि आधुनिक युग के आरम्भ से ही नवीन पद्धति में पत्र लिखना आरम्भ हो गया था, किन्तु आधुनिक युग के अनेक लेखकों के पत्रों में प्राचीन पद्धति का संस्पर्श मिल जाता है।

रचना-विधान की दृष्टि से प्रत्येक पत्र के सामान्यतः चार अंग माने गये हैं:—(१) शीर्षक या सिरनामा, (२) प्रारम्भ, (३) विषय वस्तु और (४) अन्त। शीर्षक या सिरनामा पत्र का सबसे ऊपरी हिस्सा है। प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में इस हिस्से में मंगलसूचक शब्द, अंक और इष्टदेव के नाम का निर्देश होता था। नवीन पद्धति में इस भाग में पत्र पत्र प्रेषक का पूरा पता तथा तिथि का निर्देश किया जाता है। आधुनिक युग के कुछ पत्रों में मंगलसूचक शब्द का प्रयोग भी मिलता है। पत्र के प्रारम्भ में प्रेषक और प्राप्तिकर्त्ता के बीच होनेवाले परस्पर सम्बन्ध और सम्मान व्यवहार के अनुसार सम्बोधन-अभिवादन के शब्द प्रयुक्त होते हैं। पत्र का तीसरा भाग विषय महत्वपूर्ण है। पत्र-पद्धति में सिरनामा, प्रारम्भ और अन्त एक दृष्टि से परम्परागत नियमों से युक्त हैं किन्तु विषय के सम्बन्ध गें और उसे प्रतिपादन करने की पद्धति में शायद ही कोई नियम बनाया जा सकता है। अतः विषय और उसे प्रतिपादन करने की पद्धति में पर्याप्त विविधता लक्षित होती है। कुछ औपचारिक पत्रों की पद्धति की विविधता में समानता मिल सकती है। पत्र के अन्त में अभिनिवेदन के शब्द और प्रेषक के हस्ताक्षर रहते हैं। प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में तिथि का निर्देश अन्त में दिया जाता था। हस्ताक्षर के बाद यदि कोई बात लिखने से छूट गयी हो तो पत्र के नीचे या हाशिये में लिख दी जाती है। नवीन पद्धति में छूटी हुई बात या आवश्यक सूचना का संकेत "पुनश्च:" लिखकर दिया जाता है। प्राचीन पद्धति में इस शब्द का प्रयोग नहीं मिलता।

विषय-विस्तार को छोड़कर पत्र के उपर्युक्त तीनों अंगों को स्थिर अंग माना जाता है, किन्तु प्रत्येक युग की पत्र-लेखन पद्धति में इन अंगों में विविधता पाई जाती है। अतः यहां इन अंगों की लेखन-विधि के वैविध्य पर प्रकाश डाला जाता है।

(१) शीर्षक या सिरनामा लिखने की रीति में वैविध्य :

जैसा कि ऊपर बताया गया है, शीर्षक या सिरनामा पत्र का सबसे ऊपरी हिस्सा है। प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में इस हिस्से में मंगलसूचक शब्द, मंगलसूचक अंक और इष्टदेव का नाम लिखा जाता था। इन शब्दों में पर्याप्त वैविध्य रहता था। अधिकतर पत्रों के ऊपरी हिस्से में मंगलसूचक 'श्री" शब्द लिखा गया है। राजस्थान के जैन महात्माओं के प्राचीन पत्रों में शीर्षक के स्थान पर "श्री" शब्द लिखा हुआ मिलता है।[1] डा. काशिनाथ शंकर केलकर द्वारा संगृहीत मराठी

1. "राजस्थान के कुछ प्राचीन पत्र", शिवसिंह चोयल, सम्मेलन पत्रिका, पौष-ज्येष्ठ १८८८ शक, पृ. १५०।

क्षेत्र से सम्बन्धित १८ वीं शती के २०८ हिन्दी पत्रों में से लगभग ५५ पत्रों पर "श्री" अक्षर मिलता है।[1] इन पत्रों में "१ श्री" लिखने के तीन उदाहरण देखे जा सकते हैं।[2] प्राचीनकालीन पत्रों में मंगलसूचक अक्षर और अंक के अतिरिक्त पत्र-लेखक के इष्टदेव के नाम का संकेत भी मिलता है। महाराजा छत्रसाल के अनेक पत्रों पर "श्री कृस्नोजयति" शब्द का प्रयोग मिलता है।[3] इसी प्रकार मराठा शासकों तथा सेना-नायकों के पत्रों में ऊपरी हिस्से के मध्यभाग में "श्रीरामजू,"[4] "श्रीराधेक्रस्नजू,"[5] "श्रीगणेशजू,"[6] आदि इष्टदेवों के नाम अंकित हैं।

आधुनिकयुग के पत्रों में भी मंगलसूचक शब्द और इष्टदेव के नामों का उल्लेख मिलता है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के अनेक पत्रों के ऊपरी हिस्से के मध्य में "ओम्" शब्द अंकित हुआ है।[7] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र अपने बहुत-से पत्रों पर '॥श्री कृष्ण॥' शब्द लिखते थे।[8] प्रसिद्ध आर्यसमाजी लेखक नाथूराम शंकर शर्मा[9] तथा पद्मसिंह शर्मा[10] के पत्रों के सबसे ऊपरी हिस्से में "ओम्" शब्द देखने को मिलता है। पं. मदनमोहन मालवीय तथा बाबू बालमुकुन्द के पत्रों के ऊपरी भाग में "श्रीः" शब्द लिखा हुआ है।[11] श्रीराधाकृष्णदास,[12] पं. जनार्दन झा[13] आदि के पत्रों के ऊपर "श्रीहरिः" शब्द लिखे रहते थे। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के प्रायः सभी पत्रों के ऊपर "श्रीराम" लिखा हुआ मिलता है।[14] पं. माखनलाल

---

1. "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ. २३७ :
2. वही।
3. "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल" (१९७५), पृ. ७९।
4. "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र," पृ. ३७८।
5. वही, पृ. ३७५।
6. वही, पृ. ३७२।
7. "ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार" भाग-२ (सं. १९९२ वि), पृ. ११९।
8. "भारतेन्दु-ग्रंथावली भाग-३" (सं. २०१० वि.) पृ. ९६७-६९।
9. "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह," भारतीय साहित्य, जुलाई-११६१, पृ. १५४-७०।
10. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ७७-१३६।
11. "बालमुकुन्द गुप्त-स्मारक-ग्रंथ" (१९५०), पृ. ३२-३३ तथा पृ. १२३।
12. वही-, पृ. ५७।
13. "पौराणिकी" (स्तम्भ), ना. प्र. प., सं. २०२२ वि., वर्ष-७० अंक-३ पृ. ६७।
14. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६) पृ. ८२-९२।

चतुर्वेदी के कई पत्रों के ऊपर "श्रीगोपाल" शब्द अंकित है।[1] इस प्रकार पत्रों के शीर्षक में लिखे जाने वाले मंगलसूचक शब्दों तथा इष्टदेवताओं के नामों में पर्याप्त विविधता मिलती है। इन शब्दों से हमें पत्र-लेखक की आस्तिकता तथा देवता-विशेष में उसकी श्रद्धा-भक्ति का परिचय मिलता है।

आधुनिक पत्र-लेखन पद्धति में शीर्षक या सिरनामावाले ऊपरी हिस्से के दाहिने कोने में पत्र-प्रेषक के पते एवं तिथि का उल्लेख होता है जिससे पत्र-प्राप्तिकर्त्ता को पत्रोत्तर देने में सुविधा रहती है। प्राचीन पत्र लेखन पद्धति में पत्र-प्रेषक का पता अलग से नहीं दिया जाता था। इसमें तिथि का संकेत भी पत्र के अन्त में रहता था। आधुनिक युग के कुछ पत्रों में भी तिथि-निर्देश पत्र के अन्त में दिया गया है। उदाहरण स्वरूप स्वामी दयानन्द सरस्वती,[2] भारतेन्दु हरिश्चन्द्र,[3] बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि के पत्र देखे जा सकते हैं।

इस प्रकार शीर्षक और सिरनामा लिखने की रीति में पर्याप्त वैविध्य मिलता है। प्राचीन तथा अर्वाचीन पत्रों के ऊपरी हिस्से के मध्य भाग में अंकित मंगलसूचक शब्दों, अंकों तथा इष्ट-देवों के नामों से लेखक की धार्मिकता के साथ पत्रों की महत्ता भी प्रकट होती है।

(2) सम्बोधन तथा अभिवादन की विधि में वैविध्य :

पत्र सामान्यतः भेजनेवाले की ओर से पानेवाले के लिए प्रथम पुरुष में प्रत्यक्ष सम्बोधन होता है। पत्रों में सम्बोधन और अभिवादन की विशिष्ट विधि होती है। सम्बोधन तथा अभिवादन के शब्दों के आधार पर प्रेषक तथा प्राप्तिकर्त्ता के बीच होने वाले परस्पर सम्बन्ध तथा सम्मान-व्यवहार का स्पष्टीकरण हो जाता है। अंग्रेजी पत्रों में प्रायः छोटे-बड़े सबके लिए "माय डीयर" शब्द का प्रयोग होता है, परन्तु हिन्दी पत्रों में ऐसा नहीं होता। हमारे यहां प्रेषिती के प्रति सम्बन्ध के अनुसार ही सम्बोधन और अभिवादन के विशिष्ट शब्द का प्रयोग होता है।

प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति के अनुसार किस व्यक्ति को किन-किन शब्दों से सम्बोधित करना चाहिए, इसका विस्तार से विवरण वररुचि कृत "पत्र-कौमुदी" के "पदन्यास" विभाग के अन्तर्गत दिया गया है। तदनुसार राजपत्रादि में राजा को "महाराजाधिराज", "दानशील", "सच्चरित", "कल्पवृक्ष स्वरूप" इत्यादि यथा योग्य पदन्यास का विधान है। मंत्री के पत्र में गुणानुसार "प्रवर", "प्राज्ञ", "सच्चरितादि", पंडित के पत्र में संख्या-पूर्वक प्रणाम, शास्त्रार्थ निपुण इत्यादि,

---

1. "स्वर्गीय पंडित माखनलाल चतुर्वेदी के पत्र" सम्मेलन पत्रिका, भाग-५६, सं. २-३, पृ. १६-२०।
2. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. ७९-११४ :
3. "भारतेन्दु-ग्रंथावली भाग-३ (सं. २०१०), पृ. १७०-७३।

गुरु के पत्र में चरण में प्रणति पूर्वक, संख्यासिद्धान्त निपुणादि, स्वामि के पत्र में सनमस्कार प्राणप्रियादि, भार्या के पत्र में साध्वी, सच्चरितादि, तथा प्राणप्रिया प्रभृति पद, पुत्र के पत्र में आशीर्वाद पूर्वक प्राणपुत्र इत्यादि, पितृपत्र में प्रभुवर्य नमस्कार, सच्चरितादि और सन्यासियों के पत्र में सकलवांछा विनिर्मुक्त सर्वशास्त्रार्थ पारंगत-इस प्रकार पदविन्यास करना चाहिए ।[1]

अर्वाचीन पत्र-लेखन पद्धति में सम्बोधन-अभिवादन के शब्दों की विस्तृत सूचि पं. देवनारायण द्विवेदी ने अपने "पत्र-कला" शीर्षक लेख में दी है ।[2]

प्राचीन पद्धति के अनुसार सम्बोधन-अभिवादन की दृष्टि से पत्रों के तीन प्रकार बताये गये हैं:—(१) छोटे की ओर से बड़ों को, (२) बड़ों की ओर से छोटों को और (३) बराबर वालों को । नातेदारी में छुटाई-बड़ाई और बराबरी, अवस्था पर निर्भर नहीं है, किन्तु सम्बन्ध पर है ।

प्राचीन पत्र-पद्धति में सम्बोधन-अभिवादन की विधि में लम्बी-लम्बी प्रशस्तियां दी जाती थीं । और किसने, कहां से, किसको पत्र लिखा है आदि सब बातों का पत्र के प्रारम्भ में उल्लेख किया जाता था । जैसे जोधपुर के महाराजा अमैसिंघ की ओर से जयपुर-नरेश सवाई जयसिंह को लिखे गये पत्र का प्रारम्भ देखिए :

"स्वति श्री राजराजेन्द्र महाराजाधिराज महाराजा श्री सवाई जैसिंघ जी योग्य जोधपुर महादुरंगे थां राजराजेश्वर महाराजाधिराज महाराजा श्री अमैसिंघ जी लिखावंत जुहार अवधार जौ जी ।"[3]

प्राचीन पत्रों में सम्बोधन-अभिवादन में लम्बी-लम्बी प्रशस्तियां देने का एक कारण तो यह था कि उन दिनों राजकीय पत्र कुशल लेखकों द्वारा लिखे जाते थे । वे लेखक संस्कृत की परम्परागत पद्धति के अनुसार पत्र तैयार करते थे ।

राजस्थानी में लिखे गये प्राचीन पत्रों में सामान्यतया अभिवादन के लिए "जुहार अवधारजोजी", "मुजरो अवधारजौ"[4] आदि शब्द प्रयुक्त किये जाते थे । मराठा शासकों तथा सरदारों द्वारा लिखे गये पत्रों में "आसिर्वाद वाचन्यै",[5] "प्रणाम बंचणा",[6] रामराय वाच्यै[7] आदि शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

---

1. "पत्रकौमुदी", संपा. श्रीमन्नारायण द्विवेदी, पृ. २१-२२ ।
2. "मनोहरपत्र", संपा. सूर्य्यबली सिंह, पृ. ४७-४९ ।
3. "परम्परा", भाग-२४, सन् १९६७, पृ. ३२ ।
4. "कतिपय राजकीय पत्र", श्री केसरीनारायण शुक्ल, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, हीरक जयन्ति-अंक, पृ. १९३-९४ ।
5. "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ. ३४५ ।
6. -वही-, पृ. ३४६ ।
7. -वही-, पृ. ३४८ ।

पेशवा ब्राह्मण कुल के थे अतः उनके द्वारा भेजे गये पत्रों में सर्वत्र प्राप्तिकर्त्ता को आशीर्वाद सूचक शब्दों का प्रयोग किया गया है।

भारतेन्दु-युग के पत्रों में सम्बोधन-अभिवादन की विधि में अपेक्षाकृत सरलता और अनौपचारिकता मिलती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पत्रों में पत्र प्राप्तिकर्त्ता व्यक्ति के प्रति सम्बन्ध के अनुरूप सम्बोधन-अभिवादन की पद्धति का प्रयोग हुआ है। "प्रेमघन" जी से उनका सम्बन्ध विशेष आत्मीयता पूर्ण था, इसलिए उनको लिखे गये पत्रों में "मेरे प्यारे दोस्त", "प्रिय मित्रवर" आदि सम्बोधनों का प्रयोग किया है।"[1] किन्तु पं. राधाचरण गोस्वामी के प्रति उनके मन में पूज्यभाव था, अतएव गोस्वामी जी को प्रेषित पत्रों में "अनेक कोटि साष्टांग दण्डवत् प्रणामंतर निवेदयति", "शतशः प्रणति के पश्चात् निवेदन" आदि विशुद्ध संस्कृत पत्र-लेखन पद्धति के अनुसार सम्बोधन-अभिवादन की विधि अपनाई गयी है।[2] पं. प्रतापनारायण मिश्र के पत्रों में सम्बोधन के शब्द संक्षिप्त होते थे। वे अपने साहित्यिक मित्रों को प्रायः "प्रिय" और "प्रियवर" से ही सम्बोधित करते थे। पं. श्रीधर पाठक, बाबू राधाकृष्णदास आदि को लिखे गये उनके पत्रों में इन्हीं सम्बोधनों का प्रयोग मिलता है।[3] इस प्रकार भारतेन्दु युग के पत्रों में सम्बोधन-अभिवादन की विधि प्राचीन-मध्यकाल के पत्रों से कहीं अधिक सरल और संक्षिप्त है।

द्विवेदी-युग के कुछ आचार्यों के पत्रों में दीर्घ प्रशस्तियों का प्रयोग हुआ है। उदाहरणस्वरूप पं. पद्मसिंह शर्मा द्वारा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को लिखे गये प्रारम्भिक कालीन पत्रों को देखा जा सकता है।[4] इसी प्रकार पं. गिरधर शर्मा चतुर्वेदी के पत्रों के सम्बोधन भी तत्सम-पदावली से युक्त हैं। जैसे —"श्रीमत्सु प्रियवरेषु विद्वत्प्रवरेषु महानुभावेषु सप्रणति।"[5] यह सम्बोधन पं. पद्मसिंह को किया गया था।

---

1. "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), डा. रामचन्द्र पुरोहित, परिशिष्ट-२
2. "भारतेन्दु-ग्रंथावली भाग-३" (सं. २०१०), पृ. ९६९,९७२
3. "प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन" (१९७०). डा. शांतिप्रकाश वर्मा, पृ. ४७८-७९।
4. (क) श्रीमत्सु अलौकिक प्रतिभासम्पन्न कवि कुंजरेषु सांजलिबन्धे प्रणतिकदम्बाः।
   — "द्विवेदी–युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र", पृ. ७८।
   (ख) श्रीमत्सु कविता कामिनीगृहीतथयवुशेशयेषु धन्यजनुः प्रणतिततयः सन्तुतराम्।"
   —वही—, पृ. ७९।
5. "स्वर्गीय पद्मसिंह शर्मा का पत्र-संग्रह", भारतीय साहित्य, वर्ष-१३, अंक ३-४, पृ. १६९।

पं. श्रीधर पाठक, बाबू बालमुकुन्द गुप्त आदि के पत्रों में लम्बी-लम्बी प्रशस्तियां नहीं मिलतीं। पाठक जी जब आचार्य द्विवेदी को पत्र लिखते थे, तो "श्रद्धेय मित्र," "प्रिय सखे" आदि संक्षिप्त सम्बोधनों का ही प्रयोग करते थे।[1] इसी प्रकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त द्वारा पं. श्रीधर पाठक को लिखे गये पत्रों में "श्रीयुत" "श्रीयुत पंडित जी महाराज" आदि सम्बोधनों का प्रयोग किया गया है।[2]

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी प्रणाम करने वालों को आशीर्वाद न देकर पत्रों में "नमोनमः" लिखते थे।[3] जिससे वे बहुत प्रसन्न होते थे या आत्मीय मानते थे, उसे आयु में छोटा होने पर आशीष देते थे। पं. नन्ददुलारे वाजपेयी ने निराला जी को १ अगस्त १९२९ के पत्र में लिखा था—"द्विवेदी जी का एक पत्र आया था, वे छन्द शास्त्र तथा काव्यानुशासन (कविता के कानून) पर खोज करने की सलाह देते हैं। मुझसे अब शायद कुछ प्रसन्न हैं—इस पत्र में आशीर्वचन लिखा है। पहले नमोनमः लिखते थे।"[4] इस प्रकार पत्रों के सम्बोधनों से प्रेषक और आप्रेषक के सम्बन्धों का सहज ही पता चल जाता है।

छायावादी कवियों के पत्रों में सम्बोधन-वैविध्य की दृष्टि से निराला जी के पत्र विशेष उल्लेखनीय हैं। उनके पत्रों में प्राचीन और नवीन दोनों पत्र-पद्धतियों के अनेक सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। अपनी सास को प्रेषित २२-२-१९२८ के पत्र में उन्होंने लिखा है—"श्री अम्मा, चरण स्पर्श।"[5] यहां पुरानी पत्र-पद्धति को जैसा नया रूप दे दिया है। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी को उन्होंने प्रारम्भ में में जो दो-तीन पत्र लिखे हैं, उनमें प्राचीन सम्बोधन-अभिवादन की प्रणाली स्पष्ट रूप से झलकती है। आचार्य द्विवेदी जी के नाम लिखे २६-८-१९२० के पत्र का सम्बोधन देखिए :

"परम पूजनीय
श्री १०८ महावीरप्रसाद जी
द्विवेदी महाराज,
श्री चरणों मे (में)"[6]

निराला जी जयशंकर प्रसाद को पत्रों में "प्रिय बाबू साहब" अथवा

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १९६-९७।
2. वही-, पृ. २०४-२०५।
3. "द्विवेदी-पत्रावली" पृ. १९६-१९८।
4. "नन्ददुलारे वाजपेयी के पत्र-निराला के नाम", भारतीय साहित्य, वर्ष-१४, अंक ३-४, पृ, १९४।
5. "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ. २४२।
6. "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), पृ. २१५ :

"श्रीमान् बाबू साहब" लिखकर संबोधित करते थे।[1]

प्रसंगानुकूल सम्बोधनों का सबसे रोचक एवं सुन्दर प्रयोग सुमित्रानन्दन पन्त ने बच्चन जी को लिखे पत्रों में किया है। इस सम्बन्ध में बच्चन जी की बीटनिक प्रवृत्ति को लेकर लिखे गये पत्रों के कुछ उदाहरण यहाँ हम प्रस्तुत करते हैं :

(i) प्रिय बीटनिक बच्चन,
क्या सुन्दर अनुप्रास तुम्हारे नाम से मिलता है।[2]

(ii) "प्रिय फ़ैलो बीटनिक",[3]

(iii) "प्रिय बीटनिक-गुरु
फत्ते कवि।
पाँचवें सवार
बच्चन,
नमस्कार।"[4]

सम्बोधन अभिवादन की सुन्दर और संक्षिप्त विधि के अनेक उदाहरण "उग्र" जी द्वारा सम्पादित "फाइल और प्रोफाइल" के पत्रों में भी मिलते हैं। इनमें रामवृक्ष बेनीपुरी द्वारा "उग्र" जी के नाम लिखे गये पत्रों के सम्बोधन-अभिवादन अत्यन्त सुन्दर बन पड़े हैं। कुछ उदाहरण देखिए :

(i) भाई उग्र जी,
राम-राम।"[5]

(ii) "भाई उग्र,
मस्त रहो-भंग छींटो डंड पेलो।"[6]

(iii) "भाई उग्र —
(ओह कितना भयानक तुम्हारा नाम है।)"[7]

हिन्दी के साहित्यकारों ने पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों के नाम भी पत्र लिख भेजे हैं। "चांद" में "अजी सम्पादक जी महाराज, जयराम जी की" के सम्बोधन-अभिवादन से प्रकाशित "दुबे जी की चिट्ठियां" बहुत प्रसिद्ध हैं। किन्तु "सम्पादक जी" सम्बोधन के साथ अभिवादन का अभिनव प्रयोग हमें पं. विद्यानिवास मिश्र द्वारा "सरस्वती" और "कल्पना" के सम्पादकों के पास भेजे गये पत्रों

1. "निराला की साहित्य साधना-भाग-३" (१९७६), पृ. २६६।
2. "पन्त के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७१), पृ. १९१।
3. वही-, पृ. १९३।
4. "वही-, पृ. २२७।
5. "फाइल और प्रोफाइल" (१९७०), पृ. ३१७।
6. वही- पृ. ३१९।
7. वही-, पृ. ३१९।

में मिलता है। "अमरानन्द के पत्र" शीर्षक से प्रकाशित ये पत्र मिश्र जी के विभिन्न निबन्ध-संग्रहों में संकलित हैं। इन पत्रों की विशेषता यह है कि इनमें अभिवादन के रूप में प्रयुक्त शब्द से पत्र का विषय अपने आप प्रकट हो जाता है। जैसे, फागुन की रंगीनी का वर्णन पत्र में करना है तो सम्बोधन-अभिवादन की विधि होगी :

"सम्पादक जी,
जय फागुन।"[1]

इसी प्रकार यदि युद्ध की स्थिति का पत्र में विवरण देना है तो सम्बोधन-अभिवादन की पद्धति इस प्रकार होगी :

'सम्पादक जी",
जय जुद्ध जुद्ध जुद्ध।"[2]

इस प्रकार सम्बोधन-अभिवादन की विशिष्ट विधि के कारण ये पत्र सम्पादक के नाम लिखे गये पत्रों की परम्परा में अपना पृथक् महत्व रखते हैं। "कल्पना" के सम्पादक के नाम लिखे हरिशंकर परसाई के पत्र भी पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं, किन्तु उनमें सम्बोधन-अभिवादन की पद्धति में वैविध्य नहीं है।

सम्बोधन-अभिवादन के विविध प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि युग-प्रतियुग इनकी पद्धति में नये-नये प्रयोग होते रहे हैं। स्थानाभाव और विस्तार भय से हमने कुछ उल्लेखनीय पत्र-लेखकों के ही उदाहरण प्रस्तुत किये हैं। किन्तु हिन्दी में बहुत-से पत्रों में नित्य नूतन सम्बोधनों का प्रयोग किया गया है सम्बोधनों में सर्वाधिक विविधता और आत्मीयता की झलक हमें प्रेम-पत्रों में मिलती है। इस प्रकार के पत्रों में प्रायः नमस्कार "सप्रेम वन्दे" आदि अभिवादन के शब्द प्रयुक्त नहीं किये जाते। प्रेम-पत्रों में प्रयुक्त होने वाले विभिन्न सम्बोधनों के सम्बन्ध में पं. कृष्णकान्त मालवीय का निम्नांकित मत विचारणीय है :

"प्रेम-पत्रों में "मेरी रानी", मेरे हृदय की रानी", मेरे जीवन की सहचरी", "प्राणेश्वरी", स्नेहमयी", "श्रीमतीजी", "प्यारे", प्राणेश्वर", "देवता" आदि सम्बोधन ठीक नहीं हैं। सबसे अच्छा सम्बोधन वह है, जिससे हम उसे रोज पुकारते हों, जो हर समय जबान पर रहता है और जो हमारी जबान पर और उसके कानों पर रमा हुआ हो।"[3]

उर्दू की नयी पीढ़ी के सशक्त प्रतिनिधि कवि तथा हिन्दी के प्रसिद्ध कथाकार राही मासूम रज़ा के एक पत्र का शीर्षक सम्बोधन के रूप में ही है—"प्यारे लिखूं या प्रिय ?"[4] इसी प्रकार अमृता प्रीतम के एक पत्र पर शीर्षक दिया गया

1. "आंगन का पंछी और बनजारा मन" (१९६२), पृ. ९१।
2. "मैंने सिल पहुँचाई" (१९६६), पृ. ९।
3. "मनोहर पत्र" (१९५६), भूमिका, (ट)
4. "ज्ञानोदय" पत्र-विशेषांक, नवम्बर १९६३, पृ. ११३।

है—मेरे महबूब ! तसव्वुर !"[1] अमृता जी के इमरोज के नाम लिखे हुए पत्र सम्बोधन-वैविध्य की दृष्टि से विशेष उल्लेख्य हैं। इन पत्रों में परम्परा से अलग हटकर "मेरे विश्वास",[2]—"मेरे गीतों का जान।"[3] "मेरी तकदीर"[4] "मेरे अच्छे जीती।"[5] मेरे मज़हब।। मेरे ईमान।[6] आदि सम्बोधनों का प्रयोग हुआ है। उनके एक पत्र का प्रारम्भ इस प्रकार है :

"मेरे महबूब। मेरे तसव्वुर।

मेरी सारी ज़िन्दगी मुझे ऐसी लगती है जैसे मैंने तुम्हें एक ख़त लिखा हो। मेरे दिल की हर धड़कन एक अक्षर है, मेरी हर सांस जैसे कोई मात्रा, हर दिन जैसे कोई वाक्य, और सारी ज़िन्दगी जैसे एक खत।"[7]

इससे स्पष्ट होता है कि प्रेम-पत्रों में सम्बोधनों की जो विविधता, आत्मीयता, ताज़गी एवं स्फूर्ति मिलती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

(३) परिचय और हस्ताक्षर की प्रणाली में वैविध्य :

पत्र के सम्बोधन और अभिवादन के साथ परिचय और हस्ताक्षर अंग का घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक से पत्र प्रारम्भ होता है, दूसरे से समाप्त। अंग्रेजी में पत्र के इस अंग को "Complimentary close and Signature" कहते हैं।

प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में पत्र-प्रेषक अपना परिचय उपाधि-सहित प्रारम्भ में ही दे देता था। पत्र के अन्त में "किमधिकं" "किं बहुना" जैसे शब्द कभी-कभी प्रयुक्त होते थे।[8] नवीन पद्धति में सामान्यतः हिन्दी पत्रों में प्रेषक के हस्ताक्षर से पहले "भवदीय," "आपका," "विनीत," "स्नेहाधीन" आदि शब्द प्रयुक्त होते हैं। हिन्दी साहित्यिकों के पत्रों में परिचय और हस्ताक्षर की प्रणाली में भी पर्याप्त नवीनता दृष्टिगत होती है। "फाइल और प्रोफाइल" में "उग्र" जी के नाम लिखे

1. "ज्ञानोदय : पत्र विशेषांक, नवम्बर" १९६३, पृ. ७१।
2. "दस्तावेज़" (१९७८), संपा. इमरोज़, पृ. १३।
3. "दस्तावेज़" (१९७८), संपा. इमरोज़, पृ. १४।
4. वही-, पृ. १७।
5. वही-, पृ. १८।
6. वही-, ६१।
7. "ज्ञानोदय", पत्र-विशेषांक, नवम्बर १९६३, पृ. ७१।
8. देखिए : फोर्ट विलियम कालेज कप्तान श्री मार्शल साहब को लिखा पं. योगध्यान मित्र का पत्र।" आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका पृ. ३६४।

गये विभिन्न साहित्यिकों के पत्र इस दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। कुछ अनूठे उदाहरण यहां हम प्रस्तुत करते हैं :

(i) "छोटा आदमी,
माखनलाल चतुर्वेदी "[1]

(ii) "तुम्हारा अभिन्न चिर प्रसन्न और खिन्न, शिवपूजन"[2]

(iii) "ऊंची दूकान पर फीकी मिठाई बेचने वाले उग्र के प्रेमपाश में बुरी तरह जकड़ा हुआ
श्री प्रफुल्लचन्द्र ओझा"[3]

इस प्रकार प्रत्येक पत्र-लेखक अपना परिचय सम्बोध्य व्यक्ति के सम्मुख उसके तथा अपने व्यक्तित्व के अनुरूप देने का प्रयास करता है।

कविवर पन्त ने बच्चन जी के नाम लिखे पत्रों में जहां प्रसंगानुकूल सम्बोधन विधि का प्रयोग किया है, वहां तदनुरूप अपना परिचय भी दिया है। यथा

(i) "साईं दा
तुम्हारा बीटनिक डिसाइपल""[4]

(ii) "बहुत प्यार-बीटनिक प्यार
तुम्हारा शिष्य
साईं दा"[5]

इससे प्रकट होता है, सम्बोधन विधि के अनुरूप परिचय-पद्धति का प्रयोग पत्र में अनूठा आकर्षण उत्पन्न कर देता है।

परिचय-हस्ताक्षर के वैविध्य से पत्र-लेखक तथा भावग्राहक की मनः स्थिति का संकेत भी मिलता है। इस दृष्टि से राय कृष्णदास जी द्वारा लिखित जयशंकर प्रसाद के नाम पत्रों की अभिनिवेदन-प्रणाली विशेष रूप से उल्लेखनीय है। कुछ उदाहरण यहां हम प्रस्तुत करते हैं :

(i) "अभिन्न
कृष्णदास"[6]

(ii) "संतप्त—हृदय
कृष्णदास"[7]

---

1. "फाइल और प्रोफाइल" (१९७०), पृ. २८७।
2. वही-, पृ. ३५९।
3. वही-, पृ. २०३।
4. "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ. १९२।
5. वही-, पृ. १९३।
6. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ. १८।
7. वही-, पृ. १९।

(iii) "कभी भवदीय, अब विस्मृत
कृष्णदास"[1]

(iv) "समदु:खित
कृष्णदास"[2]

इस प्रकार पत्र-साहित्य में लेखन-पद्धति के वैविध्य की चर्चा में परिचय-हस्ताक्षर अथवा अभिनिवेदन की प्रणाली में प्राप्त वैविध्य का भी अपना विशेष महत्व है।

(४) "पुनश्च" में उद्घाटित तथ्यों में वैविध्य :

"पुनश्च" का सम्बन्ध पत्र के अन्त से है। सामान्यत: पत्र में हस्ताक्षर के बाद कुछ नहीं लिखा जाता, किन्तु यदि कोई बात लिखने से छूट गयी हो और पत्र समाप्ति के बाद याद आये तो नीचे नवीन पंक्ति में "पुनश्च" लिखकर लिपिबद्ध की जाती है। अंग्रेजी में इसे "पोस्ट स्क्रिप्ट" कहते हैं। हिन्दी के अनेक पत्र-लेखकों ने "पुनश्च" के अन्तर्गत कलात्मक रीति से महत्वपूर्ण तथ्यों का उद्घाटन किया है।

प्राचीन पत्र-लेखन पद्धति में "पुनश्च" का उल्लेख नहीं मिलता, यद्यपि हस्ताक्षर के बाद पत्रों में कई सूचनाएं दी गई हैं। पत्रों में "पुनश्च" लिखने की परिपाटी पाश्चात्य जगत् के सम्पर्क में आने के बाद ही चल पड़ी है।

भारतेन्दु-युग के पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों में हस्ताक्षर के बाद नीचे नवीन पंक्ति में छूटी हुई बात या महत्वपूर्ण तथ्य की सूचना तो दी है, परन्तु "पुनश्च" शब्द का प्रयोग नहीं किया है। स्वामी दयानन्द सरस्वती के कई पत्रों में हस्ताक्षर के बाद नीचे नवीन पंक्ति में महत्वपूर्ण तथ्यों की जानकारी दी गयी है। उदाहरण के लिए संवत् १९३२ श्रावण सुदि ८ को अहमदाबाद के न्यायाधीश पं. गोपालराव हरि देशमुख के नाम लिखे गये पत्र की ये पंक्तियां देखी जा सकती हैं :

"यहां के पंडित लोग सामने तो कोई भी नहीं आये, किन्तु दूर से बड़-बड़ किया करते हैं सो जानना।"[3]

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पत्रों में भी प्राय: "पुनश्च" के उल्लेख के बिना हस्ताक्षर के बाद नीचे नवीन पंक्ति में विशेष सूचना लिख दी गयी है। पं. राधाचरण गोस्वामी के नाम लिखे एक पत्र में समाप्ति के बाद मूसलधार वर्षा का समाचार उन्होंने इस प्रकार लिख दिया है :

---

1. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ. २०।
2. वही-, पृ. २१।
3. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. २७।

"आज सवेरे यहां घनघोर वृष्टि हो रही है।"[1]

द्विवेदी-युग के पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों में कहीं "पुनश्च" शब्द का प्रयोग किया है तो कहीं बिना इस शब्द-प्रयोग के ही छूटी हुई बात लिख दी है। बाबू-बाल मुकुन्द गुप्त द्वारा पं. श्रीधर पाठक के नाम प्रेषित १७-१-१८८१ के पत्र की समाप्ति के बाद निम्नलिखित वाक्य मिलता है :

आपने जो नया पता लिखा था, वह खो गया। फिर लिखिए।"[2]

इस पत्र में "पुनश्च" शब्द का प्रयोग नहीं है।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के बहुत-से पत्रों में "पुनश्च" शब्द का स्पष्ट उल्लेख हुआ है और उन्होंने "पुनश्च" के अन्तर्गत कहीं सामान्य सूचना[3] तो कहीं विशेष सूचना[4] लिखकर पत्र भेज दिया है।

महाकवि निराला ने आचार्य द्विवेदी के नाम लिखे ११-१-१९२१ के पत्र में हस्ताक्षर के बाद "पुनश्च" लिखे बिना (हिन्दी सिखाइए) इति॥"[5] यह छोटा-सा वाक्य जोड़ दिया है।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को प्रेषित एक पत्र में मुंशी प्रेमचन्द ने "पुनश्च" में चतुर्वेदी को पुनर्विवाह के लिए प्रेरित करते हुए एक महत्वपूर्ण तथ्य का उद्घाटन कर दिया है।[6]

पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी अपने कई पत्रों में "पुनश्च" के अन्तर्गत बहुत महत्वपूर्ण तथ्यों को अनूठे ढंग से व्यक्त कर दिया है। डा. प्रभाकर माचवे को लिखे १०-१-१९७१ के पत्र में उन्होंने पत्र के दीर्घाकार हो जाने की बात को प्रसिद्ध आंग्ल पत्र-लेखक पेनी के कथन द्वारा बड़े ही लाक्षणिक ढंग से

1. "भारतेन्दु-ग्रंथावली भाग-३" (सं. २०१० वि.), पृ. ९७१।
2. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. २०७।
3. "माफ कीजिए हमने इस टुकड़े ही पर आपको यह पत्र लिख दिया।"
—द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ. ६८।
4. "स्वप्न के विषय में क्या लाला साहब ने कुछ लिखा है जो आपने कहा "कि लाला सीताराम का उत्तर यही है कि कुछ अच्छे तरजुमा करनेवाले पैदा हों और अच्छा अनुवाद करें" शायद उनकी तरफ से आपने उत्तर दिया है।"
—"बालमुकुन्द गुप्त —स्मारक-ग्रंथ" (१९५०), पृ. १२६।
5. "निराला की साहित्य-साधना" भाग-३, (१९७६), पृ. २१६।
6. "आप अपना घर क्यों नहीं बसाते, संन्यास ले रहे हैं जब कि आपको गृहस्थ होना चाहिए। भला हो विधवा—विवाह का, आपको अपने लिए कन्या पाने में कोई कठिनाई न होगी। संयम एक वरदान है मगर हत्या करना अभिशाप।........"
—"चिट्ठी-पत्री" भाग-२ (१९६२), पृ. ८७।

लिपिबद्ध कर दिया है ।[1]

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों में "पुनश्च" के अन्तर्गत जो विचार प्रकट किये गये हैं, वे उनके चिन्तनशील व्यक्तित्व के परिचायक हैं । पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे उनके पत्रों में हमें ऐसे अनेक विचारोत्तेजक "पुनश्च" की झलक मिल जाती है ।[2] ये "पुनश्च" प्रायः दीर्घाकार हैं ।

पत्रों में "पुनश्च" का सर्वाधिक प्रयोग सुमित्रनन्दन पन्त ने किया है। बच्चन जी के नाम लिखे गये पत्रों में उन्होंने अनेक स्थानों पर लघु और दीर्घ "पुनश्च" से सहायता ली है और उनमें अनेक विषयों की सूचनाएं दी हैं ।[3]

बच्चन जी के पत्रों में भी हमें "पुनश्च" के अन्तर्गत कभी-कभी रोचक सूचना और तथ्य का पता चल जाता है । निरंकार देव सेवक के नाम भेजे गये ७-६-१९५१ के पत्र में उन्होंने हस्ताक्षर के बाद अपने अध्ययन कक्ष की जानकारी, दार्शनिक ढंग से, इन शब्दों में दी है :

"मैंने अपने अध्ययन कक्ष का नाम "दशद्वार" रखा है। तुम उसमें ठहरे थे। इसमें दस Openings हैं—कबीर का दोहा याद है ?—"दस द्वारे का पींजरा तामें पंछी पौन । रहबे को आचरज है, जाय तो अचरज कौन ।"[4]

इस प्रकार हिन्दी के प्रमुख पत्र-लेखकों के पत्रों में "पुनश्च" के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण तथ्यों का संकेत प्राप्त होता है । अतएव पत्र-लेखन पद्धति सम्बन्धी

---

1. "इतनी लम्बी चिट्ठी भेजने के बाद मुझे Pliny का वाक्य याद आ गया—

"I have no time to write you a short letter, therefore, have written you a long one"

—"डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. २५६ ।

2. द्रष्टव्य : "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ. १५२ ।

3. (क) "नरेन्द्र को भी फोन से बतला देना ।"

—"बच्चन के नाम पंत के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ. ३१ ।

(ख) "हो सका तो, सर्दी अधिक नहीं रही तो —२३ की शाम को चलकर २४ को सबेरे पहुँचने का प्रयत्न करूंगा । कलम का सिपाही भी लेता आऊंगा—तुम तो कलम बंदूक दोनों चलाते हो—सिपाही भी रहे ही हो यदि बुली को सिपाही कहा जा सके तो—"

—वही-, पृ. ५३ ।

(ग) "सुप्रेम मत लिखा करो—आइस्ड पेस्ट्री सा लगता है—प्यार भेजा करो—" वही, पृ. ६८ ।

(घ) "श्री पित्ती जी ने "उर्वशी" पर सम्मति मांगी है—कल तक भेज दूंगा ।" -वही-, पृ. ८८ ।

4. "बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ. २६ ।

विशेषताओं की चर्चा में "पुनश्च" के अन्तर्गत उद्घाटित विविध तथ्यों पर भी किंचित् प्रकाश डाला गया है।

पत्र के रचना-तन्त्र की दृष्टि से हमने उसके जिन चार अंगों—(१) शीर्षक या सिरनामा, (२) प्रारम्भ, (३) विषय-वस्तु और (४) अन्त—का पीछे विश्लेषण किया था, इनमें विषय वस्तु को छोड़कर शेष तीनों अंगों की लेखन-पद्धति के वैविध्य का यहां विस्तार से विवेचन किया है। अब हम विषय की दृष्टि से पत्रों को औपचारिक और अनौपचारिक—इन दो विभागों में बांटकर आगे औपचारिक पत्रों की लेखन-पद्धति की चर्चा करेंगे। अनौपचारिक पत्रों में सम्बोधन, अभिवादन आदि का विधि-विधान तो रहता है, किन्तु उसके विषय प्रतिपादन के सम्बन्ध में कोई निश्चित सिद्धांत नहीं है। अतः कुछ औपचारिक पत्रों की लेखन-पद्धति में प्राप्त वैविध्य का परिचय दिया गया है।

(५) औपचारिक पत्रों की लेखन-पद्धति में वैविध्य :

पत्रों के सामान्यतः दो प्रकार माने गये हैं:—एक औपचारिक पत्र और दूसरे अनौपचारिक पत्र। व्यावहारिक और सार्वजनिक विषयों पर लिखे गये पत्र औपचारिक कहलाते हैं तथा वैयक्तिक एवं पारिवारिक मामलों पर लिखे गये पत्र अनौपचारिक कहलाते हैं। साहित्य में जिन पत्रों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है, वे प्रायः वैयक्तिक पत्र ही हैं। हिन्दी पत्र-साहित्य में कुछ ऐसे पत्र भी उपलब्ध होते हैं जो सामान्यतः औपचारिक पत्र समझे जाते हैं। निमंत्रण पत्र, सहानुभूति पत्र, बधाई पत्र आदि ऐसे ही पत्र हैं। परन्तु साहित्यिकों द्वारा लिखे जाने पर इन पत्रों की पद्धति में पर्याप्त वैविध्य आ गया है। एक ही विषय पर दो विभिन्न साहित्यिकों द्वारा भेजे गये निमन्त्रण-पत्रों की पद्धति में कुछ अन्तर स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ता है। महान् कलाकार की लेखनी के स्पर्श से रूढ़ पत्र-प्रकारों में कितनी विविधता और नवीनता आ गयी है, इसका परिचय यहां निमंत्रण-पत्र, सहानुभूति-पत्र और बधाई पत्रों के कुछ नमूनों को देखने से मिलता है।

(i) निमन्त्रण-पत्र :

हम जीवन में अनेक अवसरों पर अपने ईष्ट-मित्रों, परिचितों, परिजनों आदि को निमन्त्रण-पत्र लिखते हैं। ये पत्र औपचारिक शैली में भी लिखे जाते हैं और अनौपचारिक शैली में भी। साहित्यिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि विविध क्षेत्र के प्रसिद्ध व्यक्ति भी अपने ईष्ट-मित्रों, स्वजन-परिजनों आदि को निमंत्रण-पत्र लिखते हैं। किन्तु निमंत्रण पत्रों की शैली सामान्य व्यक्तियों के निमंत्रण-पत्रों से भिन्न होती है। यही नहीं, दो साहित्यिकों के निमंत्रण-पत्रों की शैली में भी विभिन्नता लक्षित होती है। उदाहरण के लिए यहां हम एक साहित्यकार (जयशंकर प्रसाद) के नाम लिखित दो साहित्यकारों (राय कृष्णदास तथा सुमित्रानन्दन पन्त) के निमंत्रण-पत्रों के कुछ अंश उद्धृत करते हैं।

राय साहब प्रसाद जी को अपने यहां पधारने का निमंत्रण देते हुए लिखते हैं :

"प्रिय—

आइए। अवश्य आइए।

अनुग्रह पूर्वक आइए। कृपा पूर्वक आइए। दया पूर्वक आइए। प्रेम पूर्वक आइए। स्नेह पूर्वक आइए। प्रसन्नतापूर्वक आइए। मानपूर्वक आइए। अभिमानपूर्वक आइए। भावपूर्वक आइए। भंगीपूर्वक आइए। अदा से आइए। नखरे से आइए। नाज़ से आइए। अन्दाज से आइए। साज से आइए : आइए.................. आइए.........

दादाजी के आग्रह से आइए। केशव जी के आग्रह से आइए। देसाई जी के आग्रह से आइए। सेठ जी के आग्रह से आइए। सबर बाबू के आग्रह से आइए और....... इस जन के आग्रह से आइए।"[1]

पन्त जी प्रसाद जी को हिन्दुस्तानी एकेडेमी की लिटररी कान्फरेंस में पधारने का निमन्त्रण देते हुए लिखते हैं :

"हिन्दुस्तानी एकेडेमी से आपको निमन्त्रण पत्र भेजा गया है, मेरा अपना भी आग्रहपूर्ण विनीत अनुरोध है कि आप उस अवसर यहां—प्रयाग - आकर सम्मेलन की शोभा एवं मेरे हृदय का आनन्द बढ़ाइए—मेरे मित्र मिस्टर टंडन की प्रार्थना है कि आप यहां हमारे ही साथ ठहरें। हम दोनों विशेष अनुगृहीत होंगे—

आपकी सहृदयता तथा सौजन्य पर मेरा अत्यधिक विश्वास है। मुझे पूर्ण आशा है कि आप मेरी विनीत प्रार्थना स्वीकार कर मुझे चिर कृतज्ञता एवं स्नेह के पाश में समेट कर बांध लेंगे। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदीजी से सुन चुका हूं कि आप काशी से बाहर बहुत कम जाते हैं पर फिर भी न जाने क्यों, मेरा विश्वास है कि आप अवश्य ही हिन्दुस्तानी एकेडेमी के सम्मेलन के अवसर पर यहां आने की कृपा करेंगे—

विशेष कृपा—"[2]

ये दोनों निमन्त्रण पत्र हैं और दोनों एक ही व्यक्ति के पास भेजे गये हैं, किन्तु दो अलग अलग व्यक्तियों द्वारा लिखे जाने के कारण दोनों की शैली में कुछ अन्तर आ गया है। आग्रह और अनुरोध का भाव दोनों में हैं, किन्तु प्रथम पत्र के आग्रह-अनुरोध में अपेक्षाकृत अधिक तीव्रता दिखाई पड़ती है।

इसी प्रकार एक ही विषय पर विभिन्न व्यक्तियों द्वारा लिखे गये निमंत्रण पत्रों की शैली भी वैविध्यपूर्ण होती है। पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादक विभिन्न साहित्यकारों को रचनाएं भेजने के लिए निमंत्रण पत्र यदाकदा लिखते

1. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ. २२-२३।
2. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ. १८६।

रहते हैं । पत्रिका के प्रथमांक के लिए विशेष रूप से निमंत्रण पत्र भेजने पड़ते हैं। कुछ सम्पादक ऐसे निमंत्रण-पत्र छपवाकर रख लेते हैं। जैसे "माधुरी" के सम्पादक कृष्णबिहारी मिश्र ने साहित्यिकों को रचनाएं भेजने के लिए "माधुरी" कार्यालय के मुद्रित पत्र पर यह दोहरा छपाकर रखा था :

"करहु कृपा समरथ बड़े उचित भाव नहिं अन्य :
कविता दे अपनाइए होहि माधुरी धन्य ॥"[1]

सन् १८८५ ई. में लाला सीताराम ने "भारतोदय" नामक एक दैनिक निकाला था। २१ अप्रैल, १८८५ को श्री राधाकृष्णदास के नाम प्रेषित पत्र में "भारतोदय" को रचनात्मक सहयोग देने का निमंत्रण भेजते हुए उन्होंने लिखा था :

प्रिय मित्र,

कुछ देखा सुना ? "भारतोदय" का जन्म जन्माष्टमी को है। यह नित्यमेव प्रकाश करेगा, केवल रविवार को नहीं। लो बस, लेखनी सुधारो, कागज उगाओ। लेखों की मारामारी से, नागरी की इस क्यारी में तुम भी न्यारी ही कर लो। यह चारों यारों राधाकृष्ण, चरण, प्रताप, राय—की चार यारी है। अपने मन के गट्ठे खोलो। लिखो, कहां तक लिखोगे। प्रिय, यदि आज्ञा हो तो निःसहाय हिन्दू को ही, प्रथम "भारतोदय" में प्रकाशित कर डालें ।"[2]

यह भी एक प्रकार का निमंत्रण पत्र ही है, परन्तु इसकी शैली में अनौपचारिकता एवं आत्मीयता का पुट कुछ अधिक मिलता है।

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि निमंत्रण-पत्र, पत्र का एक रूढ़ प्रकार होते हुए भी विशिष्ट लेखकों की लेखनी से इसकी शैली में पर्याप्त विविधता आ गयी है।

(ii) सहानुभूति-पत्र :

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में अनेक अवसर आते हैं। जब वह निराश होकर अपने मित्रों, साथियों, स्वजनों की सहानुभूति का आश्रय पाना चाहता है। तब मित्रों और सगों का परम कर्तव्य हो जाता है कि वे उसकी निराश घड़ियों में सान्त्वना प्रदान करने के उद्देश्य से पत्र लिखें। किसी कार्य में असफलता, बीमारी, मृत्यु आदि करुण अवसरों पर ये पत्र लिखे जाते हैं।[1] यद्यपि इन पत्रों में सम्वेदना-भाव ही मुख्यतः प्रकट किया जाता है, किन्तु विशिष्ट पत्र लेखकों के पत्रों में इसके

---

1. (क) "निराला की साहित्य-साधना"-३ (१९७६) पृ. ८३।
   (ख) यही दोहा 'प्रसाद के नाम पत्र" में (पृ. ३३ पर) कुछ पाठ-फेर से इस प्रकार है—
   "करिके कृपा समरथ सदा उचित बात नहीं अन्य,
   रचना दे अपनाइए होय "माधुरी" धन्य ।"
2. "पत्रकार प्रेमचन्द और हंस (१९७७), पृ. ७८ से उद्धृत।
3. "आदर्श पत्र लेखन" (१९७४), यज्ञदत्त शर्मा, पृ. ५३।

प्रगटीकरण की पद्धति में विविधता आ गयी है। कुछ उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

महाकवि निराला जी छतपुर पहुँचकर मियादी बुखार के चंगुल में फँस गये थे। इस बीमारी ने उन्हें बहुत परेशान किया। मुंशी प्रेमचन्द जी को जब इस बीमारी के समाचार मिले तो उन्होंने एक प्यार भरा संवेदना-पत्र भेजते हुए निराला जी को लिखा :

"प्रिय सूर्यकांत जी।

कृपापत्र मिला। मियादी बुख़ार क्या इसीलिये आपकी ताक में बैठा था कि घर से निकलें तो धर दबाऊं। किस्मत ने वहां भी आपका साथ न छोड़ा। इस बीमारी ने तो आपको बिलकुल धुला डाला होगा। पहले ही ऐसे कहां के मोटे ताज़े थे। ईश्वर जल्द आपको चंगा कर दे।"[1]

प्रेमचन्दजी का यह सहानुभूति-पत्र सामान्य सम्वेदना पत्रों से भिन्न शैली का परिचय देता है।

अब देखिए—बीमारी की अवस्था में सांत्वना देता हुआ "एक भारतीय आत्मा" की कलम से लिखा गया पत्र। यह पत्र उन्होंने १६-५-१९६० को श्री नर्मदाप्रसाद खरे के नाम लिखा था। पत्र लम्बा है। अतः यहां उसकी प्रारम्भिक और अंतिम पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं।

प्रिय नर्मदा,

शुभाशीष।

तुम्हारा कार्ड पढ़कर और यह जानकर बहुत चिन्ता हुई कि तुम जबलपुर के विक्टोरिया अस्पताल में हो। जाने तुम्हारी उम्र के लोगों को अपने पर बुढ़ापा ओढ़ लेने की कैसी आदत है ? मेरा विचार है कि तुम्हें क्षय हो ही नहीं सकता, भला हँसता हुआ चेहरा और चुहल की आदत कहीं बीमार होने के लिए हैं ? ....

माना कि यह जीवन "यह ला, वह ला" का विशाल पिंजरा है, किन्तु उसे प्रार्थना का देव-मन्दिर बनाना तो पड़ेगा ही, वह चाहे रीझकर बनावें चाहे खीझकर। ....कबीर कहा करते हैं "जहां-जहां डोलौं सोई करमा"—तुम इसकी जगह चाहे जो लिख लो, किन्तु फौरन से पेश्तर अच्छा हो जाओ।"[2]

इस सान्त्वना-पत्र की शैली उपर्युक्त प्रेमचन्द जी के सम्वेदना-पत्र से भिन्न है यद्यपि विषय एक ही है।

अब इष्ट-मित्रों के स्वजनों की मृत्यु का सम्वाद पाकर लिखे गये सहानुभूति पत्र के शैली-वैविध्य पर दृष्टिपात करें।

---

1. "निराला की साहित्य-साधना"-३ (१९७६), पृ. ११७।
2. "निजी पत्रों में दादा का व्यक्तित्व", "रसवन्ती", अक्टूबर १९६८, पृ. ७०।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी की पत्नी के निधन पर शोकसम्वेदना प्रकट करते हुए महात्मा गांधी ने लिखा था :

"भाई बनारसीदास,

तुम्हारी धर्मपत्नी के देहान्त की खबर भाई काशीनाथ ने दी है। तुम्हारे शीर पे यह बड़ी ग्रापत्ती ग्राई है। मृत्यु से तो हमने डर को छोड़ ही दिया है। दु:ख स्वार्थ का है परन्तु इससे भी दु:ख क्यों मानें ? ऐसी घटनाएं जगत में बनती ही रहती हैं। ये सब घटनाएं हमारी परीक्षा का काल है। हमने परिश्रम करके जो ज्ञान पाया है, वह हृदयंगम हुग्रा है या नहीं उसकी कसौटी ऐसे मौके पर हो सकती है। ईश्वर तुमको शांति बक्षे।"[1]

पू. बापू द्वारा प्रकट की गई इस शोक-सम्वेदना में दार्शनिकता की झांकी मिलती है जो उनके संत-स्वभाव के ग्रनुकूल है। इसी विषय पर जब हम डा. वासुदेवशरण अग्रवाल द्वारा व्यक्त की गयी शोक-सम्वेदना को देखते हैं तो हमें शैली में तटस्थता के स्थान पर कुछ ग्रात्मीयता की झलक मिलती है। श्री कृष्णानन्द गुप्त की पत्नी के देहावसान पर उन्होंने जो पत्र गुप्त जी को लिख भेजा था, वह इस प्रकार था :

प्रिय श्री कृष्णानन्द जी,

२६-७-५५ का पत्र मिला। ग्रापके ऊपर पड़ी भारी विपत्ति के लिए मैं संवेदना प्रकट करता हूँ। पत्नी विरह मानव के लिये दु:ख का ग्रन्त:रूप है। सरसता से चलता हुग्रा जीवन क्रम जीवन सहचरी के ग्रभाव में उलझ जाता है, नई समस्याएं खड़ी कर देता है। ऐसी परिस्थिति में ग्रपने-ग्राप को संभाले रहने के लिये भारी धीरज की ग्रावश्यकता होती है। ईश्वर करे ग्रापको ग्रपने ग्रन्त:करण में वह धीर भाव प्राप्त हो[2]

ग्रन्त में इस विषय पर एक भुक्त-भोगी साहित्यकार द्वारा लिखे गये पत्र को देखिए। पत्र कवि बच्चन[3] द्वारा निरंकारदेव सेवक को लिखा गया है। पत्र का प्रारम्भ ग्रौपचारिक है, परन्तु यह ग्रौपचारिकता क्रमश: घटती हुई ग्रन्त में ग्रात्मीयता एवं व्यावहारिक सूझ-बूझ की झलक दे जाती है :

प्यारे भाई,

ग्रस्वस्थ होने के कारण युनि. बन्द होने के एक मास पूर्व ही मैं छुट्टी लेकर पहाड़-चला गया था। लौटने पर तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर जी धक्क से हो गया।

सरला इस संसार में नहीं रहीं। भगवान उनकी ग्रात्मा को शान्ति दे, तुम्हें धीरज। मुझे तो उनका वही रूप-याद है—याद है होली का दिन था। हम

1. "फिरोजाबाद सन्देश", पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ग्रभिनन्दन-अंक, पृ. २२।
2. "डा. वासुदेवशरण ग्रग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ. ५३।
3. "बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ. १९।

तुम, रामजी खाट पर बैठे थे, खाने के साथ-साथ कविता पाठ भी हो रहा था, सरला भांति-भांति के व्यंजन बनाकर हमें परोस रही थीं, कितनी प्रसन्नता उनके चेहरे पर थी। आज सहसा वह चित्र मुझे फिर-फिर याद आ जाता है। मनुष्य स्मृतियां संजोने के सिवा कर ही क्या सकता है। मैं भुक्त-भोगी हूँ—तुम्हारी दशा का अनुमान कर सकता हूँ। प्यारे भाई, संवेदना प्रथा है केवल, अपने हाथों के सिवा अपना आंसू पोंछने में कोई समर्थ नहीं होता।"

इस प्रकार इन पत्रों की लेखन-पद्धति में भी पर्याप्त विविधता मिलती है।

(iii) बधाई-पत्र :

बधाई पत्र हम अपने ईष्ट-मित्रों एवं स्वजनों की सफलता पर, किसी विशिष्ट त्यौहार पर, जन्म-दिवस पर, नववर्ष आदि अवसरों पर भेजते हैं। अन्य रूढ़िगत पत्रों की भांति यह भी एक रुढ़-पत्र है, परन्तु इसकी शैली भी लेखक के व्यक्तित्व के अनुरूप विविध रूप धारण कर लेती है। यही नहीं, एक ही व्यक्ति द्वारा एक ही विषय पर भिन्न-भिन्न समय में लिखे गये पत्रों में शैली का रूप बदलता हुआ दिखता है। उदाहरणार्थ कविवर सुमित्रानन्दन पन्त द्वारा बच्चन जी के जन्म-दिवस पर लिखे गये ३०-११-१९५७ तथा १४-११-१९६४ पत्रों के निम्नांकित अंश अनुक्रम से द्रष्टव्य हैं :

(१) "तुम्हारे ५१ वे वर्षगांठ के अवसर पर शरीर से न आ सका, मन से वहीं था। तुम्हें मेरी बहुत-बहुत शुभकामनाएं (१) पोएट लौरिएट बनो (२) नोबल प्राइज़ मिले (३) बहुत बहुत लम्बी उम्र हो, १२५ साल (४) बहुत बड़ा मकान बनाओ (जिसमें एक कमरा मेरा भी रहे)[1]

(२) "तुम्हारा जन्म दिवस अब के उच्च स्तर पर दिल्ली वाले मना रहे हैं—शास्त्री जी उद्घाटन करेंगे—यह जानकर बहुत प्रसन्नता हुई। मेरी हार्दिक अगणित बधाइयां तथा शुभ-कामनाएं लो। शेष आयु में जो अभी कम से कम ५० साल की होगी तुम खूब लिखो पढ़ो—१-२ दर्जन महाकाव्य, अनगिनती लोकगीत और मुक्त काव्य लिखो—भोजन कम करो, भजन अधिक करो—यद्यपि माइण्ड ही ही अल्टीमेट रिअलिटी है, बकौल तुम्हारे।[2]

इसी प्रकार बच्चन जी द्वारा नववर्ष की शुभकामनाओं के लिए डा. जीवनप्रकाश जोशी के नाम १६-१-१९५८ तथा १-१-१९६३ को प्रेषित पत्रों के निम्न अंश एक जैसे होते हुए भी कथन की अभिव्यक्ति की दृष्टि से भिन्न हैं :

(१) "नए वर्ष की शुभकामनओं के लिये आभारी। मैं भी कहूं :

वर्ष नव
हर्ष नव

1. "कवियों में सौम्य संत" (१९६०), पृ. ८५।
2. "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ. १८०।

जीवन उत्कर्ष नव।"[1]

(२) "१९६३
यह वर्ष
निराश-निशा देश की दूर करे।
नव किरण
तुम्हारे आंगन में नवज्योति भरे।"[2]

इन उदाहरणों से स्पष्ट होता है कि रूढ़-पत्र भी सिद्धहस्तकलाकार की लेखनी के स्पर्श से नवीनता और विविधता की छटा धारण कर लेते हैं। अतः सामान्य पत्रों से ये कहीं अधिक मोहक एवं रोचक प्रतीत होते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि पत्र के रूप-विधान में समय-समय पर अनेक परिवर्तन होते रहे हैं। आधुनिक युग में हिन्दी साहित्यिकों ने ईष्ट-मित्रों को जो पत्र लिख भेजे हैं, वे शिल्प की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यद्यपि ये पत्र प्रयास पूर्वक या प्रकाशन की दृष्टि से नहीं लिखे गये हैं, किन्तु अपनी सहज और सुन्दर लेखन-पद्धति के कारण प्रकाश में आकर सर्व सुलभ बन गये हैं।

हिन्दी पत्र-साहित्य में भाषा-विधान :

पत्र-साहित्य की एक विधा है। पत्र की भाषा सामान्यतः सरल, स्वाभाविक और वार्तालाप की ध्वनि से युक्त होती है। यद्यपि अनेक हिन्दी कवियों ने अपने ईष्ट-मित्रों तथा आत्मीयजनों को पद्य में भी पत्र लिखे हैं, किन्तु पत्र-लेखन के लिए गद्य ही सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम है। यति, गति और मात्रा के बन्धन के कारण पद्य-पत्रों में कुछ कृत्रिमता आ जाती है। पं. किशोरीदास वाजपेयी ने आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को कुछ पद्य-पत्र लिखे थे। इन पत्रों के उत्तर में आचार्य द्विवेदी ने उनको लिखा था :

"..........आपने तो पद्य-पत्रों का तांता बांध दिया। १७ ता० का भी पत्र मिला। आप भावमयी कविता कर सकते हैं। आजकल के कितने ही तुक्कड़ आपके सामने कोई चीज़ नहीं। कविता का प्रकाशन अब शुरू कर दीजिए। मगर मुझे जब कभी लिखना गद्य में ही लिखना। गद्य में बिना प्रयास जी खोलकर लिखने को मिलता है।"[3]

इस प्रकार पत्र के लिए गद्य-भाषा ही उपयुक्त माध्यम है। हिन्दी में प्राचीनकाल से अब तक का जो पत्र-साहित्य प्रकाशित हुआ है, वह हिन्दी के रूपात्मक विकास के अध्ययन की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

हिन्दी का प्राचीन पत्र-साहित्य हिन्दी की विभिन्न बोलियों में ही मिलता है। सबसे प्राचीन पत्र राजस्थानी में मिलते हैं। ब्रजभाषा का प्राचीन पत्र-साहित्य

---

1. "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ. ४५।
2. -वही-, पृ. ६२।
3. "आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी" (१९६५), पृ. ३९।

राधावल्लभ सम्प्रदाय के हितहरिवंश जी के नाम से प्रसिद्ध दो श्रीमुख पत्रियों में ही मिलता है और इन पत्रियों की भाषा भी अर्वाचीन शैली के निकट जान पड़ती है। खड़ी बोली गद्य की छटा हमें महाराजा छत्रसाल के पत्रों में विशेष रूप से मिलती है। मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित १८ वीं शती के हिन्दी पत्र तथा ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भिक काल में नागरी अक्षरों में लिखे गये पत्रों में भी खड़ी बोली के अनेक शब्द-रूप उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार पत्रों में हिन्दी के प्राचीन स्वरूप की स्पष्ट झलक मिलती है। इस दृष्टि से प्राचीन और आधुनिक पत्र-साहित्य में भाषा-विधान को समझने के लिए पत्रों में प्रयुक्त शब्द-रूपों, वाक्यों, मुहावरों, कहावतों आदि का अध्ययन समीचीन होगा।

(१) शब्द रूप :

हिन्दी पत्र-साहित्य में तत्सम, तद्भव, उर्दू, फारसी, अरबी, अंग्रेजी आदि के शब्द पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। राजस्थानी-पत्रों में पुराने ढंग के सविभक्तिक और अनुस्वारान्त पद—"वचनायतुं," "करणनूं" आदि के साथ अर्वाचीन शब्द-रूप वांचजौ, करजो आदि भी मिलते हैं। उदाहरण के लिए "परम्परा" में प्रकाशित सबसे पुराने संवत् १६७१ के पत्र का निम्नांकित अंश देखिए :

"........कुंवर श्री गजसिंघजी वचनायतुं पढ़ियार मीवां दोसे सुपरसाद वांचजौ।........बीजोई करणनूं न लागै छै।"[1]

इससे प्रकट होता है कि प्राचीनभाषा में सविभक्तिक और अनुस्वारान्त पद प्रयुक्त होते थे।

मराठी क्षेत्र से सम्बन्धित १८ वीं शती के हिन्दी पत्रों का भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से विस्तार पूर्वक अध्ययन डा. काशिनाथ शंकर केलकर ने अपने "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" शीर्षक शोध प्रबन्ध में किया है। ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्रारम्भिक शासनकाल से सम्बन्धित हिन्दी पत्रों के शब्द-रूपों का परिचय डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय ने अपने "ईस्ट इंडिया कम्पनी के प्राचीन पत्रों की भाषा का स्वरूप" शीर्षक लेख में दिया है। इस लेख में शब्दावली की चर्चा में उन्होंने लिखा है कि :

"प्रस्तुत पत्रों में तद्भव शब्दावली प्रधान है। संस्कृत, फारसी, अरबी, के अनेक शब्द आये हैं किन्तु हिन्दी या हिन्दुस्तानी का भेष धारण करके और एक ओर जहां परजा, आगामी, इति, तुरन्त, सामर्थ, संतान आदि आते हैं तो दूसरी ओर एजेन्ट, कलेकटर, मजसटरेट, इस्तहार, कम्पनी शब्द भी दिखाई पड़ते हैं। प्रादेशिक बोलियों के शब्दों का भी इन पत्रों में स्वागत हुआ है। इश्तहारों और इकरारनामों में शब्दों का बाहुल्य है जो कम्पनी सरकार की फारसी न छोड़ने की

1. "परम्परा" भाग-२४ १९६७, पृ. १-२।

नीति का द्योतक है।"[1]

हिन्दी पत्रों में एक ही शब्द के लिए विविध रूप भी मिलते हैं। प्राचीन-कालीन पत्रों में तो ऐसा अनेक स्थानों पर हुआ है, क्योंकि पत्र लिखने वाले लोग सतर्क नहीं थे। अर्वाचीन युग के आरम्भ तक हिन्दी गद्य का रूप निश्चित नहीं हुआ था। स्वामी दयानन्द सरस्वती के पत्रों में भी पत्र लिखने वालों ने कहीं "दानापुरा" का "दीनापुर" कर दिया है।[2] यह तो पत्र लिखने वालों का प्रमाद कहा जायेगा किन्तु भारतेन्दु-युग और द्विवेदी-युग के पत्र-लेखकों ने भी जो स्वयं पत्र-लेखक थे, एक ही शब्द के लिए विविध रूपों का प्रयोग किया है। अतः आगे इस सम्बन्ध में पृथक् से चर्चा की गयी है।

(अ) एक ही शब्द के लिए विविध रूप :

आधुनिक युग के कुछ पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों में एक ही शब्द को दो रूपों में प्रयुक्त किया है। भारतेन्दु-युग में "प्रेमघन" जी के पत्रों में यह प्रवृत्ति पाई जाती है। उदाहरण के लिए यहां हम पं. रामगरीब चौबे के नाम लिखे उनके एक पत्र से दो उद्धरण प्रस्तुत करते हैं :

१. "उत्तर में फैजाबाद से भी लखनऊ आदि की ठेठ से जिस्का मेल मिलता है।"[3]

२. .... जिला गोंडा तहसील उत्तरौला की ठेठ जिसका उदाहरण आपको उसी भारत सौभाग्य पृ. ५६ में कृषि कर्म के पाठ में मिलेगा।"[4]

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि भारतेन्दु-युग में सर्वनाम के दो रूप प्रयुक्त होते थे।

द्विवेदी युग के प्रसिद्ध साहित्यकार श्रीधर पाठक के पत्रों में भी "उस्का," "उनको" आदि रूप मिलते हैं। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के नाम प्रेषित उनके पत्रों से दो वाक्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं :

१. "जब आपका पत्र आया तब हम खाट में—पड़े थे। हम उस्को पाते ही खाट से उठ पड़े और हमने उस्में.........लिखी गयी बातों का पूर्णतया विचार किया।"[5]

२ "जो लोग सैंकड़ों बरसों के व्यवहार से बने हुए महाविरों को बोलते

1. "ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्राचीन पत्रों की भाषा का स्वरूप" (लेख) "परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रिया" (१९७२), पृ. ३९।
2. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), पृ. १३३।
3. "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), पृ. १०।
4. -वही-, ।
5. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), १९९।

सुनते और लिखते पढ़ते रहे हैं उनको इस नूतन रीति से व्यवहृत शब्द अवश्य खटकते हैं।"[1]

वर्तनी की दृष्टि से इन पत्रों का ऐतिहासिक महत्व है।

(आ) शब्दों की पुनरुक्ति में संख्या का प्रयोग :

जब एक ही शब्द की आवृत्ति होती है तो उस शब्द को पुनः न लिखकर "२" संख्या डालकर उसका बोध करा दिया जाता था। भारतेन्दु-युग के अनेक पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों में यह प्रणाली अपनाई है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा पं. राधाचरण गोस्वामी को लिखे पत्र का निम्नांकित वाक्य देखिए :

"अबकी इसमें समालोचना छोटी-२ बहुत सुन्दर हैं।"[2]

वर्तमान-युग के पत्र-लेखकों में यह प्रवृत्ति सबसे अधिक सुमित्रानन्दन पन्त के पत्रों में देखी जा सकती है। बच्चन जी के नाम लिखे उनके पत्रों से कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं :

१ "यहां से मैं बहुत २ पहाड़ी ठंडी हवा और प्यार भेजता हूँ।[3]

२ "दिल्ली में तुम लोगों से जितना अभूतपूर्व स्नेह मिला उसकी बार २ याद आती है।"[4]

३ "तुम्हारे महान उद्देश्य की पूर्ति ठीक २ नहीं हो सकेगी।"[5]

(इ) अहिन्दी शब्दों को उनके मूल उच्चारण के अनुरूप लिखने की प्रवृत्ति :

हिन्दी के अधिकतर पत्र-लेखकों ने अंग्रेजी और अरबी फारसी के शब्दों को उनके मूल उच्चारण के अनुरूप लिखने का प्रयास किया है। कुछ प्रमुख पत्र-लेखकों के पत्रों से उदाहरण यहां प्रस्तुत हैं :

१. पर आपका माफ़ी मांगना अनुचित हुआ।"[6]
२. कल आपकी हस्त-पुस्तक और प्रूफ़ पढ़ा।"[7]
३. ढोंगी लीडरों का ज़माना है, मौज है उनकी।"[8]
४. न्यूज़ बुलेटिन बारी-बारी से मेम्बरों के पास जाएँ—यह प्रस्ताव दफ़्तरों की दृष्टि से व्यावहारिक नहीं।[9]

---

1. -वही-, पृ. १९७।
2. "भारतेन्दु-ग्रंथावली-३" (सं. २०१०वि.), पृ. ९७०।
3. "कवियों में सौम्य-संत" (१९६०), पृ. ८७।
4. "पन्त के सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७०), पृ. १७।
5. "पन्त के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम (१९७१), पृ. १९३।
6. "द्विवेदी-पत्रावली (१९५४), पृ. १०३।
7. वही-, पृ. १०२।
8. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६)।
9. "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ. ६३।

५. हम लोग सिंधिया हाउस के गोवन ब्रदर्स में रिहर्सल करते हैं ।[1]

(ई) समानार्थक शब्दों की पुनरावृत्ति :

हिन्दी के कुछ पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों में कहीं-कहीं समानार्थक शब्दों का तांता बांध दिया है । पं. पद्मसिंह शर्मा के पत्रों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से पायी जाती है । एक उदाहरण लीजिए :

'..... ... भगवान् उनकी आशा शीघ्र पूरी करे । "आमीन", "एवमस्तु", अल्ला हो अकबर । वन्देमातरम् । इनकलाब ज़िन्दाबाद । साम्राज्यवाद का क्षय हो । राष्ट्रपति की जय हो । भारत माता की जय । गांधी बाबा की जय ।"[2]

इससे प्रकट है कि पं. पद्मसिंह शर्मा का शब्द-ज्ञान गहरा था ।

(२) वाक्य-रचना :

भाषा-विधान में वाक्य-रचना का अपना महत्व होता है । प्राचीनकालीन पत्रों की वाक्य-रचना प्रायः सरल और निरलंकृत है । आधुनिक युग में लिखे गये पत्रों में अनेक प्रकार के वाक्य मिलते हैं । प्रमुख पत्र-लेखकों की वाक्य-रचना को ध्यान में रखकर यहां वाक्यों को दो भागों में बाँटा गया है—(अ) लघु आकार वाले वाक्य और (आ) बृहत् आकार वाले वाक्य ।

(अ) लघु आकार वाले वाक्य :

अधिकतर पत्र-लेखकों ने लघु आकार वाले वाक्यों का ही प्रयोग किया है । जैसे :

१. आजकल हम अपने जन्म-ग्राम में हैं । ४ अगस्त तक कानपुर जाने का विचार है । आपका कृपापत्र मिला । समानार्थक पद्यों के लिए धन्यवाद ।[3]

(सरल, सूचनात्मक, छोटे-छोटे वाक्य)

२. २७ नवंबर को तुम्हारा जन्म दिवस है—तुम्हारे लिए क्या उपहार लाया जाय—सोचना है—तुम भी मदद कर सकते हो सुलझाने में—[4]

(विचार प्रवाह के अनुसार लघु वाक्य)

"क्या आपका वह खून बिलकुल पानी हो गया ? हाथ बंटाइये, हाथ चल गया तो ठीक है । नहीं तो "मस्तराम" के सोंटे से ।"[5]

(प्रश्न और अनुरोध मिश्रित लघु वाक्य)

४. "उधर यशपाल जी की स्वर्ण जयंती की तैयारी और लोकायतन का प्रूफ ।"[6]

(क्रिया रहित लघु वाक्य)

---

1. "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ. ५४ ।
2. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१०५६), पृ. ८४ ।
3. "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ. ८७ ।
4. "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ. ३५ ।
5 "निराला की साहित्य साधना"-३ (१९७६), पृ. २६७ ।
6. "पन्त के दो सौ पत्र", पृ. ९८ ।

(आ) बृहत् आकार वाले वाक्य :

हिन्दी पत्र साहित्य में ऐसे वाक्य अपेक्षाकृत कम हैं । दो उदाहरण प्रस्तुत हैं:—१ "अब चौथी बात यह है इस बीमारी की अवधि सम्बन्धी मेरे मत से यह रक्त क्षीणता लोह तत्व की कमी का काल १ जुलाई तक है वहां तक सतर्क रहकर इलाज भी सावधानी से होना चाहिए, यहां तक लाभ होना, फिर एकदम परिवर्तन, वजन में कमी, या परिवर्तन-क्रम स्थगित हो जाना शक्य है, यह स्टेज खतरे की बन सकती है, १ जुलाई से आगे भी मैं तकलीफ फागुन मास तक बिलकुल जाते हुए नहीं देखता, तब तक एकदम आकस्मिक परिवर्तन हो सकते हैं और लाभप्रद भी हो सकते हैं किन्तु १७ जुलाई से इस अवस्था में कुछ लाभ की आशा विशेष हो सकती है ।"[1]

२ "जहां जरूरी समझें वहां भाषा या शैली कायम रखने के लिए मेरे सुझावों में परिवर्तन उचित होगा ही परन्तु मेरा विचार है कि जो भी प्रसंग उठाया जाय उसका स्पष्टीकरण आवश्यक होगा ।[2]

(३) विरामादि चिह्नों का प्रयोग :

प्राचीनकालीन पत्रों में प्राय: विरामादि चिह्नों का प्रयोग नहीं हुआ है, पर आधुनिकयुग के पत्रों में ऐसा नहीं है । बड़े और विस्तृत वाक्यों में भाव के पूर्ण स्पष्टीकरण के लिए विरामादि चिह्नों के प्रयोग अत्यन्त आवश्यक हैं । अधिकतर हिन्दी पत्र-लेखकों ने विरामादि चिह्नों के प्रयोग में सतर्कता बरती है किन्तु श्रीधर पाठक के पत्रों में पूर्णविराम के स्थान पर हायफन (-) का प्रयोग किया गया है ।[3] निराला, पन्त, बच्चन आदि पत्र-लेखकों ने निर्देश चिह्नों का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है । जैसे :

१ "लखनऊ में दो-तीन किताबें निकलने को हैं—कुल्लीभाट वगैरह, उन्हीं के फेर में हूँ ।"[4]

२. "गोली मार दीजिए—हम लोग भी साहित्य के बादशाह हैं— अन्धे क्या जानें—अच्छा सप्रेम । विवाह में ले चलियेगा कि नहीं ?"[5]

३. "कल अश्क का पचासवीं सालगिरह पर अभिनन्दन था—अभिनन्दन पत्र मुझी से लिखवाया और पढ़वाया गया—महादेवी जी ने अध्यक्षता की ।"[6]

४. दीपावली अब के फीकी रही—तुम्हें सपरिवार बहुत-बहुत बधाई

1. "प्रसाद के नाम पत्र" (१९७६), पृ. १९८ ।
2. "यशपाल के पत्र" (१९७७), पृ. १०७ ।
3. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र", (१९५८), पृ. १९७-१९९ ।
4. "निराला के पत्र" (१९७०), पृ. १६५ ।
5. "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ. २३९ ।
6. "पन्त के सौ पत्र" : बच्चन के नाम", (१९७०), पृ. ५४ ।

भेजता हूँ—फूलो फलो ।"[1]

(४) मुहावरों का प्रयोग :

मुहावरे किसी भी भाषा के प्राण होते हैं । इन लाक्षणिक प्रयोगों से भाषा की अभिव्यंजना शक्ति बहुत बढ़ जाती है । मुहावरेदार भाषा में लिखे गये पत्र भावग्राहक और पाठक को अभिभूत कर लेते हैं । पं. पद्मसिंह शर्मा, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, मुंशी प्रेमचन्द, डा. वासुदेव शरण अग्रवाल, सुमित्रानन्दन पन्त के पत्रों में मुहावरों का प्रयोग स्थान-स्थान पर देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ :

१. ...... " पर अब वे बातें आई-गई हुई ।" न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तम् । प्रशान्तम् ।" गड़े मुरदे उखाड़ने में कोई लाभ नहीं ।"[2]

२. "अंग्रेजी के तख्तों को उखाड़ने जैसी मूर्खतापूर्ण कार्यवाही जो लोग कर सकते हैं उनकी अकल पर तरस आता है ।[3]

३. "साफ दिल से की गयी छींटेकशी का आपको बुरा न मानना चाहिए, अगर आप इतने तुनुकमिजाज हो जायंगे तो आप अपनी बुराई करने वालों को और प्रोत्साहन देंगे कि वह आपको चुटकी काटें ।[4]

४. "क्या उस समय हमें अपनी भाषा के टुटपुंजियापन पर खीझना तो न पड़ेगा । गुड़ के कोल्हू में जाकर जो साहित्यिक सौ, दो सौ वहीं के शब्द और मुहाविरों में उस समस्त प्रक्रिया का वर्णन साहित्य को भेंट में चढ़ायेगा, वह सचमुच भारी सेवा करेगा ।"[5]

५. "तुमने अपनी भूमिका में मेरे ऊपर कौन-सा नया छींटा डाला है—तुम हमेशा मेरी टांग खींचते रहते हो—"[6]

प्राचीन पत्रों में भी मुहावरों का प्रयोग हुआ है। महाराजा छत्रसाल के पत्रों की भाषा मुहावरेदार और मधुर है । सवाई जयसिंह के नाम लिखे एक पत्र का यह अंश देखिए—"......... अपर उहां तुरकनि के विग्रह की हकीकत अपुनु जानियतु है जु हनि में आपुस में बंस अग्नि उठी है ।"[7] डा. काशीनाथ शंकर केलकर ने "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" शीर्षक अपने शोध-प्रबन्ध में प्राचीन पत्रों में प्रयुक्त मुहावरों की लम्बी सूची दी है ।"[8]

---

1. "पन्त के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम," (१९७१), पृ. १०९ ।
2. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" पृ. १४ ।
3. "बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र," पृ. २५७ ।
4. "चिट्ठी-पत्री" भाग-२, पृ. ७९ ।
5. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र", पृ. १६१ ।
6. "पन्त के दो सौ पत्र", बच्चन के नाम", पृ. ९३ ।
7. "ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल" (१९७५), पृ. १५८ ।
8. "१८ वीं शती के हिन्दी पत्र" (१९७०), पृ. २२०-२४ ।

(५) कहावतों का प्रयोग :

कहावतों का सामान्य जन-जीवन और साहित्य दोनों में ही महत्वपूर्ण स्थान है। पत्रों में वार्तालाप के समान कहावतों का सहज रूप में प्रयोग किया जाता है। कहावतों की दलील, आप्त वाक्य की तरह ही प्रामाणिक मानी जाती है। डा. कन्हैयालाल सहल के शब्दों में "कहावतें भाषा का शृंगार हैं और उनके प्रयोग से भाषा में सजीवता और स्फूर्ति का संचार हो जाता है। वाणी में कहावत का वही स्थान है जो भोजन में नमक का।"[1]

हिन्दी पत्र-साहित्य में कहावतों का विशाल भण्डार भरा है। इसमें अंग्रेजी, संस्कृत, हिन्दी उर्दू आदि कई भाषाओं की कहावतें प्रयुक्त हैं। यहां प्रमुख भाषाओं की कहावतों के दो-दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :

(अ) अंग्रेजी में प्रयुक्त कहावतें :

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्रों में अंग्रेजी कहावतों का विशेष प्रयोग हुआ है। देखिए :

1. "Enjoy yourself—It is already too late"

६० वर्षवालों के लिए सर्वथा उपयुक्त है और ७९ वालों के लिये अनिवार्य।"[2]

2. "Be the man thou Seekest"

जिस आदमी की तुम तलाश में हो वह खुद ही बन जाओ।[3]

(आ) संस्कृत कहावतें :

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, आचार्य विनोबा भावे, आचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा आदि के पत्रों में संस्कृत कहावतों का प्रचुर उपयोग किया गया है। उदाहरण लीजिए :

१ आपने खूब जवाब दिया, शांति तो खंग होती है, क्षमा भी होती है:—
"क्षमाखंग करें यस्य दुर्जनः किं करिष्यति।"[4]

२ "अति स्नेह : पाप शंकी।" अति स्नेह के कारण ऊटपटांग शंकाएं आने लगती हैं।[5]

(इ) हिन्दी कहावतें :

पं. पद्मसिंह शर्मा, डा. वासुदेवशरण अग्रवाल आदि के पत्रों में हिन्दी कहावतों का सुन्दर प्रयोग हुआ है। जैसे :

---

1. "राजस्थानी कहावतें। एक अध्ययन" (१९५८), पृ. ३।
2. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र", पृ. १७४।
3. -वही-, पृ. १६५।
4. —द्विवेदी-पत्रावली, पृ. ९२।
5. "विनोबा के पत्र-बजाज परिवार के नाम", पृ. १०।

१. "मसखरेपन का जवाब तो उन्हें अच्छा मिल गया। सौ सुनार की और एक लुहार की" इसी को कहते हैं।"[1]

२. "बुद्धिमानी यह है कि हम जितनी भूमि को जोत सकें, उतने में ही हल चलावें।"[2]

(इ) उर्दू कहावतें :

उर्दू कहावतों का अधिकाधिक प्रयोग पं. पद्मसिंह शर्मा के पत्रों में मिलता है। यथा—

१ —"रख तमल्ली कि यूं मुकद्दर था"[3]

२ —"जहां में अपने सिवा किसी पै कभी भरोसा न कीजिएगा जो अपना साया भी हो तो उसका तसव्वर अपना न कीजिएगा।[4]

(६) अलंकारों का प्रयोग :

कवि-साहित्यकार अपने पत्रों में अनायास रूप से अलंकारों का प्रयोग भी कर देते हैं। इससे भाषा में सौंदर्य आ जाता है। अलंकार की दृष्टि से पत्रों के गद्यात्मक वाक्यों को हम दो विभागों में रख सकते हैं :

(अ) निरलंकृत वाक्य और

(आ) अलंकृत वाक्य।

(अ) निरलंकृत वाक्य :

हिन्दी पत्र-साहित्य में इस प्रकार के वाक्यों की संख्या बहुत अधिक है। कवि-साहित्यकारों के सभी पत्रों में अलंकृत वाक्य नहीं मिलते। सीधे, सरल और भावपूर्ण वाक्य ही प्रायः सर्वत्र प्रयुक्त किये गये हैं। जैसे :

१. "मान्यवर गणेश जी प्रणाम। कृपापत्र मिला। अनेकानेक धन्यवाद। बिहार में ब्रजभाषा और हिन्दी की सेवा की एक विशिष्ट परम्परा रही है। आप सदृश कर्तव्यनिष्ठ साहित्यिक बन्धु उस शुभ्र परम्परा का सम्यक् निर्वाह कर रहे हैं।"[5]

(२) "प्रिय मधुरेश जी, आपका ९-९-६३ का पत्र मिला, धन्यवाद। अब तक आपके पिछले पत्र के उत्तर में मेरा पत्र आपको मिल चुका होगा।"[6] इत्यादि।

(आ) अलंकृत वाक्य :

हिन्दी के कुछ पत्र-लेखकों के पत्रों में उनके कवित्वमय व्यक्तित्व की छाप

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र-, पृ. १०१।
2. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र", पृ. १०३।
3. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र", पृ. ६०।
4. -वही-, पृ. ६५।
5. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र", पृ. ८९।
6. "यशपाल के पत्र", पृ. ६३।

उनकी वाक्य-रचना पर सहज-स्वाभाविक रूप में ही पड़ गयी है। आचार्य पं. पद्मसिंह शर्मा, महाकवि निराला, कविवर सुमित्रानन्दन पन्त आदि के पत्र उनके कवित्वमय व्यक्तित्व से ओत प्रोत हैं। भारतेन्दु युग के पत्र-लेखकों में "प्रेमघन" जी का नाम भी इस दृष्टि से उल्लेख्य है। यहां हम विविध अलंकारों से युक्त वाक्यों को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत करते हैं :

(i) अनुप्रास युक्त :

१. "इस बार तो आपने "विनोद-बिन्दु" नहीं विनोद की वर्षा कर दी है।"[1] (वर्णानुप्रास)

२. "खैर, आज तो अचानक याद आई, हाथ ने लेखनी उठाई तो प्रथम ही क्षमा-क्षमा की पुकार मचाई फिर जो उसने बुद्धि दौड़ाई, तो कहीं अकिल चकराई, कि प्रथम जो प्राइवेट पत्री थी पाई, उसे आपने हिन्दोस्तान में छपाई, इससे अब और भी उर समाई, कि हाय क्यों वह बेसुरी गीत गाई, कि जिसे सुन हो हंसाई और असल बात मन से भुलाई।[2]

(अन्त्यानुप्रास)

३. "आपका पत्र आया—पढ़कर चित्त हुलसाया आपने जो गोपिका गीत गाया उसे देखकर ऐसा आनन्द का लशकर छाया मानो मुझे जवाहरात का डिब्बा पाया और मन उसमें ऐसा सरसाया कि बारबार पढ़कर भी नहीं अघाया।........"[3]

(वर्णानुप्रास तथा अन्त्यानुप्रास की मिश्रित छटा)

(ii) यमक युक्त :

"यात्रा सम्बन्धी व्यस्तता के कारण तुम्हारे पिछले पत्र का उत्तर मैं देर से दे रहा हूं।"[4]

(iii) श्लेष युक्त :

"छायावादी कवियों को मन तकलीफ दे यह बात तो समझ में आती है, पर पेट कष्ट दे यह तो विधाता का सरासर अन्याय है।"[5]

(iv) उपमा युक्त :

"दोनों पत्र मिले-जुड़वा भाइयों की तरह।"[6]

---

1. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र", पं. ४१।
2. "प्रेमघन और उनका कृतित्व", परिशिष्ट-२ (अ), पृ. ७-८।
3. "मनोरंजक संस्मरण (१९७६), श्री नारायण चतुर्वेदी : मनोरंजक पत्र', पृ. २०९।
4. बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ. १६२।
5. -वही-, १६५।
6. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र", (१९७४), पृ. १८०।

(v) रूपक युक्त :

"कवियों ने कविता-कुमारी को personify किया है : यह वे हर जड़ के लिए कर सकते हैं···· ·· ····"[1]

(vi) उत्प्रेक्षा युक्त :

"अब तो अपने आवासों के रोम-रोम को उन्होंने मानो देवदारुमय बना रखा है।"[2]

इस प्रकार प्रतिभावान साहित्यिकों के पत्रों में अनायास रूप से ऐसे अनेक अलंकार-मोती यत्र-तत्र विकीर्ण हो गये हैं। इन मुक्ताओं से उनकी पत्र-मालिकाएं और अधिक निखर उठी हैं।

उपर्युक्त विवेचन से प्रकट होता है कि भाषा-विधान की दृष्टि से पत्र-साहित्य का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इससे एक ओर जहां हिन्दी भाषा के रूपात्मक विकास पर प्रकाश पड़ता है, वहां दूसरी ओर हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकारों के गद्यकार रूप का परिचय भी मिलता है। पत्र-साहित्य में भाषा-विधान के अनुशीलन से यह भी ज्ञात होता है कि पत्रों में बोलचाल की भाषा के साथ परिष्कृत-अलंकृत भाषा की छटा भी मिल जाती है।

(३) हिन्दी पत्र-साहित्य में विविध गद्य-शैलियां :

भाषा और शैली का अभिन्न सम्बन्ध है। भाषा के मुख्य दो रूप हैं—पद्य-भाषा और गद्य-भाषा। पत्र-लेखन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त गद्य-भाषा ही है। कुछ विद्वानों का विचार है कि गद्य के विकास के उपरान्त शैली का जन्म होता है। अतः गद्य और गद्य-शैली में अन्तर है। इस सम्बन्ध में डा. जेकब पी. जार्ज का निम्नलिखित मंतव्य दृष्टव्य है :

"शैली प्रत्येक अभिव्यक्ति का साधारण धर्म नहीं है, वह विशिष्ट अभिव्यक्ति का सहज धर्म है। गद्य इन तत्वों से अभिव्यक्त हो जाता है तो शैली प्रादुर्भूत हो जाती है। गद्य में जब अभिव्यक्ति-मात्र के भावप्रेरित वैशिष्ट्य जिसके औचित्य का निर्णय पाठक करेंगे और जो अभिव्यक्ति को पूर्ण, प्रभावोत्पादक तथा आकर्षक बनाने के लिए सक्षम है—का समावेश होगा, तब वह शैली पद का अधिकारी बन जाता है। दूसरे शब्दों में, गद्य शैली का केवल शरीर है, शैली की आत्मा गद्य का भावप्रेरित वैशिष्ट्य है।"[3]

इससे प्रकट होता है कि गद्य और गद्य-शैली के बीच शरीर और प्राण जैसा सम्बन्ध है। जिस प्रकार शरीर और प्राण को एक दूसरे से

1. "निराला के पत्र", पृ. ९८।
2. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र", पृ. १०८।
3. "आधुनिक हिन्दी गद्य और गद्यकार" (१९६६), पृ. २७।

पृथक् नहीं किया जा सकता, उसी प्रकार गद्य और गद्य-शैली को भी सर्वथा पृथक् करना सम्भव नहीं है, फिर भी कुछ क्षणों के लिए प्राणों से पृथक् शरीर की परीक्षा तो की ही जाती है। इस दृष्टिकोण के आधार पर हमने पूर्ववर्ती पृष्ठों में हिन्दी पत्र-साहित्य में भाषा-विधान के अन्तर्गत गद्य के बाह्य स्वरूप-शब्द रूपों, वाक्य-रचना, व्याकरण-सम्बन्धी त्रुटियों, मुहावरों, कहावतों, अलंकारों आदि पर विचार किया है। अब यहां हम हिन्दी पत्र-साहित्य में प्राप्त विविध गद्य-शैलियों का परिचय देंगे। यहां जिन गद्य-शैलियों का परिचय दिया गया है, वे गद्य-शैलियां प्रायः आधुनिक हिन्दी-पत्र-साहित्य से ही चुनी गयी हैं। कहीं-कहीं प्राचीन पत्रों की चर्चा भी की गयी है।

(१) तत्सम पदावली-सम्पन्न शैली :

सांस्कृतिक क्षेत्रों के व्यक्तियों तथा संस्कृत साहित्य के मर्मी विद्वानों के पत्रों में तत्सम पदावली-सम्पन्न शैली दृष्टिगत होती है। राजस्थान के प्राचीन जैन महात्माओं के जो आदेश-पत्र प्रकाशित हुए हैं, उनके आरम्भ में तत्सम पदावली का प्रयोग मिलता है[1] हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ पत्र-लेखक पं. पद्मसिंह शर्मा के द्वारा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा पं. श्रीधर पाठक के नाम लिखे गये कुछ पत्रों के प्रारम्भ में भी तत्सम पदावली सम्पन्न शैली का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए पं. श्रीधर पाठक के नाम लिखे एक पत्र का प्रारम्भिक अंश यहां हम उद्धृत करते हैं :

"श्रीमत्सु कवि-मार्मिक-मूर्धन्येषु परगुणपरमाणून् पर्वतीकृत्यनित्यं निज हृदि विकसन्तः सान्ति सन्तः कियन्तः "इत्यभियुक्तोक्तिं स्वोदाहरणेन कालावपि चरितार्थमत्सु परमोदारचरितेषु श्रद्धाभाजनेषु श्री प्रदेषु श्री श्रीधरचरणेषु सांजलिबन्ध भूयोभूयः प्रणम्य निवेदयति।"[2]

हिन्दी साहित्यकारों में डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों में इस शैली का सविशेष और स्वाभाविक प्रयोग हुआ है। डा. अग्रवाल संस्कृत के धुरंधर विद्वान् थे, अतः उनके पत्रों में तत्सम पदावली का प्रयुक्त होना स्वाभाविक है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखित उनके २४-११-१९४३ के पत्र का एक अंश यहां उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है :

"अपने में जो "विभूति" और "श्री" का पक्ष है, उस पर दृष्टिपात करो और अन्यत्र जहां पद्माश्री के सौंदर्य का निवास है, वहां उसका आवाहन करके अपने निवास को अलंकृत करो। यदि मैं आपके अभिमत को ठीक समझा होऊं—जैसा कि मेरा विश्वास है—तो जनपद कल्याणीय और सेतुबन्ध दोनों ही हमारे

---

1. देखिए : "राजस्थान के कुछ प्राचीन पत्र," सम्मेलन पत्रिका, पौष-ज्येष्ठ १८८८, पृ. १५०।
2. "द्विवेदी–युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १९१।

साहित्य की प्रगति के लिए अनिवार्यतः आवश्यक हैं।"[1]

वैसे तो भाव के तारतम्य के अनुसार हिन्दी के अनेक साहित्यिकों के पत्रों में तत्सम-तद्भव-पदावलियां दृष्टिगोचर होती हैं, किन्तु उक्त साहित्यिकों के पत्रों में तत्सम पदावली-सम्पन्न शैली विशेष रूप से परिलक्षित होती है।

(२) तद्भव-पदावली-सम्पन्न शैली :

पूर्णतः तद्भव-पदावली में लिखा गया पत्र खोजना कठिन होगा, परन्तु यह कहा जा सकता है कि सामान्यतः सूचनात्मक तथा विवरणात्मक पत्रों में इस शैली का समावेश किया जाता है। हमारे देश-नेताओं—महात्मा गांधी, डा. राजेन्द्रप्रसाद, सेठ जमनालाल बजाज आदि के पत्रों में तथा साहित्यिकों में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, बाबू वृन्दावनदास आदि के कुछ पत्रों में इस शैली का प्रयोग हुआ है। कुछ उदाहरण नीचे दिये गये हैं :

महात्मा गांधी सेठ जमनालाल बजाज को खान-पान के विषय में सूचना-सलाह देते हुए लिखते हैं :

"तुम्हारी खुराक में थोड़ा-बहुत हेर-फेर सुझाता हूँ। केले की कोई जरूरत नहीं। पपीते की भी अभी कोई जरूरत नहीं देखता। इस समय तुम्हारी खुराक में से दाल निकाल देनी चाहिए और हरी द्राक्ष (अंगूर) अथवा मौसंबी, संतरा बढ़ा देना चाहिए। दूध अधिक लिया जा सके तो अच्छा होगा।"[2]

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने अपने जीवन का दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए तथा अन्य हिन्दी नेताओं पर टिप्पणी करते हुए बाबू वृन्दावनदास को लिखा है :

"............हमारे नेता प्रायः आत्म केन्द्रित रहे हैं। उन्होंने इस बात की चिन्ता कभी नहीं की कि हमारे छुटभाइयों के मार्ग में क्या क्या कठिनाइयां हैं और वे कैसे दूर की जा सकती हैं। बाड़ी लगाकर साग तरकारी उगा लेना और स्वयं ही उनका उपयोग करना बस यही उनका लक्ष्य रहा है।"[3]

उर्दू-गर्भित शैली :

जैसा कि पीछे संकेत किया जा चुका है, हिन्दी पत्र-लेखन में आधुनिक युग के आरम्भ तक सर्व-साधारण में प्रचलित अरबी-फारसी शब्दों को निःसंकोच रूप

---

1. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ, ११०।
2. "बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम" (१९६६), संपा. काका कालेलकर पृ. ८३।
3. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), संपादक बाबू वृन्दावनदास पृ. १८८।

से प्रयुक्त किया जाता था। डा. धीरेन्द्र वर्मा तथा डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय द्वारा सम्पादित "प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह" के अनेक पत्रों में उर्दू-गर्भित शैली का प्रयोग हुआ है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के कुछ पत्रों में भी उर्दू-गर्भित शैली की छटा देखने को मिलती है। जैसे, २८ मई १८७५ को "प्रेमघन" जी के नाम लिखा गया यह पत्र देखिए :

"मेरे प्यारे दोस्त

बाद सलाम व शौक मुलाक़ात व खत के वाजे हो कि ख़त आपका............ और सत्य धर्म प्रचार ने के हालात लिये हुए आया और दिल को निहायत खुशी गशी मुझे उनकी.......................मंजूर की मगर उसकी शरायत व क़वायत अगर मालूम हो आप कब खुद तशरीफ लाकर ज़बानी हाल बयान फ़रमाइयेगा ?.................."[1]

पं. पद्मसिंह शर्मा के कुछ पत्रों में भी उर्दू की छटा यत्र-तत्र देखने को मिल जाती है। यथा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को एक पत्र में उन्होंने लिखा है :

"बहुत अच्छा।" जवाबेजाहलां बाशद खामोशी" पर ही अमल कीजिए। पर "भाषा और व्याकरण" के सिलसिले अभी जारी रखिए।"[2]

पत्रों में उर्दू-गर्भित शैली का सर्वाधिक प्रयोग प्रेमचन्द जी ने किया है। अमृतराय और मदनगोपाल द्वारा सम्पादित "चिट्ठी-पत्री-भाग-१" के पत्र उर्दू-गर्भित शैली में ही लिखे गये हैं। एक उदाहरण लीजिए :

"..............फिलहाल मेरी हालत मुझे इजाजत नहीं देती है कि कुछ ईसार कर सकूं। यक़ीन मानिये, आपसे बसिद्‌क दिल कहता हूँ जब से यहां आया हूँ सिर्फ दो सौ रुपये मेरे पास जमा हुए हैं। और वह भी सौ रुपये नाविल का मुआवज़ा है।"[3]

"उग्र" जी द्वारा सम्पादित "फाइल और प्रोफाइल" के बहुत-से पत्रों में भी उर्दू-गर्भित शैली के उदाहरण मिलते हैं।

(४) मिश्रित शैली :

हिन्दी के अनेक पत्र-लेखकों-जैसे भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, पं. पद्मसिंह शर्मा, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, आचार्य विनोबा भावे, सेठ जमनालाल बजाज आदि ने अपने पत्रों में तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशी सभी प्रकार के शब्दों को ग्रहण किया है। यहां पं. पद्मसिंह शर्मा द्वारा श्री हरिशंकर शर्मा को लिखे गये पत्र का एक अंश उदाहरण स्वरूप उद्धृत किया जाता है :

---

1. "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), परिशिष्ट-२, पृ. १४।
2. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १००।
3. "चिट्ठी-पत्री भाग-१", (१९६२), पृ. १२।

"हज़रत (बेताल) ने ग्रातिथ्य का रोना रोया है, यानी तर रोटियां नहीं मिलतीं। इस पर कुछ लिख डालो। ग्रब तक तो सुयशमधु की ही भूख थी, ग्रब रोटियों की भी लग गई। इस दुहरे मतालबे को पब्लिक कैसे पूरा करेगी। इसे प्रकाश में लाइए, जनाब बेताल का मतलब तो यह है कि उनका ज़िक्रे खैर किसी-न-किसी रूप में होता रहे, नाम ग्रागे ग्राता रहे।

हम तालिबे शोहरत हैं हमें नंग से क्या काम।
बदनाम भी गर होंगे तो क्या नाम न होगा।"[1]

उपर्युक्त उद्धरण में तत्सम, तद्भव, उर्दू, अंग्रेजी ग्रादि शब्द-रूप प्रयुक्त हैं।

ग्राचार्य विनोबा जी भी ग्रपने पत्रों में ग्रावश्यकतानुसार सभी भाषाग्रों के शब्द प्रयुक्त करते हैं। देखें :

"शोभनीय क्या ग्रशोभनीय क्या, इस विषय में कोई दकियानूस विचार मैं नहीं रखता, बल्कि वैज्ञानिक ढंग से सोचना चाहिए, यही मेरा ग्राग्रह है। यह मेरे सब साथी जानते हैं, बल्कि गंदे पोस्टर के खिलाफ़ मुझे सत्याग्रह करना पड़ा, यह मेरे लिए एक कष्टदायक बात थी।........ पोस्टर के नियन्त्रण के साथ खराब सिनेमा, गंदे गाने ग्रादि का भी सैंसरिंग करना ही था। इस तरफ सरकार ध्यान दे रही है, इसकी मुझे खुशी है।"[2]

(५) व्यास शैली :

जिस शैली में भाषा सरल ग्रौर सुबोध हो, वाक्यावली में मिश्र एवं संश्लिष्ट प्रयोग न के बराबर हों तथा भाषा में वाच्यार्थ ही मुख्य हो, उस शैली को व्यास शैली या प्रसाद शैली कहते हैं। पत्र-लेखन के लिए यही शैली सर्वाधिक उपयुक्त है, क्योंकि ग्रपनी बात को सीधे, सरल ग्रौर मुहावरेदार ग्रौर रोचक ढंग से कह देना ही पत्र-लेखन कला का उद्देश्य है। महात्मा गांधी, पं. पद्मसिंह शर्मा, मुंशी प्रेमचन्द, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला", सुमित्रानन्द पन्त, डा. वासुदेवशरण ग्रग्रवाल, हरिवंशराय बच्चन ग्रादि के पत्रों में ग्रधिकतर इसी शैली के दर्शन होते हैं। देखिए कुछ उदाहरण :

१. महात्मा गांधी के २१ ग्रप्रेल १९३३ के पत्र का अंश :

"प्रचार कार्य की दौड़-धूप बन्द होने से ग्रस्पृश्यता-निवारण कार्य शिथिल हुग्रा लगता है, वह मुझे प्रिय हैं। यह कार्य दौड़-धूप का नहीं है। धर्म कार्य में दौड़-धूप क्या ? शान्ति से जितना होगा, वही सच्चा ग्रौर पक्का होगा।"[3]

---

1. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. ४२।
2. "विनोबा के पत्र" (१९६२), पृ. ६७।
3. "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" (१९७०), पृ. १०।

२. पंत जी का एक महत्वपूर्ण सुझाव-कवि बच्चन जी को :

"हिन्दी में शेक्सपीरियन रंगमंच की नींव डालनी चाहिए। और उसी में स्वतन्त्र रूप से "मैकबेथ" होना चाहिए। ट्रस्ट का सदस्य मुझे भी बना सकते हैं। जो नियम होंगे मैं निभाऊंगा।............"[1]

३. कविवर बच्चन की जीवन-दृष्टि—डा. जीवन प्रकाश जोशी को लिखे एक पत्र का अंतिम परिच्छेद :

"आशा है आप स्वस्थ हैं। चिन्ताओं से कौन मुक्त है? अपने जीवन से कौन संतुष्ट है।असन्तोष कम-से-कम यह तो कहता है कि मन अभी भरा नहीं।"[2]

(६) समास शैली :

समास युक्त पद संघटना को समासवृत्ति या समास शैली कहते हैं : समास-शैली के दो रूप हैं। पहले प्रकार की समास-शैली में शब्द तत्सम-पदावली से सम्पन्न तथा समासयुक्त होते हैं। दूसरे प्रकार की समास-शैली में रचना की दृष्टि से वाक्य मिश्र और संश्लिष्ट अधिक होते हैं और लम्बे-लम्बे तथा बोझिल होते हैं।

हिन्दी-पत्र साहित्य में इस शैली का प्रयोग लेखकों ने अपना आत्म-वृत्तांत ईष्ट-मित्रों को लिख भेजने में, अपने आस पास के परिवेश के वर्णन में तथा विशेष कृति या व्यक्ति के सम्बन्ध में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करने में किया है।

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के एक पत्र के प्रारम्भ में प्रथम प्रकार की समास-शैली प्रयुक्त है। देखिए :

"प्रिय चतुर्वेदी जी, इस समय प्रकृति की शोभा वर्णनातीत है। अभी डेढ़ मास प्राचीन अहिच्छात्रा के उत्संग में रहकर लौटा हूँ। पट-मंडपों से बना हुआ जो हमारा छोटा-सा आवास था, उसके चारों ओर मधुलक्ष्मी ने अपना सौंदर्य बिखेर दिया था। आम्र-मंजरी, वट-किसलय, सहंजन सहस्रात्मक पुष्प-गुच्छक, श्रीवृक्षों की फल-सम्पत्ति, शाल्मली के लाल-लाल फूलों के मधु-कोष, कर्णिकार के पुष्पों की आभा, इस सबसे परिचय पाकर अन्तरात्मा गद्-गद् हुई।"[3]

दूसरे प्रकार की शैली का प्रयोग हमें निराला जी के कई पत्रों में प्राप्त होता है। पन्तजी के नाम उनके एक पत्र का अंश प्रस्तुत है :

---

1. "कवियों में सौम्य संत" (१९६०), पृ. ८६।
2. "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ. २८।
3. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ. ११२-११३।

"आपकी तुलना थोड़ी ही देर के लिये, सीज़न फ्लावर के सौंदर्य की तरह, अजान के सूंघने से पहले तक अच्छी लगी। इतनी बड़ी बड़ी तुलना, इतनी शीघ्रता से, ७०-८० मील की स्पीड से चलती हुई गाड़ी को एकाएक रोक देना जिससे हानि की ही शंका है और गाड़ी के हमेशा के लिए रुक जाने की। प्रशंसा की बला जब जब, जहां कहीं आई, मैंने आप के सिर टाल दिया। छिपकर रहने में कितनी शक्ति है, शायद मुझसे अधिक बहुत कम लोगों को मिली होगी। आप शक्ति भंग भी कर रहे हैं।"[1]

(७) मुहावरेदार शैली :

पत्रों में मुहावरेदार शैली अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। अनेक पत्र-लेखकों ने इस शैली का प्रचुरतः प्रयोग किया है। यहां हम कुछ पत्रों के अंश प्रस्तुत करते हैं जिनमें मुहावरेदार शैली की छटा दिखाई देती है।

१. "......प्राचीन काल में (और शायद अब भी) चौबे लोग अपने यजमानों के पास साल में एक बार चक्कर लगाकर अपना टैक्स वसूल करते थे। इस प्रथा को मैं भी अपने शेष जीवन में चरितार्थ करना चाहता हूँ।[2]

२. "........पुल्लिग धातुओं के झुण्ड ने—लोहा, कांसा, तांबा, सोना आदि ने बेचारी पीतल को भी मरदानी पोशाक पहनाकर अपने गिरोह में मिला लिया। चांदी ग़रीब अकेली ही स्त्री-पक्ष में रह गई।"[3]

३. "........अभी जुम्मा-जुम्मा आठ रोज़ तो मुझे कविता लिखते हुए हैं, और आप कहते हैं आपकी पुस्तक की भूमिका लिख दूं।"[4]

(८) सूक्ति या उद्धरण शैली :

अनेक मनीषियों ने अपने पत्रों में विभिन्न भाषाओं की सूक्तियों अथवा प्रसिद्ध कवि-लेखकों के उद्धरणों का प्रचुर प्रयोग किया है। पत्रों में सूक्तियों या उद्धरणों के उपयोग से कथन में सरसता एवं प्रभावोत्पादकता आ गई है। यही नहीं, उद्धरणों से पत्र-लेखकों की अध्ययनशीलता एवं बहुज्ञता का भी परिचय मिलता है। कुछ उद्धरण वाक्य के अंगभूत बन गये हैं तो कुछ वाक्य से स्वतंत्र किन्तु सम्बद्ध हैं। पं. पद्मसिंह शर्मा तथा राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह के पत्रों में कहीं-कहीं उद्धरणों की प्रचुरता के कारण क्लिष्टता भी आ गयी है। किन्तु ऐसे स्थल अधिक

---

1. "निराला की साहित्य-साधना" भाग-३ (१९७६), संपा. डा. रामविलास शर्मा, पृ. २५३।
2. "पं. बनारसीदास चतुर्वेदी का पत्र श्री प्रभुदयाल मीतल के नाम।" —"डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. २१९।
3. पं. पद्मसिंह शर्मा का पत्र श्री जगन्नाथ चतुर्वेदी के नाम। —"पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. १७६।
4. "डा. हरिवंशराय का पत्र श्री निरंकारदेव सेवक के नाम। —"बच्चन के पत्र" (१९७२), पृ. ९।

नहीं हैं। पत्रों में विभिन्न भाषाओं की कुछ सूक्तियां भी देखने को मिलती हैं और पत्र-लेखक की स्वनिर्मित सूक्तियां भी। इस प्रकार सूक्ति शैली को दो श्रेणियों में उपविभाजित किया जा सकता है :

(अ) अन्य कवि-लेखकों की सूक्तियां और
(आ) स्वनिर्मित सूक्तियां।

(अ) अन्य कवि-लेखकों की सूक्तियां :

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, महावीरप्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंह शर्मा, बनारसीदास चतुर्वेदी आदि अनेक साहित्यकारों तथा महात्मा गांधी, आचार्य विनोबा भावे आदि महापुरुषों ने अपने पत्रों में संस्कृत, अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू आदि भाषाओं के कवि-लेखकों की सूक्तियां अपने कथन की पुष्टि के लिए उद्धृत की हैं। यहां पहले वाक्य के अंगभूत कुछ उद्धरण प्रस्तुत किये जाते हैं :

(i) "सरस्वती के लुटेरों को क्या किया जाय, समय का प्रभाव है, "अचौरहार्य" विद्याधन को भी चौर्यभय उपस्थित हो गया। अच्छा लूटने दीजिए। देव-दैत्यों के लूटने पर भी "अद्यापि रत्नाकर एव सिन्धुः।"[1]

(ii) "प्रियवर, आपका कार्ड चक्कर काटता हुआ मुझे यहां मिला। क्या बताऊं—आदमी चाहता है कुछ, और होकर रहता है कुछ। "ऊधो जब टेढ़े दिन आवें"। वही घड़ी टेढ़ी है मेरी—"[2]

अब दो-एक उदाहरण वाक्य से स्वतन्त्र किन्तु सम्बद्ध उद्धरणों के लीजिए :

(i) "मैं जानता हूँ कि हिन्दी के पाठक अब तक तंग आ चुके होंगे पर क्या किया जाय ? भाई हरिशंकर शर्मा एक उर्दू कविता सुनाया करते थे :

"बूढ़ों के साथ लोग कहां तक वफा करें ?
लेकिन न मौत आये तो बूढ़े भी क्या करें ॥"[3]

(ii) अपनों की प्रसन्नता से जो प्रसन्न होता है, वह धोखा खाता है। इसलिए तुलसीदास ने माप-दण्ड रखा :

"सहज बैर-बिसराय रिपु जो सुनि करहि बखान।"[4]

(आ) स्वनिर्मित सूक्तियां :

जिस प्रकार अपने वक्तव्य की पुष्टि के लिए प्रसिद्ध कवियों अथवा विचारकों के वाक्य और लोकोक्तियों का पत्रों में प्रयोग किया गया है, उसी प्रकार प्रसंग को

---

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. १०८।
2. "राजा साहब के अनूठे पत्र," राजा राधिकारमणप्रसादसिंह अभिनन्दन-ग्रंथ (१९६९), पृ. ३१।
3. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. २०९।
4. "बच्चन पत्रों में" (१९७०), पृ. ८०।

रोचक और प्रभावक बनाने के लिए अनेक साहित्यकारों ने स्वनिर्मित सूक्तियों का भी प्रयोग किया है। बच्चन जी के पत्रों में ऐसी सूक्तियों का भण्डार भरा पड़ा है। कुछ नमूने देखिए :

१—"परिस्थितियां हम कहां बदल पाएंगे, अपने को ही बदलना पड़ेगा।"[1]

२—"अपना मन्त्र यह है—
अपने मन का हो जाय तो अच्छा।
न हो तो ज्यादा अच्छा।"[2]

३—"हारी लड़ाई की यह कम उपलब्धि नहीं कि आदमी फिर से लड़ने का हौसला बचा लाए।"[3]

(९) मणिप्रवाल शैली :

मणिप्रवाल शैली दो भाषाओं के मिश्रित प्रयोग की शैली है। पत्र-लेखक हिन्दी में पत्र लिखते-लिखते अपने विचार अंग्रेजी या अन्य भाषा में जब व्यक्त करने लगता है, तब मणि-प्रवाल शैली निर्मित हो जाती है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी और कविवर सुमित्रानन्दन पन्त के पत्रों में यह विशेषता देखने को मिलती है कि वे हिन्दी में पत्र लिखते-समय अंग्रेजी वाक्यों को सहज ही लिख जाते हैं जैसे :

(i) "बाहर भोजन करने में अत्यन्त खतरा है। निकृष्ट भोजन मिलता है।

You must be able to say "No" to any, When they give you—हानिकारक भोजन।"[4]

(ii) "व्यक्ति मुक्ति को सम्भव करने के लिए मनुज प्रीति अर्जित कर तथा लोक साम्य को विश्व ऐक्य के आश्रित रख मानवता को निर्मित करना है। मेन्स ईक्वैलिटी शुड बी सबसवियैंट टु वर्ल्ड युनिटी-अदरवाइज़ द इगोइस्टिक प्राइड आफ बीइंग ईक्वल विल बिकम डेस्ट्रक्टिव ऐंड गो अगेंस्ट वर्ल्ड युनिटी आर गुड।"[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी-पत्र साहित्य में गद्य की अनेक शैलियों का प्रयोग किया गया है। पत्र-लेखकों ने पत्र लिखते समय यह विचार भी न किया

---

1. "बच्चन पत्रों मे" (१९७०), पृ. ६३।
2. वही, पृ. ८३।
3. वही-, पृ. ८४।
4. "बाबू वृन्दावनदास को (१३-६-१९६८) "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र," । पृ ७१।
5. "डा. हरिवंशराय बच्चन को (२३-४-१९६४)। "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र (१९७१) पृ. ११८।

होगा कि हम अमुक गद्य-शैली में पत्र लिख रहे हैं, किन्तु ये गद्य-शैलियां पत्र-विधा में बराबर उसी रूप में हमें देखने को मिलती हैं, जिस प्रकार निबन्ध आदि गद्य-विधाओं में प्रयुक्त होती हैं। अनायास रूप में प्रयुक्त होने से इन गद्य-शैलियों में विशेष आकर्षण नज़र आता है।

(घ) हिन्दी पत्र-साहित्य में भावगत शैलियाँ :

भावाभिव्यंजना की दृष्टि से अभिव्यक्ति की रीतियों को भाव-शैली या भावगत शैली के अन्तर्गत रखा जाता है। भाव का सम्बन्ध एक ओर वर्ण्य-विषय से होता है और दूसरी ओर लेखक की निजी भावनाओं से । अतएव भाव-शैली भी अनेक रूप धारण कर लेती है। आचार्य पंडित सीताराम चतुर्वेदी ने अपनी "लेखनकला" शीर्षक पुस्तक में भाव-शैली के अन्तर्गत विनोदात्मक, आत्म-विश्लेषणात्मक, तर्कात्मक, प्रमाणबहुला, व्यंग्यात्मक, आवेगात्मक, भावात्मक, उपालम्भात्मक, लोमहर्षणात्मक तथा क्रमिक उत्तेजनात्मक आदि अनेक प्रकार की शैलियों की चर्चा की है।[1]

पत्र व्यक्ति के मनोभावों का दर्पण होता है। किसी विशेष स्थिति, प्रसंग अथवा घटना के सम्बन्ध में, किसी के हृदयगत भाव जानने हों तो उसके निजी पत्रों का अवलोकन करना चाहिए। इस दृष्टि से उपर्युक्त भाव-शैलियों में से प्रायः सभी शैलियां हमें हिन्दी के पत्र-साहित्य में उपलब्ध हो जाती हैं। प्राचीन पत्रों में भाव-वैविध्य अधिक नहीं मिलता। ये पत्र प्रायः कुशल लेखकों द्वारा लिखे गये हैं और उनका विशेष सम्बन्ध राजनैतिक गतिविधियों से है । अतः यहां आधुनिक पत्र-साहित्य में उपलब्ध भाव-शैलियों का ही अवलोकन किया गया है। प्रसंगतः प्राचीन पत्रों का संकेत दिया गया है।

(१) विनोदात्मक शैली :

हँसना-हँसाना मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है। हास्य यानी ह्यूमर को मानवीय जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं में शामिल किया गया है। परन्तु सबसे अच्छा हास्य वह है जो कोमलता और कृपा के भावों से भरा हो।[2] पत्र-साहित्य में प्रायः ऐसा ही हास्य-विनोद मिलता है।

जिस प्रकार वार्तालाप में हमें व्यक्तिगत स्तर की हँसी-ठिठोली का आनन्द प्राप्त होता है, उसी प्रकार व्यक्तिगत पत्रों में भी यत्र-तत्र हास्य-विनोद के छींटे मिल जाते हैं। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, पं. बालकृष्ण शर्मा "नवीन",

---

1. "लेखनकला" (१९७२). पृ. ७६।
2. The best humour is that which flavoured through out with Liveliness and Kindness— Thackeray.
   (उद्धृत "आधुनिक हिन्दी साहित्य : विश्लेषण और प्रकर्ष" (१९६९), डा. सुरेन्द्र माथुर, पृ. ९०)

सुमित्रानन्दन पंत आदि के पत्रों में व्यंग्य विनोद की पर्याप्त सामग्री मिलती है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम लिखे पं. बालकृष्ण शर्मा "नवीन" के पत्रों में प्रायः सर्वत्र व्यक्तिगत स्तर की हँसी-ठिठौली देखने को मिलती है। उनके ३-१२-१९४९ के पत्र का एक अंश प्रस्तुत है :

"आपकी मुण्डन-कुशलता का तो मैं वर्षों से प्रशंसक हूँ। पर आपने एक भूल की। अस्तूरा चलाने के स्थान पर आपने हथेली में लेकर मेरे इस आदरास्पद शिर पर कुशल क्षौरिक के सदृश अपनी तैल-मर्दन-प्रवीण अंगुलियां चलाना प्रारम्भ कर दीं। परिणाम हुआ यह कि बाल और जम गए। मूंड मुंडने के स्थान पर वह और अधिक घनीभूत कुन्तलधारी हो गया।[1]

महात्मा गांधी भी कभी-कभी पत्रों में अच्छा विनोद कर लेते थे। जानकी देवी बजाज के नाम एक पत्र में उन्होंने लिखा था :—"समय-समय पर जब जानकी बाई बजाज का नाम अखबारों में देखता हूँ तो उससे ऐसा ही लगना चाहिए न कि जमनालाल और हम सब भले हीं जेल गये और वहीं रहे।"[2]

हिन्दी के कुछ पत्र-लेखक अपने पर हँसने की कला में बहुत निपुण हैं। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, पं. पद्मसिंह शर्मा आदि के नाम इस दृष्टि से विशेष उल्लेख्य हैं। चतुर्वेदी जी बाबू वृन्दावनदास को एक पत्र में लिखते हैं :

"एक बाबा जी को किसी श्रद्धालु ने प्रणाम किया तो बोले, "बच्चा। आज भोजन तेरे यहां ही रहा।" सो आप अपनी धर्मशाला में एक कमरा मेरे लिये अभी सुरक्षित रखिये।"[3]

बच्चन जी के नाम लिखे पन्तजी के पत्रों में "विट" और "ह्यूमर" की मात्रा सबसे अधिक है। आत्मस्थ-परस्थ दोनों ही हास्य-प्रकारों का सम्मिश्रण उनके पत्रों में मिलता है। दो-एक उदाहरण देखिए :

(i) "..................मैं तो केवल डरपोक ही हूँ तुम बाहर से अपने को बहादुर दिखाते हो और भीतर से हनुमान चालीसा का पाठ करने वाले ठहरे।"[4]

(ii) "..................जान पड़ता है मेरे मूर्ख सम्बोधन से दुःखी हो। अरे भाई, वह मैंने अर्ध-सत्य लिखा था। पूर्ण सत्य यह है कि तुम मुझे बहुत मानते हो, इसलिए मैं तुम्हारे सिर की मणि ठहरा अर्थात् मूर्ख-शिरोमणि।"[5]

---

1. "नर्मदा", नवीन-अंक, १९६३, वर्ष-६, अंक-४, पृ. ३।
2. "बापू के पत्र बजाज-परिवार के नाम" (१९६६), पृ. ६१-६२।
3. "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७१), पृ. १६७।
4. "पंत के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७९), पृ. ७७।
5. -वही-, पृ. १२२।

इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि साहित्यकारों और महापुरुषों के पत्रों में जो हास्य-विनोद प्राप्त होता है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

(२) आत्म-विश्लेषणात्मक शैली :

आत्म-विश्लेषणात्मक शैली में लेखक "स्व" का परीक्षण और विश्लेषण करता हुआ दृष्टिगत होता है। पत्र-साहित्य का मुख्य उद्देश्य आत्म-प्रकाशन और आत्मजीवन की व्याख्या करना है। अतः इसमें लेखक के आत्म-विश्लेषण की स्पष्ट झलक मिलती है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी, सूर्यकान्त त्रिपाठी "निराला," हरिवंशराय बच्चन आदि के पत्रों में आत्म-विश्लेषणात्मक शैली के दर्शन होते हैं। बाबू भारतेन्दु जी ने आर्थिक संकट की स्थिति में "प्रेमघन" जी के नाम जो पत्र लिखे हैं, उनमें आत्म-विश्लेषणात्मक शैली की सुन्दर झांकी मिलती है। ८ अप्रेल १८७८ के पत्र का प्रारम्भिक अंश उदाहरण के तौर पर प्रस्तुत है :

"प्रियवरेषु :

आपका कृपापत्र आया। यह संसार दुःख सागर है और अपनी-अपनी विपत्ति में सब फँसे हैं, पर मैं सोचता हूँ कि जितना मैं चारों तरफ से दुःख में जकड़ा हूं, इतना और कोई कम जकड़ा होगा पर क्या करूं खैर चला ही जाना है। बाबूजी का यह तुक बहुत ठीक है "है संसार का यह मज़ा घन सरिस दुःख तड़ित सम सुख मोह छाजन छजा" इन्हीं झंझटों से आजकल पत्र नहीं लिखा।"[1]

इसी प्रकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी मनःस्थिति का विश्लेषण करते हुए २२-१०-१९२८ को पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम पत्र में लिखा था :

"...........जैसा कि मैंने आपको लिखा था मैं भी अब तक कानपुर चला गया होता मगर नहीं जा सका। कारण कुछ दुर्लभ संस्कृत पुस्तकें पंच भारती आदि मैंने हाल में मंगाई थीं। उन्हें दो-चार रोज़ थोड़ा-थोड़ा देखा। इतने मानसिक श्रम से मेरा दिमाग पकने-सा लगा। पुराना उन्निद्ररोग फिर जी उठा। आज कई रोज से नींद नहीं। रात को आंखें बन्द करता हूँ तो स्वप्न से देखा करता हूँ। तबीयत परेशान है। आराम कर रहा हूँ। लीडर तक नहीं पढ़ता। जी होमकर आपको यह पत्र लिख रहा हूँ। यह तो मेरी हालत है। इस पर आप मुझसे मेमरीज़ या आत्मचरित लिखाना चाहते हैं। मैं अब बहुत ही कम मानसिक परिश्रम करने योग्य हूं। मेरे पिछले जीवन से सम्बन्ध रखने वाले कोई नोट्स भी मेरे पास नहीं फिर पुरानी बातों को याद करना मेरे लिए बहुत ही कष्टदायक है, क्षमा कीजिए।"[2]

---

1. "प्रेमघन और उनका कृतित्व" (१९७६), परिशिष्ट-२, पृ. १५-१६।
2. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ७२।

अब महाकवि निराला द्वारा डा. रामविलास शर्मा के नाम लिखे २-२-१९४३ के पत्र का यह अंश देखिए :

"...............अपने-आप दिन-रात जलन होती है । किसी से अपनी तरफ से प्रायः नहीं मिलता । मिल नहीं सकता । कोई आता है तो थोड़ी-सी-बातचीत । आने वाला ऊब जाता है। मुझे भी बातचीत अच्छी नहीं लगती। कभी रात-रातभर नींद नहीं आती । तम्बाकू छूटती नहीं। खोपड़ी भन्नाई रहती है ।"[1]

इससे स्पष्ट है कि साहित्यिकों के पत्रों में आत्म-विश्लेषणात्मक शैली के अनेक सुन्दर उदाहरण भरे पड़े हैं। प्राचीन पत्रों में छत्रसाल द्वारा अपने पुत्र जगतराज को लिखे गये पत्रों में भी कहीं-कहीं यह शैली झलकती है ।

(३) आत्म-चिन्तन शैली :

आत्म चिन्तन शैली में व्यक्ति अपने ही विचार-व्यवहार और योजना पर विचार करता है । पत्र-साहित्य में यह शैली बड़ी सरलता से उपलब्ध हो जाती है । "एक भारतीय आत्मा" के रामनाथ "सुमन" के नाम प्रेषित एक पत्र का निम्न अंश दृष्टव्य है :

"..... आपकी थोड़ी-सी पंक्तियों ने आकर तो मेरे उपेक्षा के अधिकार ही को चुनौती दे दी है । उपेक्षा मेरी सेहत है, वह मेरी संकट की साथिन है, सुख की सलाहकार । किन्तु जब कोई द्वार खटखटा बैठता है तब मेरी उपेक्षा में और मुझ में गृह-कलह उपस्थित हो जाता है ।"[2]

श्री सियारामशरण गुप्त के पत्रों में भी हमें कहीं-कहीं आत्म-चिन्तन शैली के दर्शन हो जाते हैं। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को एक पत्र में उन्होंने लिखा है :

"पाथेय मैंने अपने ही लिए लिखा था । उसके बिना कदाचित् मैं जी नहीं सकता था । मेरे इस वन-भोजन में आप भी निकट आ बैठे, इससे उसका महत्व दुगुना बढ़ गया है । अपनी इस निर्जनता में मैंने सब कुछ पा लिया । जानकी-जीवन को धन्यवाद देने के सिवा मैं कर ही क्या सकता हूं ।"[3]

डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों में भी आत्मचिन्तन की प्रवृत्ति पर्याप्त मात्रा में पायी जाती है । उन्होंने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम जो पत्र लिखे हैं, उनमें उन्होंने अपनी आशा-आकांक्षाओं को सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है । जैसे पत्रकार कला की अपने जीवन से घनिष्ठता बतलाते हुए वे लिखते हैं :

---

1. "निराला की साहित्य-साधना-३" (१९७६), पृ. ३१२ ।
2. "छायावाद-युगीन स्मृतियां" (१९७५), रामनाथ सुमन, पृ. ७६ से उद्धृत ।
3. "सियारामशरण गुप्त का गद्य-साहित्य (१९७०), सुमित्रा वर्मा, पृ. १०० से उद्धृत ।

"पत्रकार कला—यह तो मेरा ही स्वप्न है । ईश्वर ने मुझे पत्रकार ही बनाकर भेजा था । द्विवेदी जी की "सरस्वती" जब मैं देखता तो कहता कि इस तरह की कितनी पत्रिकाएं सम्पादित कर सकता हूँ । मेरा उत्साह किसी समय असीम था :"[1]

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि पत्र-साहित्य में आत्मचिन्तन शैली के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण प्राप्त होते हैं ।

(४) तर्क प्रधान या विवेचनात्मक शैली :

पत्र-साहित्य में इस प्रकार की शैली हमें वहां मिलती है जहां पत्र-लेखक किसी गम्भीर विषय पर अपने विचार व्यक्त करता है । प्रतिष्ठित साहित्यकार जब किसी शोधार्थी, साहित्य के जिज्ञासु, किसी पत्रिका के सम्पादक आदि के द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में पत्र लिख भेजता है तो उसमें विशेषत: तर्क प्रधान या विवेचनात्मक शैली का ही प्रयोग मिलता है । विभिन्न आलोचना-ग्रंथों एवं शोध-प्रबन्धों के परिशिष्टों आदि में जो पत्र प्रकाशित किये जाते हैं, उनमें इसी शैली की झलक मिल जाती है । इस दृष्टि से डा. प्रभाकर माचवे द्वारा सम्पादित "जैनेन्द्र के विचार", डा. पद्मसिंह शर्मा "कमलेश" लिखित "हिन्दी गद्य-काव्य, डा. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल लिखित "जयशंकर प्रसाद : वस्तु और कला", डा. शशिभूषण सिंहल लिखित "हिन्दी उपन्यास की प्रवृत्तियां", डा. महावीर लोढा लिखित "हिन्दी उपन्यास का शास्त्रीय विवेचन", डा. रवेलचन्द्र आनन्द लिखित "महापंडित राहुल सांकृत्यायन का सर्जनात्मक साहित्य", डा. रमाकान्त श्रीवास्तव लिखित "व्यक्तिवादी चेतना के सन्दर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा" आदि ग्रंथों के परिशिष्टों में प्रकाशित पत्र अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं । इन पत्रों में लेखकों ने साहित्य की विविध विधाओं, कलाओं तथा दृष्टियों पर अपने मंतव्य प्रकट किये हैं । यहां कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं ।

श्री जैनेन्द्रकुमार ने अपने १-८-१९३५ के पत्र में जीवन और कला के सम्बन्ध में डा. माचवे को लिखा है :

"...... जीवन एक अभिलाषा है । जब कला के सम्बन्ध में जीवन शब्द का उपयोग करता हूँ तब उसे आप उस चिर-अभिलाषा की परिभाषा ही समझें । उस अर्थ में समझने से जीवन और कला का विरोध, या Parallelism उड़ जाता है ।"[2]

डा. रघुवीरसिंह गद्य-काव्य के तात्विक पक्ष का उद्घाटन करते हुए लिखते हैं— ··· ····गद्य-काव्य की परिभाषा करना कठिन है । वे सारे काव्यमय भाव छन्दोबद्ध नहीं और जिनमें काव्य या संगीत की गति और लय नहीं हो

1. "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४) पृ. १४१ ।
2. "कुछ पत्रों के अंश :" "जैनेन्द्र के विचार" द्वि. सं. (१९७७), पृ. १८१ ।

उन्हें गद्यकाव्य की परिभाषा में लिया जा सकता है।"[1]

"प्रसाद" साहित्य की दार्शनिक पीठिका का विवेचन करते हुए आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी ने लिखा है:—"प्रसाद-साहित्य की दार्शनिक पीठिका निश्चय ही प्रत्यभिज्ञा-दर्शन से निर्मित है, परन्तु साधन रूप में "प्रसाद" ने प्रेम, करुणा और शक्ति के तत्वों को भी सन्निविष्ट किया है। उनका मार्ग व्यक्ति से सीधे "अहंता" पर पहुँचने का नहीं है—वरन् व्यक्ति से समष्टि (इदम्) को पार करते हुए "अहं" पर पहुँचने का है।"[2]

व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के सम्बन्ध में श्री भगवतीचरण वर्मा ने अपने विचार इन शब्दों में लिख भेजे हैं : "मेरा व्यक्तिवाद जीवन में मेरे कटु अनुभवों की उपज है। अपने अन्दर वाले व्यक्ति को दबाकर अथवा फुसलाकर मैं कुछ प्राप्त कर सकता हूं। मैं तो बड़ा विवश हूं—अपनी प्रवृत्तियों और बहिर परिस्थितियों से बंधा हुआ। नियंता है। वही एक सूक्ष्म संज्ञा है। मेरा व्यक्तिवाद विवशता की इसी अनुभूति की उपज है।"[3]

इससे स्पष्ट होता है कि साहित्यकारों के इन पत्रों द्वारा उनके दृष्टिकोण एवं साहित्य के सिद्धांत-पक्ष पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

(५) प्रमाण-बहुला शैली :

प्रमाण-बहुला शैली उद्धरण शैली का ही एक रूप है, किन्तु उद्धरण शैली में उद्धरणों की बहुलता नहीं होती, जब कि प्रमाण-बहुला शैली में उद्धरणों की प्रवृत्ति अत्यन्त तीव्र हो उठती है। लेखक अपने कथन की पुष्टि के लिए अथवा भाव के समर्थन के लिए एक साथ कई उद्धरण प्रस्तुत कर देता है। हिन्दी पत्र-लेखकों में पं. पद्मसिंह शर्मा का नाम इस शैली की चर्चा में विशेष स्मरणीय है। पं. शर्मा जी ने अपने पत्रों में एक भाव की पुष्टि के लिए अनेक भाषाओं के उद्धरण प्रस्तुत किये हैं। उदाहरणार्थ :

आ. द्विवेदी के पत्र से यह जानकर कि उनके कोई सन्तति नहीं है, शर्माजी ने उनको मानस-सन्तति की महत्ता का स्मरण दिलाते हुए लिखा :

"जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्तियेषां यशः कायं जरामरणजं भयम्॥"

जौक ने भी कहा है—

"रहता सुख नसें नाम कयामत तलक है जौक।
औलाद से तो है यही दो पुश्त चार पुश्त।"[4]

---

1. "कुछ पत्र : हिन्दी गद्य-काव्य" (१९५८), परिशिष्ट-२, पृ. ३१२-१३।
2. "जयशंकरप्रसाद : वस्तु और कला (१९६८), परिशिष्ट-६, पृ. ४९९।
3. "व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के सन्दर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा (१९७७), पृ. ३२३।
4. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ९४।

उनके किसी-किसी पत्र में तो ऐसे चार पांच संस्कृत के श्लोक[1] और उर्दू के शेर[2] उद्धृत किये गये हैं।

प्रमाण-बहुला शैली की दृष्टि से पं. पद्मसिंह शर्मा के अतिरिक्त राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह, पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, डा. वासुदेवशरण अग्रवाल आदि के पत्र भी द्रष्टव्य हैं। डा. गोपालप्रसाद बंशी के नाम लिखे गये राजा साहब के कुछ पत्र "रसवंती" में भी प्रकट हुए हैं। इनमें शायद ही कोई ऐसा पत्र होगा जिसमें उर्दू का शेर या उसकी पंक्ति उद्धृत न की गयी हो। एक पत्र तो पूरा उद्धरणों में ही है। देखिए :

"प्रियवर,

"याद में तेरी जहां को भूलता हूँ मैं,
भूलने वाले। कभी तुमको भी याद आता हूँ मैं ?
अब उस पार की पुकार का इन्तज़ार है। फिर भी—
"है अरमान बाकी।"
क्या यह सच है कि "दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना"
—है ऐसा ?
बस,
जी ढूंढ़ता है फिर वही फ़ुरसत के रात दिन—
बैठे रहें तसव्वुरे जाना किये हुए।'[3]

सम्भवत : हिन्दी पत्र-साहित्य में यह पत्र प्रमाण-बहुला शैली की दृष्टि से 'एकमवाद्वितीय' है।

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्रों[4] में भी एक साथ अंग्रेजी, उर्दू आदि भाषाओं के अनेक उद्धरण उपलब्ध होते हैं। डा. वासुदेवशरण अग्रवाल ने भी-किसी-किसी पत्र[5] में अनेक वेद-मंत्र उद्धृत कर दिये हैं।

इस प्रकार, यह शैली पत्र-साहित्य में विशिष्ट स्थान रखती है।

(६) व्यंग्यात्मक शैली

किसी भी रचना में अर्थ-विस्तार, अर्थ-गाम्भीर्य और अर्थ-सिद्धि की दृष्टि से व्यंग्य का बड़ा महत्व है।

व्यंग्य का मूल असंगति में है। एक विसंगति जब पत्र-लेखक को खिजाती है, उसके मूल्य-बोध पर चोट करती है तब वह अपने पत्रों में उस पर व्यंग्य

1. "द्विवेदी युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" पृ. ११६-११७
2. देखिए: "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. ५९-६०।
3. "रसवन्ती", मई १९६५, पृ. ३८।
4. देखिए : "डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र" (१९७०), पृ. १७३-७४।
5. देखिए : "डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र" (१९७४), पृ. १४२-१४३।

किये बिना नहीं रह सकता। वह अपने ईष्ट-मित्रों के नाम लिखे पत्रों में किसी विशेष विसंगति पर अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त करता है। उसकी भाषा में आक्रोश होता है और कभी हल्का-फुलकापन भी। पाठक को उसकी व्यंग्य शैली आनन्द प्रदान करती है और समस्या-विशेष पर विचार करने के लिए विवश भी करती है। श्री अजातशत्रु के अनुसार "व्यंग्य का केन्द्रीय भाव तिलमिलाहट उत्पन्न करना है।"[1]

हास्य और व्यंग्य के बीच एक सूक्ष्म भेद-रेखा है। यद्यपि व्यंग्य का प्रयत्न हँसाना नहीं होता, तथापि हँसते-हँसते विसंगतियों को व्यक्त करना उसका अभिप्राय हो सकता है। इसी कारण इस प्रकार के व्यंग्य को 'हास्य-व्यंग्य' के नाम से पुकारा जाता है।[2]

पत्र-साहित्य में हमें जिस व्यंग्यात्मक शैली के दर्शन होते हैं, उसमें लेखक व्यंग्यकार के रूप में प्रकट नहीं हुआ है। दूसरे शब्दों में यहां व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग लेखक ने जान बूझकर नहीं किया है, वरन् उससे प्रसंगोपात हो गया है। हां, उन पत्रों की बात अलग है जो प्रकाशन के उद्देश्य से लिखे गये हैं। जैसे 'दुबेजी चिट्ठियां', 'भ्रमरानन्द के पत्र', परसाई जी के 'और अन्त में' शीर्षक से प्रकाशित पत्र आदि।

समाज की कमजोरियों, दुर्बलताओं, करनी और कथनी के अन्तरों पर सीधे प्रहार करने की प्रवृत्ति पं. पद्मसिंह शर्मा के पत्रों में विशेष दिखाई देती है। वे आर्यसमाज में आस्था रखते थे, परन्तु आर्यसमाज के महात्माओं की लीला देखकर वे उससे अलग हो गये और आचार्य द्विवेदी के नाम लिखे अपने पत्रों में उन महात्माओं की लीला की कटु आलोचना भी की।[3] इसी प्रकार शर्माजी को ढोंगी लीडरों से खूब चिढ़ थी। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखे एक पत्र में उन्होंने ढोंगी लीडरों पर व्यंग्य करते हुए कहा है :

"लीडरी पेशा राजनीतिक जन्तुओं के सम्बन्ध में जिस परिणाम पर आप पहुँचे हैं, मैं उससे भी कुछ आगे आ गया हूं। लीडर-लीला लिखने का बहुत दिनों से विचार कर रहा हूं। लिखी गई तो पढ़ने लायक चीज़ होगी।"[4]

---

1. "व्यंग्य की समीक्षा" (लेख), 'शब्द', अप्रैल १९७५।
2. "व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न' (१९७६), शेरजंग गर्ग, पृ. ३०।
3. (क) "विचित्र लीला है।
   हमें तो ऐसी ऐसी बातें देखकर इस समाज से घृणा सी हो गई है।
   -"द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र", पृ. १५७।
   (ख) "इसमें सन्देह नहीं कि कुछ महात्माओं की विचित्र लीला से समाज बदनाम और असर्वप्रिय हो जाता है, दैवगति।"
   -वही, पृ. १६६।
4. "पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६), पृ. ५९।

पं. जन्ननाथ प्रसाद चतुर्वेदी के नाम प्रेषित अपने ८-८-१९१६ के पत्र में हिन्दी लिंग-निर्णय के सम्बन्ध में लखनऊ वालों की प्रगतिशीलता पर व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं :

"लखनऊ वालों की दुनिया बेशक दूसरी है। वह तो माला को भी पुल्लिग के डोरे में गूंथते हैं।[1]

आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी ने तिवारी जी को लिखे एक पत्र में सरकारी तंत्र की जड़ता पर बड़ा तीव्र व्यंग्य किया है। वे अपने गांव में खुले दवाखाने के लिए नये वैद्य को भेजने के लिए चैयरमैन को कई प्रशंसात्मक पत्र भेजते रहे, फिर भी वहां से कोई उत्तर नहीं मिला। तब वे लिखते हैं :

क्या करूं, कुछ समझ में नहीं आता। सुनता हूँ, खुशामद जरूर कामयाब होती है, वह हजम नहीं होती—

"केश पचैं, मक्खी पचैं, हलाहल पचि जाय

जाहि खुशामद पचति है, तासों नाहिं उपाय।

मगर इन लोगों को खुशामद भी पच जाती है।"[2] हँसते-हँसते व्यंग्य करने की कला पन्त जी खूब जानते हैं। "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" शीर्षक पुस्तक में व्यंग्यात्मक शैली के अनेक अनूठे उदाहरण मिलते हैं। एक पत्र में कुश्ती-तमाशों एवं दिखावटी लड़ाइयों पर विनोदपूर्ण ढंग से व्यंग्य करते हुए वे लिखते हैं :

"तुम्हारी मेरी कुश्ती भी दशहरे में अल्फ्रेड पार्क में हो जायेगी। ५)-५) टिकट रहेगा। एक बार लड़ने का स्वांग कर तुम गिर पड़ना, एक बार मैं। रुपये आधे-आधे बांट लेंगे।"[3]

एक अन्य पत्र में वर्तमान युग की विषमता का व्यंग्यात्मक चित्र इन शब्दों में अंकित किया गया है :

"यहां दो-तीन दिन खूब पानी बरसा-धरती अब तृप्त है—पर सुना है अब बोने को बीज नहीं है। कुछ तो लोग निराशा में खा गए हैं—कुछ सरकारी अफ़सरों के पेट में गए !!!"[4]

बच्चन जी के पत्रों में भी कहीं-कहीं व्यंग्यात्मक शैली की सुन्दर छटा देखने को मिल जाती है। कमेटियों के पक्षपातपूर्ण निर्णयों पर अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए उन्होंने अपने एक पत्र में लिखा है :

निर्णय के लिए आभारी हूं—

एक ने कही, दूसरे ने मानी,

---

1. पद्मसिंह शर्मा के पत्र" (१९५६) पृ. १७५।
2. "द्विवेदी-पत्रावली" (१९५४), पृ. २१७-२१८।
3. "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ. २३६।
4. "-वही-, पृ. २४१।

कहे कबीर, दोनों ज्ञानी ।''[1]

इस प्रकार हिन्दी पत्र-साहित्य में हमें व्यंग्यात्मक शैली के अनेक सरस और सुन्दर नमूने उपलब्ध होते हैं।

(७) आवेग शैली :

जहां उमड़ते हुए भावों के कारण अभिव्यक्ति में तीव्रता आ जाती है, वहां हमें आवेग शैली के प्रमाण मिलते हैं। पत्र-साहित्य में इस प्रकार की शैली विशेषतया हमें प्रेम-पत्रों में देखने को मिलती है जहां दो भावुक हृदय उन्मुक्त होकर उछलने लगते हैं। अंग्रेजी साहित्य में प्रेम-पत्रों के अनेक उत्कृष्ट संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। फेनी ब्राउन को लिखे हुए कवि कीट्स के प्रेम-पत्र आवेग शैली के अद्वितीय उदाहरण हैं। इसी प्रकार के आवेगपूर्ण प्रेम-पत्र फ्रांस के विश्वप्रसिद्ध उपन्यासकार विक्टर ह्यूगो को अभिनेत्री जूलियट ड्रुक ने लिखे थे जिन्हें फ्रांस सरकार ने २,५५,४१० रुपये में खरीदकर सुरक्षित रखा है। इन पत्रों को फ्रांसीस साहित्य की अमूल्य निधि कहा गया है।[2]

मानव-मन विविध भावों का कोश है। इसमें सत् और असत् भाव सदैव निहित रहते हैं। प्रेम सत् भावों में से ही एक प्रमुख भाव है। यह भाव हृदय अथवा मन को अनन्त तृप्ति प्रदान करने वाला है।[3] प्रेम की भूख सार्वभौम है। वह ऐसी शक्ति है, जो मनुष्य को व्याकुलता और विक्षिप्तता से बचाती है और उसे स्वस्थ रखती है।[4]

श्री विजयचन्द द्वारा सम्पादित "प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेम-पत्र" शीर्षक पुस्तक में विश्व-विख्यात कवियों, लेखकों, दार्शनिकों, राजनीतिज्ञों, वैज्ञानिकों, उद्योगपतियों आदि के विविध प्रकार के भावपूर्ण प्रेम-पत्र संकलित हैं। इस पुस्तक में हिन्दी के कुछ साहित्यकारों और राजनीतिज्ञों के पत्र भी दिये गये हैं।

उक्त पत्र-संग्रह में जिन हिन्दी पत्र-लेखकों के पत्र संकलित हैं, उनमें उपन्यास-सम्राट मुंशी प्रेमचन्द का पत्र शिवरानी के नाम, नाटककार विष्णु प्रभाकर का पत्र पत्नी सुशीला के नाम, कवि नीरज का पत्र "नी" के नाम आदि पत्र उल्लेखनीय हैं। प्रेमचन्द जी के पत्र का एक प्रारम्भिक अंश इस प्रकार है :

"प्रिय रानी, मैं तुम्हें छोड़कर काशी आया, मगर यहां तुम्हारे बिना सूना-सूना लग रहा है। क्या कहूँ ?..........तुम तो अपनी बहन के साथ वहां खुश होगी, मगर मैं यहां परेशान हूँ, जैसे एक घोंसले में दो पक्षी रह रहे हों और

1. "बच्चन : पत्रों में" (१९७०), पृ. ८१।
2. "सरिता", मार्च १९६०, पृ. ५८।
3. "डा. देशराज सिंह भाटी : "बिहारी और उनका साहित्य" (१९७१), पृ. १६८।
4. "डा. शांति भारद्वाज : हिन्दी उपन्यास में प्रेम और जीवन"(१९६९), पृ. २६।

उनमें से एक के न रहने पर दूसरा परेशान हो। तुम्हारा यह न्याय है कि तुम वहां मौज करो और मैं तुम्हारे नाम की माला फेरूं ?......................"[1]

श्री विष्णु प्रभाकर के ७-६-१९६८ को सुशीलाजी के नाम लिखे पत्र का अंश भी कितना भावपूर्ण है :

"मेरी रानी ! मैं चाहता हूँ कि तुम्हें बिलकुल भूल जाऊं। समझूं तुम बहुत बदसूरत, फूहड़ और शरारती लड़की हो। मेरा तुम्हारा कोई सम्बन्ध नहीं। लेकिन विद्रोह तो और भी आसक्ति पैदा करता है। तब क्या करूं ? मुझे उबार लो, नहीं तो पतन के उस खड्डे में जा गिरूंगा, जहां दुनिया को मेरी किरच ढूंढ़ी न मिलेगी।"[2]

राहुल सांकृत्यायन द्वारा अपनी पत्नी कमला सांकृत्यायन को लिखे गये पत्र भी बड़े भावपूर्ण एवं मधुर हैं। ये पत्र डा. ब्रह्मानन्द द्वारा सम्पादित "राहुल सांकृत्यायन : व्यक्तित्व और कृतित्व" नामक पुस्तक के परिशिष्ट में दिये गये हैं। उदाहरण के लिए २०-२-१९५८ को देहरादून से लिखे पत्र के प्रारम्भिक कुछ वाक्य द्रष्टव्य हैं :

"प्राणों से भी प्यारी,

तुम्हारा कल का पत्र मिला। अब रोज़ पत्र न मिलने पर विकलता रहती है। रात को घण्टों ध्यान तुम्हारी ओर रहता है, नींद नहीं आती। ....[3]

इधर भावात्मक शैली में लिखे गये पत्रों का एक और संग्रह देखने में आया है—"दस्तावेज़ !" यह सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका और कवयित्री अमृत प्रीतम द्वारा इमरोज़ को लिखे गये पत्रों का मोहक एवं सुवासित गुच्छा है। अमृता प्रीतम एक कुशल पत्र-लेखिका भी हैं। उन्होंने कितने ही सुन्दर पत्र अपने मित्रों और प्रेमियों को लिखे हैं और पाये हैं। अपनी आत्म-कथा "रसीदी-टिकट" में एक स्थान पर उन्होंने अपनी पत्र-निधि की चर्चा भी की है।[4] "दस्तावेज़" में अमृता जी की भावनाओं के अनेक चित्र अंकित हैं। यथा :

"हर कदम पर, इस विश्वास तोड़ने वाली दुनिया में, तुम, तुम्हारा अस्तित्व और तुम्हारे ख़त, ज़िन्दगी की रहमत हैं। नहीं तो दुनिया के जुल्म की कहानी कितनी लम्बी होती यह मुझे भी मालूम है, तुम्हें भी।"[5]

इस प्रकार हम देखते हैं कि आवेग शैली के उत्तम उदाहरण हमें प्रणय-पत्रों में सहज उपलब्ध हो जाते हैं। इन पत्रों में भावावेग का जितना सुन्दर, सजीव

---

1. "प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेम-पत्र" (१९६१), पृ. १४२।
2. -वही- पृ. ३५४।
3. "राहुल सांकृत्यायन : व्यक्तित्व और कृतित्व" (१९७१), पृ. २३९।
4. "रसीदी टिकट" (१९७८), पृ. ७०।
5. दस्तावेज़ (१९७८), पृ. ५९।

एवं सरस चित्र उभरता है, उतना अन्य पत्रों में नहीं। अतः पत्र-साहित्य में उपलब्ध भाव-शैलियों में इस शैली का अपना विशिष्ट स्थान है। डा. शंकरदयाल चौऋषि ने बहुत उपयुक्त कहा है :

"शैलियों की दृष्टि से प्रेमी के पत्रों में जो आत्म-तन्मयता एवं हृदय का एकीकरण होता है, वह इतना सजीव, सुन्दर एवं सप्राण होता है कि उसकी तुलना में प्रखर मेधा और अनुभवी लेखनी भी ठिठक जाती है। ऐसे पत्र मिश्री से मधुर तथा मदिरा से अधिक मादक होते हैं।"[1]

(८) अन्तर्द्वन्द्व-व्यंजक शैली :

पत्रों में हमें केवल हास-परिहास, राग-विराग, आत्म-विश्लेषण तथा आत्मचिन्तन आदि भावों का चित्रण ही नहीं मिलता, वरन् पत्र-लेखक के अन्तर्द्वन्द्व की झांकी भी होती है। अनेक लेखकों ने अपने घनिष्ठ मित्रों को लिखे पत्रों में अपने अन्तर्द्वन्द्व का मार्मिक चित्र उपस्थित किया है।

अन्तर्द्वन्द्व की व्यंजना की दृष्टि से महाप्राण "निराला" के पत्र विशेष उल्लेखनीय हैं। आचार्य शिवपूजन सहाय के नाम लिखे १-१०-१९२७ के पत्र का निम्नांकित अंश देखिए :

"आप अपनी योग्यता के लिए रोते हैं। आपके आंसू पोंछूं, वह शक्ति यहां नहीं। मैं तो जो कुछ देखता हूं, बहुत है मेरे लिये—पूछेहु मोंहि रहौं कहैं मैं पूछत सकुचाऊं। कोई कहता है, हाल, बेताब-ए-दिल होश में आलू (आलूं) तो कहूं। परन्तु यहां तो होश आने पर भी भूली हुई बातों की याद नहीं आती—जो कुछ जानता था, वह भी गया।"[2]

हिन्दी की प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका मन्नू भण्डारी के कहानीकार अमरकांत के नाम लिखे कुछ पत्र प्रकट हुए हैं। इनमें से १-१-१९५९ के पत्र में अन्द्वंन्द्व-व्यंजना की अच्छी झलक मिलती है। पत्र का एक अंश इस प्रकार है :

"इस बीमारी में आपकी "ज़िन्दगी और जोंक" कहानी रोज़ ही याद की है। मुँह से मैं चिल्लाया करती थी कि "हे भगवान इस सड़ी ज़िन्दगी से मौत आ जाए तो अच्छा" पर स्वस्थ होने के लिये हर उपचार मैंने बड़ी तत्परता और लगन से किया। सच, आदमी चाहे सड़े गले पर मर नहीं सकता, मरना चाहता नहीं।"[3]

आधुनिक लेखकों में मुक्तिबोध के पत्रों में भी अन्तर्द्वन्द्व का मर्मस्पर्शी चित्र देखने को मिलता है। नेमिचन्द्र जैन को लिखे एक पत्र का निम्न अंश देखिए :

---

1. "द्विवेदी-युग की हिन्दी गद्य-शैलियों का अध्ययन" (१९६५), पृ. ४३२-४३३।
2. "निराला की साहित्य-साधना-३," पृ. २३१।
3. "अमरकान्त" (१९७७), संपा. रवीन्द्र कालिया, पृ. ३३३ से उद्धृत।

"किन्तु आज सहसा मैं अपनी सही जगह पा गया था, क्षण-भर के लिए ही सही, मैं अपने से चेतन हो उठा । मेरी ज्ञान-तृष्णा, सौन्दर्य शक्ति, मुक्त हृदयदान तथा स्वानुकूल कर्मण्य शक्ति का मानो मुझे, क्षण-भर के लिए ही सही, बोध हो गया जिसकी आग अभी-अभी राख हो जाएगी । जिस जिन्दगी को जीने का मुझे आदेश मिला है, वह कुछ दूसरी ही थी । यह नहीं । परन्तु फिर भी, यही चाहता हूं कि मैं इस दलदल को भी पार कर जाऊँ । सचमसच मुझे जिन्दगी की तब्दीली की बहुत बड़ी जरूरत है ।"[1]

इन पत्रों में हमारे शीर्षस्थ साहित्यकारों के जीवन-संघर्ष की मार्मिक कहानी अंकित है ।

(९) उपदेशात्मक शैली :

पत्र-साहित्य में इस शैली को हम प्रायः बड़े व्यक्तियों द्वारा छोटे व्यक्तियों को लिखे गये पत्रों में देखते हैं । महात्मा गांधी तथा आचार्य विनोबा जी के बजाज परिवार के नाम लिखे पत्रों में यत्र-तत्र इसी शैली के दर्शन होते हैं । पं. वियोगी हरि द्वारा सम्पादित "बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र" शीर्षक लघु संग्रह में संकलित पत्रों में भी प्रायः यही शैली हमें दिखाई देती है । स्वामी सत्यभक्त के "अनमोल पत्र" शीर्षक संग्रह के पत्रों में भी यत्र-तत्र उपदेश वचन बिखरे हुए हैं । स्वामी गोपालदास के पत्रों का मुख्य स्वर भी उपदेश-प्रधान है । भक्तवर जयदयालु गोयन्दका जी की "परमार्थ पत्रावली" में भी उपदेश-प्रधान पत्रों का संग्रह है । इस प्रकार साहित्येतर क्षेत्रों की महान् विभूतियों के पत्र हमें जीवन के लिए अमूल्य प्रेरणा एवं उपदेश देते हैं ।

साहित्यकारों के पत्रों में उपदेश का जो स्वर गुंजित है, वह अलग स्तर का है । कविवर पन्त जब बच्चन जी को "तुम आजकल घर में सब से चिढ़े रहते हो, यह ठीक नहीं है—सबसे मधुर व्यवहार रखो, स्वयं सहकर भी—"[2] यह व्यवहार का जो उपदेश देते हैं, वह मित्रवत् है ।

इसी प्रकार आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने मैथिलीशरण गुप्त के नाम पत्रों में काव्य-रचना, छन्द-प्रयोग आदि के सम्बन्ध में जो उपदेशात्मक वाक्य लिखे हैं, वे एक साहित्यकार-निर्माता के उपदेश-सूत्र हैं ।
इस प्रकार पत्र-साहित्य में विविध प्रकार की उपदेश शैलियां उपलब्ध होती हैं ।

(१०) दृष्टान्त शैली :

हिन्दी के कुछ पत्र-लेखकों ने अपने पत्रों के बीच-बीच में सुन्दर दृष्टान्त और रोचक प्रसंगों की चर्चा भी की है । इन दृष्टान्तों से विषय-वर्णन में सरसता आ गयी है और विषय की सार्थकता बढ़ गयी है ।

---

1. "मुक्तिबोध के कुछ पत्र", नेमिचन्द्र जैन, "आलोचना", जुलाई-सितम्बर, १९६८, पृ. ४१ ।
2. "बच्चन के नाम पन्त के दो सौ पत्र" (१९७१), पृ. ५६ ।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने पं. जनार्दन झा "जनसीदन" को राजा कमलानन्द सिंह और अपने पत्र-व्यवहार के सम्बन्ध में फ्रांस के दो कवियों के पत्र व्यवहार का दृष्टान्त देते हुए लिखा है :

"फ्रांस में दो कवि हो गए हैं। वे ११ वर्ष तक एक दूसरे से नहीं मिले। परन्तु पत्र द्वारा ही उनका प्रगाढ़ स्नेह हो गया। यहां तक कि दोनों ने मिलकर पुस्तकें तक लिखीं। हमने समझा हमारा और राजा साहब का इतना पत्र-व्यवहार हो चुका है कि हम उनको उस कविता के विषय में लिख सकते हैं।"[1]

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने भी अपने पत्रों में कई स्थान पर दृष्टान्त शैली का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए विष्णु प्रभाकर के नाम लिखे उनके १४-१-१९४५ के पत्र का प्रारम्भिक अंश देखा जा सकता है जिसमें उन्होंने यूरोप के हैनरिक वजीलैण्ड नामक कवि द्वारा रास्ते में चलते समय वृक्षों के बीज इधर-उधर डालते जाने की रोचक घटना का वर्णन किया है।[2]

आचार्य विनोबा भावे के पत्रों में भी हमें अनेक सुन्दर, दृष्टान्त उपलब्ध होते हैं। सेठ जमनालाल को लिखे एक पत्र में उन्होंने मीराबाई द्वारा गोस्वामी जी के नाम प्रेषित पत्र का उत्तम दृष्टांत दिया है।[3]

इस प्रकार मनीषियों के पत्रों में बड़े मधुर, मनोहर एवं मनोरंजक दृष्टान्त प्राप्त होते हैं।

निष्कर्ष :

पत्र-साहित्य में शिल्प और शैली का अनुशीलन करने के पश्चात् निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पत्र कोई अपरिवर्तनशील तत्व नहीं है। विषय और शैली दोनों ही दृष्टियों से इसके बहिरंग और अंतरंग रूप में युग-भेद और व्यक्ति-भेद के अनुसार नये प्रयोग होते रहे हैं। आधुनिक युगीन पत्र-साहित्य में, विशेषतः साहित्यकारों के पत्रों में, अपेक्षाकृत अधिक नवीनता और विविधता दृष्टिगत होती है। यद्यपि साहित्यकारों ने अपने पत्रों को साहित्य समझकर नहीं लिखा है, तथापि इनमें उनकी सहजात प्रतिभा के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

पत्रों की भाषा लेखक की अपनी उस समय की मनःस्थिति और भावग्राहक के साथ उसके सम्बन्ध के अनुरूप होती है। प्राचीनकालीन पत्रों में अनेक जनपदीय बोलियों का स्पर्श मिलता है। आधुनिक युग के समाज-सेवियों तथा राजनीतिज्ञों के पत्रों की भाषा सुबोध, सरल और स्पष्ट है। साहित्यकारों के पत्रों की भाषा में सरलता, स्वाभाविकता और प्रवाहिता के साथ कहीं-कहीं अलंकार-विधान भी मिलता है।

---

1. "द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के कुछ पत्र" (१९५८), पृ. ३।
2. "प्रेरक साधक" (१९७१), पृ. ५४०।
3. "विनोबा के पत्र बजाज परिवार के नाम" (१९६६), पृ. ९।

इस प्रकार विषय और शैली सम्बन्धी जो विशेषताएं हमें साहित्य की अन्य विधाओं में प्राप्त होती हैं, प्रायः वे सभी विशेषताएं पत्र-साहित्य में भी मिल जाती हैं। परन्तु पत्र-साहित्य में प्राप्त शिल्पगत विशेषताओं का महत्व अन्य विधाओं से कहीं अधिक इसलिए है कि ये विशेषताएं स्वतः स्फुरित हैं।

दूसरे शब्दों में, साहित्यकारों एवं विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों को अपनी साहित्यिक रचनाओं और अपने लेखों में भाषा, शैली आदि का सयत्न प्रयोग करना पड़ता है, किन्तु पत्रों में साहित्यिकता स्वयमेव प्रवेश कर जाती है। यही कारण है कि पत्र-साहित्य अन्य साहित्यिक कृतियों से कहीं अधिक आकर्षक और आनन्द-दायक होता है।

उपसंहार

हिन्दी पत्र-साहित्य की उपलब्धियां, सीमाएं और सम्भावनाएं

पिछले अध्यायों के विवेचन-विश्लेषण के पश्चात् यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी का पत्र-साहित्य इतना क्षीण-हीन और दुर्बल-दरिद्र नहीं है जितना कि समझा जाता है। आज हिन्दी में पत्र-साहित्य की एक सुनिश्चित परम्परा स्थापित हो गयी है। प्राचीन काल से लगाकर अब तक का लिखा हुआ प्रचुर पत्र-साहित्य प्रकाश में आ चुका है। अतः अब इसे एक पृथक् विधा मानने में कोई संकोच नहीं किया जाना चाहिए।

पत्र-लेखन की कला यथेष्ट रूप में पुरानी है। प्राचीन काल में पद्य और गद्य में विशुद्ध संस्कृत शैली में पत्र लिखे जाते थे। मीरा और तुलसी तथा पृथ्वीराज राठौर और महाराणा प्रताप का पत्र-व्यवहार लोक विश्रुत है। यद्यपि प्राचीन-अर्वाचीन काल के अनेक कवियों ने पद्य में भी सुन्दर पत्र लिखे हैं, किन्तु पत्र-लेखन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त माध्यम गद्य ही है। सबसे प्राचीन पत्र राजस्थानी-गद्य में मिलते हैं। महाराजा छत्रसाल द्वारा बुन्देली में लिखे गये पत्रों में खड़ी बोली गद्य की अपूर्व छटा देखने को मिलती है। यद्यपि प्राचीन कालीन पत्रों में कहीं-कहीं लालित्य और माधुर्य का पुट भी मिल जाता है, किन्तु अधिकतर पत्र राज-काज से सम्बन्धित और व्यावहारिक स्तर के हैं।

पत्रों को साहित्य का अंग मानने तथा महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों को संगृहीत कर प्रकाशित करने की प्रवृत्ति हमारे यहां पश्चिम से आई है। नवजागरण-काल में आधुनिक ढंग की संचार-सुविधा और डाक-सेवा का आरम्भ होने से पत्रों के आदान-प्रदान में मध्यस्थ की आवश्यकता न रही और पत्र ने आत्मीय वार्तालाप का रूप धारण कर लिया। नवजागरण के अग्रदूत और आधुनिक हिन्दी के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने हिन्दी साहित्य के अन्य क्षेत्रों में जैसे नवीनता की सृष्टि की वैसे ही पत्रों के अन्तर्बाह्य रूप में भी उन्होंने अपनी सहज भावुकता तथा कलात्मकता का समावेश किया। उन्होंने नये चाल के पत्र चलाये और "प्रशस्ति-संग्रह अथवा पत्र-बोध" नामक पुस्तक लिखकर पत्र-लेखन कला का नया आदर्श प्रस्तुत किया। यद्यपि उन्होंने स्वयं किसी पत्र-संग्रह का सम्पादन नहीं किया, किन्तु अनेक साहित्यिक मित्रों को रोचक शैली में पत्र लिखकर नये-नये विषयों की प्रेरणा दी।

दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक आदि पत्र पत्रिकाओं में महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों को प्रकाशित करने की प्रवृत्ति का आरम्भ भारतेन्दु-युग में ही हो गया था, परन्तु मनीषियों के व्यक्तिगत पत्रों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने का शुभारम्भ द्विवेदी-युग में स्व. महात्मा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द) ने किया। उन्होंने "आर्यभाषा" हिन्दी के उन्नायक तथा आर्यसमाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती से सम्बन्धित पत्रों का संग्रह प्रकाशित कर हिन्दी में पत्र-साहित्य की विधिवत् परम्परा का सूत्रपात किया। पं. भगवद्दत तथा पं. चमूपति ने इस परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रखने में अनन्य योग दिया। हिन्दी साहित्यकारों के व्यक्तिगत पत्रों को संगृहीत कर पुस्तकाकार प्रकाशित करने की परम्परा का आरम्भ सन् १९५४ ई. में हुआ। श्री बैजनाथसिंह "विनोद" के सम्पादकत्व में प्रकाशित "द्विवेदी पत्रावली" इस परम्परा की प्रथम कड़ी है। पं. बनारसीदास-चतुर्वेदी, आचार्य किशोरीदास वाजपेयी, बाबू वृन्दावनदास, डा. हरिवंशराय बच्चन आदि ने इस परम्परा के विकास में अपूर्व सहयोग दिया है। व्यक्तिगत पत्रों के स्वतंत्र संग्रहों के अतिरिक्त स्मृति-ग्रन्थों, अभिनन्दन-ग्रन्थों, जीवनी-ग्रन्थों शोध-प्रबन्धों आदि में भी महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्र देने की परम्परा चल पड़ी है। यात्रा सम्बन्धी पत्र-साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में प्रकाशित हो चुका है। इस प्रकार आज हिन्दी में पत्र-साहित्य की एक समृद्ध परम्परा विद्यमान है।

यद्यपि साहित्यकारों तथा विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों ने अपने पत्रों को साहित्य समझकर नहीं लिखा है, किन्तु उनके कलात्मक एवं महिमा-मंडित व्यक्तित्व के कारण उनके पत्र प्रकाश में आकर साहित्य की स्थायी सम्पत्ति बन गये हैं। विभिन्न प्रकार के पत्रों में व्यक्तित्व या आत्म-प्रकाशन का अंश घटता-बढ़ता रहता है। इस दृष्टि से सब साहित्यिकों के सभी पत्र साहित्यिक नहीं होते, परन्तु जैसा कि बाबू गुलाबराय ने कहा है—"कुछ कुशल साहित्यिकों में यह विशेषता होती है कि वे जो बात कहना चाहते हैं, उसको थोड़े-से शब्दों में स्पष्ट रूप से व्यक्त कर देते हैं। उनके घरेलु या व्यावहारिक पत्रों में भी साहित्य का आनन्द आ जाता है।"[1] यही बात प्रकारान्तर से डा. रामविलास शर्मा ने महाकवि "निराला" के पत्र साहित्य की चर्चा के प्रसंग में कही है। उन्हीं के शब्दों में :

"…………साहित्यकारों के पत्र—जीवन चरित के सन्दर्भ से अलग हटकर अपने आप में पक्का माल हैं, इसमें भी कोई सन्देह नहीं। सभी पत्र इस कोटि के नहीं हैं फिर भी काफी ऐसे हैं, और बहुतों में काफी अंश ऐसे हैं, कि उन्हें श्रेष्ठ साहित्य की कोटि में रखना उचित होगा।"[2]

विषय और शैली की दृष्टि से हिन्दी का पत्र-साहित्य अत्यन्त व्यापक और समृद्ध है। इसमें इतिहास, धर्म, राजनीति, समाज, साहित्य आदि अनेक

1. "काव्य के रूप" (१९५४), पृ. १६१।
2. "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" (१९७६), भूमिका, पृ. १।

विषयों की चर्चा मिलती है। भाव और भाषा-सम्बन्धी जितनी शैलियां निर्धारित की गयी हैं, प्रायः वे सभी शैलियां पत्र-साहित्य में मिल जाती हैं।

पत्र-साहित्य का सबसे बड़ा महत्व इस बात में है कि उसके द्वारा हमें लेखक के सहज व्यक्तित्व का पता चल जाता है। जीवनी, संस्मरण, रेखाचित्र आदि विधाओं में श्रद्धातिरेक के कारण महान् व्यक्तियों की दुर्बलताएं विस्मरण के गर्त में लुप्त हो जाती हैं, किन्तु उनके साहित्य को उन दुर्बलताओं को समझे बिना भली भांति हृदयंगम नहीं किया जा सकता। अतः किसी साहित्यकार की रचनाओं को सम्यक् रूप से समझने के लिए उसके पत्र अत्यन्त उपयोगी होते हैं। पत्र-साहित्य में लेखक के व्यक्तित्व के सच्चे सम्प्रेषण से उसके और पाठक के बीच रागात्मक सम्बन्ध स्थापित हो जाता है।

जीवन-चरित के संदर्भ में पत्र-साहित्य दोहरी भूमिका निभाता है। एक ओर जहां पत्रों से जीवनी-लेखन में अन्यतम सहायता मिलती है, वहां दूसरी ओर लिखी गयी जीवनियों को पत्र के प्रकाश में देखा-परखा भी जा सकता है। रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर की ओर से प्रकाशित "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" शीर्षक पत्र-संग्रह की भूमिका में विभिन्न लेखकों द्वारा लिखी गयी स्वामी दयानन्द सरस्वती की जीवनियों को स्वामीजी के पत्रों के प्रकाश में देखने-परखने का सुन्दर और स्तुत्य प्रयास किया गया है।[1]

कभी-कभी साहित्यकार स्वयं भी अपनी रचनाओं तथा शैलीगत रहस्यों की व्याख्या अपने पत्रों में प्रस्तुत करता है। कविवर सुमित्रानन्दन पन्त ने १६-४-१९६४ से २२-५-१९६४ तक की अवधि में बच्चन जी के नाम लिखे पत्रों में अपने "लोकायतन" शीर्षक महाकाव्य की जो व्याख्या प्रस्तुत की है[2], वह विवेचक और पाठक दोनों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण है, क्योंकि रचनाकार के निजी मंतव्य भी अन्य सुप्रतिष्ठित मंतव्यों के समान अपना पृथक् महत्व रखते हैं।

साहित्यकारों तथा विभिन्न क्षेत्रों के मनीषियों के पत्रों में समकालीन परिस्थितियों का यथार्थ चित्र भी अंकित होता है। हिन्दी पत्र-साहित्य में तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और साहित्यिक गतिविधियों, प्रवृत्तियों तथा घटनाओं के जो प्रामाणिक और रोचक सन्दर्भ प्राप्त होते हैं, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं। इस दृष्टि से "किसी देश या समाज के विविधवर्णी इतिहास पर यथार्थ प्रकाश डालने के लिए पत्र सामग्री एक बहुत बड़ा आलोक केन्द्र है।"[3] इस प्रकार पत्र-साहित्य की अनेक उपलब्धियां हैं।

---

1. "ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन" (१९५५), भूमिका, पृ. ११।
2. देखिए:—"पन्त के दो सौ पत्र : बच्चन के नाम" (१९७१), पृ. ११०-१५५।
3. "हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास," चतुर्दश भाग (सं. २०२७ वि.) पृ. ५०७।

पत्र-साहित्य की अपनी कुछ सीमाएं भी हैं। स्वरूपगत सीमाओं पर विचार करें को प्रतीत होता है कि पत्र में निश्छलता, स्वाभाविकता, सरसता, संक्षिप्तता, आत्मीयता आदि विशेषताओं का होना आवश्यक है। इनके अभाव में पत्र पत्र न रहकर निबन्ध, आलोचना या संस्मरण का रूप धारण कर लेता है। केवल सम्बोधन और अन्त में "भवदीय" शब्द लिख देने से पत्र का वाहरी ढांचा तो निर्मित हो जायगा, किन्तु उसमें भावों का स्पन्दन और हृदय की धड़कनें नहीं सुनाई देंगी। हिन्दी में प्रकाशित उपदेशात्मक, यात्रा-विषयक आदि पत्रों में कई स्थानों पर कृत्रिमता का आभास होता है।

दूसरी ओर कुछ पत्र अपनी सीमा से अधिक व्यक्तिगत जान पड़ते हैं। "नर्मदा" के 'नवीन-अंक' (१९६३) में प्रकाशित पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के नाम नवीनजी के कुछ पत्र इसी प्रकार के हैं। "कवियों में सौम्य संत", "पंत के सौ पत्र-बच्चन के नाम" तथा "पन्त के दो सौ पत्र-बच्चन के नाम" शीर्षक पुस्तकों में संकलित कुछ पत्र भी सीमा के अधिक व्यक्तिगत हो गये हैं। अतः पत्रों के चयन में सतर्कता की आवश्यकता है।

पत्र-साहित्य की एक बहुत बड़ी सीमा यह है कि जब तक गये पत्र को न पढ़ा जाय तब तक आये उत्तर का अर्थ पूरी तरह से नहीं खुल पाता है। अतः पत्रों को पढ़ते समय पाठक को कल्पना से काफी काम लेना पड़ता है। यद्यपि कुछ पत्र-संग्रहों में संदर्भ-स्पष्टीकरण के लिए पाद-टिप्पणियां दी जाती हैं, किन्तु पत्र के उत्तर साथ-साथ पढ़ने से और भी अधिक आनन्द की अनुभूति होती है। हिन्दी में "निराला की साहित्य-साधना भाग-३" को छोड़कर दूसरा कोई पत्र-संग्रह देखने में नहीं आया जिसमें किसी प्रसिद्ध व्यक्ति द्वारा प्रेषित पत्रों के साथ उसे प्राप्त पत्रों को भी संकलित किया गया हो। मदनगोपाल और अमृतराय द्वारा सम्पादित "चिट्ठी-पत्री" भाग-२ के आरम्भ में प्रेमचन्द जी और जैनेन्द्रकुमार का पत्र-व्यवहार दिया गया है, किन्तु वह बहुत सीमित है। हिन्दी में इस प्रकार के पत्र-संग्रहों की विशेष आवश्यकता है।

पत्र-साहित्य के संग्रह-संकलन के रास्ते में भी अनेक कठिनाइयां हैं। इस सम्बन्ध में "शरत् पत्रावली" अनुवाद-कर्त्ता श्री महादेव साहा ने लिखा है कि—"पत्र-लेखक अगर पत्रों की नकल अपने पास नहीं रख छोड़ता है या जिसको पत्र लिखा गया है, वे उन्हें संभालकर नहीं रखते तो यह काम नहीं किया जा सकता। इन्हीं कारणों से कितने ही महान् साहित्यकारों तथा दूसरों के पत्रों का संकलन बहुत-कुछ असम्भव-सा हो गया है।"[1]

उर्दू, बंगला मराठी आदि भाषाओं में पत्र-साहित्य की समृद्धि में प्रारम्भ से ही सर्तकता बरती गयी है। हिन्दी में पत्रों की सुरक्षा के प्रति उदासीनता के कारण स्वाधीनता के पूर्व किसी साहित्यकार का पत्र-संग्रह प्रकाशित नहीं हो

1. "शरत् पत्रावली" (१९६९), भूमिका पृ. ५।

पाया। स्वाधीनता के बाद भी अनेक अनमोल पत्र नष्ट हो गये। राष्ट्रकवि "दिनकर" के पत्रों के विषय में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है :

"किसी महान् साहित्यिक की परलोक यात्रा के समय हिन्दी-जगत् बड़े उच्च स्वरों में शोकोद्गार प्रकट करता है और लम्बे-चौड़े प्रस्ताव भी पास करता है, पर जब उसकी कीर्ति रक्षा के लिए ठोस काम करने की नौबत आती है, तब कोई नज़र नहीं आता। सन् २००० के हिन्दी साहित्य-अन्वेषक को शायद लिखना पड़ेगा कि "देव ने कृपाकर हिन्दी जगत् को एक प्रतिभाशाली कवि दिया था, पर वह उनके पत्रों की रक्षा भी न कर सका, जिन्हें पढ़ते हुए हम आज उनके हृदय का स्पन्दन, सुन सकते।"[1]

इस प्रकार पत्र-साहित्य की समृद्धि में साहित्यकारों एवं महापुरुषों के पत्रों की सम्भाल-सुरक्षा की बहुत बड़ी आवश्यकता है। इस सम्बन्ध में आचार्य शिवपूजन सहाय का यह सुझाव दृष्टव्य है—'हमारे देश के विद्यार्थियों और नवयुवकों में डाक-टिकट, फोटो आदि संग्रह करने का तो शौक है, पर साहित्यिकों की चिट्ठियों के संग्रह का शौक शायद ही किसी को हो।.... .... यह भी एक प्रकार की साहित्य-सेवा ही होगी।"[2]

जिन लोगों के पास मूल्यवान् पत्र-सामग्री सुरक्षित हो, उनको चाहिए कि वे या तो उन पत्रों को किसी साहित्यिक संस्था को दे दें या पत्र-साहित्य के संग्रहकर्त्ताओं को भेज दें। परन्तु बहुत से लोग अपने पास सुरक्षित पत्रों को न स्वयं प्रकाशित करते हैं न दूसरों को प्रकाशनार्थ भेजते हैं। परिणाम-स्वरूप कालान्तर में वह मूल्यवान सामग्री दीमक के लिए भोजन-सामग्री बन जाती है। जब स्वर्गीय साहित्यकारों के स्वजन-परिजन पत्र-संग्रहकर्त्ता को सहयोग नहीं देते तब तो पत्र-साहित्य के प्रेमियों को और अधिक दुःख होता है। बाबू वृन्दावनदास ने पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के आदेश से डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्रों को प्रकाशित करने के लिए डा. अग्रवाल के परिजनों को अनेक बार लिखा परन्तु उनकी ओर से कोई उत्तर ही न मिला।[1]

इसी प्रकार पत्रों के प्रकाशन में भी अनेक कठिनाइयां हैं। इसके लिए पत्र-लेखक की अनुमति आवश्यक है। पत्रों को हूबहू प्रकाशित कर दिया जाय या काट-छांट कर, यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, डा. हरिवंशराय बच्चन आदि साहित्यकार पत्रों को हूबहू प्रकाशित करने के पक्ष में हैं। पं. बनारसीदास चतुर्वेदी ने स्वर्गीय "नवीन" जी के फक्कड़पन से भरे पत्रों को "नर्मदा" के 'नवीन-अंक' में ज्यों का त्यों प्रकाशित किया है। बच्चन जी ने भी अपने नाम आये पन्तजी के पत्रों को बिना किसी काट-छांट, संशोधन, परिवर्तन के

1. "राष्ट्रकवि दिनकर जी : अपने पत्रों के प्रकाश में (लेख), "ज्ञानतरंगिनी" श्रद्धांजली-अंक, १९७६, पृ. ८।

2 शिवपूजन रचनावली" खण्ड-४ (१९५९), पृ. ५५७।

प्रकाशित किया है। पन्तजी अपने पत्रों से कुछ अंशों को निकाल देना चाहते थे, किन्तु बच्चन जी उनसे सहमत नहीं हुए। परिणाम-स्वरूप पन्त जी ने उन पर अदालत में मुक़दमा दायर कर दिया था। पत्र-साहित्य के प्रकाशन में इस घटना से कुछ रुकावट आ गयी और पत्रों में सेंसरशिप की प्रवृत्ति भी आरम्भ हो गयी। राष्ट्रकवि "दिनकर" ने अपने २८-८-१९७१ के पत्र में पं. बनारसीदास चतुर्वेदी को लिखा :

"आपके बहुत से पत्र मेरे पास हैं। और मित्रों के भी हैं। उन्हें प्रकाशित करने की इच्छा होती है। मगर आपने सुना होगा कि पन्त जी ने बच्चन पर

1. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ. २२७।

मुकदमा कर दिया है कि बच्चन ने उनके पत्र क्यों छाप दिये।"[1]

पत्रों के प्रकाशन के सम्बन्ध में बाबू गुलाबराय का यह मत विचारणीय है—"लेखक के अतिरिक्त जिन पत्रों में दूसरे के रहस्यों का उद्घाटन हो और जिनके कारण उनको समाज में लज्जित होना पड़े, छापना उचित नहीं है। लेखक के रहस्यों के उद्घाटन करने वाले पत्रों को उनके जीवन-काल में न छापकर उनकी मृत्यु के पश्चात् छाप सकते हैं, विशेषकर जब कि लेखक के व्यक्तित्व पर प्रकाश पड़ता हो या उनमें साहित्यिकता हो।"[2]

इस प्रकार पत्र-साहित्य के प्रकाशन में बड़ी सतर्कता रखने की आवश्यकता है। प्रकाशित पत्रों की मूल प्रतियां कहीं ऐसी जगह सुरक्षित करा देनी चाहिए जहां कोई देखना चाहें, तो आसानी से देख सकें।

इसके अतिरिक्त प्रकाशन-क्षेत्र की संकीर्णता के कारण भी पत्र-साहित्य के विकास में कुछ शिथिलता प्रारम्भिक काल में आ गयी थी। आज भी हमारे यहां पत्र-संग्रहों के प्रकाशन का वह आदर्श स्थापित नहीं हो पाया है जो पाश्चात्य-जगत् में है।

स्वतंत्रता पूर्व हिन्दी पत्र-साहित्य की क्षीण स्थिति का एक अन्य कारण पाठकों का निश्चैतन्य भी है। पश्चिमी देशों में साहित्यकारों और महापुरुषों के पत्र उनकी कृतियों के समान बड़े चाव से पढ़े जाते हैं, किन्तु हिन्दी में इस ओर प्रारम्भिक काल में पाठकों ने विशेष ध्यान नहीं दिया। परिणाम-स्वरूप मूर्धन्य साहित्यकारों के पत्रों के संकलन उनके प्रशंसकों एवं प्रकाशकों द्वारा अपेक्षित संख्या में नहीं निकल पाये।

पत्र-साहित्य के संग्रह, संकलन और प्रकाशन में अनेक बाधाएं होते हुए भी पिछले तीन दशकों में अनेक महत्वपूर्ण पत्र-संग्रह प्रकाश में आये हैं। कुछ प्रकाशक भी अब पत्र-साहित्य के प्रकाशन में रुचि ले रहे हैं। दिवंगत साहित्यकारों के परिजन भी इस क्षेत्र में अब सचेष्ट हो रहे हैं। आचार्य शिवपूजन सहाय के पत्रों को एकत्र करने के लिए उनके पुत्र आनन्दमूर्ति ने "साहित्य" (त्रै.) के शिवपूजन-

1. "दिनकर जी के अनमोल पत्र", 'ग्राम्या,' जून १९७६।
2. "काव्य के रूप" (१९५४), पृ. २६२।

स्मृति अंक में सुधी साहित्यकारों तथा सम्पादकों के नाम एक निवेदन प्रकाशित किया था।[1] इसी प्रकार स्व. गजानन माधव "मुक्तिबोध" के पत्रों को एकत्रित करने के लिए उनके पुत्र रमेश मुक्तिबोध ने "राष्ट्रवाणी" में एक निवेदन प्रकाशित किया था।[2] सुप्रसिद्ध हिन्दी कथाकार और नाटककार श्री उपेन्द्रनाथ अश्क के सहस्रों पत्र फाइलों में सुरक्षित हैं और उन्हें दस खण्डों में छपाने की योजना है :[3]

बाबू वृन्दावनदास ने डा. लल्लन मिश्र को प्रेषित २०-४-१९७२ के पत्र में सूचना दी है कि वे पं. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्रों का दूसरा संग्रह छापने का विचार कर रहे हैं।[4] इसी प्रकार श्री हरगोविन्द गुप्त के नाम लिखित ७-१-१९७४ के पत्र में उन्होंने गुप्त बन्धुओं के पत्रों को प्रकाशित करने की इच्छा प्रकट की है।[5] श्री सूरज प्रसाद मिश्र के नाम लिखे उनके २-९-१९७५ के पत्र में राहुल जी के पत्र-संकलन की सूचना मिलती है।[6] इसी प्रकार भविष्य में अनेक बहुमूल्य पत्र-संग्रह प्रकाशित होने की सम्भावना है। यथा—डॉ. जीवन प्रकाश जोशी "अंचल: पत्रों में" शीर्षक संग्रह प्रकाशित करेंगे।[7] दिनकर शोध संस्थान (कलकत्ता) के अध्यक्ष श्री कन्हैयालाल फूलफगर "दिनकर के पत्र" शीर्षक संग्रह के प्रकाशन में प्रयत्नशील हैं।[8]

[नोट : अब यह पत्र-संग्रह प्रकाशित हो चुका है।]

अभी हाल ही में डा. त्रिलोकीनाथ ब्रजवाल, डा. (श्रीमती) शारदा शर्मा तथा डा. कमलसिंह के सम्पादकत्व में डा. अम्बाप्रसाद "सुमन" के मूल्यवान् पत्रों का एक बृहत् संग्रह "संस्कृति, साहित्य और भाषा" शीर्षक से प्रकाशित हुआ है। इसमें डा. "सुमन" जी द्वारा संस्कृति, साहित्य और भाषा के विषय में सन् १९५५ से १९७८ ई. तक समय-समय पर अपने मित्रों और शिष्यों को लिखे गये बहुमूल्य पत्र संकलित हैं। यह ग्रंथ हिन्दी पत्र-साहित्य में एक महत्वपूर्ण एवं अभिनव योगदान है।

---

1. साहित्य (त्रै.), शिवपूजन-स्मृति-अंक, १९६४, अन्तिम पृष्ठ।
2. राष्ट्रवाणी, मुक्तिबोध श्रद्धांजलि-अंक, जनवरी-फरवरी-१९६५, पृ. ३३५
3. श्रीमती कौशल्या अश्क के एक व्यक्तिगत पत्र से।
4. "बाबू वृन्दावनदास के पत्र" (१९७८), पृ. ३५६।
5. "मैं कुछ इस प्रकार सोचता हूं कि स्वर्गीय मैथिलीशरण जी गुप्त और सियारामशरण जी गुप्त के पत्रों का एक संग्रह प्रकाशित कर दिया जाय" -वही-, पृ. ३८७।
6. "राहुल जी के पत्रों का संग्रह आप कष्ट झेलकर भी कर रहे हैं, यह आपकी सच्ची हिन्दी-सेवा समझी जायगी।वही पृ. ३८०।
7. देखिए : "गद्यकार बच्चन" (१९७६) सन्मार्ग, दिल्ली, "लेखक परिचय" : अप्रकाशित कृतियां।
8. श्री फूलफगर जी के व्यक्तिगत पत्र से।

हिन्दी का विपुल पत्र-साहित्य पुरानी पत्र-पत्रिकाओं में बिखरा पड़ा है। सहस्रों पत्रों को एकत्र करके वैज्ञानिक ढंग से सम्पादित-प्रकाशित किया जाय तो हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययन में बड़ी प्रामाणिकता का संचार हो सकता है।

यदि पत्र-पत्रिकाओं के सम्पादकों की सहायता से पुराने पत्रों की खोज एवं सुरक्षा का आन्दोलन चलाया जाय तो साहित्य-जगत् की अनेक पुरानी घटनाएं प्रकाश में आती हैं और अनेक अज्ञात तथ्यों का उद्घाटन हो सकता है।

पुरानी पत्र-पत्रिकाओं में पत्र-साहित्य का जो विशाल भण्डार भरा है, उनमें शोधकर्त्ताओं के लिए मूल्यवान् सामग्री संचित है। अतः इन पत्रों के प्रकाशन में शोधसंस्थानों तथा विश्वविद्यालयों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट होना चाहिए। पत्र-साहित्य के संकलन-संपादन का कार्य अब तक प्रायः व्यक्तिगत तौर पर ही होता रहा है, किन्तु अब यह कार्य बड़ी संस्थाओं तथा सरकार द्वारा होना चाहिए। यदि विशाल हिन्दी-क्षेत्र से महत्वपूर्ण पत्रों का संग्रह किया जाए तो बिखरी हुई विपुल सामग्री एकत्र हो सकती है। इस कार्य के पूरा होने से हिन्दी साहित्य का बहुत बड़ा उपकार होगा।

संक्षेप में पिछले तीन दशकों में हिन्दी-जगत् में महत्वपूर्ण व्यक्तियों के पत्रों को संगृहीत कर पुस्ताकाकार प्रकाशित करने की चेतना में जो उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है, इससे भविष्य में पत्र-साहित्य का अधिक विकास होने की सम्भावना दीख रही है।

परिशिष्ट

ग्रंथानुक्रमणिका तथा अन्य सहायक सामग्री

(१) उपजीव्य एवं उपस्कारक ग्रंथों की सूची

[पाद टिप्पणियों से सम्बद्ध ग्रन्थ]

(क) हिन्दी के ग्रंथ :

१. अच्छी चिट्ठी लिखने की रीति—संतराम, १९७०।

२. १८ वीं शती के हिन्दी पत्र—डा, काशिनाथ शंकर केलकर, १९७०।

३. अनमोल पत्र—स्वामी सत्यभक्त, द्वि. सं. १९५०।

४. अभिनन्दिनी—रमेशचन्द्र दुबे (संपा.), १९६८।

५. अमरकान्त—रवीन्द्र कालिया (संपा.), १९७७।

६. अलक्षित निराला – डा. सूर्यप्रसाद दीक्षित, १९७३।

७. आंगन का पंछी और बनजारा मन—विद्यानिवास मिश्र, १९६२।

८. आचार्य द्विवेदी—निर्मल तालवार (संपा), १९६४।

९. आचार्य द्विवेदी और उनके संगी-साथी—किशोरीदास वाजपेयी, १९६५।

१०. आचार्य पद्मसिंह शर्मा : व्यक्ति और साहित्य—बनारसीदास चतुर्वेदी और अन्य (संपा,) १९७४।

११. आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी : व्यक्तित्व और कर्तृत्व—डा. शैव्या झा, १९७७।

१२. आत्मनेपद—अज्ञेय, १९६०।

१३. आदर्श पत्र लेखन यज्ञदत्त शर्मा, १९७४।

१४. आधुनिक भारत—डा. वी. एस. भार्गव, १९७०।

१५. आधुनिक संस्कृत साहित्य—डा. हीरालाल शुक्ल, १९७१।

१६. आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य-सिद्धांत—डा. सुरेशचन्द्र गुप्त, १९६०।

१७. आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य—डा. शान्ति खन्ना, १९७३।

१८. आधुनिक हिन्दी गद्य और गद्यकार—डा. जेकब पी. जार्ज, १९६६।

१९. आधुनिक हिन्दी गद्य साहित्य—डा. हरदयाल, १९७२ ।
२०. आधुनिक हिन्दी साहित्य - डा. रामगोपालसिंह चौहान, १९६५ ।
२१. आधुनिक हिन्दी साहित्य की भूमिका— डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, द्वि. सं. १९७१ ।
२२. आधुनिक हिन्दी साहित्य : विश्लेषण और प्रकर्ष—डा. सुरेन्द्र माथुर, १९६९ ।
२३. आर्यसमाज का इतिहास, भाग-१—इन्द्र विद्यावाचस्पति, १९५७ ।
२४. आलोक पंथा—कृष्णबिहारी मिश्र, १९७७ ।
२५. ऋषि दयानन्द का पत्र व्यवहार, भाग-१—मुंशीराम जिज्ञासु, १९१० ।
२६. ऋषि दयानन्द का पत्र-व्यवहार, भाग-२—चमूपति, १९९२ वि. ।
२७. ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन—भगवद्दत्त, द्वि. सं. १९५५
२८. एक व्यक्ति : एक संस्था—क्षेमचन्द्र सुमन अभिनन्दन ग्रंथ, १९६६ ।
२९. ऐतिहासिक प्रमाणावली और छत्रसाल—डा. महेन्द्रप्रतापसिंह (संपा.) द्वि. सं. १९७५ ।
३०. कबीर साखी समीक्षा—पुष्पपालसिंह, तृ. सं. १९६७ ।
३१. क़लम का मजदूर : प्रेमचन्द—मदन गोपाल. १९६५ ।
३२. कला और संस्कृति—डा. वासुदेवशरण अग्रवाल, द्वि. सं. १९५८ ।
३३. कला, साहित्य और समीक्षा—डा. भगीरथ मिश्र, १९६३ ।
३४. कालिदास—डा. वि. वि. मिराशी, तृ. सं. १९६७ ।
३५. कवियों में सौम्य संत—बच्चन, १९६० ।
३६. काव्य का देवता : निराला—विश्वम्भर 'मानव', तृ. सं. १९७४ ।
३७, काव्य के रूप—गुलाबराय, तृ. सं. १९५४ ।
३८. कुछ पुरानी चिट्ठियाँ—जवारलाल नेहरू—द्वि. सं. १०६७ ।
३९. क्या भूलूं क्या याद करूँ—बच्चन, १९६९ ।
४०. खड़ी बोली का आन्दोलन—डा. शितिकण्ठ मिश्र, २०१३ वि. ।
४१. गदर के पत्र—चतुरसेन शास्त्री (अनु.), पं सं. १९७५ ।
४२. गद्यकार बच्चन—डा. जीवनप्रकाश जोशी, १९७६ ।
४३. गद्यकार बाबू बालमुकुन्द गुप्त—डा. नत्थन सिंह, १९५६ ।
४४. गांधी साहित्य : मेरे समकालीन—महात्मा गांधी. १९६८ ।
४५. गांधी हिन्दी दर्शन—गोपालप्रसाद व्यास (संपा.), प्र. सं. ।
४६. गालिब के पत्र—अर्श मलसियानी (संपा.) १९७२ ।
४७. गालिब के पत्र-भाग-१—श्रीराम शर्मा तथा श्रीरामनिवास शर्मा (संपा.) १९५८ ।
४८. गालिब : व्यक्तित्व और कृतित्व—नर नबी अब्बासी तथा डा. नरूल हसन नकबी, १९६९ ।
४९. गुप्त जी की काव्य साधना—डा. उमाकान्त, १९६६ ।
५०. चिट्ठी-पत्री भाग-१—मदनगोपाल तथा अमृत राय, १९६६ ।

५१. चिट्ठी-पत्री भाग-२, मदन गोपाल तथा अमृतराय १९६२।
५२. छायावाद युगीन स्मृतियाँ—रामनाथ सुमन; १९७५।
५३. छायावादोत्तर काव्य में शब्दार्थ का स्वरूप—डा.सुधा गुप्ता, १९७२।
५४. जयशंकर प्रसाद: वस्तु और कला—डा. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल, १९६८।
५५. जायसी-ग्रंथावली—रामचन्द्र शुक्ल (संपा.) षष्ठ सं. २०१३ वि.।
५६. जैनेन्द्र के उपन्यासों की विवेचना—डा. विजय कुलश्रेष्ठ, १९७६।
५७. जैनेन्द्र के विचार—डा. प्रभाकर माचवे (संपा.) द्वि. सं. १९७७।
५८. ज्ञानमूर्ति वासुदेवशरण अग्रवाल—कृष्ण वल्लभ द्विवेदी (संपा.), १९७४।
५९. ज्यादा अपनी कम परायी—उपेन्द्रनाथ अश्क, १९५१।
६०. टूटी-छूटी कड़ियाँ—बच्चन, १९७३।
६१. डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र—वृन्दावनदास (संपा.) १९७१।
६३. डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र— ,, ,, १९७४।
६४. द्विवेदी-पत्रावली —वैजनाथसिंह 'विनोद' (संपा.), १९५४।
६५. द्विवेदी-युग की हिन्दी गद्य-शैलियों का अध्ययन—डा. शंकरदयाल चौऋषि, १९६५।
६५. द्विवेदी-युग के साहित्यकारों के पत्र—वैजनाथसिंह 'विनोद' (संपा.) १९५८।
६७. द्विवेदी-युगीन काव्य पर आर्यसमाज का प्रभाव—डा. भक्तराम शर्मा, १९७३।
६८. देखा, सुना, पढ़ा—ओंकार शरद, १९७६।
६९. निराला—डा. रामविलास शर्मा, तृ. सं. १९७१।
७०. निराला की साहित्य-साधना, भाग-१—डा. रामविलास शर्मा, १९६९।
७१. ,, ,, ,, भाग-३— ,, ,, (संपा.). १९७६।
७२. निराला के पत्र—जानकीवल्लभ शास्त्री (संपा.), १९७१।
७३. नये भारत के निर्माता —क्षेमचन्द्र सुमन, १९४९।
७४. पं. रामनरेश त्रिपाठी : एक युग : एक व्यक्तित्व—जगदीशप्रसाद पीयूष (संपा.) १९७४।
७५. पंत के सौ पत्र—बच्चन (संपा.), १९७०।
७६. पंत के दो सौ पत्र— ,, ,, १९७१।
७७. पंत-साहित्य : आत्म कथात्मक परिदृश्य—डा. निर्मल बखशी, १९७७।
७८. पत्रकार प्रेमचन्द और हंस—डा. रत्नाकार पाण्डे, १९७७।
८९. पत्र लेखन कला—बनारसीदास चतुर्वेदी तथा हरिशंकर शर्मा, १९५७।
८०. पत्र व्यवहार भाग-१—रामकृष्ण बजाज (संपा.), १९५८।
८१. ,, ,, भाग-२— ,, ,, ,, ,,
८२. ,, ,, भाग-३— ,, ,, ,, १९६०।
८३. ,, ,, भाग-४— ,, ,, ,, १९६३।
८४. ,, ,, भाग-५— ,, ,, ,, १९६५।

८५. पत्रावली—मैथिलीशरण गुप्त, २०२७ वि.।
८६. पत्रों के प्रकाश में स्वामी गोपालदास जी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व—गोविन्द अग्रवाल, २०२५ वि.।
८७. पद्मसिंह शर्मा के पत्र—बनारसीदास चतुर्वेदी तथा हरिशंकर शर्मा (संपा.), १९५६।
८८. पराड़कर जी और पत्रकारिता—लक्ष्मीशंकर व्यास, १९६०।
८९. परिप्रेक्ष्य और प्रतिक्रिया—डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, १९:२।
९०. पांचवे पुत्र को बापू के आशीर्वाद—काका कालेलकर (संपा.), १९५३।
९१. पृथ्वीराज रासो के दो अध्याय—भारत भूषण सरोज (सं.पा.), प्र. सं.।
९२. प्रतापनारायण ग्रंथावली भाग-१—विजयशंकर मल्ल (संपा.) २०१४ वि.।
९३. प्रतापनारायण मिश्र की हिन्दी गद्य को देन—डा. शांतिप्रकाश वर्मा, १९७०.
९४. प्रतापनारायण मिश्र : जीवन और साहित्य—डा. सुरेशचन्द्र शुक्ल, २०२१ वि.।
९५. प्रबन्धसागर—यज्ञदत्त शर्मा—तृ. सं. १९५५।
९६. प्रसाद और उनका साहित्य—विनोदशंकर व्यास, च. सं. १९५६।
९७. प्रसाद के नाम पत्र—रत्नशंकर प्रसाद (सं.पा.), १९७६।
९८. प्रसिद्ध व्यक्तियों के प्रेम-पत्र—विजयचन्द, १९६१।
९९. प्राचीन भारत के कलात्मक विनोद—हजारीप्रसाद द्विवेदी, १९५२।
१००. प्राचीन भारतीय अभिलेख—डा. वासुदेव उपाध्याय, द्वि. सं. १९७०।
१०१. प्राचीन हिन्दी पत्र-संग्रह—डा. धीरेन्द्र वर्मा तथा लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, १९५९
१०२. प्रेमचन्द (आज के संदर्भ में)—डा. गंगाप्रसाद विमल, १९६८।
१०३. प्रेमचन्द : एक विवेचन—डा. इन्द्रनाथ मदान, च. सं. १९६८।
१०४. प्रेमचन्द : कलम का सिपाही—अमृतराय—विद्यार्थी सं. १९७६।
१०५. प्रेमघन और उनका कृतित्व—डा. रामचन्द्र पुरोहित, १९७६।
१०६. प्रेरक साधक—बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन ग्रन्थ, १९७०।
१०७. फाइल और प्रोफाइल—उग्र (संपा), १९७०।
१०८. फोर्ट विलियम कालेज—डा. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय, प्र. सं.।
१०९. बंदी की चेतना—कमलापति त्रिपाठी, द्वि. सं. २०३० वि.।
११०. बच्चन के पत्र—निरंकारदेव सेवक (संपा.), १९७२।
१११. बच्चन : निकट से—अजितकुमार तथा ओंकारनाथ श्रीवास्तव (संपा.), १९६८।
११२. बच्चन : पत्रों में—डा. जीवनप्रकाश जोशी (संपा.), १९७०।
११३. बड़ों के प्रेरणादायक पत्र—वियोगी हरि (संपा.), १९६०।
११४. बाजत आवे ढोल—देवेन्द्र सत्यार्थी, १९५२।
११५. बापू के पत्र : कुमारी प्रेमाबहन कंटक के नाम—काका कालेलकर (संपा.), १९६१।

११६. बापू के पत्र : बजाज परिवार के नाम—काका कालेलकर, (संपा), द्वि. सं. १९६६ ।
११७. बापू के पत्र : सरदार वल्लभभाई पटेल के नाम—मणिबहन पटेल (संपा.), १९५२ ।
११८. बाबू वृन्दावनदास अभिनन्दन ग्रंथ—आनन्दस्वरूप पाठक (संपा.) १९७५ ।
११९. बाबू वृन्दावनदास के पत्र —रमण शांडिल्य (संपा.), १९७८ ।
१२०. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : व्यक्ति एवं काव्य—डा. लक्ष्मीनारायण दुबे १९६४ ।
१२१. बालकृष्ण गुप्त : एक मूल्यांकन—कल्याणमल लोढा और अन्य (संपा.) २०२२ वि. ।
१२२. बिहारी और उनका साहित्य—डा. देशराज सिंह भाटी, १९७१ ।
१२३. बृहत् हिन्दी कोश—कालिकाप्रसाद (संपा.), (प्र. सं.)
१२४. भारत का प्राचीन इतिहास—डा. सत्यकेतु विद्यालंकार, १९६० ।
१२५. भारतीय व्यवहार कोश—विश्वनाथ दिनकर नरवणे (संपा.), १९६१ ।
१२६. भारतीय संस्कृति के विविध परिदृश्य—वृन्दावनदास, द्वि. सं. १९७० ।
१२७. भारतीय शास्त्र भाग-२—बलदेव उपाध्याय, २०१२ वि. ।
१२८. भारतेन्दु कला—शिवाधार पाण्डेय (संपा.), २००७ वि. ।
१२९. भारतेन्दु की खड़ी बोली का भाषा-विश्लेषण—डा. उषा माथुर, २०१८ वि. ।
१३०. भारतेन्दु की गद्य-भाषा—डा. ब्रजकिशोर पाठक, प्र. सं. ।
१३१. भारतेन्दु के विचार : एक पुनर्विचार —डा. चन्द्रभानु सोनवणे, १९७७ ।
१३२. भारतेन्दु ग्रंथावली भाग-३—ब्रजरत्नदास (संपा.), २०१० वि. ।
१३३. भारतेन्दु-पूर्व हिन्दी गद्य—कांतिकुमार, १९७४ ।
१३४. भारतेन्दु-युग और हिन्दी भाषा की विकास परम्परा—डा. रामविलास शर्मा १९७५ ।
१३५. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—मदनगोपाल, १९७६ ।
१३६. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—ब्रजरत्नदास, तृ. सं. १९६२ ।
१३७. भिक्षु के पत्र—भदन्तानन्द कौशल्यायन, १९४० ।
१३८. भोजपुरी के कवि और काव्य—दुर्गाशंकर मिश्र, १९५८ ।
१३९. भोजपुरी भाषा और साहित्य—डा. उदयनारायण तिवारी, १९५४ ।
१४०. मध्यकालीन भारत—हरिशंकर शर्मा, १९७० ।
१४१. मनीषी की लोकयात्रा—डा. भगवतीप्रसादसिंह, १९६८ ।
१४२. मनोरंजक संस्मरण —श्रीनारायण चतुर्वेदी, १९७७ ।
१४३. मनोहर पत्र —सूर्यबली सिंह (संपा.), १९५६ ।
१४४. महात्मा गांधी के निजी पत्र—लक्ष्मीधर वाजपेयी (संपा.), १९७९ वि. ।

१४५. महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग—डा. उदयभानुसिंह, २००८ वि.।
१४६. महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण डा.—रामविलास शर्मा, १९७७।
१४७. माखनलाल चतुर्वेदी : यात्रा-पुरुष—श्रीकांत जोशी (संपा.), १९६९
१४८. मानक हिन्दी कोश : तृतीय खण्ड—रामचन्द्र वर्मा (संपा.), १९६४।
१४९. मानविकी पारिभाषिक कोश—डा. नगेन्द्र (संपा.), १९६५।
१५०. मित्र के नाम पत्र—सुरेशचन्द्र शर्मा (अनु.), १९४९।
१५१. मीरांबाई—डा. प्रभात, १९६५।
१५२. मीरां बाई की शब्दावली और जीवन-चरित्र—बेलवेडियर प्रेस।
१५३. मूल्य और मूल्यांकन—डा. रामरतन भटनागर, १९६२।
१५४. मैंने सिल पहुँचाई—विद्यानिवास मिश्र, १९६६।
१५५. यशपाल के पत्र—मधुरेश (संपा), १९७७।
१५६. यात्रा-साहित्य : उद्भव और विकास—डा. सुरेन्द्र माथुर, १९६२।
१५७. युग कवि निराला—गिरिराजशरण अग्रवाल (संपा.), १९७०।
१५८. योरप के पत्र—डा. धीरेन्द्र वर्मा, २००० वि.
१५९. रसीदी टिकट—अमृता प्रीतम, द्वि.सं. १९७८।
१६०. राजस्थानी कहावतें : एक अध्ययन—डा. कन्हैयालाल सहल, १९५८।
१६१. राजा राधिकारमण प्रसाद सिंह अभिनन्दन-ग्रंथ, १९६९।
१६२. राधाकृष्ण ग्रंथावली—श्यामसुन्दरदास (संपा.), १९३०।
१६३. राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त अभिनन्दन-ग्रंथ, १९५९।
१६४. राहुल सांकृत्यायन : व्यक्तित्व और कृतित्व—ब्रह्मानन्द (संपा.), १९७१
१६५. रेखा चित्र—बनारसीदास चतुर्वेदी, १९५२।
१६६. रेखाचित्र : उद्गम और विकास—डा. कृपाशंकर सिंह, १९६४।
१६७. लेखन कला—आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, १९७२।
१६८. विनय-पत्रिका—डा. राजेश्वर प्रसाद चतुर्वेदी (संपा.), प्र. सं.।
१६९. विनोबा के पत्र—रामकृष्ण बजाज (सं पा.), १९६२।
१७०. विश्वकवि रवीन्द्र—उमेश चन्द्र मिश्र, १९५१।
१७१. व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न—शेरजंग गर्ग, १९७६।
१७२. व्यक्ति और व्यक्तित्व - कपिलदेव नारायण सिंह 'सुहृद', १९६७।
१७३. व्यक्तिवादी एवं नियतिवादी चेतना के संदर्भ में उपन्यासकार भगवतीचरण वर्मा—डा. रमाकांत श्रीवास्तव, १९७७।
१७४. शरत् पत्रावली—महादेव साहा (अनु.), तृ. सं. १९६१।
१७५. शांतिनिकेतन से शिवालिक—शिवप्रसाद सिंह (संपा.), १९६७।
१७६. शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत भाग-२—डा. गोविन्द त्रिगुणायत, १९५९।

१७७. शिवपूजन रचनावली खण्ड-४—बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् २०१६ वि.।
१७८. शैली करुणापति त्रिपाठी, प्र.सं.।
१७९. शोध-प्रक्रिया और विवरणिका—डा. सरनामसिंह शर्मा, १९६४।
१८०. श्रीधर पाठक तथा हिन्दी का पूर्व-स्वच्छन्दतावादी काव्य—डा. रामचन्द्र मिश्र, १९५९।
१८१. श्रीरामचरित मानस—तुलसीदास, गीताप्रेस, गोरखपुर, २०११ वि.
१८२. संस्कृति, साहित्य और भाषा—डा. त्रिलोकीनाथ व्रजवाल और अन्य (संपा.) १९७९।
१८३. संस्मरण—बनारसीदास चतुर्वेदी, १९५२।
१८४. सचित्र विश्वकोश—राजपाल एण्ड सन्स, १९६७।
१ ५. समीक्षा के सिद्धांत—डा. सत्येन्द्र, १९६२.
१८६. समीक्षा शास्त्र—डा. दशरथ ओझा, प्र.सं,।
१८७. समीक्षा शास्त्र—सीताराम चतुर्वेदी, २०१० वि.।
१८८. सरदार भगत सिंह : पत्र और दस्तावेज़—वीरेन्द्र सिंधु (संपा.), १९७७
१८९. सांस्कृतिक परम्परा और साहित्य—तारकनाथ बाली, १९५९।
१९०. साहित्य और जीवन—बनारसीदास चतुर्वेदी, १९५४।
१९१. साहित्य और समीक्षा—केसरी कुमार, प्र. सं.।
१९२. साहित्य तरंग—सद्गुरुशरण अवस्थी, १९५६।
१९३. साहित्य रूप—डा. रामअवध द्विवेदी, द्वि.सं. २०२६ वि.
१९४. साहित्य शास्त्र का परिभाषिक कोश—राजेन्द्र द्विवेदी, १९५५।
१९५. साहित्य शैली के सिद्धांत—डा. गणपतिचन्द्र गुप्त, १९७१।
१९६. साहित्याब्द कोश—देवेन्द्रनाथ शर्मा तथा गोपालराय (संपा.), १९७१।
१९७. साहित्यानुशासनम्—आचार्य सीताराम चतुर्वेदी, २०२६ वि.।
१९८. साहित्यानुशीलन—शिवदानसिंह चौहान, १९६५।
१९९. साहित्यालोचन: सिद्धांत और अध्ययन—डा. सीताराम दीन, १९७१.
२००. साहित्यिकों के पत्र—किशोरीदास वाजपेयी (संपा.), १९५८।
२०१. सिद्धांत और अध्ययन—गुलाबराय, षष्ठ सं. १९७०।
२०२. सिद्धांतालोचन—धर्मचन्द संत तथा बलदेव कृष्ण, प्र.सं.।
२०३. सियारामशरण गुप्त का गद्य साहित्य—सुमित्रा वर्मा, १९७०।
२०४. सूरसारावली—डा. मनमोहन गौतम (संपा.), १९७०।
२०५. स्वच्छन्दतावाद एवं छायावाद का तुलनात्मक अध्ययन—डा. शिवकरण-सिंह १९६५।
२०६. स्वतंत्र भारत की झलक—डा. राजेन्द्रप्रसाद, १९७३।
२०७ स्वतंत्रता रजत-जयन्ती अभिनन्दन-ग्रंथ—गोपालप्रसाद व्यास (संपा.) १९७३।

२०८. हरिश्चन्द्र—बाबू शिवनन्दनसहाय, अभिनव सं. १९६५।
२०९. हर्षचरित: एक सांस्कृतिक अध्ययन—डा. वासुदेवशरण अग्रवाल, १९७५।
२१०. हिन्दी आत्मकथा—डा. नारायण वि. शर्मा, १९७२।
२११ हिन्दी उपन्यास : प्रेम और जीवन—डा. शांति भारद्वाज, १९६९।
२१२. हिन्दी उपन्यासों का शास्त्रीय विवेचन—डा. महावीरमल लोढा, १९७२।
२१३. हिन्दी कहानी : उद्भव और विकास—डा. सुरेश सिन्हा, १९६७।
२१४. हिन्दी काव्य में रूप-विधाएं—डा. निर्मला जैन, १९६३।
२१५. हिन्दी का गद्य-साहित्य—रामचन्द्र तिवारी, १९५५।
२१६. हिन्दी का राष्ट्रभाषा के रूप में विकास—डा. शिवराज शर्मा, १९७०।
२१७. हिन्दी का संस्मरण साहित्य—राजरानी शर्मा, १९७०।
२१८. हिन्दी का सामयिक साहित्य—विश्वनाथप्रसाद मिश्र, २००८ वि।
२१९. हिन्दी का स्वातंत्र्योत्तर विचारात्मक गद्य—डा. सिस्टर क्लेमेंट मेरी।
२२०. हिन्दी की छायावादी कविता का कला-विधान—डा. बलवीर सिंह, १९६४।
२२१. हिन्दी के वैयक्तिक निबन्ध—श्री वल्लभ शुक्ल, १९६३।
२२२. हिन्दी गद्य का आविर्भाव और विकास—धर्मचन्द संत, प्र.सं.
२२३. हिन्दी गद्य का विकास—डा. प्रेमप्रकाश गुप्त, १९६६।
२२४. हिन्दी गद्य काव्य—डा. पद्मसिंह शर्मा "कमलेश", १९५८।
२२५. हिन्दी गद्य के विविध साहित्य रूपों का उद्भव और विकास—डा. बलवन्त-लक्ष्मण कोतमिरे, १९५८।
२२६. हिन्दी गद्य साहित्य—डा. चन्द्रभानु सोनवणे, १९७५।
२२७. हिन्दी जीवनी-साहित्य : सिद्धांत और अध्ययन—डा. भगवानशरण भारद्वाज, १९७८।
२२८. हिन्दी निबन्ध—डा. प्रभाकर माचवे, प्र. सं.।
२२९. हिन्दी निबन्ध का विकास—डा. ओंकारनाथ शर्मा, १९६४।
२३०. हिन्दी पत्रकारिता—डा. कृष्णबिहारी मिश्र, १९६८।
२३१. हिन्दी रेखाचित्र—डा. हरवंशलाल शर्मा, १९६९।
२३२. हिन्दी रेखाचित्र : सिद्धांत और सृजन—डा. अनिता पाण्डेय, १९७८।
२३३. हिन्दी वाङ्मय : बीसवीं शताब्दी—डा. नगेन्द्र (संपा.), १९७२।
२३४. हिन्दी विश्वकोश भाग-१२—नगेन्द्र नाथ बसु (संपा.), प्र. सं.।
२३५. हिन्दी साहित्य : एक आधुनिक परिदृश्य—अज्ञेय, १९६७।
२३६. हिन्दी साहित्य का आधुनिक काल—डा. जयकिशन प्रसाद, तृ.सं १९६९।
२३७. हिन्दी साहित्य का इतिहास—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, परिवर्धित सं.।
२३८. हिन्दी साहित्य का इतिहास—नगेन्द्र (संपा.), १९७३।

२३९. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास भाग-१४— डा. हरवंशलाल शर्मा (संपा.) २०२७ वि.।
२४०. हिन्दी साहित्य को दत्त द्विजेन्द्र की देन—डा. दयाशंकर शुक्ल, १९७८।
२४१. हिन्दी साहित्य कोश भाग-१ डा. धीरेन्द्र वर्मा (संपा.) २०२० वि.
२४२. हिन्दी साहित्य : बीसवीं शताब्दी—नन्ददुलारे वाजपेयी, द्वि.सं. १९७०।
२४३. हिन्दी साहित्य में काव्य रूपों के प्रयोग—डा. शंकरदेव अवतरे, १९६२।
२४४. हिन्दी साहित्य में जीवन-चरित का विकास—डा. चन्द्रावती सिंह, १९५८।

(ख) संस्कृत के ग्रंथ :

१. अभिज्ञान शाकुन्तलम् —कालिदास, हिन्दी अनुवाद और व्याख्या-रामतेज पाण्डेय, प्र. सं.।
२. अमरकोश—रघुनाथ शास्त्री (संपा. षष्ठ सं. १९०७।
३. ऋग्वेद तृतीय खण्ड—वेदमूर्ति तपोनिष्ठ (संपा.), च. सं. १९६७।
४. कादम्बरी—बाण भट्ट, हिन्दी अनुवाद और व्याख्या—मोहनदेव पंत, १९७१।
५. कुमारसम्भवम् —कालिदास, कालिदास ग्रंथावली—सीताराम चतुर्वेदी (संपा.) तृ. सं. २०१९ वि.।
६. कौटिलीय अर्थशास्त्र—चाणक्य, अंग्रेजी अनुवाद-शामा शास्त्री १९१९।
७. जीवन्धर चम्पू हरिश्चन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी।
८. दशकुमार चरितम् दण्डी, अंग्रेजी अनुवाद—एम. आर. काले, १९६६।
९. पंच तंत्र—व्याख्याकार गुरुप्रसाद शास्त्री, १९५२।
१०. पत्र कौमुदी—वररुचि, हिन्दी अनुवाद—श्रीनारायण द्विवेदी, प्र. सं.।
११. पद्मचन्द्र कोश पं. गणेशदत्त शास्त्री, १८६८।
१२. प्रशस्तिकाशिका—बालकृष्ण त्रिपाठी, अंग्रेजी अनुवाद-के. पी. शर्मा, १९६७।
१३. भामिनी-विलास—पं. जगन्नाथ, व्याख्याकार—राधेश्याम मिश्र, २०२३ वि.।
१४. मनुस्मृति—मनु, सस्ता साहित्य वर्धक कार्यालय, बम्बई, प्र. सं।
१५. महाभारत—व्यास, व्याख्याकार-पं. रामचन्द्र शास्त्री, १९३०।
१६. महावीर चरितम्—भवभूति, व्याख्याकार-रामचन्द्र मिश्र, द्वि. सं. २०२५ वि.।
१७. मालविकाग्निमित्र—कालिदास, अंग्रेजी अनुवाद—एम. आर. काले, प्र. सं.।
१८. मुद्राराक्षसम्—विशाखदत्त, व्याख्याकार-डा. रामशंकर त्रिपाठी, द्वि. सं. १९७१।
१९. मेदिनी कोश—पं. जगन्नाथ शास्त्री (संपा.), २०२४ वि.

२०. लेख पद्धति—चिमनलाल दलाल (संपा.), १९२५ ।
२१. विक्रमोर्वशीयम् —कालिदास, कालिदास ग्रंथावली, तृ. सं. २०१९ वि.
२२. व्याकरण महाभाष्य—पतंजलि, व्याख्याकार—परमेश्वरीदीन शुक्ल, १९६७ ।
२३. शब्द कल्पद्रुम:तृतीय भाग—राधाकान्त देव, प्र. सं.
२४. शब्दस्तोम महानिधि—तारानाथ भट्टाचार्य (संपा.), १९६७ ।
२५. श्रीमद्भगवद् गीता—अंग्रेजी अनुवाद—गीता प्रेस, गोरखपुर, प्र. सं. ।
२६. श्रीमद्भागवत—गुजराती अनुवाद—शान्ति प्रार्थना मन्दिर, भावनगर, प्र. सं. ।
२७. संस्कृत-अंग्रेजी कोश भाग-३—पी. के. गौड़ तथा सी. जी. कार्या (संपा.), १९५४ ।
२८. संस्कृत शब्दार्थ-कौस्तुभ—द्वारकाप्रसाद शर्मा तथा तारिणीश झा. (संपा.), प्र. सं. ।
२९. संस्कृत-हिन्दी कोश—वामन शिवराम आप्टे, तृ. सं. १९७३ ।
३०. हर्ष चरितम्—बाण भट्ट, व्याख्याकार-जगन्नाथ पाठक, तृ. सं. २०२९ वि.
३१. हलायुध कोश —जयशंकर जोशी, १८७६ शक ।
३२. हारावली—काव्यमाला-संस्कृत सीरीज़ ।

(ग) अंग्रेजी के ग्रंथ :

1. A Letter Book—Selected by George Saintsbury, 1922.
2. A Smaller Latin English Dictionary—William Smith, 1952.
3. An Introduction to the Study of Literature—William Henry Hudson, 5th Edition, 1973.
4. An English-Hindi Dictionary—Father Camil Bulcke, 1971.
5. Bartlett's Familliar Quotations—John Bartlett, 13th Edition.
6. Bhargava's Standard Illustrated Dictionary, 1976.
7. Benham's Book of Quotations—Sir Gurney Benham, 1948.
8. Compton's Pictured Encyclopedia & Fact—Index, vol. 8,11.
9. Current Literary Terms—A.F. Scott, 1965.
10. Dictionary of Literary Terms—J. R. Harmsworth, Ist Edition.
11. Dictionary of Quotations—Bergen Evans, 1968.
12. Dictionary of World Literature—J. T. Shipley. Ist Edition.
13. Encyclopedia Americana—vol. 17.
14. Encyclopedia Britannica—vol. 8.
15. Illustrated World Encyclopedia—Part-13.

16. 'I My Hot Youth'—Byron's Letters and Journal.
17. Letters & Papers from prison—Dietrich Benheeffer. 1956.
18. Letters of Fanny Brawne to Fenny Keats Edited by Fred Edgcumbe, 1936.
19. Letters of Great Writers - Edited by Hedley Tayler, 1912.
20. Letters of Sigmund Freud—Translated by Tania & James Stern.
21. Letters of Srinivasa Sastri—Edited by T. N. Jagadisan. 1963.
22. Letters of William Cowper -Edited by W. Benham, 1914.
23. Napoleon's Letters - Translated by J.M. Thompson, 1965.
24. One Mighty Terrent Edgar Johnson, 1955.
25. Shivaji's Visit to Aurangzib at Agra —Sir Jadunath Sarkar & Dr. Raghubir Sinh,
26. Stevenson's Book of Quotations - 4th Edition.
27. The Book of Unusual Quotations—Selected by Rudolf Flesch, 1964.
28. The Letters of Emily Dickinson - Edited by Thomas H. Johnson, 1965.
29. The New Dictionary of thoughts—Tryon Edward, 1964.
30. The Penguin Dictionary of Quotations—J.M. & M.J. Cohen, 1960
31. The Problem of Style—Middeton Murray, 1952
32. Webster's New International Dictionary of the English Language—George Bell & Sons, London,

(२) टंकित कृतियाँ

१. प्रशस्ति-संग्रह अथवा पत्र-बोध—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भारत कला भवन, बनारस में उपलब्ध टंकित प्रति, संख्या-४-३८११।
२. हिन्दी आत्मकथा-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन—त्रिलोकीनाथ शर्मा, महाराजा सायाजीराव विश्वविद्यालय की पी. एच. डी. उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध।

(३) पत्र-पत्रिकाएँ

(क) हिन्दी

१. आजकल—नवम्बर १९७७।

२. आलोचना—जनवरी १९५५, जुलाई-सितम्बर १९६८।
३. कादम्बिनी—जनवरी १९७०।
४. काव्य सुधाधर—पूर्णप्रकाश पंचम वर्ष १९०२-१९०३।
५. ग्राम्या—कोचस उच्च विद्यालय की पत्रिका, जून १९७६।
६. चाँद—पत्र-विशेषांक-मई १९२८।
७. ज्ञान तरंगिनी—श्रद्धांजलि विशेषांक १९७६।
८. ज्ञानोदय—पत्र-विशेषांक—नवम्बर-दिसम्बर १९६३।
९. डाकतार जून १९७८।
१०. तुलसीप्रज्ञा १।
११. धर्मयुग—दीपावली विशेषांक १९७८।
१२. नर्मदा—नवीन-अंक १९६३।
१३. नया संसार—गणतंत्र-अंक १९६६।
१४. नई धारा—शिवपूजन-स्मृति-अंक वर्ष १४।
१५. नवनीत—अप्रैल १९७९।
१६. नवभारत टाइम्स—२७ मई १९७६।
१७. नागरी प्रचारिणी—पत्रिका—भारतेन्दु जन्मशती-अंक, हीरक-जयन्ती-अंक आदि।
१८. पत्र-मित्र—मई-जून १९७८।
१९. परम्परा भाग-२४—१९६७।
२०. परिषद् पत्रिका—जनवरी १९७२।
२१. प्रकर—जून १९७७।
२२. फीरोजाबाद सन्देश—बनारसीदास चतुर्वेदी अभिनन्दन अंक।
२३. ब्राह्मण—खण्ड-४, सं.-१२।
२४. भारतीय साहित्य—अप्रैल १९६१, जुलाई १९६१, अक्टूबर १९६१, जनवरी-६२ आदि
२५. भाषा—द्विवेदी-स्मृति-अंक १९६४ :
२६. मनीषा—कासगंज कालेज की पत्रिका सं. २०२५ तथा २०२६ वि.।
२७. माधुरी—अप्रैल १९४९।
२८. माध्यम—सितम्बर १९६५ तथा अक्टूम्बर १९६६।
२९. रसवंती—मई १९६५ तथा अक्टूबर १९६८।
३०. राष्ट्रवाणी—जनवरी-फरवरी १९६५।
३१. लोकशिक्षक—१५ दिसम्बर १९७६ तथा मार्च १९७७।
३२. विशाल भारत—जनवरी १९३८, अप्रैल १९ तथा सितम्बर १९५१।
३३. विश्व भारती—श्रावण-आश्विन २००२ वि.।
३४. वीणा—नवीन-स्मृति-अंक सितम्बर १९६०।

३५. वृत्तांत—४ अक्टूबर १९७५।
३६. ब्रज भारती—मार्गशीर्ष २०२४ वि.।
३७. शब्द—अप्रैल १९७५।
३८. सम्मेलन पत्रिका—श्रद्धांजलि अंक, गांधी-टंडन-स्मृति-अंक, कला-अंक आदि
३९. समीक्षा—जून १९७१ तथा जनवरी-फरवरी १९७९।
४०. सरस्वती—नवम्बर १९४० तथा फरवरी १९६६।
४१. सरिता—मार्च १९६०।
४२. साप्ताहिक हिदुस्तान—१ फरवरी १९७० तथा ८ फरवरी १९७०।
४३. साहित्य—शीवपूजन-स्मृति-अंक १९६४।
४४. साहित्य-सन्देश—नवम्बर १९५२
३५. सुधा—मार्गशीर्ष ३१४, वर्ष-१०, खण्ड-१, सं. ५।
४६. हिन्दुस्तानी पत्रिका—जनवरी-सितम्बर १९६४, तथा जुलाई-सितम्बर-१९७१।

(ख) अंग्रेजी

1. Bulletin of the Deccan College Research Institute, vol. 20, Part 1-4, 1960.
2. The Indian Historical Quarterly, vol. xxxiv, September-December, 1958.
3. The Timer Literary Supplement, Friday, September 18, 1953.

(४) विद्वानों से हुई वार्त्ताओं का सार-संक्षेप :

श्री उदयशंकर शास्त्री

प्रसिद्ध पुरातत्वविद् एवं लेखक (क.मु. हिन्दी तथा भाषा विज्ञान विद्यापीठ आगरा विश्वविद्यालय)

[वार्त्ता-दिनांक : २७-१०-१९७८]

* पत्र-लेखन की परम्परा बहुत प्राचीन है। 'मेघदूत', 'सन्देश-रासक' आदि में इसके संकेत-सूत्र देखे जा सकते हैं।
* गुजरात में पाटण आदि स्थलों पर जैन-धर्म-सम्बन्धी प्रचुर पत्र-साहित्य उपलब्ध हो सकता है।
* हिन्दी साहित्य का प्राचीन पत्र-साहित्य विभिन्न बोलियों में बिखरा पड़ा है।
* पत्रों के रूप में लिखा हुआ साहित्य, जैसे, 'उग्र' कृत 'चन्द हसीनों के ख़तूत', मैथिलीशरण गुप्त कृत 'पत्रावली' आदि को विशुद्ध पत्र-साहित्य नहीं कहा जा सकता।
* क.मु. हिन्दी विद्यापीठ द्वारा प्रकाशित 'भारतीय साहित्य' (त्रै.) में साहित्यिकों के अनेक बहुमूल्य पत्र प्रकाशित हुए हैं।

□

डा. ख्वाजा अहमद फारूकी

उर्दू पत्र-साहित्य के मर्मी विद्वान (उर्दू-विभाग : दिल्ली विश्वविद्यालय)

[वार्त्ता-दिनांक : ७-११-१९७८]

* उर्दू पत्र-साहित्य से सम्बन्धित मेरा 'मक्तुबाते उर्दू का अदबी और तारीखी इरतीका' शीर्षक शोध-प्रबन्ध दिल्ली विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत हुआ है।
* पत्र को साहित्य-रूप (As a literary form) मानने में कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए।
* पत्र-साहित्य के अन्तर्गत उन पत्रों का समावेश भी हो सकता है, जो मुख्यत: साहित्य के रूप में लिखे गये हैं।
* पत्रों के अध्ययन में कार्यालय-पत्र (official letters) भी आ सकते हैं।
* गालिब, शिब्ली, मेहदि, आदि उर्दू के महान् पत्र-लेखक हैं।

□

डा. जीवनप्रकाश जोशी

प्रसिद्ध कवि, लेखक एवं समीक्षक (हिन्दी-विभाग : देशबन्धु कालेज दिल्ली)

[वार्त्ता-दिनांक : २५-११-१९७७]

* पत्र-साहित्यपर शोध करना एक बड़ा काम है, अछूता भी, जिम्मेदारी भरा भी।
* बच्चन जी के ५०-६० पत्र—सन् १९७१ के बाद के—मेरे पास सुरक्षित हैं। उनके कुछ महत्वपूर्ण पत्र रमा सिंह, चन्द्रकला पाण्डेय, मुनीश पाण्डेय, रसिक बिहारी मंजुल, डा. मोहन डबराल, तेजी बच्चन आदि के पास भी सुरक्षित हैं।
* बच्चन जी के अतिरिक्त श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' और रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के भी अनेक अप्रकाशित मूल्यवान् पत्र मेरे पास सुरक्षित हैं। आप उनका सहर्ष उपयोग कर सकते हैं।
* बच्चन जी की पत्र-लेखन-कला के सम्बन्ध में विस्तृत चर्चा मेरी पुस्तक 'गद्यकार बच्चन' में की गयी है।

□

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी

सुप्रसिद्ध साहित्यकार, पत्रकार एवं हिन्दी पत्र-साहित्य के प्रणेता (फिरोजाबाद)

[वार्त्ता-दिनांक : ५-११-१९७८]

* सामूहिक रूप से पत्रों का मूल्यांकन एक स्वतंत्र विषय है।
* मैं अपने पत्रों को कामचलाऊ ही मानता हूँ।

* आचार्य पद्मसिंह शर्मा को मैं हिन्दी पत्र-लेखकों में सर्वोत्तम मानता हूं। स्व.-वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र भी महत्व रखते हैं।
* शिष्टाचार का तकाज़ा है कि लेखक की अनुमति प्राप्त करने के बाद ही पत्रों को छपाया जाय। पर सत्यनारायण कविरत्नजी की जीवनी में मैं इस शिष्टाचार का पालन नहीं कर पाया।
* मैं अपना जीवन खुली हुई किताब के रूप में रखने का पक्षपाती हूँ—जिसका जी चाहे सो पढ़ ले। मैं अपनी चारित्रिक या किसी भी प्रकार की त्रुटियों को छिपाना नहीं चाहता। उनको छिपाना तो दम्भपूर्ण होगा। 'नवीन' जी के चरित्र के हूबहू चित्रण के लिए उनके पत्रों का प्रकाशन अति आवश्यक था और यदि इसके लिए मुझे कुछ त्याग करना पड़ा तो यह मेरा कर्तव्य ही था।
* जब तक आप जनपथ नयी दिल्ली के राष्ट्रीय अभिलेखागार में मेरा संग्रह नहीं देख लेते, तब तक मेरे पत्र-संग्रह का यथोचित मूल्यांकन नहीं कर सकते। वहाँ २९० पत्र तो दीनबन्धु एण्ड्रूज़ के ही हैं।
* मैंने सहस्रों ही पत्र अंग्रेजी में लिखे होंगे—जो हिन्दी जानते हैं, उन्हें भी। यह मेरी भूल थी, पर ऐसा रोमन लिपि में पत्र जल्दी घसीटे जा सकते हैं, इसलिए भी आवश्यक बन पड़ा।

□

डा. भवानीलाल भारतीय

प्रसिद्ध आर्यसमाजी लेखक एवं विचारक (प्रोफ़ेसर एवं अध्यक्ष : महर्षि दयानन्द वैदिक अनुसंधान पीठ, पंजाब विश्वविद्यालय)

[वार्त्ता-दिनांक : २५-१०-१९७८]

* निश्चय ही साहित्यकारों के पत्रों का उनके कृतित्व और व्यक्तित्व के मूल्यांकन में विशिष्ट महत्व होता है।
* स्वामी श्रद्धानन्द तथा पं. भगवद्दत्त जी द्वारा सम्पादित पत्रों में महर्षि दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज के सम्बन्ध में जो तथ्य प्राप्त होते हैं, वे अन्यत्र दुर्लभ हैं।
* महर्षि दयानन्द सरस्वती के कतिपय दुर्लभ पत्र 'परोपकारी' में प्रकाशित हुए हैं :
* पत्रों के प्रकाश में स्वामी दयानन्द तथा स्वामी विवेकानन्द का तुलनात्मक अध्ययन अत्यन्त रोचक एवं महत्वपूर्ण होगा।

डा. रामविलास शर्मा

हिन्दी के प्रगतिशील कवि, लेखक एवं समालोचक (आगरा)

[वार्त्ता-दिनांक : २७-१०-१९७८

* पत्र-साहित्य एक व्यापक विषय है। उसका सीमांकन आवश्यक है।

* अनेक हिन्दी साहित्यकारों जैसे, प्रेमचन्द, महावीर प्रसाद द्विवेदी, पद्मसिंहशर्मा, सुमित्रानन्दन पन्त, निराला आदि के पत्र प्रकाश में आ चुके हैं। अतः सामग्री का तो अभाव नहीं है, किन्तु एक पत्र-लेखक पर अपेक्षाकृत अधिक ठोस कार्य हो सकता है।
* संघर्षकाल में लिखे गये निराला जी के पत्र सबसे अधिक मार्मिक एवं महत्व-पूर्ण हैं।
* शोध के स्तर पर निरालाजी के पत्रों का सर्वाधिक महत्व शैलीतात्विक विवेचन की दृष्टि से है।

□

स्व. विश्वम्भर 'मानव'

सुविख्यात विवेचक एवं विचारक (८८८, कल्याणी देवी, इलाहाबाद)

[वार्त्ता-दिनांक : ३०-१०-१९७८]

* महान् साहित्यकारों के सभी प्रकार के पत्र 'पत्र-साहित्य' के अन्तर्गत आयेंगे।
* इसके अतिरिक्त साहित्यिक स्तर पर किसी भी व्यक्ति द्वारा लिखे गये ऐसे पत्रों को भी हम 'पत्र साहित्य' के अन्तर्गत लेंगे जो लेखकों, उनके जीवन और कर्म तथा साहित्य की समस्याओं पर प्रकाश डालते हों।
* इस दृष्टि से 'शिव शम्भु के चिट्ठे', 'दुबेजी की चिट्ठियां', 'महादेवी : विचार और व्यक्तित्व' आदि निश्चित रूप से 'पत्र-साहित्य' के अन्तर्गत हैं।
* महादेवी जी के सम्बन्ध में श्री शिवचन्द्र नागर ने मेरे नाम जो पत्र लिखे हैं, वे ही अधिक महत्वपूर्ण हैं। नागर जी के नाम लिखे गये मेरे पत्र इतना महत्व नहीं रखते।

(५) पत्र-साहित्य के सम्बन्ध में प्राप्त सन्दर्भित पत्रों का सारांश :

डा. अम्बाप्रसाद 'सुमन'

ले. संस्कृति, साहित्य और भाषा (बृहत् पत्र-संग्रह, १९७९)

[पत्र-दिनांक : २४-३-१९७८]

"…..प्रारम्भ में कोई सन्देश या बात भोजपत्र आदि पत्रों पर ही लिखी जाती थी। इसीलिए कालांतर में काग़ज़ पर या किसी अन्य वस्तु पर लिखी हुई सन्देश-वार्त्ता, घटना आदि को पत्र कहने लगे। कागज भी पत्तियों से ही बनता था, इसीलिए वह भी पत्र कहलाया।.."

"पन्ना शब्द भी सं. पर्णक से विकसित हैं।…सं. पर्णक > प्रा. पण्णअ > पण्णा > पन्ना।"

□

श्रीमती कौशल्या अश्क

ले. रोली रंगेपत्र (१९६३)

[पत्र-दिनांक : ६-२-१९७७]

"....सतीश मेरे मौसेरे भाई हैं। इस समय वे मेजर हैं और अम्बाला में पोस्टेड हैं। अमृतेश नाम काल्पनिक है, लेकिन उन्हें पत्र लिखने वाली का नाम वास्तविक है। मेरे एक बहनोई भी सेना में हैं, तोषी उन्हीं की पत्नी यानी मेरी चचेरी बहन है।"

"पत्रों का एक अन्य वृहद संग्रह तैयार है, जिसमें मोहन राकेश, अश्क जी और मेरे पत्र हैं, लेकिन वह अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।"

"हमारी फ़ाइलों में अश्क जी के सहस्रों पत्र अप्रकाशित पड़े हैं। उनको दस खण्डों में छापने की योजना है...."

डा. जीवनप्रकाश जोशी

संपा. बच्चन : पत्रों में (१९७७)

[पत्र-दिनांक : १२-२-१९७७]

"....बच्चन : पत्रों में' पुस्तक अपने ढंग की पत्र-साहित्य में सबसे पहली पुस्तक है।"

"प्रश्न-पत्रोत्तर' में जो कुछ बच्चन जी ने लिखा है, वह एकदम नया है। पहले कहीं नहीं छपा। उसी का आधार लेकर उन्होंने अपना जीवन-चरित्र लिखा है। यह बहुत आवश्यक Point है।"

डा. प्रभाकर माचवे

संपा. जैनेन्द्र के विचार (१९३८)

[पत्र-दिनांक : ९-४-१९७९]

"पत्र'-लेखन ऐसी विधा है जिसमें वैयक्तिक-सामाजिक का भेद बहुत कम हो जाता है। वैसे भी साहित्य में सतत जो वैयक्तिक है, वह निर्वैयक्तिक होता रहता है, और इससे हमारे भीतर इन दोनों में जब द्वन्द्वात्मक संबंध होता है, तभी 'साहित्य' पैदा होता है।"

"पत्र-साहित्य' और 'पत्र-शैली में लिखित साहित्य' में स्पष्ट अन्तर है। कई उपन्यास केवल पत्रों में ही लिखे जाते हैं—यथा मराठी उपन्यासकार वामन मल्हार जोशी का 'इंदु काके आणि सीला थोके,—यह उपन्यास है, पत्र-साहित्य' नहीं। वैसे ही 'दुबेजी की चिट्ठी' साहित्यिक 'कालम'(स्तंभ) है, 'पत्र-साहित्य' नहीं। 'चन्द हसीनों के ख़तूत' तो गालिब के एक शेर की पंक्ति है—'उग्र' की पुस्तक 'उग्र' के पत्र नहीं हैं। मेरे ख्याल से जितने बड़े नाम आपने गिनाये हैं—वे भूल कर गये हैं।"

□

पं. बनारसीदास चतुर्वेदी

संपा. पद्मसिंह शर्मा के पत्र (१९५६)

[पत्र-दिनांक : ५-३-१९७७ तथा १८-७-१९७८]

"मैं पूरी तैयारी के बाद भी 'पत्र-व्यवहार-मेरा व्यसन' नहीं लिख पाया।"

"दिनकर जी के ग्रंथ संस्मरण में उनका एक लेख मुझ पर भी है। उसमें उन्होंने मुझे हिन्दी का एक मात्र पत्र-लेखक लिख दिया है, जो सरासर गलत है। हां, संख्या में मेरे पत्र बहुत काफी होंगे····"

□

बाबू वृन्दावनदास

संपा. (i) डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र (१९७१)
(ii) डा. वासुदेवशरण अग्रवाल के पत्र (१९७४)

[पत्र-दिनांक : ११-४-१९७७]

"डा. बनारसीदास चतुर्वेदी के पत्र' शीर्षक मेरी पुस्तक में पृष्ठ ४० पर अन्य विवरण के अतिरिक्त 'चन्द हसीनों के खतूत,' 'विनय पत्रिका' तथा 'सूर विनय पत्रिका' का उल्लेख किया गया है। जैसा कि इन पुस्तकों के नामोल्लेख के के साथ ही लिखा गया है, "पत्र-विधा के ही एक रूप हैं, मैं अब भी इसी मत का हूं। पत्रात्मक रूप में लिखी हुई सामग्री निश्चय ही पत्र-साहित्य का ही एक रूप है।····"

□

मधुरेश

संपा. यशपाल के पत्र (१९७७)

[पत्र-दिनांक : २८-७-१९७१]

"पत्र कहानी, संस्मरण, रेखाचित्र, आत्मकथा और जीवनी आदि की भांति ही साहित्य की एक मान्यता प्राप्त विधा है।····किसी भी लेखक के यदि वह सचमुच की एक जागरूक और युग-समस्याओं के प्रति एक खुला हुआ लेखक है, व्यक्तिगत पत्र उस रूप में व्यक्तिगत नहीं होते जिस रूप में एक सामान्य आदमी के होते हैं। जिन्हें नितांत व्यक्तिगत पत्र भी कहा जाता है, वे भी लेखक के साहित्य की पृष्ठभूमि को बड़े- चमत्कारी ढंग से आलोकित करते हैं। शर्त बस यही है कि वे पत्र मात्र सूचनात्मक और गद्य धर्मी न होकर रह गये हों····"

□

डा. हरिवंशराय बच्चन

संपा. (i) पन्त के सौ पत्र (१९७०)
(ii) पन्त के दो सौ पत्र (१९७१)

[पत्र-दिनांक : २३-३-१९७७]

"पन्त के दो सौ पत्र मैंने प्रकाशित किए जिस रूप में वे लिखे गए हैं। वे चाहते थे उन्हें काट-छांटकर प्रकाशित किया जाय—मैं तैयार नहीं हुआ इसके लिए। उन्होंने मुकदमा दायर कर दिया, पर अपना पक्ष कमजोर पाकर मुकदमा वापस ले लिया। पुस्तक उसी रूप में है जिस रूप में मैंने छपाई थी।"

□

प्रमुख पत्र–लेखकों के पत्रों के चित्र

महर्षि दयानन्द सरस्वती का पत्र राजा शिवप्रसाद जी के नाम

राजा शिवप्रसादजी आनन्दित रहो

आपका पत्र मेरे पास आया देखकर अभिप्राय जानलि
या इसके देखने से मुझको निश्चित हुआ कि आपने वेदों से लेके
पूर्वमीमांसा पर्यन्त विद्यापुस्तकों के मध्य में से कोई भी पु
स्तक के शब्दार्थ संबंधों को नहीं जाना है इसलिये आपको मेरी बनाई
भूमिका का अर्थ भी ठीक२ विदित न हुआ जो आप मेरे पास आके स
मझते तो कुछ२ समझ सकते परन्तु जो आपको अपने प्रश्नों
के प्रत्युत्तर सुननेकी इच्छा हो तो स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती वा बा
ल शास्त्रीजी को खड़ा करके सुनियेगा तो भी आप कुछ२ समझ
सकेंगे भला विचार तो कीजिये कि आप उन पुस्तकों के पढ़े बिना
वेद और ब्राह्मण पुस्तकों का कैसा आपसमें संबन्ध क्या२ उनमें
है और स्वतः प्रमाण तथा ईश्वरोक्त वेद और परतः प्रमा
ण और ऋषिमुनिकृत ब्राह्मण पुस्तक हैं इन हेतुओं से क्या२ सि
द्धान्त सिद्ध होते हैं और ऐसे हुए बिना क्या२ हानि होती है इनवि
द्यारहस्य की बातों को जाने बिना आप कभी नहीं समझ सकते। सं० १९३६ मि० वै०
बदि सप्तमी शनिवार (दयानन्दसरस्वती)

['ऋषि दयानन्द सरस्वती के पत्र और विज्ञापन' से साभार]

महात्मा गांधी का पत्र पं. वियोगी हरि के नाम

भाई वियोगी हरि,

तुमारा तार मिला है। हिंदी हरिजन
निकलनेवाला नहि पता नहि चलता है
मैं क्या लिख भेजुं? जितने हरिजनके
अंक निकल चुके हैं उसमें से यदि मैं
लेख भेजुं उसमें से चुनाव करने में और
जो लिखा जायगा उसमें से यथेच्छ हिंदीका
का ही अनुवाद करनेमें तुमारी कठिनाई
नहि होगी। हिंदी अंक मेरे हाथमें
आनेके बाद मैं देख लुंगा कि कुछ
और लिखनेकी आवश्यकता है या
नहि। हां, एक बात है यदि तुझे
कुछ भी भेजो तो उसमें से यादी,
आवश्यक वस्तु पर लिखना मुझे
मेरी आशा है कि यह जल्दी हो जाय।
खाम लंबी हो जायगा।

२६-२-३३ बापु

['बड़ों के प्रेरणादायक कुछ पत्र' से साभार]

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का पत्र पं. किशोरीदास वाजपेयी के नाम

दौलतपुर — रायबरेली
7-11-33

आशीर्वाद,

मुकुलित कली के साथ स्फुट को आप भूल गये। हिन्दी के भी विद्वान् उसे कुड्मल के अर्थ में लिखते हैं।

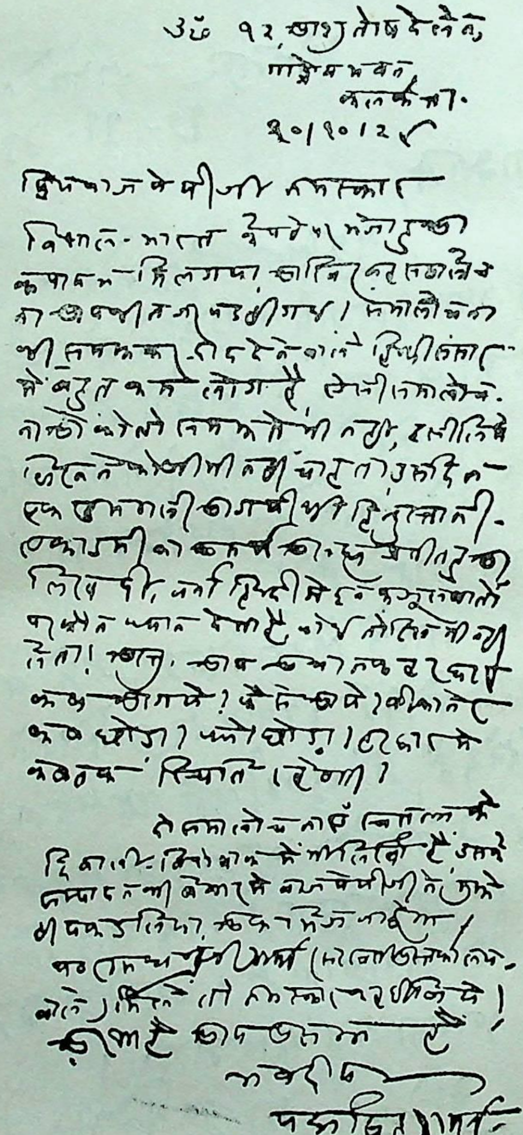
जिसने लघुकौमुदी के भी दर्शन नहीं किये उसे शब्दों का तारतम्य आप सिखलाना चाहते हैं!

आपके लेख देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। आप खूब लिखते हैं। खेद है, मैं थोड़ी बातें पढ़ सकता हूँ। मेरा उन्निद्र रोग आजकल बहुत बढ़ गया है। व्याकुल रहता हूँ। चिट्ठी कोई लिखते से भी गश आ जाता है। स्मृति का यह हाल है कि आपका पता भूल गया।

शुभैषी म० प्र० द्विवेदी

['साहित्यिकों के पत्र' से साभार]

पं. पद्मसिंह शर्मा का पत्र श्रीयुत वाजपेयीजी के नाम



['पद्मसिंह शर्मा के पत्र' से साभार]

महाप्राण निराला का पत्र आ. जानकीवल्लभ शास्त्री के नाम

58 Nariyalwaligali,
Lucknow.
17. 4. 56

प्रिय जानकीवल्लभजी
आपकी मेरी पुस्तकें
सखी और प्रभावती मेरे पास रक्खी
हैं, पर मैं भेज नहीं सकता। क्योंकि
कांग्रेसमैन में मेरा अर्जित अर्थ खर्च
हो गया है। आप आठ आने के टिकट
भेजिये या मैं बैरंग भेजने के लिये
लिखिये। आपका, निराला

['निराला के पत्र' से साभार]

बाबू वृन्दावनदास का पत्र लेखक के नाम

वृन्दावनदास
बी. ए. एल-एल. बी., साहित्य वारिधि — प्रकाश भवन,
अध्यक्ष : व्रज साहित्य मण्डल — मथुरा 25/2/71
एवं
उत्तर प्रदेशीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन

बन्धुवर ज्ञानी जी। प्रणाम।

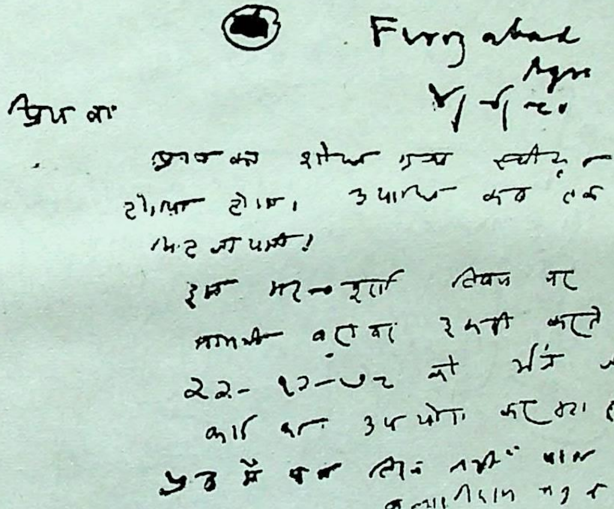
आपका पत्र मिला। भवदीय बन्धुवर अग्रवाल जी ने वह विवरण मुझे नहीं दिखाया है। मैं उनसे पूछ लूँगा।

आप डा. बनारसीदास जी चतुर्वेदी को उनके कोटद्वार स्थित पते पर पत्र भेज सकते हैं। पता है डा बनारसीदास चतुर्वेदी कोटद्वार (गढ़वाल)

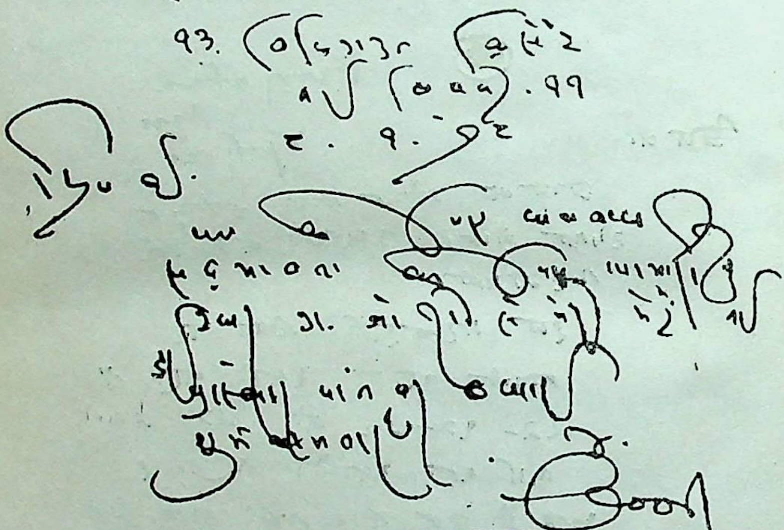
मेरा पत्र संग्रह अभी छपना शुरू नहीं हुआ है। अप्रैल मास में उसका मुद्रण शुरू होगा।

[illegible] गंगाप्रसाद जी का [illegible] कीर्ति समारोह विद्वानों के उपस्थित होगा। शेष सब कुशल है आशा है आप सानन्द हो। आपका वृन्दावन—

प. बनारसीदास चतुवदी का पत्र लेखक के नाम



डा. हरिवंश राय बच्चन का पत्र लेखक के नाम



में
ट
ुभव-
है । मैं
क की इस
करता हूं ।
-कौशल
हिन्दी
भा-
ना

दो
ने

इस
त्र-
ति

'हिन्दी का पत्र-साहित्य' शोध-प्रबन्ध अपने विषय का अनूठा और अकेला है। हिन्दी साहित्य-संसार में पत्रों के रूप में लिखे गये और चारों ओर बिखरे असंकलित भावना-भंडार और विचार-कोष के अनुशीलन और संचय के लिए ऐसे ही सत्प्रयास की आवश्यकता थी। लेखक ने इस सार-गर्भित कृति पर उपाधि तो प्राप्त की ही है, लेखन-प्रक्रिया की ऐसी आन्तरिक आत्मीय, अंतरंग, आवरणमुक्त पर उपेक्षित विधा पर प्रकाश डाला है—उसके मर्मलोक का उद्‌घाटन और विवेचन किया है जो अपनी निजी प्राणवत्ता लिये है। पत्रों के रूप में जो अंतरंग आवेग और उद्‌गार प्रकट होते हैं उनकी हार्दिकता और अनुभव-जन्य सचाई निर्विवाद होती है। मैं एक अहिन्दी भाषी सुलेखक की इस विशिष्ट कृति का स्वागत करता हूं। लेखक का परिश्रम और रचना-कौशल सार्थक हो-सफल हो और हिन्दी संसार इससे रसान्वित और लाभान्वित हो, यही मेरी एकान्त कामना है।

—**रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'**

प्रियवर,

पत्र के लिए धन्यवाद।

सद्‌भावना के लिए आभारी हूँ।

मुझे प्रसन्नता है आपका शोध-प्रबंध 'हिन्दी का पत्र-साहित्य' प्रकाशित होने जा रहा है।

जहाँ तक मुझे मालूम है, हिन्दो पत्र-साहित्य का इससे पूर्व किसीने इतना विशद विवेचन नहीं किया।

मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस कृति का स्वागत होगा और पत्र-साहित्य शोध की दिशा में यह कृति पथ-प्रदर्शक का काम करेगी।

मेरी बधाई स्वीकार करें।

शुभ कामनाएँ।

सप्रेम,

(ह.) बच्चन